



सर्वतिका प्रकाशन
इलाहाबाद



वाचस्पति गौरीला

अशोकमल्ल विरचित नृत्याध्याय

NRTYĀDHYĀYA

(A work on Indian Dancing)

by

AŚOKAMALLA

Tr by

Vachaspati Gairola

Price Rs 15 00



भारतशासनस्य शिक्षामन्त्रालयस्य वित्तीय साहाय्येन मुद्रितम्

Printed with the Financial assistance from the Ministry of Education
Government of India

अशोकमल्ल

विरचित

नृत्याध्याय

[भारतीय नाट्यशास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ]

वाचस्पति गैरोला

प्रकाशक



संवर्तिका प्रकाशन

३३।६, करेलाबाग कॉलोनी, इलाहाबाद-३

सर्वतिका प्रकाशन
३३/९, करेलाबाग काँलोनी, इलाहाबाद द्वारा
प्रकाशित

प्रथम सस्करण १९६९

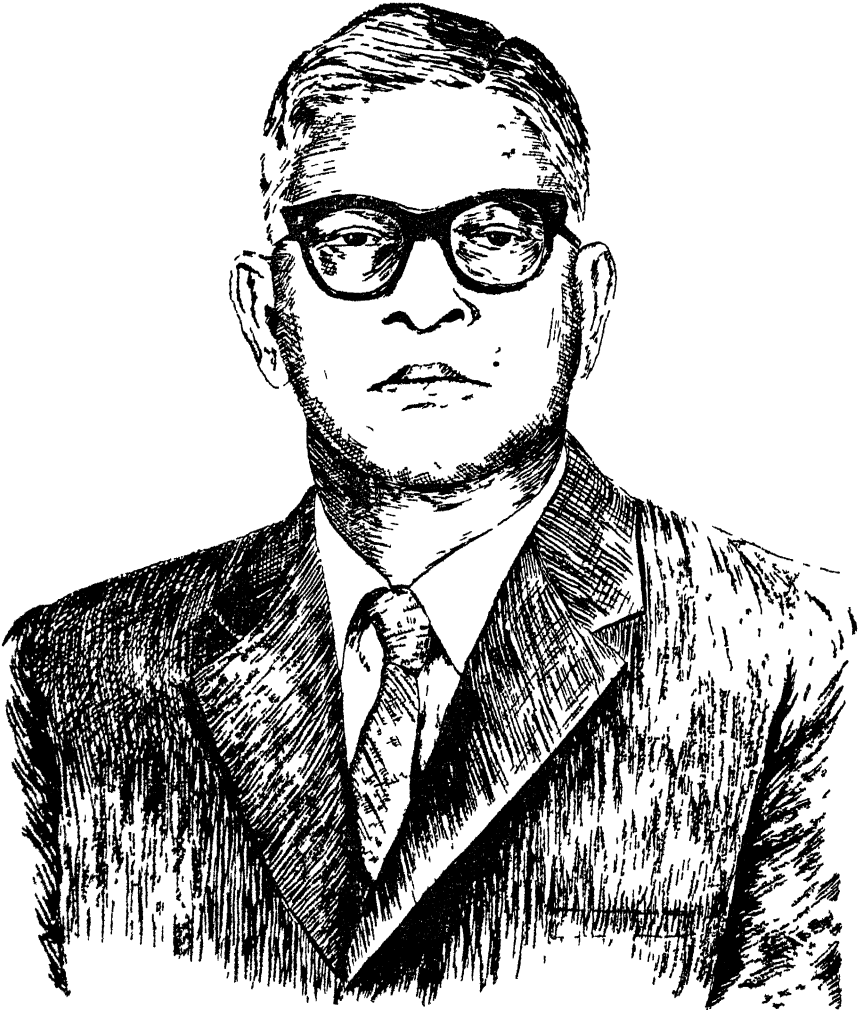
कापीराइट
श्री वाचस्पति गैरोला

आवरण सज्जा रेखानुकृति
श्री कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव
श्री शिवगोविन्द पाण्डेय

ब्लाक निर्माता
सरस्वती ब्लाक वर्क्स, इलाहाबाद

मुद्रक
लीडर प्रेस, प्रयाग

मूल्य १५ ००



श्रद्धेय
डाक्टर के० एन० गैरोला
को
सादर समर्पित

प्राक्कथन

अशोकमल्ल और उनका नृत्याध्याय

ग्रन्थ के अन्तर्माध्य के आवार पर यह मिद्ध होता है कि अशोकमल्ल एक राजा था। नृत्याध्याय के कतिपय स्थानों पर उमने स्वय ही अपने नाम का उल्लेख किया है (यथा ५६४, ९४५, १०१८, १०६४, १०७७ औ १२७२ आदि)। अपने लिए उसने अनेक प्रकार के विशेषणों का प्रयोग किया है, जिनके आवार पर उसका राजा होना मिद्ध होता है। स्वय को उमने अशोकेन पृथ्वीन्द्रेण (४६), अशोकमल्लेन भूभुजा (८०, १०७ १८८, ३३९, ३९९ तथा १५९७), अशोक्तमल्लो नृपाग्रणी (२१, ५४५, ८८५ तथा १५१९ आदि) और नृपाशोकमल्लेन (१२९४, १३२७ एव १४८९ आदि) राजपदवाच्य विशेषणों से अभिहित किया है। राजा होने के साथ ही उमने अपने को धीमान् (४६, ५२६) आर विदुषा चर (४२८) भी बताया है। अपने लिए उमने विशेष सम्मानजनक पदवियों एव गौरवशाली पर्यायों का भी उल्लेख किया है, जा कि ६९५, ७०७, ९७३, १०८८, १२०८ और १२१२ आदि श्लोकों में दृष्टव्य हैं।

परिचयात्मक दृष्टि से अशोकमल्ल के सम्बन्ध में किमी भी प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। नृत्याध्याय के कतिपय स्थलों से केवल इतना ज्ञात होता है कि अशोकमल्ल के पिता का नाम वीरसिंह था। वीरसिंह भी राजपद पर आसीन हुआ, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु अशोकमल्ल द्वारा अपने लिए प्रयुक्त वीरसिंहसुत (३३८, ८०१ ४६५), वीरसिंहसूनुता (३९८, ८८६, १०१३), वीरसिंहात्मज (८८९, १०४१), वीरसिंहज (९१३, १०४८, १३०६) और वीरसिंहसुतन्दन (१५३७) आदि उल्लेखों में स्पष्ट है कि उनके पिता का नाम वीरसिंह था।

अशोकमल्ल कहीं का राजा था और उसका स्थितिकाल क्या था, इस सम्बन्ध में किमी प्रकार की कोई ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है, किन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थ में जिन आचार्यों का उल्लेख किया है उमने ऐसा प्रतीत होता है कि वे १४वीं, १५वीं शती ई० के आम-पाम हुए। ऐसा ज्ञात जाता है कि वे क्षत्रिय वशोद्भव थे और दक्षिण-मध्य भारत के निवासी। न०८-संगीत के वे पारंगत विद्वान् थे और अन्य कलाओं में भी निगण थे। विद्वान् होने के साथ ही वे विद्वत्प्रिय भी थे।

उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति नृत्याध्याय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अपनी वर्तमान स्थिति की अपेक्षा अपने मूल रूप में वह कुछ भिन्न थी। जिस रूप में उसका एकमात्र हस्तलेख उपलब्ध हुआ है, उसमें निश्चित ही उसके लिपिकार की स्वयुद्धि का भी आंशिक समावेश देखने को मिलता है। आदि से अन्त तक उसको एक ही गति से लिपिवद्ध किया गया है और बीच-बीच में उसके अनेक स्थल स्वकृति तथा अशुद्ध हो गये हैं। मूल हस्तलेख के लिपिकरण की इस अवैज्ञानिकता, अज्ञता एव असावधानी के कारण अनेक स्थल

नृत्याध्याय

भी ज्ञात होता है कि उसकी इस सर्वांगीणता के कारण लोकदृष्टि और शास्त्रदृष्टि, दोनों प्रकार से उसको असाधारण ख्याति प्राप्त हुई।

आभार

महाराज अशोकपटल विरचित नृत्याध्याय को सर्व प्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडोदा को है। श्री बी० जे० सन्देशर के प्रधान सम्पादकत्व और मुश्री डा० प्रियवाग शाह के सम्पादकत्व में यह ग्रन्थ गायकवाट ऑरिएण्टल सीरीज मख्या १४१ में १९६३ ई० को प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ की मूल हस्तलिखित प्रति जोरिएण्टल इन्स्टिट्यूट, बडोदा के हस्तोक्त-संग्रह में सुक्षिप्त थी। उस हस्तोक्त को महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडोदा ने अपने संगीत तथा नाट्य विभाग ग्रन्था की सम्पादन-प्रकाशन-योजना में सम्मिलित कर उसका सम्पादन तथा प्रकाशन कराया। संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता में उसका सम्पादन तथा प्रकाशन हुआ।

इस प्रकार यह ग्रन्थ ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट, बडोदा, महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडोदा और संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली, इन तीन संस्थानों से सम्बद्ध है। मुझे यह ज्ञापित करने प्रसन्नता हो रही है कि ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट, बडोदा के निदेशक एवं नृत्याध्याय के प्रधान सम्पादक श्री बी० जे० सन्देशर, (B J Suresha), महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडोदा के निदेशक श्री के० ए० अमीन (K A Amin) और संगीत नाटक अकादेमी नयी दिल्ली के सचिव डॉ० सुरेश अवस्थी ने मेरे निवेदन पर इस महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ को हिन्दी अनुवाद गति प्रगुत करने की स्वीकृति प्रदान की। इन ओदार्य एवं सहयोग के लिए मैं उक्त तीनों संस्थानों एवं सम्बन्धित विद्वान् महानुभावों के प्रति अपनी सादर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

संस्कृत साहित्य के इन ग्रन्थों का यह सचित्र हिन्दी संस्करण सम्भवतः प्रकाश में न जाया जाता, यदि शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा इसके मुद्रण आदि के लिए मुझे आर्थिक वित्तीय सहायता प्राप्त न हुई होती। हिन्दी साहित्य में नाट्य-विषयक लक्षण ग्रन्थों का प्रायः अभाव ही है। उस दृष्टि में विभिन्न भाषाओं के विविध ग्रन्थों को अनुवाद तथा रूपांतर द्वारा अन्य भाषाओं में लाने तथा उन्हें सर्व मुद्रित बनाने के उद्देश्यसे भारत सरकार ने अपनी विज्ञाप योजना के अन्तर्गत इस ग्रन्थ का हिन्दी संस्करण प्रकाशित कराया है। एतदर्थ भारत सरकार के प्रति मैं अपनी सादर आभार प्रकट करता हूँ।

इस ग्रन्थ के निर्माण, मुद्रण तथा सज्जा आदि में मुझे लीडर प्रेम के व्यवस्थापक श्री वालादत्त पाण्डेय और आचार्य तारणीश झा से जो सहयोग प्राप्त हुआ है तदर्थ उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में नाट्यशास्त्र (Dramaturgy) विषय के अध्ययन के लिए हिन्दी के माध्यम में पाठ्य-सामग्री का जो अभाव बना हुआ है, मुझे विश्वास है कि उस उपयोगी ग्रन्थ के प्रकाशित हो जाने से उसकी पूर्ति में सहायता होगी और उसके द्वारा उस विषय के छात्रों तथा अध्यापकों का बहुत-कुछ लाभ होगा।

—दास्यति शरोला

विषयानुक्रम

हस्त प्रकरण एक

असयुत हस्त आर उनका विनियोग

	श्लोक सख्या	पृष्ठ सख्या
५ चतुर हरत और उसका विनियोग	१- १९	५९-६२
६ हसास्य हस्त और उसका विनियोग	२०- ३०	६२-६४
७ अमर हस्त और उसका विनियोग	३१- ३३	६४-६५
८ काँगूल हस्त और उसका विनियोग	३४- ४०	६५-६६
९ ताम्रचूड हस्त और उसका विनियोग	४१- ४४	६६-६७
१० मुष्टि हस्त और उसका विनियोग	४५- ५२	६७-६८
११ शिखर हस्त और उसका विनियोग	५३- ६२	६८-७०
१२ कपित्थ हस्त और उसका विनियोग	६३- ७१	७०-७२
१३ खटकानुख हस्त और उसका विनियोग	७२-७९	७२-७३
१४ सूचीमुख हस्त और उसका विनियोग	८०-१०६	७३-७८
१५ त्रिपताक हस्त और उसका विनियोग	१०७-१३२	७८-८३
१६ कर्तरोमुख हस्त और उसका विनियोग	१३३-१४१	८३-८४
१७ अर्धचन्द्र हस्त और उसका विनियोग	१४२-१४९	८४-८५
१८ अराल हस्त और उसका विनियोग	१५०-१६४	८५-८८
१९ शुकतुण्ड हस्त और उसका विनियोग	१६५-१६८	८८-८९
२० सन्दश हस्त और उसका विनियोग	१६९-१८३	८९-९१
२१ मुकुल हस्त और उसका विनियोग	१८४-१९०	९१-९२
२२ पद्मकोश हस्त और उसका विनियोग	१९१-१९८	९२-९४
२३ ऊर्णनाभ हस्त और उसका विनियोग	१९९-२०२	९४
२४ अलपल्लव हस्त और उसका विनियोग	२०३-२११	९४-९६

नृत्याध्याय

संयुत हस्त और उनका विनियोग

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१	अजलि हस्त और उसका विनियोग	२१२-२१३	९६
२	कपोत हस्त और उसका विनियोग	२१४-२१९	९७-९८
३	कर्कट हस्त और उसका विनियोग	२२०-२२६	९८-९९
४	गजदन्त हस्त और उसका विनियोग	२२७-२३०	९९
५	निषध हस्त और उसका विनियोग	२३१-२३३	१००-१००
६	पुष्पपुट हस्त और उसका विनियोग	३३४-३३५	१००
७	खटकावर्धन हस्त और उसका विनियोग	२३६-२३९	१००-१०१
८	उत्सग हस्त और उसका विनियोग	२४०-२४२	१०१-१०२
९	स्वस्तिक हस्त और उसका विनियोग	२४३-२४६	१०२
१०	दोला हस्त और उसका विनियोग	२४७-२४८	१०२-१०३
११	अवहित्य हस्त और उसका विनियोग	२४९-२५०	१०३
१२	मकरचेहस्त और उसका विनियोग	२५१-२५२	१०३
१३	वर्धमान हस्त और उसका विनियोग	२५३-२५५	१०४

वृत्तहस्त और उनका विनियोग

१	चतुरस्र हस्त और उसका विनियोग	२५६	१०४-१०५
२	उद्बृत्त हस्त और उसका विनियोग	२५७-२६०	१०५
३	तलमुख हस्त और उसका विनियोग	२६१	१०५-१०६
४	नितम्ब हस्त और उसका विनियोग	२६२	१०६
५	केशबन्ध हस्त और उसका विनियोग	२६३-२६४	१०६
६	उत्तानर्वाचित हस्त और उसका विनियोग	२६५-२६६	१०६
७	लताकर हस्त	२६७	१०७
८	करि हस्त	२६८-२६९	१०७
९	रेचित हस्त	२७०-२७१	१०७-१०८
१०	अर्धरेचित हस्त	२७२	१०८
११	पल्लव हस्त	२७३-२७५	१०८
१२	ललित हस्त	२७६-२७७	१०८-१०९
१३.	पक्षवचितक हस्त	२७८	१०९

विषयानुक्रम

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१८	पदप्रद्योतक हस्त	२७९
१५	ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्त	२८०-२८१
१६	पार्श्वमण्डलिन् हस्त	२८२-२८३
१७	उगोमण्डलिन् हस्त	२८४-२८६
१८	उरु पार्श्वार्धमण्डल हस्त	२८७-२८८
१९	नलिनी पदमकोश हस्त	२८९-२९३
२०	मुष्टि स्वस्तिक हस्त	२९४-२९५
२१	वलित हस्त	२९६-२९९
२२	दण्डपक्ष हस्त	३००-३०१
२३	गण्ड पक्षक हस्त	३०२
२४	अलपक्ष हस्त	३०३
२५	उल्वण हस्त	३०४
२६	स्वस्तिक हस्त	३०५
२७	विप्रकीर्ण हस्त	३०६
२८	आविद्धवक्र हस्त	३०७
२९	सूच्यास्य हस्त	३०८-३१०
३०	अरालवटकामुख हस्त	३११-३१७
हस्ताभिनय का उपसहार		
	हस्ताभिनय विधान	३१८-३२६
		११६-११७

अग प्रत्यग प्रकरण / दो

अगाभिनय और उनका विनियोग

	पाच प्रकार का वक्षाभिनय	३२७-३३२	१२१
	वक्षाभिनय के भेद	३२७	१२१
१	सम और उसका विनियोग	३२८	१२१
२	निर्भुग्न और उसका विनियोग	३२९	१२१
३	आभुग्न और उसका विनियोग	३३०	१२१-१२२
४	प्रकम्पित और उसका विनियोग	३३१	१२२
५	उद्वाहित और उसका विनियोग	३३२	१२२

पांच प्रकार का पार्श्वभिनय

	पार्श्वभिनय के भेद	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१	विवर्तित और उसका विनियोग	३३३	१२७
२	अपसृत और उसका विनियोग	३३४	१२७
३	प्रसारित और उसका विनियोग	३३५	१२३
४	नत और उसका विनियोग	३३६	१-३
५	उन्नत और उसका विनियोग	३३७	१२३

पांच प्रकार का कटि अभिनय

	कटि अभिनय के भेद	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१	कम्पिता और उसका विनियोग	३३९	१२३
२	उद्वाहिना और उसका विनियोग	३४०	१२३
३	छिन्ना और उसका विनियोग	३४१	१२४
४	विवृत्ता और उसका विनियोग	३४२	१२४
५	रेचिता और उसका विनियोग	३४३	१२४

चत्तरह प्रकार का पादाभिनय

	पादाभिनय के भेद	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१	सम पाद और उसका विनियोग	३४६	१२५
२	जञ्चित पाद और उसका विनियोग	३४७	१२५
३	कुञ्चित पाद और उसका विनियोग	३४८	१२५
४	मृची पाद और उसका विनियोग	३४९	१२५
५	अग्रतलमञ्चर पाद और उसका विनियोग	३५०-३५१	१२६
६	उद्धटित पाद और उसका विनियोग	३५२	१२६
७	त्रोटित पाद और उसका विनियोग	३५३	१२६
८	घट्टितनो-सेध पाद और उसका विनियोग	३५४	१२६
९	घट्टित पाद और उसका विनियोग	३५५	१२६-१२७
१०	मर्दिन पाद और उसका विनियोग	३५६	१२७
११	अग्रण पाद और उसका विनियोग	३५७	१२७

विषयसूची

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या	
१२	पार्श्वगत पाद और उसका विनियोग	३५८	१२७
१३	पार्श्वगत पाद और उनका विनियोग	३५९	१२७

प्रत्यगाभिनय और उनका विनियोग

	नौ प्रकार का ग्रीवाभिनय		
	ग्रीवा के भेद	३६०	१२७
१	समा और उसका विनियोग	३६१	१२८
२	नता और उसका विनियोग	३६२	१२८
३	उन्नता और उसका विनियोग	३६३	१२८
४	त्रयत्रा और उसका विनियोग	३६४	१२८
५	वक्रिता और उसका विनियोग	३६५	१२८
६	कुञ्चिता और उसका विनियोग	३६६	१२९
७	अञ्चिता और उसका विनियोग	३६७	१२९
८	निवृत्ता और उसका विनियोग	३६८	१२९
९	रञ्जिता और उसका विनियोग	३६९	१२९

माला प्रकार का बाहु अभिनय

	बाहु के भेद		
	प्रसारित और उसका विनियोग	३७०-३७१	१२९-१३०
१	अधोमुख और उसका विनियोग	३७२	१३०
२	ऊर्ध्वमुख और उसका विनियोग	३७३	१३०
३	ऊर्ध्वस्थ और उसका विनियोग	३७४	१३०
४	आवेष्टित और उसका विनियोग	३७५	१३०
५	अञ्चित और उसका विनियोग	३७६	१३०
६	स्वस्तिक और उसका विनियोग	३७७	१३१
७	मण्डलगति और उसका विनियोग	३७८	१३१
८	तिर्यक् और उसका विनियोग	३७९	१३१
९	पृष्ठानुसारी और उसका विनियोग	३८०	१३१
१०	अपविद्ध और उसका विनियोग	३८१	१३१-१३२

नृत्याध्याय

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
११ कुञ्चित और उसका विनियोग	३८०	१३२
१२ सरल और उसका विनियोग	३८३	१३२
१३ नम्र और उसका विनियोग	३८४	१३२
१४ आन्दोलित और उसका विनियोग	३८५	१३२
१५ उत्सारित और उसका विनियोग	३८६	१३२-१३३
१६ अविद्ध और उसका विनियोग	३८७	१३३
चार प्रकार का उदराभिनय		
उदर के भेद	३८८	१३३
१ क्षाम और उसका विनियोग	३८९	१३३
२ खल्ल और उसका विनियोग	३९०	१३३
३ पूर्ण और उसका विनियोग	३९१	१३३
४ रिक्तपूर्ण और उसका विनियोग	३९२	१३३-१३८
चार प्रकार का पृष्ठाभिनय		
१ क्षाम	३९३	१३८
२ खल्ल	३९३	१३८
३ पूर्ण	३९३	१३८
४ रिक्त	३९३	१३८
पाँच प्रकार का ऊरु अभिनय		
ऊरु के भेद	३९४	१३८
१ स्तब्ध और उसका विनियोग	३९४	१३८
२ कम्पित और उसका विनियोग	३९५	१३४
३- वलित और उसका विनियोग	३९६	१३८-१३९
४ उद्वर्तित और उसका विनियोग	३९७	१३५
५ निर्वर्तित और उसका विनियोग	३९८	१३५
उदस प्रकार का जघाभिनय		
जघा के भेद	३९९-४००	१३५
१ क्षिप्ता और उसका विनियोग	४००	१३५

विषयानुक्रम

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
२	नता और उसका विनियोग	४०१	१३६
३	उदवाहिता और उसका विनियोग	४०२	१३६
४	आवर्तिता और उसका विनियोग	४०३	१३६
५	परिवर्तिता और उसका विनियोग	४०४	१३६
६	बहिर्गता और उसका विनियोग	४०५	१३६
७	कम्पिता और उसका विनियोग	४०६	१३६
८	तिरश्चीना और उसका विनियोग	४०७	१३७
९	परावृत्ता और उसका विनियोग	४०८	१३७
१०	निःसृता	४०९	१३७

सप्त प्रकार का ज्ञान अभिनय

	ज्ञान के भेद	४१०	१३७
१	नत और उसका विनियोग	४११	१३७
२	उन्नत और उसका विनियोग	४११	१३७
३	सहस्र और उसका विनियोग	४१२	१३८
४	विवृत और उसका विनियोग	४१३	१३८
५	सम और उसका विनियोग	४१४	१३८
६	अर्धकुञ्चित	४१५	१३८
७	कुञ्चित और उसका विनियोग	४१६	१३८

पाँच प्रकार का मणिवन्ध अभिनय

	मणिवन्ध के भेद	४१७	१३८-१३९
१	निकुञ्च और उसका विनियोग	४१८	१३९
२	आकुञ्चित और उसका विनियोग	४१९	१३९
३	चल और उसका विनियोग	४२०	१३९
४	भ्रमित और उसका विनियोग	४२१	१३९
५	सम और उसका विनियोग	४२२	१३९
	प्रत्यग भूषणों का निरूपण	४२३-४२५	१४०

नृत्याध्याय

दृष्टि प्रकरण / तीन

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
दृष्टि अभिनय और उनका विनियोग		
रसजा दृष्टि के भेद	४२६	१४३
स्थायी भावजा दृष्टि के भेद	४२७	१४३
भवारी भावजा दृष्टि के भेद	४२८-४३०	१४३-१८
आठ प्रकार की रसजा दृष्टियाँ		
१ कान्ता	४३१-४३२	१४४
२ हास्या और उसका विनियोग	४३३	१४४
३ कृष्णा और उसका विनियोग	४३४	१४४-१४५
४ रौद्री और उसका विनियोग	४३५	४४५
५ वीरा और उसका विनियोग	४३६-४३७	१४५
६ भयानका और उसका विनियोग	४३८	४४५
७ बीभत्सा और उसका विनियोग	४३९	१४५-१४६
८ तद्भक्ता और उसका विनियोग	४४०	१४६
आठ प्रकार की स्थायी भावजा दृष्टियाँ		
१ स्निग्धा	४४१	१४६
२ हृष्टा और उसका विनियोग	४४२	१४६
३ दीना	४४३	१४६-१४७
४ क्रद्धा और उसका विनियोग	४४४	१४७
५ दृप्ता और उसका विनियोग	४४५	१४७
६ भयास्विता	४४६	१४७
७ जगुप्सिता	४४७	१४७
८ विस्मिता और उसका विनियोग	४४८	१४७-१४८
बीस प्रकार की सचारी भावजा दृष्टियाँ		
१ श्ल्या और उसका विनियोग	४४९	१४८
२ मलिना और उसका विनियोग	४५०-४५१	१४८

विषयानुक्रम

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
३	श्रान्ता और उसका विनियोग	४५२ १४८
४	लज्जिता और उसका विनियोग	४५३ १४९
५	ग्लाना और उसका विनियोग	४५४ १४९
६	शक्तिता और उसका विनियोग	४५५ १४९
७	विषमता और उसका विनियोग	४५६ १४९
८	सुकृता और उसका विनियोग	४५७ १४९-१५०
९	कुञ्चिता और उसका विनियोग	४५८ १५०
१०	अभितप्ता और उसका विनियोग	४५९ १५०
११	जिह्वा और उसका विनियोग	४६० १५०
१२	ललिता और उसका विनियोग	४६१ १५०-१५१
१३	वितर्किता और उसका विनियोग	४६२ १५१
१४	अधमकुला और उसका विनियोग	४६३ १५१
१५	जाफेरारा और उसका विनियोग	४६४-४६५ १५१
१६	विभ्रान्ता और उसका विनियोग	४६६ १५१-१५२
१७	विप्लुता और उसका विनियोग	४६७ १५२
१८	त्रस्ता और उसका विनियोग	४६८ १५२
१९	विकोशा और उसका विनियोग	४६९ १५२
२०	त्रिविधा मदिरा और उसका विनियोग	४७०-४७२ १५३
	दृष्टि के अनन्त भेद	४७३-४७४ १५३

सात प्रकार की भ्रू (भौ) का अभिनय

१	भ्रू के भेद	४७५ १५४
१	सहजा और उसका विनियोग	४७५ १५४
२	रेचिता और उसका विनियोग	४७६ १५४
३	उन्क्षिप्ता और उसका विनियोग	४७७ १५४
४	कुञ्चिता और उसका विनियोग	४७८ १५४-१५५
५	पतिता और उसका विनियोग	४७९ १५५
६	चतुरा और उसका विनियोग	४८० १५५
७	भ्रू कुटी और उसका विनियोग	४८१ १५५

नृत्याध्याय

नो प्रकार की पलको का अभिनय	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
पलको के भेद	४८२	१५५-१५६
१ सम और उमका विनियोग	४८३	
२ विवर्तित और उमका विनियोग	४८४	१५६
३ प्रसृत और उसका विनियोग	४८५	१५६
४ कुञ्चित और उसका विनियोग	४८६	१५६
५ पिहित और उसका विनियोग	४८७	१५६
६ स्फुरित और उसका विनियोग	४८८	१५७
७ उन्मेषित और उमका विनियोग	४८९	१५७
८ निमेषित और उसका विनियोग	४९०	१५७
९ वितालित और उसका विनियोग	४९०	१५७

तारो का निरूपण

तारो के भेद	४९१	१५८
आत्मनिष्ठ ताराकर्म	४९२	१५८
१ प्राकृत	४९३	१५८
२ भ्रमण	४९४	१५८
३ पात	४९५	१५८
४ वलन	४९५	१५८
५ चलन	४९५	१५८
६ प्रवेशन	४९५	१५८
७ समुद्भूत	४९६	१५८
८ निष्क्राम	४९६	१५८
९ विवर्तन	४९६	१५८
विनियोग	४९७-४९९	१५९
विषयाभिमुख ताराकर्म	५००	१५९
१ सम	५०१	१५९
२ साच्चि	५०२	१५९

विषयानुक्रम

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
३ अनुवृत्त	५०३	१५९-१६०
४ अवलोकित	५०४	१६०
५ विलोकित	५०५	१६०
६ आलोकित	५०६	१६०
७ उत्लोकित	५०७	१६०
८ प्राविलोकित	५०८	१६०
विनियोग	५०९	१६०

उपांग प्रकरण / चार

उपागाभिनय और उनका विनियोग

छह प्रकार का नासाभिनय

१ स्वाभाविकी और उसका विनियोग	५१०	१६३
२ विकृष्टा और उसका विनियोग	५११	१६३
३ सोच्छवासा और उसका विनियोग	५१२	१६३
४ विकूणिना और उसका विनियोग	५१३	१६४
५ नता और उसका विनियोग	५१४	१६४
६ मन्दा और उसका विनियोग	५१५	१६४

उन्नीस प्रकार का वायु अभिनय

वायु के भेद

	५१६-५१८	१६४-१६५
१ स्वस्थ और उसका विनियोग	५१९	१६५
२ चल और उसका विनियोग	५२०	१६५
३ विमुक्त और उसका विनियोग	५२१	१६५
४ प्रवृद्ध और उसका विनियोग	५२२	१६५
५ उल्लासित और उसका विनियोग	५२३	१६५-१६६
६ निरस्त और उसका विनियोग	५२४	१६६
७ खलित और उसका विनियोग	५२५	१६६
८ प्रसृत और उसका विनियोग	५२६	१६६
९ त्रिस्मित और उसका विनियोग	५२७	१६६
१० सम	५२८-५३३	१६७

नृत्याध्याय

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
११	भ्रान्त	५२८-५३३	१६७
१२	कम्पित	५२८-५३३	१६७
१३	विलीन	५२८-५३३	१६७
१४	जान्दोलित	५२८-५३३	१६७
१५	स्नम्भित	५२८-५३३	१६७
१६	उच्छ्वास	५२८-५३३	१७७
१७	निश्वास	५२८ ५३३	१८७
१८	सूक्त	५७८ ५८३	१६७
१९	सीत्कृत	५७८-५८३	१६७
दम प्रकार के अधरो का अभिनय			
	अधरो के भेद	५३६	१६७
१	विवर्तित और उसका विनियोग	५३५	१६८
२	विसृष्ट और उसका विनियोग	५३६	१६८
३	कम्पित और उसका विनियोग	५३७	१६८
४	विनिगृहित और उसका विनियोग	५३८	१६८
५	सन्दष्टक और उसका विनियोग	५३९	१६८
६	समुद्गक और उसका विनियोग	५६०	१६८-१६९
७	उद्वृत्त और उसका विनियोग	५४१	१६९
८	विकासी और उसका विनियोग	५४२	१६९
९	रेचित और उसका विनियोग	५४३	१६९
१०	आघत और उसका विनियोग	५४४	१६९
उह प्रकार का जिह्वा अभिनय			
	जिह्वा के भेद	५४५	१६९
१	ऋज्वी और उसका विनियोग	५४६	१६९-१७०
२	लोला और उसका विनियोग	५४७	१७०
३	लेहिनी और उसका विनियोग	५४८	१७०
४	वक्रा और उसका विनियोग	५४९	१७०
५	सूक्कानुगा और उसका विनियोग	५५०	१७०
६	उन्नता और उसका विनियोग	५५१	१७०
२६			

विषयानुक्रम

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
अष्ट प्रकार के दन्त हस्त का निरूपण		
दाता के भेद	५५२-५५३	१७०-१७१
१ गम और उसका विनियोग	५५४	१७१
२ ठिस और उसका विनियोग	५५४	१७१
३ खण्डन और उसका विनियोग	५५५	१७१
४ क्षुब्ध और उसका विनियोग	५५६	१७१
५ कूटन और उसका विनियोग	५५७	१७१
६ दृष्ट और उसका विनियोग	५५८	१७२
७ निष्कर्षण और उसका विनियोग	५५९	१७२
८ ग्रहण और उसका विनियोग	५६०	१७२
छह प्रकार के कपोलो का अभिनय		
कपोलो के भेद	५६१-५६४	१७२-१७३
१ सम	५६१-५६४	१७२-१७३
२ क्षाम	५६१-५६४	१७२-१७३
३ कम्पित	५६१-५६४	१७२-१७३
४ फुल्ल	५६१-५६४	१७२-१७३
५ कुञ्चित	५६१-५६४	१७२-१७३
६ पूर्ण	५६१-५६४	१७२-१७३
अष्ट प्रकार के चिबुक का अभिनय		
चिबुक (ठोड़ी) के भेद	५६५-५६६	१७३
१ व्यादीर्ण और उसका विनियोग	५६६	१७३
२ चलित और उसका विनियोग	५६७	१७३-१७४
३ लोलित और उसका विनियोग	५६८	१७४
४ श्वित और उसका विनियोग	५६९	१७४
५ चलसहत और उसका विनियोग	५७०	१७४
६ सहत और उसका विनियोग	५७१	१७४
७ स्फुरित और उसका विनियोग	५७२	१७४
८ वक्र और उसका विनियोग	५७३	१७४

नृत्याध्याय

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
छह प्रकार के मुख का अभिनय		
मुख के भेद	५७८	१३५
१ भुग्न और उसका विनियोग	५७८	१३५
२ उद्वाहि और उसका विनियोग	५७५	१३५
३ विवृत और उसका विनियोग	५८६	१३५
४ विधुत और उसका विनियोग	५७७	१३५
५ विनिवृत्त और उसका विनियोग	५७८	१३५-१३६
६ व्याभुग्न और उसका विनियोग	५७९	१३६
चार प्रकार के मुखराग का निरूपण		
मुखराग (मुख के भाव) के भेद	५८०-५८१	१३६
१ स्वाभाविक और उसका विनियोग	५८२	१३६
२ प्रसन्न और उसका विनियोग	५८२	१३६
३ स्वक्त और उसका विनियोग	५८२	१३७
४ श्याम और उसका विनियोग	५८४	१३७
तीस प्रकार के पाणि, गुल्फ और हस्तागुलि निरूपण		
पाणि (एडी) के भेद	५९०	१३८
१ बहिर्गता	५९०	१३८
२ मिथोयुक्ता	५९०	१३८
३ वियुक्ता	५९०	१३८
४ अगुलिसगता	५९०	१३८
५ उत्क्षिप्ता	५९०	१३८
६ पतितोत्क्षिप्ता	५९०	१३८
७ पतिता	५९०	१३८
८ अन्तर्गता	५९०	१३८
गुल्फ (टखनो) के भेद	५९१	१३८
१ मिथोयुक्त	५९१	१३८
२ वियुक्त	५९१	१३८
३ क्लिटागुष्ठ	५९१	१३८

विषयानुक्रम

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
४	बहिर्गत	५९१	१७८
५	अन्तर्याति	५९१	१७८
	करागुलि (हाथों की उँगलियों) के भेद	५९२	१७८
१	वियुक्ता	५९२	१७८
२	रुहता	५९२	१७८
३	बक्रा	५९२	१७८
४	पतिता	५९२	१७८
५	वल्लिता	५९२	१७८
६	प्रसृता	५९२	१७८
७	कुञ्चन्मूला	५९२	१७८

पाँच प्रकार की चरणगुलि निरूपण

	चरणगुलि (परो की उँगलियों) के भेद	५९३	१७८-१७९
१	प्रसारिता और उसका विनियोग	५९४	१७९
२	अध क्षिप्ता और उसका विनियोग	५९५	१७९
३	उत्क्षिप्ता और उसका विनियोग	५९६	१७९
४	कुञ्चिता और उसका विनियोग	५९७	१७९
५	सलग्ना और उसका विनियोग	५९८	१७९
	अगुष्ठ के लक्षण विनियोग	५९९	१८०

छह प्रकार के पादतल का निरूपण

	पादतल के भेद	५९९	१८०
१	कुञ्चन्मध्य	५९९	१८०
२	तिरश्चीन	५९९	१८०
३	पतिताग्र	५९९	१८०
४	अधोगत	५९९	१८०
५	उद्बृत्ताग्र	५९९	१८०
६	भूमिलग्न	५९९	१८०

नृत्याध्याय

हस्तप्रचार प्रकरण / पाँच

पञ्चह हस्तप्रचार का निरूपण		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
	हस्तप्रचार (संचालन) के भेद	६००-६०४	
१	उत्सर्ग	६००-६००	१८२
२	अपरतल	६००-६००	१८३
३	पार्श्वभुज	६००-६०४	१८३
४	उपगत	६००-६०४	१८३
५	रविरमुखतल	६००-६०४	१८३
६	पार्श्वतल	६००-६०४	१८३
७	पार्श्वगत	६००-६०४	१८३
८	उपगत	६००-६०४	१८३
९	उपगत	६००-६०४	१८३
१०	अधीगत	६००-६०४	१८३
११	समुत्त	६००-६०४	१८३
१२	समुखगत	६००-६०४	१८३
१३	ऊर्ध्वमुख	६००-६०४	१८३
१४	अधीमुख	६००-६०४	१८३
१५	पराङ्मुख	६००-६०४	१८३

✓नेत्रह हस्तक्षेत्र का निरूपण

	हस्तक्षेत्र (हाथ के स्थानों) के भेद	६०५	१८४
१	शिर	६०५	१८४
२	ललाट	६०५	१८४
३	श्रवण	६०५	१८४
४	स्कन्ध	६०५	१८४
५	उर	६०५	१८४
६	कटिशीर्ष	६०५	१८४
७	नाभि	६०५	१८४

विषयानुक्रम

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
८	पार्श्वद्वय	६०५	१८१
९	उर्ध्व	६०५	१८१
१०	अध	६०५	१८१
११	पुर	६०५	१८४
१२	उरुद्वय	६०५	१८४
१३	शीर्ष	६०५	१८४
✓ वीस करकर्मो का निरूपण			
	करकर्म (हाजि के कार्यों) के भेद	६०६-६०७	१८४
१	मोक्षण	६०६-६०७	१८४
२	रक्षण	६०६-६०७	१८४
३	क्षेप	६०६-६०७	१८४
४	निग्रह	६०६-६०७	१८४
५	परिग्रह	६०६-६०७	१८४
६	घनन	६०६-६०७	१८४
७	स्फोटन	६०६-६०७	१८४
८	श्लेष	६०६-६०७	१८४
९	विश्लेष	६०६-६०७	१८४
१०	मोटन	६०६-६०७	१८४
११	तोलन	६०६-६०७	१८४
१२	ताडन	६०६-६०७	१८४
१३	छेद	६०६-६०७	१८४
१४	उत्कृष्टि	६०६-६०७	१८४
१५	आकृष्टि	६०६-६०७	१८४
१६	दिकृष्टि	६०६-६०७	१८४
१७	द्विसर्जन	६०६-६०७	१८४
१८	आह्वान	६०६-६०७	१८४
१९	तर्जन	६०६-६०७	१८४
२०	भेद	६०६-६०७	१८४

नृत्याध्याय

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
चार हस्तकरणों का निरूपण		
हस्तकरण (हस्त चेष्टाएँ) के भेद	६०८-६०९	१८४-१८५
१ आवेष्टित	६१०-६११	१८५
२ उद्वेष्टित	६१२	१८५
३ व्यावर्तित	६१३	१८६
४ परिवर्तित	६१४	१८६

विचित्राभिनय प्रकरण / छह

विचित्राभिनय निरूपण

भावाभिनय (१)			
१	इष्ट	६१५-६१९	१८९-१९०
२	अनिष्ट	६१५-६१९	१८९-१९०
३	मध्य	६१५-६१९	१८९-१९०
इन्द्रियाभिनय (२)			
१	शब्दाभिनय	६२०-६२४	१९०
२	स्पर्शाभिनय	६२०-६२४	१९०
३	रूपाभिनय	६२०-६२४	१९०
४	रसनाभिनय	६२०-६२४	१९०
५	गन्धाभिनय	६२०-६२४	१९०
विचित्राभिनय (३)			
१	हर्ष	६२५-६५५	१९१-१९५
२	क्रोध	६५६-६६०	१९६
३	दुःख	६६१-६६२	१९६
४	भय	६६३-६६५	१९७
५	शब्द	६६६-६६७	१९७
पक्षियो का अभिनय (४)			
		६६८-६६९	१९७-१९८
यक्षो तथा देवताओ का अभिनय (५)			
		६७०-६७५	

विषयानुक्रम

विभिन्न अभिनय (६)	श्लोक संख्या ६७६-६८५	पृष्ठ संख्या १९९-२००
जभिनेताओं को नाट्य निर्देश	६८६-७०७	२००-२०४

वर्तना प्रकरण / सात

वर्तना (हस्तविन्यास) का निरूपण

	वर्तना के भेद	७०८-७१४	२०७-२०८
१	पताकवर्तना	७१५	२०८
२	अल्पद्मवर्तना	७१६	२०८
३	अरालवर्तना	७१७	२०८
४	शुकनुण्डवर्तना	७१८	२०८
५	अवहित्यवर्तना	७१९	२०८
६	मकरवर्तना	७२०	२०९
७	खटकामुखवर्तना	७२१	२०९
८	ऊर्ध्ववर्तना	७२२	२०९
९	रेचितवर्तना	७२३	२०९
१०	आविद्धवर्तना	७२४	२०९
११	केशबन्धवर्तना	७२५	२०९
१२	भालवर्तना	७२६	२०९-२१०
१३	उर स्थवर्तना	७२७	२१०
१४	कक्षवर्तनिका	७२८	२१०
१५	खड्गवर्तना	७२९	२१०
१६	दण्डवर्तना	७३०	२१०
१७	पद्मवर्तना	७३१	२११
१८	नितम्बवर्तना	७३२-७३३	२११
१९	पल्लववर्तना	७३४	२११
२०	ललितवर्तना	७३५	२११
२१	अर्धमण्डलवर्तना	७३६	२११-२१२
२२	वलितवर्तना	७३७	२१२
२३	घातवर्तना	७३८	२१२

नृत्याध्याय

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
२४	गात्रवर्तना	७३९	२१२
२५.	प्रतिवर्तना	७४०	२१२
	वर्तना के अन्य भेद	७४१-७४३	२१२-२१३
१	चतुरस्राख्यवर्तना	७४४	२१३
२	तलमुखवर्तना	७४५	२१३
३	स्वस्तिकवर्तना	७४६	२१३
४	विश्रकीर्णवर्तना	७४७	२१३
५	पुष्पपुटवर्तना	७४८	२१४
६	त्रिपताकवर्तना	७४९	२१४
७	कर्तरीमुखवर्तना	७५०	२१४
८	मुष्टिवर्तना	७५१	२१४
९	शिखरवर्तना	७५२-७५३	२१५
१०	कपित्थवर्तना	७५२-७५३	२१५
११	सूचीमुखवर्तना	७५२-७५३	२१५

चालन प्रकरण/आठ

हस्त संचालन क्रियाओं का निरूपण

	चालको के भेद	७५४-७६६	२१९-२२०
१	विश्लिष्टवर्तित	७६७	२२०-२२१
२	वेपथुव्यजक	७६८	२२१
३	अपविद्ध	७६९	२२१
४	लहरीचक्रसुन्दर	७७०-७७२	२२१
५	वर्तनास्वस्तिक	७७३-७७४	२२१-२२२
६	समूखीन रथाङ्ग	७७५-७७६	२२२
७	पुरोदण्डभ्रम	७७७-७७८	२२२
८	त्रिभगीवर्णसारक	७७९	२२२
९	बोल	७८०	२२३
१०	नीराजित	७८१	२२३
११	स्वस्तिकाश्लेष	७८२	२२३

विषयानुक्रम

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१२	वामदक्षतिरश्चीन	७८३	२२३
१३	वर्तनाभरण	७८४	२२३-२२४
१४	मिथोसवीक्षा बाह्य	७८५	२२४
१५	मौलिरचितक	७८६	२२४
१६	मणिबन्धासिकर्ष	७८७-७८९	२२४
१७	असवर्तनिक	७९०-७९२	२२५
१८	आदिकूमवितार	७९३-७९४	२२५
१९.	कलविडकविनोद	७९५-७९६	२२५-२२६
२०	मण्डलाग्र	७९७-७९८	२२६
२१	चतुष्पत्राब्ज	७९९-८००	२२६
२२	बालव्यजन चालन	८०१	२२६-२२७
२३	विरुडिबन्धन	८०२	२२७
२४	विभृगाटकबन्धन	८०३	२२७
२५	कुण्डलिचारक	८०४	२२७
२६	धनुशकर्षण	८०५	२२७
२७	हारदाम विलासक	८०६	२२८
२८	समप्रकोष्ठ	८०७	२२८
२९	मुरजाडम्बर	८०८-८१०	२२८
३०	तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्र	८११-८१२	२२८-२२९
३१	देवोपहारक	८१३-८१४	२२९
३२	अलातचक्र	८१५	२२९
३३	साधारण	८१६	२२९
३४	उरभ्रसम्बाध	८१७	२२९-२३०
३५	मणिबन्धगतागत	८१८	२३०
३६	ताक्षर्यपक्ष विनोदक	८१९	२३०
३७	धनुर्बल्लविमानक	८२०-८२१	२३०
३८	तिर्यक्ताण्डव	८२२	२३०-२३१
३९	व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक	८२३	२३१
४०	कररचितरत्न	८२४-८३५	२३१-२३२

नृत्याध्याय

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
४१. मण्डलाभरण	८३६	२३३
४२ अष्टबन्धविहारस्य	८३७-८३८	२३२
४३ शरसन्धानक	८३९-८४०	२३३
४४ पर्यायगजदन्तक	८४१	२३३
४५ असपर्यायनिर्गत	८४२	२३४
४६ स्वस्तिकत्रिकोण	८४३	२३४
४७ रथनेमिसम	८४४	२३४
४८ लतावेष्टित	८४५	२३४
४९ कर्णयुग्मप्रकीर्ण	८६६	२३५
५० नवरत्नमुख	८४७-८५०	२३५
मतान्तर से अन्य भेद	८५१	२३५-२३६
१ दिग्दर्श	८५२	२३६
२ अनगामोदन	८५३	२३६
३ तोरण	८५४-८५५	२३६
४ अनगोद्दीपन	८५६-८५७	२३६ २३७
५ मुरजकर्तरी	८५८-८६२	२३७

स्थानक प्रकरण नौ

स्थानको का निरूपण

स्थानक (खड़े होने का ढंग)	८६३-८६५	२४१
पुरुष स्थानक के भेद	८६६	२४१
स्त्री स्थानक के भेद	८६७	२४१
जन्य स्थानक के भेद	८६८-८६९	२४२
देशी स्थानक के भेद	८७०-८७३	२४२
उपविष्ट स्थानक के भेद	८७४-८७५	२४२-२४३
सुप्त स्थानक	८७६	२४३
स्थानको की सम्पूर्ण संख्या	८७७	२४३
विनियोग	८७८	२४३

विषयानुक्रम

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
छह पुरुष स्थानक (१)		
१	वैष्णव और उसका विनियोग	८७९-८८९
२	समपाद और उसका विनियोग	८९०-८९१
३	वैशाख और उसका विनियोग	८९२-८९३
४	मण्डल और उसका विनियोग	८९४-८९६
५	आलीढ और उसका विनियोग	८९७-८९९
६.	प्रत्यालीढ और उसका विनियोग	९००
आठ स्त्री स्थानक (२)		
१	आयत और उसका विनियोग	९०१-९०८
२	अवहित्थ और उसका विनियोग	९०९-९११
३	अश्वक्रान्त और उसका विनियोग	९१२-९१४
४	गतागत	९१५
५	वर्लित और उसका विनियोग	९१६
६	मोटित	९१७
७	विनिर्वानित	९१८
८	प्रोन्नत और उसका विनियोग	९१९-९२०
तेरह देशी स्थानक (३)		
१	समपाद	९२१
२	स्वस्तिक	९२२
३	सहन	९२३
४	वर्धमान	९२४
५	नन्द्यावर्त	९२५
६	एकपाद	९२६
७	चतुरस्र	९२७
८	पृष्ठोत्तानतल	९२८
९	पार्श्वविद्ध	९२९
१०	समसूचि	९३०
११.	विषमसूचि	९३१

नृत्याध्याय

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१२	खण्डसूचि	९३२	२५३
१३.	पार्ष्णिपाश्वरगत	९३३	२५३
१४	एकपाश्वरगत	९३४	२५७
१५	परावृत्त	९३५	२५३
१६	एकजानुनत	९३६	२५४
१७	ब्राह्म	९३७	२५४
१८	वैष्णव	९३८	२५४
१९	शैव	९३९	२५६
२०.	कूर्मासन	९४०	२५०
२१	गरुड	९४१	२५५
२२	वृषभासन	९४२	२५५
२३	नागबन्ध	९४३	२५५
छह सुत स्थानक			
१	सप्त	९४३	२५५
२	नत और उसका विनियोग	९४४	२५५
३	आकुञ्चित और उसका विनियोग	९४५	२५६
४	प्रसारित	९४६	२५६
५	विर्वर्तित	९४७	२५६
६	उद्वाहित और उसका विनियोग	९४८	२५५
चारी प्रकरण / दस			
चारियों का निरूपण			
	चारी (चेष्टाकृतिविशेष भावाभिव्यजन)	९४९-९५०	२५९
	चारियों के भेद	९५१-९५३	२५९-२६०
	भूमिचारी के भेद	९५४-९५६	२६०
	आकाशचारी के भेद	९५७-९५९	२६०
	देशीचारी (भूमिगत) के भेद	९६०-९६५	२६१
	देशीचारी (आकाशगत) के भेद	९६६-९६९	२६१-२६२

विषयानुक्रम

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
सोलह नृमिचारियों (१)		
१	समपादा	१७०-१७३
२	आड्डिता	१७४
३	बद्धा	१७५-१७६
४	स्पन्दिता	१७७
५	विच्यवा	१७८
६	जनिता	१७९-१८०
७	उत्सन्दिता	१८१-१८२
८	चाषगति	१८३-१८४
९	अध्याधिक्य	१८५-१८६
१०	एलकाक्रीडिता	१८७
११	शकटास्या	१८८-१८९
१२	ऊरुद्वृत्ता	१९०-१९१
१३	स्थितावर्ता	१९२
१४	अपस्पन्दिता	१९३
१५	समोत्सर्जितमत्तली	१९४-१९५
१६	मत्तली	१९६
	विनियोग	१९७
सोलह आकाशचरियों (२)		
१.	अतिक्रान्ता	१९८-१९९
२	अपक्रान्ता	१०००
३	भ्रमरी	१००१
४	मृगप्लुता	१००२
५	पाश्वक्रान्ता	१००३-१००४
६	ऊर्ध्वजानु	१००५
७	भुजगत्रासिता	१००६-१००७
८	अलाता	१००८
९	दण्डपादा	१००९

नृत्याध्याय.

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१०	विद्युद्भ्रान्ता	१०१०	२६९
११.	सूची	१०११ १०१२	२७०
१२	दोलापादा	१०१३	२७०
१३.	उद्वृत्ता	१०१४-१०१५	२७०
१४	आविद्धा	१०१६	२७०-२७१
१५	नूपुरपादिका	१०१७ १०१८	२७१
१६	आक्षिप्ता	१०१९	२७१
	विनियोग	१०२० १०२५	२७१-२७२
पे तीस देशी भूमिचारियों (३)			
१	रथचक्रा	१०२६	२७२
२	तलोद्वृत्ता	१०२७	२७३
३	मराला	१०२८	२७३
४	पार्ष्णिरेचिता	१०२९	२७३
५	परावृत्तला	१०३०	२७३
६	तिर्यङ्मुखा	१०३१	२७३
७	नूपुरविद्धिका	१०३२	२७४
८	कतरा	१०३३	२७४
९	करिहस्ता	१०३४	२७४
१०	हरिणत्रासिता	१०३५	२७४
११	अर्धमण्डलिका	१०३६	२७४
१२	उरुताडिता	१०३७	२७४-२७५
१३	मदालसा	१०३८	२७५
१४	सचारिता	१०३९	२७५
१५	उत्कुञ्चिता	१०४०	२७५
१६	अपकुञ्चिता	१०४१	२७५
१७	स्फुरिता	१०४२	२७५
१८	स्तम्भ क्रीडनिका	१०४३	२७६
१९.	तिर्यक्कुञ्चिता	१०४४	२७६
२०.	तलदशिनी	१०४५	२७६.

विषयानुक्रम

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
२१	वृत्ता	१०४६	२७६
२२	लङ्घितजडघा	१०४७	२७६
२३	स्वस्तिका	१०४८	२७६
२४	कुलीरिका	१०४९	२७७
२५	निकुट्टक	१०५०	२७७
२६	पुराटिका	१०५१	२७७
२७	अर्धपुराटिका	१०५२	२७७
२८	स्फुरिका	१०५३	२७७
२९	सारिका	१०५४	२७७
३०	लताक्षेप	१०५५	२७७
३१	अड्डस्खलितिका	१०५६	२७८
३२	ऊरुवर्णी	१०५७	२७८
३३	विश्लिष्टा	१०५८	२७८
३४	समस्खलितिका	१०५९	२७८
३५	सघट्टिता	१०६०	२७८
उत्तीस देशी आकाशचारियों (४)			
१	दण्डपादा	१०६१	२७९
२	पुरक्षेपा	१०६२	२७९
३	अपक्षेपा	१०६३	२७९
४	हरिणप्लुता	१०६४	२७९
५	विद्युद्भ्रान्ता	१०६५	२७९
६	विक्षेपा	१०६६	२७९-२८०
७	जङ्घावर्ता	१०६७	२८०
८	अडिघ्नताडिता	१०६८	२८०
९	अलाता	१०६९	२८०
१०	डमरी	१०७०	२८०

नृत्याध्याय

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
११	विद्धा	१०७१	२८०-२८१
१२	जङ्घालङ्घनिका	१०७२	२८१
१३	स्त्री	१०७३	२८१
१४	प्रावृत	१०७४	२८१
१५	जललाल	१०७५	२८१
१६	वेष्टन	१०७६	२८१
१७	जद्वेष्टन	१०७७	२८२
१८	उत्क्षेप	१०७८	२८२
१९	पृष्टोत्क्षेप	१०७९	२८२

पञ्चीस मुडुपचारियों (५)

	मुडुपचारी का अर्थ	१०८०-१०८१	२८२
	मुडुपचारी के भेद	१०८२-१०८८	२८२-२८३
१	पुर पश्चात्सरा	१०८९	२८३-२८४
२	पश्चात्पुर सरा	१०९०	२८४
३	मध्यचक्रा	१०९१	२८४
४	एकपदकुट्टिता	१०९२	२८४
५	पदद्वयनिकुट्टिता	१०९३	२८४
६	पादस्थितिनिकुट्टिता	१०९४	२८४
७	क्रमपादनिकुट्टिका	१०९५	२८४-२८५
८	समपादनिकुट्टिता	१०९६	२८५
९	डमरुकुट्टिता	१०९७	२८५
१०	डमरु द्वय कुट्टिता	१०९८	२८५
११	पुर क्षेपनिकुट्टिता	१०९९	२८५
१२	पश्चात्क्षेप निकुट्टिता	११००	२८५
१३	पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता	११०१	२८५
१४.	चक्रकुट्टनिका	११०२	२८६

विषयानुक्रम

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१५	मध्यस्थापनकुट्टा	११०३	२८६
१६	चतुष्कोणनिकुट्टिता	११०४	२८६
१७	त्रिकोणचारी	११०५-११०६	२८६
१८	तिरश्चीन कुट्टिता	११०७	२८७
१९	अनुलोमविलोमका	११०८	२८७
२०	प्रतिलोमानुलोमका	११०९	२८७
२१	पुरस्ताल्लु टिता	१११०	२८७
२२	पृष्ठलुठिता	११११	२८७
२३	वक्रकुट्टिता	१११२	२८८
२४	पार्श्वद्वयचरी	१११३	२८८
२५	मध्यलुठिता	१११४-१११५	२८८

नृत्तकरण प्रकरण / ग्यारह

नृत्तकरणो का निरूपण

	करण और उनके भेद	१११६-११३८	२९१-२९४
१	तलपुष्पपुट और उसका विनियोग	११२९-११४१	२९४
२	वक्ष स्वस्तिक और उसका विनियोग	११४२-११४७	२९४-२९५
३	वर्तित और उसका विनियोग	११४४-११४७	२९५
४	मण्डलस्वस्तिक और उमका विनियोग	११४८-११४९	२९६
५	लीन और उसका विनियोग	११५०	२९६
६	उन्मत्त और उसका विनियोग	११५१	२९६
७	वलितोर और उसका विनियोग	११५२-११५३	२९७
८	स्वस्तिक और उसका विनियोग	११५४	२९७
९	अर्धस्वस्तिक और उसका विनियोग	११५५-११५६	२९७-२९८
१०	द्विस्वस्तिक और उमका विनियोग	११५७	२९८
११	पृष्ठस्वस्तिक और उसका विनियोग	११५८-११५९	२९८-२९९
१२	आक्षिपतरेचित और उसका विनियोग	११६०-११६२	२९९

नृत्याध्याय

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या	
१३	अलात और उसका विनियोग	११६३-११६४	२९९
१४	भुजगत्रासित और उसका विनियोग	११६५-११६६	३००
१५	कटीसम और उसका विनियोग	११६७-११६९	३००
१६	कटीछिन्न और उसका विनियोग	११७०-११७१	३००-३०१
१७	घूर्णित और उसका विनियोग	११७२-११७३	३०१
१८	निकुञ्चित और उसका विनियोग	११७४-११७५	३०१-३०२
१९	निकुट्टक	११७६-११७७	३०२
२०	अर्धनिकुट्टक	११७८	३०२
२१	विक्षिप्ताक्षिप्तक और उसका विनियोग	११७९-११८४	३०२-३०३
२२	अपविद्ध और उसका विनियोग	११८५	३०३-३०४
२३	समनख और उसका विनियोग	११८६	३०४
२४	स्वस्तिक रेचित और उसका विनियोग	११८७-११९०	३०४-३०५
२५	मत्तल्लि और उसका विनियोग	११९१	३०५
२६	अर्धमत्तल्लि और उसका विनियोग	११९२	३०५
२७	वल्लित	११९३	३०५
२८	अर्धरेचित	११९४-११९५	३०६
२९	उर्ध्वजानु	११९६-११९७	३०६
३०	कटिभ्रान्त और उसका विनियोग	११९८-१२००	३०६-३०७
३१	छिन्न और उसका विनियोग	१२०१	३०७
३२	पादापविद्धक	१२०२	३०७
३३	भ्रमर	१२०३-१२०४	३०७-३०८
३४	दण्डपक्ष	१२०५	३०८
३५	नूपुर	१२०६	३०८
३६	ललित और उसका विनियोग	१२०७-१२०८	३०८
३७	व्यतित और उसका विनियोग	१२०९-१२१०	३०९
३८	चतुर और उसका विनियोग	१२११-१२१२	३०९
३९	क्रान्त	१२१३-१२१४	३०९-३१०
४०	भुजगत्रस्तरैचित	१२१५	३१०

विषयानुक्रम

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
४१	भुजगाञ्चित	१२१६	३१०
४२	आक्षिप्त और उसका विनियोग	१२१७	३१०
४३	उद्घट्टित	१२१८	३११
४४	दण्डरेचित और उसका विनियोग	१२१९	३११
४५	वृश्चिक और उसका विनियोग	१२२०	३११
४६	वृश्चिकरेचित और उसका विनियोग	१२२१	३११
४७	वृश्चिककुट्टित और उसका विनियोग	१२२२	३१२
४८	लतावृश्चिक और उसका विनियोग	१२२३	३१२
४९	वंशाखरेचित	१२२४	३१२
५०	चक्रमण्डल और उसका विनियोग	१२२५-१२२६	३१२-३१३
५१	आवर्त और उसका विनियोग	१२२७	३१३
५२	कुञ्चित और उसका विनियोग	१२२८-१२२९	३१३-३१४
५३	दोलापाद और उसका विनियोग	१२३०	३१४
५४	तलविलासित और उसका विनियोग	१२३०	३१४
५५	विवृत और उसका विनियोग	१२३१-१२३२	३१४
५६	विनिवृत्त और उसका विनियोग	१२३३-१२३४	३१४-३१५
५७	ललाटतिलक और उसका विनियोग	१२३५	३१५
५८	विवर्तित	१२३६	३१५
५९	अतिक्रान्त	१२३७	३१५
६०	विद्युद्भ्रान्त और उसका विनियोग	१२३८	३१५-३१६
६१	निशुग्भित और उसका विनियोग	१२३९-१२४१	३१६
६२	उरोमण्डल	१२४२	३१६-३१७
६३	विक्षिप्त और उसका विनियोग	१२४३-१२४४	३१७
६४	पाश्र्वनिकुट्टक और उसका विनियोग	१२४५-१२४६	३१७
६५	तलसस्फोटित	१२४७	३१७-३१८
६६	गण्डसूचि और उसका विनियोग	१२४८-१२४९	३१८
६७	सूचि और उसका विनियोग	१२५०-१२५१	३१८
६८	अर्धसूचि	१२५२	३१८

नृत्याध्याय

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
६९	गजक्रीडितक	१२५३	३१९
७०	पार्वजानु और उसका विनियोग	१२५४	३१९
७१	गरुडप्लुत	१२५५	३१९
७२	गृध्रावलीनक और उसका विनियोग	१२५६	३१९-३२०
७३	इण्डपाद और उसका विनियोग	१२५७	३२०
७४	सन्नत और उसका विनियोग	१२५८	३२०
७५	समर्पित और उसका विनियोग	१२६०-१२६०	३२०-३२१
७६	मयूरललित	१२६१	३२१
७७	सूचीविद्ध और उसका विनियोग	१२६२	३२१
७८	प्रेत वोलिन और उसका विनियोग	१२६३	३२१
७९	स्वर्णित	१२६४	३२२
८०	परिवृत्त	१२६५	३२२
८१	करिहम्न	१२६६	३२२
८२	प्रसर्पित और उसका विनियोग	१-६७	३२२
८३	पार्वकान्त और उसका विनियोग	१२६८	३२३
८४	निवेश	१२६९	३२३
८५	निनम्ब	१२७०-१२७१	३२३
८६	दुरिग लुत और उसका विनियोग	१२७२	३२३-३२४
८७	सिंहविक्रीडित और उसका विनियोग	१२७३	३२४
८८	सिंहाकर्षित और उसका विनियोग	१२७४	३२४
८९	जनित और उसका विनियोग	१२७५	३२४
९०	अवहित्य और उसका विनियोग	१२७६-१२७७	३२५
९१	उद्भूत	१२८०	३२५
९२	तन्मघट्टित	१२८१-१२८२	३२५-३२६
९३	लोलित	१२८३	३२६
९४	शकटास्य और उसका विनियोग	१२८४	३२६
९५	बृषभक्रीडित	१२८५	३२६-३२७
९६	एलकाक्रीडित और उसका विनियोग	१२८६	३२७

विषयानुक्रम

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
९७	विष्कम्भ	१२८७-१२८८	३२७
९८	अपसृत और उसका विनियोग	१२८९-१२९०	३२७-३२८
९९	त्रिष्णुकान्त और उसका विनियोग	१-९१	३२८
१००	अपक्रान्त	१२९२	३२८
१०१	उरुद्वृत्त और उसका विनियोग	१२९३-१२९४	३२८-३२९
१०२	अञ्चित और उसका विनियोग	१२९५	३२९
१०३	सम्भ्रान्त और उसका विनियोग	१२९६	३२९
१०४	मदस्खलितक और उसका विनियोग	१२९७	३२९-३३०
१०५	अगल और उसका विनियोग	१२९८-१२९९	३३०
१०६	रेचकनिकुट्टक	१३००	३३०
१०७	नागापसपित और उसका विनियोग	१३०१	३३०-३३१
१०८	गङ्गावतरण और उसका विनियोग	१३०२-१३०३	३३१
	करण प्रयोग के विशेष निर्देश	१३०४-१३०५	३३१

उत्प्लुतिकरणो का निरूपण / बारह

अड़तीस उत्प्लुतिकरणो का निरूपण

	उत्प्लुति करणो के भेद	१३०६-१३१४	३३५-३३६
१	अञ्चित	१३१५	३३६
२	एकपादाञ्चित	१३१६	३३६
३	समपादाञ्चित	१३१७	३३६
४	तिर्यगाञ्चित	१३१८	३३६
५	भैरवाञ्चित	१३१९	३३७
६	भ्रान्तपादाञ्चित	१३२०-१३२१	३३७
७	दण्डप्रणामाञ्चित	१३२२	३३७
८	कर्त्तर्यञ्चित	१३२३	३३७
९	लङ्कादाहाञ्चित	१३२४	३३७
१०	समकर्त्तर्यञ्चित	१३२५	३३८

नृत्याध्याय

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
११	बलिबन्धाञ्चित	१३२६	३३८
१२	क्षेत्राञ्चित	१३२७	३३८
१३	स्कन्धाञ्चित	१३२८	३३८
१४	अलग	१३२९	३३८
१५	ऊर्ध्वालग	१३३०	३३९
१६	अन्तरालग	१३३१	३३९
१७	कूर्मालग	१३३२	३३९
१८	लोहडी	१३३३	३३९
१९	एकपाद लोहडी	१३३४	३३९
२०	त्रिचित्र लोहडी	१३३५	३३९
२१	बाहुबन्ध लोहडी	१३३६	३४०
२२	कर्त्तरी लोहडी	१३३७	३४०
२३	समकर्त्तरी लोहडी	१३३८	३४०
२४	चतुर्मुख लोहडी	१३३९	३४०
२५	अलगाञ्चित	१३४०	३४०
२६	जलशयन	१३४१	३४०
२७	दर्पशरण	१३४२	३४१
२८	नागबन्ध	-----	३४१
२९	मत्स्यकरण	-----	३४१
३०	तिर्यक्करण	-----	३४१
३१	तिर्यक् स्वस्तिक	-----	३४१
३२	कपालचूर्णन	-----	३४१
३३	नतपृष्ठक	-----	३४२
३४	करस्पर्श	-----	३४२
३५	स्कन्धभ्रान्त	-----	३४२
३६	एणप्लुत	-----	३४२
३७	लोहड्याञ्चित	-----	३४३
३८	सूच्यन्तर	-----	३४३
४८		-----	३४३

विषयानुक्रम

अगहार रेचक मण्डल प्रकरण / तेरह

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
अगहारो का निरूपण			
चतुरस्रमान मे सोलह अगहार (१)			
	अगहार	-----	३४७-३४९
१	स्थिरहस्त	-----	३४९
२	पर्यस्तक	-----	३४९
३	सूचीविद्ध	१३४३	३५०
४	अपराजित	१३४४-१३४५	३५०
५	मदविलासित	१३४६-१३४७	३५०
६	मत्तक्रीड	१३४७-१३५०	३५०-३५१
७	भ्रमर	१३५१	३५१
८	विद्युद्भ्रान्त	१३५२-१३५४	३५१-३५२
९	परिच्छिन्न	१३५५-१३५६	३५२
१०	पार्श्वच्छेद	१३५७-१३५८	३५२
११	अपसर्पित	१३५९-१३६१	३५२-३५३
१२	आक्षिप्त	१३६२	३५३
१३	आच्छुरित	१३६३	३५३
१४	आलीढ	१३६४	३५३
१५	वैशाखरेचित	१३६५-१३६६	३५३-३५४
१६	पार्श्वस्वस्तिक	१३६७-१३६८	३५४
त्र्यस्रमान मे सोलह अगहार (२)			
१	अपत्रिद्ध	१३६९-१३७०	३५४
२	परानृत	१३७१-१३७२	३५५
३	रेचित	१३७३-१३८०	३५५-३५६
४	आक्षिप्त्रेचित	१३८१-१३८८	३५६-३५७

नृत्याध्याय

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
५	उद्वृत्त	१३८९-१३९१	३५७
६	उद्भ्रष्टित	१३९२	३५७-३५८
७	अनात	१३९३-१३९४	३५८
८	सम्भ्रान्त	१३९५-१३९७	३५८
९	अर्धनिकृष्ट	१३९८-१४०१	३५८-३५९
१०	परिवृत्तरेचित	१४०२-१४०६	३५९
११	स्वस्तिकरेचित	१४०७-१४०८	३६०
१२	विष्कम्भापसृत	१४०९-१४१०	३६०
१३	विष्कम्भ	१४११-१४१२	३६०
१४	गतिमण्डल	१४१३	३६१
१५	वृश्चिकापसृत	१४१४	३६१
१६	मत्तस्त्रालित	१४१५-१४२०	३६१-३६२

चार प्रकार के रेचको का निरूपण

१	पागिरेचक	१४२१-१४२२	३६२-३६३
२	कण्ठरेचक	१४२३	३६३
३	कटीरेचक	१४२४	३६३
४	पादरेचक	१४२५-१४२६	३६३

दस आकाशगत मण्डल (?)

	मण्डल (गति) के भेद	१४२७-१४३०	
१	अतिक्रान्त	१४३१-१४३४	३६४-३६६
२	वामविद्ध	१४३५-१४३७	३६६
३	क्रान्त	१४३८-१४३९	३६६-३६७
४	ललितसञ्चर	१४४०-१४४३	३६७
५	सूचीविद्ध	१४४४-१४४५	३६७
६	अलात	१४४६-१४४८	३६८
७	विचित्र	१४४९-१४५१	३६८
८	विहृत	१४५२-१४५५	३६९

विषयानुक्रम

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
९	ललित	१४५६-१४५८	३६९
१०.	दण्डवाद	१४५९-१४६१	३७०
✓दसि भूमिगत मण्डल (२)			
१	भ्रमर	१४६२-१४६४	३७०
२	शकटास्य	१४६५-१४६७	३७१
३	पिण्डकुट्टक	१४६८	३७१
४	अड्डित	१४६९-१४७२	३७१-३७२
५	समोत्सारित	१४७३-१४७५	३७२
६	आवर्त	१४७६-१४७८	३७२-३७३
७	एलकाक्रीडित	१४७९-१४८०	३७३
८	आस्कन्दित	१४८१-१४८२	३७३-३७४
९	दापगत	१४८३	३७४
१०	अध्यर्ष	१४८४-१४८६	३७४

लास्याग प्रकरण / चौदह

मार्गस्थित लास्यागो का निरूपण (१)

	मार्गस्थित लास्यागो के भेद	१४८७-१४८९	३७७
१	स्थितपाठज	१४९०-१४९१	३७७
२	अर्लीन	१४९२-१४९४	३७८
३	सम्भ्र	१४९५	३७८
४	पुठरमण्डिका	१४९६	३७८-३७९
५	प्रच्छेदक	१४९७-१४९८	३७९
६	शेषपद	१४९९	३७९
७	द्विसूढ	१५००-१५०१	३७९-३८०
८	त्रिसूढ	१५०२-१५०४	३८०
९	वैभाविक	१५०५-१५०६	३८०-३८१

नृत्याध्याय

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१०	चित्रपद	१५०७-१५०८	३८१
११	उक्तप्रत्युक्त	१५०९-१५१०	३८१-३८२
१२	उत्तमोत्तम	१५११-१५१३	३८२

देशी लास्यागो का निरूपण (२)

	देशी लास्यागो के भेद	१५१३-१५१७	२८२-३८३
१	चालि	१५१८-१५१९	३८३
२	चालिवट	१५२०	३८३-३८४
३	तूक	१५२१	३८४
४	मन	१५२२-१५२३	३८४
५	लेडि	१५२४-१५२५	३८४
६	उरोडकण	१५२६-१५२९	३८४-३८५
७	डिल्लार्ड	१५३०	३८५
८	त्रिकलि	१५३१-१५३२	३८५-३८६
९	किन्तु	१५३३	३८६
१०	देशीकारक	१५३४	३८६
११	निजापन	१५३५	३८६
१२	उल्लास	१५३६-१५३७	३८६-३८७
१३	थसक	१५३८	३८७
१४	भाव	१५३९	३८७
१५.	सुकलास	१५४०-१५४१	३८७
१६	लय	१५४२	३८७
१७	ढाल	१५४३	३८८
१८.	छेवा	१५४४	३८८
१९.	अगहार	१५४५	३८८
२०	लघित	१५४६	३८८
२१	विहसी	१५४७	३८८
२२	नीकी	१५४८	३८८-३८९
२३.	नमनिका	१५४९	३८९

विषयानुक्रम

		श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
२४	शका	१५५०	३८९
२५	वितड	१५५१	३८९
२६	गीतवाद्यता	१५५२	३८९
२७	विवर्नन	१५५३	३८९-३९०
२८	थरहर	१५५४	३९०
२९	स्थापना	१५५५	३९०
३०	सौष्ठव	१५५६-१५५७	३९०
३१	स्रुवा	१५५८	३९०-३९१
३२	मसृणता	१५५९	३९१
३३	उपार	१५६०	३९१
३४	अगानग	१५६१	३९१
३५	अभिनय	१५६२	३९१
३६	कोमलिका	१५६३	३९१-३९२
३७	मुखरस	१५६४-१५६५	३९२

कलास करण प्रकरण/पन्द्रह

कलास करणा का निरूपण

कलास (ताल के अनुसार नृत्य) के भेद	१५६६-१५६९	३९५
१ विद्युत्कलास		
प्रथम	१५७०-१५७३	३९५-३९६
द्वितीय	१५७४	३९६
तृतीय	१५७५	३९६
चतुर्थ	१५७६	३९६-३९७
पञ्चम	१५७७-१५७८	३९७
षष्ठ	१५७९	३९७
२ खड्गकलास		
प्रथम	१५८०-१५८१	३९७
द्वितीय	१५८२-१५८३	३९८
तृतीय	१५८४	३९८
चतुर्थ	१५८५-१५८६	३९८

अशोकभल्लविरचितः

नृत्याध्यायः

[मूल और हिन्दी अनुवाद]

हस्त प्रकरण / एक

अशोकमल्लविरचितः

नृत्याध्यायः

असंयुत हस्त और उसका विनियोग

५ चतुर हस्त और उसका विनियोग

--ज्योव् (? प्रयोज्यौ च) यथोचितम् ।

सखित्वे संयुतः स स्यात् सुखे तु हृदयस्थितः ॥१॥ 1

[अभिनय के समय हस्तमुद्रा को] यथोचित रूप से प्रदर्शित करना चाहिए । मित्रता का भाव अभिव्यजित करने के लिए संयुत हस्त का प्रयोग करना चाहिए, किन्तु मुरम् के भाव को प्रदर्शित करने के लिए हाथ को हृदय पर अवस्थित करना उचित है ।

ऊर्ध्वोत्थितो नाभिदेशाद्यौवनेऽथ मृदुन्यसौ ।

मर्दात्ताङ्गुष्ठकः कार्यो रचनायां त्वधोमुखः ॥२॥ 2

यौवन का भाव प्रदर्शित करने के लिए उत्तानावस्था में हथेली को ऊपर उठाते हुए बीरे से नाभि के पास ले जाकर रख दे । यदि रचना या निर्माण का भाव व्यजित करना हो तो अँगूठे को मसलते हुए हथेली को औंवा कर नाभिदेश में अवस्थित करना चाहिए ।

अथ ज्ञानेच्छयोस्तोषे चिन्तने हृदयेऽपि वा ।

अनुरागे प्रतिज्ञायां स्वभावे पण्डितेऽपि च ॥३॥ 3

अन्यदर्थे समर्थे च विश्रब्धेऽपि तथादरे ।

समाश्वासे गुणे चायं हृदयस्थो मतः सताम् ॥४॥ 4

लोकमान्य व्यक्तियो (सताम्) का अभिमत है कि ज्ञान, इच्छा, सन्तोष, चिन्तन, हार्दिक भाव, अनुराग,

नृत्याध्याय.

प्रतिज्ञा, स्वभाव, पाण्डित्य, परार्थ, समर्थता या समर्थन, विश्वास, आदर, सान्त्वना और गुण आदि के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए हृदयस्थ अधोमुख हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए।

परिमण्डलितो रक्तो वर्णो पीतेऽप्यसौ कनः (? र) ।

सिते वर्णे तूर्ध्वगतो नीलेऽसौ पनि (? रि) मर्दितः ॥५॥ 5

लाल और पीले रंग का भाव प्रदर्शित करने के लिए मण्डलाकार हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए, किन्तु स्वेत वर्ण के लिए उत्तान हस्त का और नीले वर्ण के लिए परिमर्दित हस्त का प्रयोग करना चाहिए।

आदिष्टेऽधोमुखः स स्यात् सोदर्ये बालकेऽपि च ।

स्वल्पे कुब्जे कुमार्या च मध्ये मध्यस्थितो भवेत् ॥६॥ 6

आदेश देने, सोदर भाई ओर बाल-कथन का भाव प्रदर्शित करने के लिए हृदयस्थ हस्त को अधोमुख, और अल्पता, कुबडापन, कौमार्य ओर मध्यावस्था का भाव अभिव्यक्त करने के लिए हाथ को ऊर्ध्व-अध की मध्यस्थिति में रखना चाहिए।

अपराधेऽप्युपादाने प्रिये च हृदि सम्मुखः ॥७॥

अपराध, स्वीकार या ग्रहण तथा प्रियजन के अभिनय में हृदयस्थ हाथ को समुखावस्था में रखना चाहिए।

परिवृत्तस्त्वविनये मलिने दुर्लभेऽपि च । 7

अनुत्पन्नेऽनातुरे [? च] विस्मये निर्गुणेऽपि च ।

अविनय, मलिनता, दुर्लभता, अनुत्पत्ति, उदासीनता, विस्मय ओर निर्गुण का भाव अभिव्यक्त करने के लिए परिवृत्त चतुर हस्त का प्रयोग करना चाहिए।

विस्मृतावथ मायायां पापे व्यावर्तितः [? करः] ॥८॥ 8

विस्मृति, छल, कपट और पाप के आशय में व्यावर्तित चतुर हस्त का विनियोग करना चाहिए।

—स स्यादधीने सम्मुखागतः ।

अद्भुत्यनासिकास्पर्शसुवर्णाभिनये भवेत् । 9

अधीनता के अर्थ में और अनामिका उँगुलि तथा सुवर्ण का स्पर्श करने में हथेली को समुखावस्था में रखना चाहिए।

मृगकर्णविनिर्देशे त्वसावुत्तानितो भवेत् ॥९॥

मुखदेशस्थितः प्रश्ने भये वाथ प्रकम्पितः । 10
 असमग्रे प्रयोक्तव्यः कीदृशे मुखदेशग ॥१०॥

प्रश्न और भय के भावों को अभिव्यजित करने के लिए हाथ को कम्पित कर समुखावस्था में रखना चाहिए ।
 असमग्रता और 'किस तरह' का भाव व्यजित करने में हाथ को समुखावस्था में रखना चाहिए ।

इदमर्थे किमर्थे च तथा ग्रथितवस्तुनि । 11
 उत्तानितो मुखरथः स्यात्काव्याद्यर्थनिदर्शने ॥११॥

'यह इसलिए है' 'यह किसलिए है' ऐसा आशय व्यक्त करने तथा ग्रथित (क्रमवद्ध या गुथी हुई) वस्तु और
 काव्य आदि का अर्थ प्रकट करने के आशय में हथेली को मुख के सामने उत्तानावस्था में रखना चाहिए ।

उद्वेष्टितो दर्शने स्यात् प्रयोक्तव्ये भवेदसौ । 12
 उत्तानितोऽथ विश्वासे प्रयोक्तव्यो हृदि स्थितः ॥१२॥

देखने के अर्थ में हथेली मुड़ी हुई, किसी वस्तु का प्रयोग करने में उत्तान और विश्वास के भाव प्रदर्शित
 करने में हृदय पर अवस्थित होनी चाहिए ।

परिवर्तितो भवेदेष निन्दिते तु विवर्तितः । 13
 समे तूर्ध्वतलः स स्याद्दोषे तु हृदयस्थितः ॥१३॥

निन्दा के भाव प्रदर्शित करने में हथेली उलटी या घूमी हुई होनी चाहिए । समावस्था के अभिव्यजन
 में हथेली ऊपर की ओर होनी चाहिए । यदि दोष का भाव प्रदर्शित करना हो तो वही उत्तान हथेली हृदय
 पर अवस्थित होनी चाहिए ।

उत्तानो नयनौपम्ये पद्मपत्रेऽपि सम्मतः । 14
 अथातुरे तथा सत्ये वाक्ये युक्तेऽप्यसौ करः ॥१४॥
 यथोचितं बुधैर्योज्यः पथ्यकैतवयोरपि । 15

नेत्रों के सादृश्य तथा पद्मपत्र के भावाभिव्यजन में हथेली को उत्तानावस्था में रखना चाहिए । आतुरता,
 सत्यता, समीचीन वचन, पथ्य और प्रवचना के भाव प्रदर्शित करने में (उत्तान स्थिति में), या नाट्य-
 विशारदों द्वारा अभिमत हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए ।

नृत्याध्यायः

परिमण्डलितोत्तानश्चरितेऽथ स्वसम्मुखः ॥१५॥

मध्ये गते स्वस्तिकोऽसौ पुरस्कारेऽपि संमतः । 16

चरित के प्रदर्शन में स्वसमुख हस्त को चारों ओर घुमाकर उत्तानावस्था में रचना चाहिए। मध्यावस्था तथा पुरस्कार के अर्थ में स्वस्तिक हस्त का प्रयोग करना चाहिए।

संश्लिष्य मणिबन्धौ स्तः विनये चतुरोदितौ ॥१६॥

विनय के भाव प्रदर्शित करने में दोनों कलाइयों को सटाकर चतुर हस्त का विनियोग करना चाहिए।

सुरते स्वस्तिकाकारौ चातुर्यवचनेषु तु । 17

संयुतौ तौ विधातव्यावर्हायां मुखदेशगौ ॥१७॥

स्वस्तिकौ तौ प्रयोक्तव्यौ स्वागताभिनयेऽपि च । 18

निपुणे श्लिष्टविश्लिष्टौ नेत्रे तद्देशविच्युतौ ॥१८॥

स्वस्तिकीभूय तो स्तोऽथ चाक्षुषे विस्तृताविमौ । 19

स्वस्तिकावथ कर्तव्यौ प्रजा(?ज्ञ) स्तद्वेष्टिताविमौ ॥१९॥

रतिक्रीडा और चातुर्यपूर्ण वातो के अभिव्यज में स्वस्तिक हाथों का प्रयोग करना चाहिए। पूजा-आराधना का भाव व्यक्त करने में दोनों स्वस्तिक हाथों को मुख के सामने अवस्थित रखना चाहिए। स्वागत के अभिनय में भी स्वस्तिक हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए। निपुणता के भाव दिखाने में स्वस्तिक हस्त को मिला कर या अलग-अलग भी दिखाना चाहिए। नेत्र का भाव प्रदर्शित करने में स्वस्तिक हस्त को आँख से गिरा कर रखना चाहिए। आँखों का भाव दिखाने के लिए स्वस्तिक हस्त को फैला कर भी रखा जा सकता है। नाट्यशास्त्रियों के मत से नेत्रों का भाव प्रदर्शित करने के लिए स्वस्तिक हस्त को वेष्टितावस्था में भी रखा जा सकता है।

६. हंसास्य हस्त और उसका विनियोग

यत्र त्रेताग्निसंस्थानास्तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यमाः । 20

संलग्ना यदाङ्गुल्यो शेषे स्तो विरलोर्ध्वगे ॥२०॥

हंसास्यः स करः प्रोक्तस्तदा

जिस अभिनय में तीन अग्नियो (दक्षिण, गार्हस्पत्य और आहवनीय) के विन्यास रूप तर्जनी [अँगूठे के पास की उँगली], अँगुष्ठ और मध्यमा [बीच की उँगली] नामक उँगलियों के अग्रभाग सटे हों और शेष

हस्त प्रकरण

दोनो उँगलियाँ [अर्थात् अनामिका आर कनिष्ठा] अलग-अलग ऊपर की ओर उठी हो, उम हस्तमुद्रा को हसास्य कहा जाता है ।

—त्रेताग्निदर्शने । 21

नि.सारे मृदुनि श्लक्षणे दधदेषोऽङ्गुलित्रयम् ॥२१॥

उक्त तीनो जमिनयो, सारहीन वस्तु, कोमठ वस्तु आर चिकनी वस्तु का भाव प्रदर्शित करने मे हसास्य हस्त का विनियोग होता है ।

मर्दिताग्रमथाग्रं तु क्षिप्तं तद्वद्विभूतितम् । 22
दधल्लाद्यौ(?ल्लद्यौ)तु शिथिले स्वल्पेऽसौ परिकीर्तितः ॥२२॥

यदि हलकी, शिथिल ओर स्वल्प वस्तु का भाव प्रदर्शित करना हो, तो उक्त तीनो उंगलियों के अग्रभाग को मर्दित कर, झटक कर या कम्पित कर हसास्य हस्त का प्रयोग करना चाहिए ।

असौ दरिद्रे मन्देऽपि चञ्चलोऽसौ सतां मतः । 23
बुधैर्योज्यो विमर्दे तु निषेधेऽपि स मर्दितः ॥२३॥

लोक सपूज्य (सताम्) व्यक्तियों का अभिमत हे कि दरिद्र आर मूर्ख व्यक्ति के भाव-प्रदर्शन के लिए हसास्य हस्त का विनियोग करना चाहिए । इसी प्रकार विद्वान् व्यक्तियों के मनन युद्ध या शरीर रगडने तथा निषेध करने के आशय मे हसास्य हस्त को समल कर प्रयोग मे लाना चाहिए ।

हृद्यूर्ध्वाधोमुखः स स्यात् प्राणेष्वथ निषेवणे । 24
अधो घर्षन् रताश्वासे कन्दर्पेऽपि हृदि स्थितः ॥२४॥

यदि हृदय का भाव प्रदर्शित करना हो तो हसारय हस्त को ऊर्ध्वमुख ओर प्राणो के तथा किसी वस्तु के सेवन के आशय मे अधोमुख रखना चाहिए । रतिक्रीडा के समय श्वास-प्रश्वास ओर कन्दर्प के भाव व्यजित करने मे भी हसास्य हस्त को हृदय पर अवस्थित रखना चाहिए ।

स्तनप्रदेशविधृतः परिहासे तरौ (?रतौ) तु सः । 25
ऊर्ध्वमुखो नियोज्योऽसार्वपितेऽधो मुखो मतः ॥२५॥

परिहास और रतिक्रीडा के प्रदर्शन मे हसास्य को ऊर्ध्वमुख करके स्तनो पर रखना चाहिए । अर्पण का भाव प्रदर्शित करने मे उसे अधोमुख रखना चाहिए ।

अधोमुखः प्रयोक्तव्यश्च (?श्च)रणे ड्गुधृ (?ष्ट) देशगः । 26

अधरस्फुरणे त्वेषोऽधरस्थो विवृतोऽथ सः ॥२६॥

चरण का भाव प्रदर्शित करने में हसास्य को पैर के अँगूठे के पास अधोमुख करके रखना चाहिए।
निचले ओठ (अधर) के फडकने के आशय में उसे मोड़ कर अधर पर रखना चाहिए।

चलाङ्गुलिस्तु लेपे स्यान्मुकुलोद्गमने तु सः । 27

ऊर्ध्वविच्युतसन्दंशः प्रसवेऽपि च संमतः ॥२७॥

लेप या अग्राग का भाव दिखाने में हसास्य की कम्पित उँगली का और कली के निकलने तथा प्रसव का भाव व्यक्त करने में उँगलियों को ऊर्ध्वावस्था में सँडसी की तरह प्रयोग में लाना चाहिए।

ऊर्ध्वमुखो विचित्रः स्याद् वसन्ताभिनये करः । 28

अन्याङ्गुलिसमीपस्थो मुद्रायां स्यादधोमुखः ॥२८॥

वसन्त ऋतु के अभिनय में हसास्य को ऊर्ध्वमुख और मुद्रा का भाव दिखाने में अन्य उँगलियाँ के समीप अधोमुख करके रखना चाहिए।

पुष्पितेऽधोमुखः कार्यः परिमण्डलितश्चलः । 29

उदये विवृतास्योऽथ द्विस्त्रिर्वाध्वं चलत्करः ॥२९॥

फूल खिलने के भाव में हसास्य को मण्डलाकार अवस्था में कम्पित करते हुए अधोमुख रखना चाहिए और उदय का भाव दिखाने में उसे खोल कर तथा ऊर्ध्वमुख करके दो-तीन बार कम्पित कर देना चाहिए।

असावुडुगणे कार्यः परावृत्तस्त्वपुष्पिते । 30

नासादेशगतः कार्यः सुगन्धिद्रव्यदर्शने ।

उचितश्च्युतसन्दंशः पुष्पोपचयनादिषु ॥३०॥ 31

तारो तथा अपुष्पित वृक्षो के अभिनय में हसास्य को परावृत्त करना चाहिए। सुगन्धित द्रव्यों का भाव दिखाने में उसे नासिका के पास रखना चाहिए। फूल चुनने आदि का भाव प्रदर्शित करने में उसे खुली हुई सँडसी के समान अधोमुख करना चाहिए।

७. भ्रमर हस्त और उसका विनियोग

अङ्गुष्ठमध्यमाङ्गुल्योः सन्दंशे तर्जनी नता ।

हस्त प्रकरण

मध्यमा ओर अगुष्ठ परस्पर मिले हुए हों ओर तर्जनी मंडमी की तरह मुड़ी हुई (अँगुष्ठ के मूल पर्ण करती हुई) नत हो (आर शेष दोनों उँगलियाँ अनामिका तथा कनिष्ठा सीधी फैली हो) तो उस हस्त को भ्रमर हस्त कहा जाता है।

बुधैर्व्या(?र्यो)ज्योऽथ विश्वासे बालालापे च भर्त्सने ॥३१॥ 32

ताले शीले(?ते) च कर्तव्यः सशब्दो विच्युतोऽपि सः ।

तालपत्रे त्वसौ कर्णक्षेत्रमण्डलितभ्रमः ॥३२॥ 33

अक्षरेषु चलन् कार्यो भ्रमरे त्वेष कम्पितः ।

अधोमुखो नियोज्योऽथ यन्त्रेहायामिमौ करौ । 34

इतरेतरसंश्लेषात्तर्जन्योः कथितौ बुधैः ॥३३॥

विशारदों के मतानुसार विश्वास, बालको के साथ बात-चीत, डाँटने-फटकारने, तालपत्र और शीतल का भाव अभिव्यजित करने में भ्रमर हस्त को सशब्द गिराकर प्रयोग में लाना चाहिए। तालपत्र के प्रदर्शन में इस हस्त को कान के चारों ओर घुमाकर प्रयुक्त करना चाहिए। अक्षरों के अभिव्यजन में और तर्जनी की अभिव्यक्ति में उसे कम्पित करके प्रदर्शित करना चाहिए। ग्रन्थि या कुण्डी (यत्र) खोलने की इच्छा करने में दोनों भ्रमर हस्तों को अधोमुख करके रखना चाहिए। बुधजनो का कहना है कि दोनों तर्जनियों परस्परिक गूँथने के भाव में भी भ्रमर हस्त का प्रयोग करना चाहिए।

काँगूल हस्त और उसका विनियोग

यत्र वक्रानामिका स्यात् कनिष्ठो(?ष्ट्रो)धर्वा यदाङ्गुलिः । 35

शेषास्त्रेताग्रिसंस्थाना अलग्नाग्रास्तदा करः ॥३४॥

काङ्गुलः संज्ञितस्तस्य विनियोगः प्रकथ्यते । 36

(अभिनय के समय) अनामिका मुड़ी हो, कनिष्ठा ऊपर की ओर हो, शेष अग्निस्थापन रूप तीनों तर्जनी, मध्यमा और अगुष्ठ) उगलियों के अग्रभाग परस्पर मिले न हों, तो उसे काँगूल हस्त कहा जाता उसका विनियोग इस प्रकार है

अल्पे फले मिते ग्रासे बालस्य चिबुकग्रहे ॥३५॥

चुचुकाभिनयेऽप्येष प्रसूने पञ्चकस्य च । 37

मन्त्रणे मुखदेशस्थः स्त्रीरोषवचने तु सः ॥३६॥

आस्यदेशेऽङ्गुलिक्षेपात्कर्तव्यो नृत्यपण्डितैः । 38

नृत्याध्याय

नृत्याचार्यों के मतानुसार थोड़े फल, नपे-तुले कोर, बालक की टुड्डी पकटने, स्तनाग्र, पाँच फूल (कमल, अशोक, आम्रमजरी, नवमल्लिका ओर रक्त अशोक), मत्रणा और स्त्री की क्रोधभरी वाणी के भाव व्यक्त करने में उँगुलियों को मुख के पास रखकर काँगल हस्त का विनियोग करना चाहिए।

बिडालादिपदेऽप्येष तथा यवनभोजने ॥३७॥

अधोमुखो नियोज्योऽथ वुल्पा(?हूर्मा)वूर्ध्वमुखो मतः । 39

क्रतौ बिम्बे च शङ्खायां वृत्तान्ते रत्नशब्दयोः ॥३८॥

बिल्ली आदि के पैरो और यवनो के भोजन के अभिनय में काँगल हस्त को अधोमुख करना चाहिए। तरंग, यज्ञ, बिम्ब, शका, वृत्तान्त, रत्न ओर शब्द के अभिनय में उमें ऊर्ध्वमुख में रखना चाहिए।

अग्रसंकोचनादेष सन्दष्टे कथितो बुधैः । 40

मुखस्थितो भवेदेष सन्देशवचनादिषु ॥३९॥

पूर्वाचार्यों का मत है कि काटने या डक मारने के अभिनय में काँगल हस्त की उँगलियों को अग्रभाग से सिकोड़ लेना चाहिए। सन्देश-कथन जादि के अभिनय में उमें मुख पर अवस्थित करना चाहिए।

पृष्ठायातावुभौ कार्यौ बालाया स्वस्तिकाविमौ । 41

कुचदेशगतौ कार्यौ पश्चादर्थे तु लोकतः ।

कम्मन्तराण्येवमस्य बुधैरुक्तानि शास्त्रतः ॥४०॥ 42

बाला स्त्री के अभिनय में दोनों काँगल हस्तों को स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित कर पृष्ठ भाग से आते हुए दिखाना चाहिए। लोक-परम्परा के अनुसार इस हस्त-मुद्रा को कुचों के पास रखने का भी विधान है। इसी प्रकार नाट्याचार्यों ने शास्त्रीय दृष्टि से काँगल हस्त के अन्य भी अनेक भेद बताये हैं।

९ ताम्रचूड हस्त और उसका विनियोग

मध्यमाङ्गुष्ठयोर्यत्र सन्दंशस्तर्जनी नता ।

शेषे तलस्थिते स्तोऽसौ ताम्रचूडः करो मतः ॥४१॥ 43

यदि मध्यमा और अँगुष्ठ को मोड़ कर मिला दिया जाय तथा तर्जनी को घुमा कर झुका दिया जाय (किन्तु वह हथेली को स्पर्श न करती हो) ओर शेष दोनों उँगलियों (अनामिका और कनिष्ठा) को हथेली पर रख दिया जाय तो उसे ताम्रचूड हस्त कहा जाता है।

हस्त प्रकरण

सशब्दच्युतसन्दंश एष विश्वासनादिषु ।
 कलाकाप्त्या (?ष्टा) मुहूर्त्तेषु जृम्भणेऽपि क्षणे तथा ॥४२॥ 44
 गीतादिमानताले च शैघ्ये निर्भत्सनेऽपि च ।
 बालाह्वानेऽप्यसावेव छोटिका प्रोच्यते बुधैः ॥४३॥ 45

विश्वास दिलाने आदि कार्यों में, समय के परिणाम, यथा काष्ठा (कला का ३०वा भाग), मुहूर्त्त, जमुहाई की काल-मर्यादा तथा क्षण में, संगीत आदि के ताल-मेल में, शीघ्रता में, भर्त्सना करने में और बालको को बलाने में—सँडसी की तरह मुडी एव मिली हुई उंगलियों के शब्द, अर्थात् चुटकी बजाने या चुटकी काटने, का प्रयोग करना चाहिए । नाट्याचार्यों ने इस ताम्रचूड हस्त को छोटिका (चुटकी काटने) नाम से कहा है ।

मुष्टिमूर्धू (?ध्व) कनिष्ठं तु ताम्रचूडं परे जगुः ।
 असौ योज्यः सहश्रा (?स्त्रा)दौ सख्यायामथविन्दुषु । 46
 क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिस्तद्वत्स्फुलिङ्गेष्वपि कीर्तितः ॥४४॥

कुछ विद्वान् ऐसे मुष्टिबन्ध को ताम्रचूड हस्त कहते हैं, जिसमें कनिष्ठा उँगली ऊपर उठी हुई हो । इस हस्त-मुद्रा का विनियोग हजार आदि मख्या या विन्दुओं का भाव व्यक्त करने में किया जाता है । इसी प्रकार कुछ लोगों के मत से यदि इस हस्त मुद्रा की उंगलियों को ढोल दिया जाय तो अग्निकणों के भाव प्रदर्शित करने में उसका विनियोग किया जाता है ।

१० मुष्टि हस्त और उसका विनियोग

अङ्गुल्यग्रा यदा गुप्तास्तलमध्ये सुसंयताः । 47
 पीडयित्वा स्थितोऽङ्गुध्वो(?ष्ठो)मध्यमा यस्यसस्मृतः ॥४५॥
 करो मुष्टिरशोकेन पृथिवीन्द्रेण धीमता । 48

बुद्धिमान राजा अशोक का कहना है कि यदि हाथ की (चारों) उँगलियों के अग्रभाग को हथेली के बीच भली भाँति बाँध दिया जाय और अगुष्ठ मध्यमा को दबा कर अवस्थित रहे तो उसे मुष्टि हस्त कहते हैं ।

यष्टिग्रहे किमर्थे च स्थितावप्ययमिव्य (?ष्य) ते ॥४६॥
 दोहने च गवादीनां रसनिष्कासनेऽपि च । 49
 कुन्तखड्गग्रहेऽप्येष मल्लयुद्धे कराविमौ ॥४७॥

लाठी पकड़ने, 'ऐसा क्यों'—इस प्रकार पूछने, ठहरने, गो आदि दोहने, रस निकालने, भाला तथा

नृत्याध्यायः

तलवार पकड़ने और दोनों हाथों से मल्लयुद्ध का भाव प्रदर्शित करने में मुष्टि हस्त का विनियोग होता है ।

कथने	स्कन्धदेशस्थः	स मनावकलितो मतः ।	50
मध्ये	मध्यप्रदेशस्थः	स स्वयमित्यस्य दर्शने ॥४८॥	
हृदयस्थो	निरालम्बे	त्वसौ स्यात्परिवर्तितः ।	51
परिग्रहे	यथोचित्यमप्यर्थे	स्कन्धदेशगः ॥४९॥	
तत्रेत्यर्थेऽप्यसावेव	परिवर्तित	इष्यते ।	52

कहने का भाव प्रदर्शित करने में मुष्टि हस्त को ईषत् कम्पन के साथ कन्धे पर रखना चाहिए । मध्य का भाव दिखाना हो तो उसे मध्य में और 'बह स्वयहुआ' ऐसा भाव प्रदर्शित करने में हृदय पर अवस्थित रखना चाहिए । निराश्रय वस्तु को प्रकट करने में उसे परिवर्तित (उल्टा) कर देना चाहिए । पकड़ने या भोग-सामग्री ग्रहण करने के आशय प्रकट करने में उसे यथोचित स्थान पर रखना चाहिए । 'यह भी होगा' ऐसा भाव दिखाने में उसे कन्धे पर, और 'वहाँ होगा' ऐसा आशय प्रकट करने में कन्धे के अतिरिक्त दूसरे स्थान पर रखना चाहिए ।

भञ्जने	कार्मुकादीनामुपर्येकः	करोऽपरः ॥५०॥	
मध्यस्थः	स्याद्विचारे तु	बाहुदेशस्थितो मतः ।	53
व्यावृत्तपरिवृत्तौ	च	वस्त्रकेशादिपीडने ॥५१॥	
पतन्तावुत्पतन्तौ	तौ	वस्त्रप्रक्षालने क्रमात् ।	54
संवाहनेऽप्यथ	स्यातां धावने	तौ पराङ्मुखौ ॥५२॥	

घनुष आदि के तोड़ने के भाव में एक मुष्टि हस्त ऊपर और दूसरा मध्य भाग में (हृदय के पास) अवस्थित रहना चाहिए । किन्तु विचार का भाव प्रकट करने के लिए उसे बाँह पर रखना चाहिए । वस्त्रों और केशों को निचोड़ने में दोनों मुष्टि हस्तों को उलट-पलट कर अवस्थित करना चाहिए । वस्त्रों को धोने के आशय में उनको क्रमशः गिराते-उठाते रहना चाहिए । बोझा ढोने और दौड़ने का भाव दिखाने के लिए दोनों मुष्टि हस्तों को विपरीत स्थिति में रखना चाहिए ।

११ शिखर हस्त और उसका विनियोग

ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो यदा	मुष्टिस्तदासौ	शिखरः करः ।	55
---------------------	---------------	-------------	----

यदि मुष्टि हस्त-मुद्रा में अँगूठे को उँगलियों के ऊपर न मोड़ कर सीधे खड़ा कर दिया जाय, तो उस मुद्रा को शिखर हस्त कहते हैं ।

हस्त प्रकरण

कुशाङ्कुशग्रहे चापवज्रयोर्ग्रहणेऽपि च ॥५३॥
 अलकोत्क्षेपणेऽप्येषोऽलक्तकोत्पीडने तथा । 56
 मोक्षणे तोमरस्यासौ शक्तेरपि सतां मतः ॥५४॥

कुश, अकुश, वनस्पति और वज्र धारण करने, बाल झाड़ने या मँवारने, महावर लगाने, तोमर (भाले की तरह का अस्त्र विशेष), तथा शक्ति (माँग) नामक अस्त्रों को चलाने का भाव प्रदर्शित करने में शिखर हस्त का विनियोग होता है ।

नीव्यादिरचने त्वेष चञ्चलाङ्गुष्ठका मनाक् । 57
 नाभिदेशस्थितो नीविधारणेऽधोमुखः स्थितः ॥५५॥

नीवी (धोती की गाँठ या इजारबन्द) आदि बाँधने के अभिनय में शिखर हस्त का अँगूठा कुछ कम्पित कर देना चाहिए । किन्तु नीवी धारण करने के अभिनय में उसे अधोमुख करके नाभि के पास रखना चाहिए ।

वादने क्रोहलादीनां घण्टादीनां तु वादने । 58
 स्वपाश्वर्यं दोलितोऽथासौ रञ्जनेऽलक्तकादिना ॥५६॥
 अधरस्य प्रकर्तव्यस्तद्देशस्थोऽभिनेतृभिः । 59

कोहल (एक प्रकार का वाद्य यंत्र) और घटा आदि बाजों को बजाने के अभिनय में शिखर हस्त को बगल में करके कम्पित कर देना चाहिए । अवर को महावर आदि से रँगने के भावाभिव्यञ्जन में अभिनेताओं को चाहिए कि वे शिखर हस्त को अवर के पास अवस्थित करें ।

वंशादिजलयन्त्रे स्यात् पश्चादेकोऽपरः पुरः ॥५७॥
 यवादिताडने दण्डे पतनोत्पतनान्वितः । 60
 असौ शिरसि तद्देशेऽधोमुखः परिकीर्तितः ॥५८॥

बाँस आदि के बने जलयंत्र के भाव-प्रदर्शन में एक शिखर हस्त को पीछे और दूसरे को आगे रखना चाहिए । यव (जौ) आदि दानों के कूटने-पीटने में प्रयुक्त डण्डे के भाव-दर्शन में शिखर हस्त को उठाते-गिराते हुए (अथवा) गिर पर अधोमुख करके रखना चाहिए ।

सीधुपाने मुखस्थः स्यान्नियोगे तावधोमुखौ । 61
 शिरो देशगतौ कार्यौ शिखरौ नृत्यपण्डितैः ॥५९॥

नृत्याध्यायः

नाट्याचार्यों के अभिमत से मद्यपान के अभिनय में शिखर हस्त को (ऊर्ध्वमुख में) मुख पर अवस्थित करना चाहिए । आदेश या निपेदाज्ञा के आशय में दोनों शिखर हस्तों को अधोमुख करके गिर पर रखना चाहिए ।

ऊर्ध्वाधः शिखरौ हस्तौ सम्मुखाङ्गुष्ठकौ मिथः । 62
वर्तितौ नावि संप्रोक्तौ बुधैस्तच्चालनेऽप्यथ ॥६०॥

विद्वानों का कहना है कि नाव और उमके चलाने के अभिनय में दोनों शिखर हस्तों के अँगूठों को परस्पर आमने-सामने करके ऊपर-नीचे अवस्थित करना चाहिए ।

क्रोशनेऽङ्गुलिसंस्फोटे स्त्रीभिस्तु शिखरद्वयम् । 63
संयुतं तद्विधातव्यं संयुज्य तु वियोजितम् ॥६१॥

स्त्रियों को चाहिए कि वे चिल्लाने और उँगली तोड़ने के अभिनय में दोनों शिखर हस्तों को पहले मिला दे और बाद में अलग कर दे ।

नास्तीत्युक्तावथ मनावचलस्तूष्णी निरूपणे । 64
एव कर्मान्तराण्यस्य ज्ञातव्यानि मनीषिभिः ॥६२॥

‘नहीं है’ ऐसे कथन तथा मोन होने का भाव दिखाने में शिखर हस्त को थोड़ा कम्पित कर देना चाहिए । शिखर हस्त के अन्य अनेक प्रयोगों की जानकारि के लिए नाट्यविशेषज्ञों का आश्रय लेना चाहिए ।

१२ कपित्थ हस्त और उसका विनियोग

करस्य शिखरस्य स्यादङ्गुष्ठाग्रेण पीडितम् । 65
तर्जन्यग्रं यदा यत्र कपित्थोऽसौ तदा करः ॥६३॥

यदि शिखर हस्त मुद्रा की तर्जनी के अग्रभाग को अँगूठे के अग्रभाग से दबा दिया या योजित किया जाय तो उसे कपित्थ हस्त कहते हैं ।

कार्मुकाकर्षणे योज्यो यथाभूतार्थदर्शने । 66
चक्रचापगदादीना धारणे तालवादाने ॥६४॥

प्रतोदग्रहणेऽप्येष मुक्तादिग्रथने तथा । 67

धनुष खींचने, किसी वस्तु को ज्यौ-का-त्यौ दिखाने, चक्र-धनुष-गदा आदि धारण करने, ताल देने

हस्त प्रकरण

या तबला वजाने, चावुक वारण करने और मोनी आदि गूँथने के भाव प्रकट करने में कपित्थ हस्त का वनि-योग होता है ।

तिर्यगायत एष स्याद्रेखायामथ नाभित् । ॥६५॥
 ऊर्ध्वोत्थितो रोमराजौ दिग्बन्धे तूर्ध्वगो भ्रमन् । 78
 सशब्दच्युतसन्दशोऽधस्त्वगादि निरूपणे ॥६६॥
 उत्तानितोऽधोमुखः स्याद्दूर्ध्वास्य. सूक्ष्मवस्तुनि । 69

रेखा का भाव दिखाने के लिए कपित्थ हस्त को तिरछा करके प्रदर्शित करना चाहिए । रोमावली का भाव दिखाने के लिए उसे नाभि से ऊपर उठाना चाहिए । दिशाओं को बाँधने का भाव दिखाने में उसे ऊपर की ओर घुमाकर फिर सँवसी के आकर में सशब्द करके (चूटकी बजाकर) उठा देना चाहिए । पर्वत या वृक्ष का भाव दिखाना हो तो उसे उत्तान करके अधोमुख कर देना चाहिए और सूक्ष्म वस्तु के अभिव्यजन में उन्मुख कर देना चाहिए ।

पुरुषे श्मश्रुदेशस्थस्तथा श्मश्रुप्रसाधने ॥६७॥
 असौ पुरोगतः कार्यश्चित्रताडनयोरथ । 70
 ग्रहणे पार्श्वगामी स्याच्चाभरस्यापि धारणे ॥६८॥

पुरुष आर दाढी-मूँछों के भाव-दर्शन में कपित्थ हस्त को दाढी-मूँछों के पास रखना चाहिए । आञ्चय और ताज्ज के आशय में उसे सामने अवस्थित करना चाहिए । किसी वस्तु को ग्रहण करने और चामर धारण करने में उसे बगल में स्थित होना चाहिए ।

उन्मूलने त्वधो गत्वोद्धृतोऽसौ सम्प्रयुज्यते । 71
 नाभिदेशस्थितावेतौ नोव्याः काञ्च्याश्च बन्धने ॥६९॥

किसी वस्तु को उखाड़ने का भाव प्रदर्शित करना हो तो कपित्थ हस्त को नीचे ले जाकर ऊपर उठा देना चाहिए । नीवी (नीवी की गाँठ या इजारबन्द) आर काँची (मेखला या करघनी) खोलने में दोनों कपित्थ हस्तों को नाभि के पास रखना चाहिए ।

कटिक्षेत्रगतौ कार्यौ खड्गाद्यायुधबन्धने । 72
 अश्वशं सर्वथास्थानेऽवधारणनिरूपणे ॥७०॥

कपित्थौ हस्तकौ स्यातामथ सत्ये वरे तथा । 73
उपपन्नोऽप्येवमर्थं यथौचित्यं स युज्यते ।

तलवार आदि आयुधो के बाँधने के भावाभिव्यजन में दोनों कपित्थ हस्तों को कमर पर रखना चाहिए । निश्चय करने के आशय में दोनों कपित्थ हस्तों को सर्वथा उपयुक्त स्थान में रखना चाहिए । सत्य, वरदान और समीचीन वस्तु का भाव प्रकट करने में कपित्थ हस्त को यथोचित रीति से प्रयोग करना चाहिए ।

शिखरस्यापि कर्माणि योज्यान्ग्रस्मिन्यथोचितम् ॥७१॥ 74

शिखर हस्त के अभिनय में भी कपित्थ हस्त का यथोचित रीति से प्रयोग किया जा सकता है ।

१३ खटकामुख हस्त और उसका विनियोग

कपित्थस्योत्थिते वक्रे यत्रानामाकनिष्ठिके ॥७२॥ 75
यदा तदासौ खटकामुखः प्रोक्ता मनीषिभिः ।

यदि कपित्थ हस्त की अनामिका और कनिष्ठा उँगलियाँ उठी होकर (अग्रभाग से) मुड़ी हुई हों, तो मनीषियों के मतानुसार उस मुद्रा को 'खटकामुख हस्त' कहा जाता है ।

असौ शराकर्षणे स्याद्दर्पणग्रहणे तथा ॥७३॥ 76
वालग्रहे स्रगादाने छत्रचामरधारणे ।

पुष्पावचयने हारे बीटिकादिग्रहेऽपि च ।

पत्रवृन्तच्छेदने च योज्यो धीरैर्यथोचितम् ॥७४॥ 77

खटकामुख
२ कपित्थ हस्त का विनियोग वाण-सन्धान करने शीशे में मुँह देखने, बच्चे को गोद में लेने माला पहनने, छत्र तथा चामर धारण करने, फूल चुनने, हार तथा ताम्बूल आदि ग्रहण करने और पत्तों के डठल तोड़ने के अभिनय में होता है ।

च्युतसन्देश एष स्याद् बन्धनस्थेऽथ पार्श्वगः ।

वक्षोदेशात्प्रयोक्तव्यश्चित्तस्याहरणे बुधैः ॥७५॥ 78

बन्धन में पड़ हुए का भाव प्रदर्शित करने में सँडमी की भाँति फँलाकर इस हस्त को बगल में रखना चाहिए । बुध जनो का मत है कि चित्तहरण के भाव-दर्शन में इसका प्रयोग वक्ष पर करना चाहिए ।

सयुद्धतौ त्वधो गत्वोद्धृतोऽथ स भवेत्करः ।

संगमादौ वरस्त्रीणां प्रियेणांशुककर्षणे ॥७६॥ 79

हस्त प्रकरण

किसी वस्तु को उठाने और उत्तम सुन्दरी स्त्रियों के साथ रति-केलि आदि करने में प्रिय के द्वारा वस्त्र खींचने का भाव प्रदर्शित करने के लिए खटकामुख हस्त को नीचे ले जाकर ऊपर की ओर उठा देना चाहिए।

शीर्षदेशाललाटस्थो वधूनामवगुण्ठने ।
मन्थस्याकर्षणे योज्यौ दधतौ तौ गतागतौ ॥७७॥ 80

स्त्रियों का घूँघट काढने का भाव प्रदर्शित करने में दोनों खटकामुख हस्तों को शिर के ऊपर रखना चाहिए और मथानी चलाने के आशय में उन्हें आगे-पीछे की ओर संचालित करना चाहिए।

ऊर्ध्वगाधोमुखावेतौ बन्धनेऽथांशुकस्य तु ।
परिधाने नाभिगतावितरेतरसम्मुखौ ॥७८॥ 81

मलमल या रेशमी वस्त्र बाँधने के भाव में खटकामुख हस्तों को क्रमशः ऊर्ध्वमुख और अबोमुख करना चाहिए। यदि वस्त्र पहनने का भाव दर्शित करना हो तो उन्हें नाभि के निकट आमने-सामने अवस्थित कर देना चाहिए।

इमौ विच्युतसन्दंशौ निराशे समुदाहतौ ।
पेषणे कुङ्कुमादेस्तु कायवितावधस्तलौ । 82

निराशा का भाव दिखाने के लिए उन्हें सँडसी की तरह खोल कर लटका देना चाहिए। यदि केसर आदि के पीसने का आशय प्रकट करना हो तो उन्हें निम्न स्थान पर ले जाना चाहिए।

यथासम्भवमेतस्मिन्कर्माण्युह्यानि पण्डितैः ॥७९॥

उक्त विनियोगों के अतिरिक्त नृत्याचार्यों ने खटकामुख हस्त के अन्य भी प्रयोग बताये हैं। उनका भी आवश्यकतानुसार उपयोग करना चाहिए।

१४ सूचीमुख हस्त और उसका विनियोग

ऊर्ध्वप्रसारिता चेत्स्यात् खटकास्यस्य तर्जनी ।
तदा सूचीमुखः प्रोक्तोऽशोकमल्लेन भूभुजा ॥८०॥ 83

यदि खटकामुख हस्त मुद्रा की तर्जनी को ऊपर की ओर सीधे फैला दिया या तान दिया जाय तो नृपति अशोकमल के मतानुसार उसे सूचीमुख हस्त कहते हैं।

तर्जन्यस्य भ्रमन्त्यूर्ध्वमुखा चक्रायुधे मता ।
घटोपकरणे चक्रे भ्रमन्ती स्यादधोमुखी ॥८१॥ 84

निजपार्श्वे भ्रमन्ती सा रथचक्रनिदर्शने । 85

जनसद्ये निजं पार्श्वमायान्ती चान्यपार्श्वतः ॥८२॥

साधुवादे ध्वजेऽप्येषा दोलिता परिकीर्तिता । 86

चक्रायुध के अभिनय मे सूचीमुख हस्त तर्जनी को घुमाते हुए ऊर्ध्वमुख कर देना चाहिए । घटादि सामग्री से सम्बद्ध चाक के आशय मे उसे घुमाते हुए अधोमुख कर देना चाहिए । रथ के पहिए का प्रदर्शन करने मे उसे अपने पार्श्व मे घुमाना चाहिए । यदि जन-समूह का भाव दिखाना हो तो उसे अन्य पार्श्व से स्वपार्श्व मे आते हुए प्रदर्शित करना चाहिए । मानुवाद और ध्वजा का भाव दर्शित करने मे उसे कम्पित कर देना चाहिए ।

ऋजुरूर्ध्वा तु सैकत्वे श्वासे नासास्थिता मता ।

ईषत्प्रकम्पितायान्ती कर्णान्त कर्णभूषणे ॥८३॥ 87

एकता का भाव दिखाने के लिए उसे सीधा ऊपर की ओर रखना चाहिए और श्वास के आशय मे नासिका पर अवस्थित करना चाहिए । कर्णभूषण का भाव दिखाने मे उसे ईषत् कम्पनके साथ कान तक ले जाना चाहिए ।

स्तवकेषु समाकुञ्च्य मनावकार्या प्रसारिता ॥८४॥

यदि पुष्पादि स्तवको (गुच्छो) का भाव प्रदर्शित करना हो तो उसे सिकोडकर कुछ फैला देना चाहिए ।

ऊर्ध्वाधः शीघ्रमायान्ती विद्युत्येषा स्मृताबुधैः । 88

कुष्माण्डादिलतासूर्ध्वा भ्रमन्ती मण्डलाकृतिः ॥८५॥

विद्वानो का अभिमत है कि विद्युत् का भाव प्रदर्शित करने के लिए सूचीमुख हस्त को ऊपर से शीघ्रतापूर्वक नीचे आते हुए दिखाना चाहिए । यदि कुम्हड़े जादि लताओ का अभिनय करना हो तो उसे मण्डलाकार घुमाते हुए ऊपर की ओर ले जाना चाहिए ।

चला किसलये तु स्याद्दीपे चाथोद्भुदर्शने । 89

ऋजुरूर्ध्वमुखो योज्यो भ्रमन्मण्डलिताकृतिः ॥८६॥

नवपल्लव तथा दीपक का भाव प्रदर्शित करने के लिए सूचीमुख हस्त को कम्पित कर देना चाहिए और तारो का भाव दिखाने के लिए उसे सीधे ऊर्ध्वमुख करके मण्डलाकार रूप मे घुमा देना चाहिए ।

पतनेऽधः पतन्कार्यो दंष्ट्राभिनयने पुनः । 90

मनाक् पार्श्वनतावेतावोष्ठप्रान्तगतौ करौ ॥८७॥

हस्त प्रकरण

गिरने के भाव में उसे नीचे गिराते हुए प्रदर्शित करना चाहिए और दष्टा (दाढ या हाथी के दाँत) के अभिनय में दोनों सूचीमुख हस्तों को बगल में थोड़ा झुकाकर ओठों के निकट अवस्थित कर देना चाहिए।

संयोगे त्वस्य तर्जन्यौ कर्तव्ये पार्श्वसयुते । 91
अधस्तले वियोगे तु विधातव्ये वियोजिते ॥८८॥

यदि संयोग का भाव दिखाना हो तो दोनों सूचीमुख हस्तों की तर्जनियों को पार्श्व भाग से मिला देना चाहिए और यदि वियोग का भाव प्रदर्शित करना हो तो उनको अर्ध भाग से वियुक्त कर देना चाहिए।

कलहे स्वस्तिकाकारे नियोज्ये ते विचक्षणैः । 92
धूमे सा मण्डलाकारभ्रान्ताथात्यन्तचञ्चला ॥८९॥

विद्वानों का मत है कि कलह का भाव दर्शित करने में दोनों सूचीमुख हस्तों को स्वस्तिकाकार मुद्रा में प्रयुक्त करना चाहिए। धुँएँ का भाव दिखाने के लिए सूचीमुख हस्त को मण्डलाकार में तीव्रगति से कम्पित कर देना चाहिए।

बालसर्पे भवे(? द्)देवपाक्रेथे(? व्याः केशे)वक्रप्रसारिता । 93
कम्पमानाथ कर्तव्या निर्देशे तु रिपोरियम् ॥९०॥

बाल सर्प और देवी के केशों का भाव प्रदर्शित करने में सूचीमुख हस्त को टेढ़ा करके प्रसारित कर देना चाहिए। शत्रु का निर्देश करने के आशय में उसे कम्पित कर देना चाहिए।

पार्श्वोत्ताना कुन्तले तु कुण्डलाङ्गदयोस्तथा । 94
तत्तदेशगता कार्या कूपावर्ते त्वधोमुखी ॥९१॥

शिर के बाल, कुण्डल तथा केयूर (भुजबन्द) आदि के भावाभिव्यजन में सूचीमुख हस्त को पार्श्व भाग से ऊर्ध्वमुख करके उन-उन स्थानों पर रखना चाहिए। वृँ के भँवर के आशय में उसे अधोमुख कर देना चाहिए।

ऊर्ध्वलोके तु सर्वेषामादिमेऽपि च सोर्ध्वगा । 95
जृम्भायां तु मुखाभ्यासे नियोज्या सा मनीषिभिः ॥९२॥

मनीषी जनो का कहना है कि ऊर्ध्वलोक, सर्वप्रथम, जँभाई और मुखाभ्यास का भाव दिखाने के लिए उसे ऊर्ध्वमुख करना चाहिए।

श्रोत्रकण्डूयने दुष्टश्रवणे चास्य तर्जनी । 96
कर्णरन्ध्रागतः कार्या कुन्तले क्षेपणे पुनः ॥६३॥

कान खुजलाने, कटुवाणी सुनने, शिर के बाल और किसी वस्तु को फेकने के आशय में सूचीमुख हस्त की तर्जनी को कान के छिद्र तक ले जाना चाहिए ।

स्वेदापनयनेऽज्ञातपृच्छायां तर्जनेऽपि च । 97
लोकयुत्त्यनुसारेण योज्यैषा नृत्यपण्डितैः ॥६४॥

नृत्याचार्यों का अभिमत है कि पसीना पोछने, अज्ञात वस्तु के सम्बन्ध में पूछने और डाँटने-धमकाने का भाव प्रकट करने में सूचीमुख हस्त का लोक परम्परा के अनुसार विनियोग करना चाहिए ।

अधोमुखी ललाटस्था हराभिनयने मता । 98
इन्द्राभिनयने त्वेषा तिरश्चीना तथोन्नता ॥६५॥
परिवेषेभ्रमन्ती सा तिर्यग्मण्डलिताकृतिः । 99

शकर के अभिनय में सूचीमुख हस्त को अधोमुख करके ललाट पर रखना चाहिए और इन्द्र के अभिनय में उसे उन्नत तथा तिरछा प्रदर्शित करना चाहिए । (सूर्य आदि के) मण्डल के प्रदर्शन में उसे मण्डलाकार बनाकर तिरछा घुमाना चाहिए ।

इदमर्थेऽधोमुखी साभिहिते मुखदेशगा ॥६६॥

‘यह इस लिए है’ ऐसा भाव प्रदर्शित करने में उसे अधोमुख कर देना चाहिए और कही हुई बात के अभिनय में उसे मुख पर अवस्थित रखना चाहिए ।

ऊर्ध्वाधः पतिता कार्या भ्रमन्ती लोकसर्वयोः । 100
भ्रमन्त्यौ संयुते भ्रान्तौ संयुक्तासु सखीष्वियम् ॥६७॥

लोक तथा समष्टि का भाव दिखाने में इस हाथ को घुमाकर ऊपर से नीचे गिरा देना चाहिए । भ्रान्ति का भाव प्रकट करने में दोनों सूचीमुख हस्तों को घुमाकर सटा देना चाहिए और समवेत सखियों के अभिनय में एक ही सूचीमुख हस्त को घुमाना चाहिए ।

अधःपार्श्वगता कार्या संरम्भे स्वस्तिकाकृतिः । 101
अधोमण्डलिता कार्या पल्लवेऽथ मुखास्थिता ॥६८॥

हस्त प्रकरण

(किसी कार्य को) आरम्भ करने के अभिनय में सूचीमुख हस्त को स्वस्तिक मुद्रा में नीचे बगल में रखना चाहिए और पतलव के भाव-प्रदर्शन में उसे नीचे घुमाकर मुख पर रखना चाहिए ।

दूते ते ऊर्ध्वमुख्यौ तु समानाभिनये म(?न) ते । 102

भानौ चन्द्रे च कर्तव्या भ्रमन्ती दक्षिणा बुधैः ॥६६॥

दूत के अभिनय में दोनों सूचीमुख हस्तों को ऊर्ध्वमुख करके समान रूप से प्रदर्शित करना चाहिए । सूर्य और चन्द्रमा के अभिनय में उसे दाहिनी ओर घुमाना चाहिए, ऐसा विद्वानो का कथन है ।

प्रतिद्वन्द्विनि ते स्यातामूर्ध्वग्रे प्रमुखे पुनः । 103

ऊर्ध्वाधः पतिता कार्या प्रस्तुतेऽपि बुधैरियम् ॥१००॥

प्रतिद्वन्द्वी, अग्रगामिता और प्रमुखता के अभिनय में दोनों सूचीमुख हस्तों को ऊर्ध्वमुख करना चाहिए । प्रस्तुत वस्तु के भाव-प्रदर्शन में एक सूचीमुख हस्त को ऊपर उठा कर नीचे गिरा देना चाहिए, ऐसा बुद्धिमान् व्यक्तियों का कहना है ।

विभक्ते छेदने चैते योज्येते विच्युते उभे । 104

किसी वस्तु को विभक्त करने तथा काटने के अभिनय में दोनों सूचीमुख हस्तों को गिराकर प्रदर्शित करना चाहिए ।

पुरोमुखी सूचिते सा मन्त्रणे मुखदेशगा ॥१०१॥

प्रणामेऽधःपतन्ती सा सूर्यास्ते वामपार्श्वगा । 105

किसी सूचित वस्तु के अभिनय में सूचीमुख हस्त को अग्रमुख करके रखना चाहिए और मन्त्रणा के अभिनय में उसे मुख पर अवस्थित करना चाहिए । प्रणाम करने के भाव में उसे नीचे गिराना तथा सूर्यास्त के आशय में बाँयी बगल में रखना चाहिए ।

विश्लिष्टे ते पराङ्मुख्यौ दक्षिणात्पार्श्वतोमते ॥१०२॥

पार्श्वव्यत्ययतो योज्ये निशान्ते तद्देव ते । 106

संयुक्ता तु सहाये स्यादथ रक्तप्रमोक्षणे ॥१०३॥

नृत्याचार्यों के मत से वियुक्त करने के अभिनय में दोनों सूचीमुख हस्तों को विमुख करके दाहिनी बगल में रखना चाहिए । रात्रि के अन्तिम भाग के प्रदर्शन में उसी प्रकार वियुक्त करके दाहिनी बगल में रखना चाहिए । मित्र या सहायक तथा रक्त निकालने के आशय में उन्हें सयुक्त करके रखना चाहिए ।

हस्त प्रकरण

के भाव-प्रदर्शन में इस हाथ को ललाट पर रखना चाहिए । परित्राण देने के अर्थ में उसका मुँह मुड़ा हुआ होना चाहिए , और अनुवाद का भाव प्रदर्शित करने में उसे कानों के समीप रखना चाहिए ।

शिरोवेष्टित एष स्याद् भूपालाभिनये करः ।
स वैद्ये त्वेकहस्तस्थनाडिकादेशसश्रितः ॥११०॥ 114

राजा के अभिनय में त्रिपताक हस्त को शिर पर धुमा कर रखना चाहिए और वैद्य के अभिनय में उसे एक हाथ की नाडी पर रखना चाहिए ।

मुखप्रदेशमागच्छन्नसौ योज्यो जनान्तिके ।
चलदङ्गुलिरुत्तानोऽभिव्यक्तोऽथ विसर्जने ॥१११॥ 115

अभिनय के समय (रगमच) पर अभिनेता द्वारा दूसरे के सामने कुछ करने का भाव प्रदर्शित करने में त्रिपताक हस्त को मुख के पास ले जाना चाहिए । किसी बात को प्रकट करने और विमर्जन के आशय में उसे, उगलियों को कम्पित करते हुए, उत्तानावस्था में रखना चाहिए ।

पुरोगतस्तिरस्कारेऽतिक्रमे परिवर्तितः ।
त्रिपताकं यदा वामनुगच्छेत्परः करः ॥११२॥ 116
तदानुवृत्ते योज्योऽयं पत्यौ तु शिरशि स्थितः ।
अयमन्तःपुरे तु स्यात्स्वास्तिकाकृतितां गतः ॥११३॥ 117

तिरस्कार का भाव प्रदर्शित करने में उसे सामने रखना चाहिए और उल्लघन के आशय में उसे उलट कर रखना चाहिए । एक के पीछे दूसरे को चलने अथवा अनुकरण करने के अभिनय में दाहिने त्रिपताक हस्त को आगे और बाँये त्रिपताक हस्त को उसका अनुसरण करते हुए दिखाना चाहिए । पति का भाव दिखाना हो तो उसे शिर पर रखना चाहिए और अन्त पुर के अभिनय में उसे स्वस्तिकाकार बनाना चाहिए ।

मुखदेशे तु पार्श्वस्थो विविक्ते गदितो बुधैः ।
कुञ्चिताधस्तलीभूय नेये स स्यात्प्रसारितः ॥११४॥ 118

विद्वानो का कहना है कि एकान्त के अभिनय में त्रिपताक हस्त को मुख के एक बगल में रखना चाहिए और ले जाने के भाव-प्रदर्शन में उसे निम्न भाग से मोड़ कर फैला देना चाहिए ।

अहमित्यादिनिर्देशे हृदयाभिमुखो मतः ।
व्यक्तः कुटलकेशेषु मुहुरुद्वेष्टितो बुधैः ॥११५॥ 119

'मै' इत्यादि के निर्देश के अभिनय में त्रिपताक हस्त को हृदय के सम्मुख रखना चाहिए । विद्वानों का अभिमत है कि घुंघराले बालों के अभिनय में उसे चागे ओर से घिरा या मुड़ा हुआ प्रदर्शित करना चाहिए ।

मुखान्तरित एष स्याद् व्याजेऽथानुप्रवेशने ।
चलाङ्गुलिरथाल्पेऽर्थे व्यावर्तितनतोन्नतः ॥११६॥ 120

छल-कपट तथा प्रवेश करने के अभिनय में उसे मुख के पास रखना चाहिए और अल्पता के अर्थ में उसकी उँगलियों को कम्पित करके उलटे, झुके तथा उठे हुए रूप में प्रस्तुत करना चाहिए ।

कुले त्वयं नियोक्तव्य ऊर्ध्वाधश्चलदङ्गुलिः ।
संशये दधदङ्गुल्यौ क्रमादेश नतोन्नते ॥११७॥ 121

कुल के अभिनय में उसकी उँगली को ऊपर-नीचे कम्पित करते हुए प्रयुक्त करना चाहिए । सन्देह के भाव-प्रदर्शन में उसकी दो उँगलियाँ क्रमशः नत और उन्नत होनी चाहिए ।

अनादरेऽधस्तल स्याद्द्वहिः क्षिप्ताङ्गुलिद्वयः ।
अलकापनयने स स्याद्भ्रालादलकसंश्रितः ॥११८॥ 122

अनादर के अभिनय में त्रिपताक हस्त की हथेली नीचे की ओर तथा उसकी दो उँगलियाँ नीचे की ओर फेकी हुई होनी चाहिए और केशों को हटाने के अभिनय में उसे ललाट पर केशों से सटा हुआ होना चाहिए ।

—कुञ्चिताङ्गुलि (? को) भ्रमन् ।

उसकी उँगलियों को मोड़कर घुमाते हुए [?] ।

मस्तकाच्चेद्भ्रमत्यूर्ध्वं तदा मुकुटधारणे । 123
तिलके स्याद्दूर्ध्वमेष भ्रुवोर्मध्यात्ललाटग. ॥११९॥

मुकुट धारण करने के अभिनय में उसे मस्तक के ऊपर घुमाना चाहिए । तिलक धारण करने के भाव-प्रदर्शन में उसे ऊपर भँवों के बीच से ललाट पर रखना चाहिए ।

हस्त प्रकरण

विकृते घोषवागन्धे कर्णस्थितसंज्ञि । 124

क्रमात्कुर्वन्नङ्गुलिभ्यामथ (?धः) स्यात् कटिदेशतः (?ग.) ॥१२०॥

विकार, शब्द, वाणी तथा गन्ध के भावाभिव्यजन में दो उँगलियों से क्रमशः कान, मुख तथा नाक को ढकते हुए त्रिपताक हस्त को नीचे कमर के हिस्से में रखना चाहिए ।

क्रमादधस्तिर्यगूर्ध्वं क्षुब्धे स्रोतसि मास्ते । 125

तथाविधे खेचरे च दधदेष चलाङ्गुली ॥१२१॥

छोटे सोते, वायु तथा आकाशचारी जीवों के अभिनय में त्रिपताक हस्त की कम्पित उँगलियों को क्रमशः नीचे, तिरछे तथा ऊपर अवस्थित करना चाहिए ।

विच्युतानामिकाङ्गुष्टसन्दशोऽश्रुप्रमार्जने 126

आकाशाभिनये तूर्ध्वमुखोऽथाधोमुखो भुवि ॥१२२॥

आँसू पोंछने के अभिनय में इस हाथ की अनामिका तथा अँगुष्ठ उँगलियों को सँडमी की तरह मोड़ कर नीचे लटका देना चाहिए । आकाश के अभिनय में इस हस्त को ऊर्ध्वमुख तथा भूमि के अभिनय में अधोमुख रखना चाहिए ।

इतस्ततश्चलन्नेष बालसर्पनिरूपणे । 127

बाहुशीर्षसमुत्थोऽयमूर्ध्वप्राप्ताङ्गुलिद्वयः ॥१२३॥

बालसूर्य के अभिनय में त्रिपताक हस्त को इधर-उधर चलाते हुए, दो उँगलियों को ऊपर करके बाँह तथा शिर पर रख देना चाहिए ।

साग्निधूमे प्रयोक्तव्यो वक्रमार्गेष्वधोमुखः । 128

पुरश्चलन्नुच्चनीचभुव्यूर्ध्वाधोमुखः करः ॥१२४॥

अग्नि तथा धूम और टेढ़े मार्गों के अभिनय में उसे अधोमुख करके प्रदर्शित करना चाहिए । ऊँची-नीची भूमि के भाव-प्रदर्शन में उसे आगे चलाते हुए ऊपर-नीचे कर देना चाहिए ।

कुञ्चिताङ्गुलिरेष स्यात्कर्णस्थश्चापकर्षणे । 129

बालेन्दुदर्शने कार्यः प्रसृताङ्गुष्टसम्मुखः ॥१२५॥

धनष को खींचने का भाव प्रदर्शित करने के लिए त्रिपताक हस्त को कान पर रखना चाहिए और उँगलियों को मोड़ लेना चाहिए । बालचन्द्र के अभिनय में उसके अगुष्ठ को फैलाकर सामने रखना चाहिए ।

पराङ्मुखो नृणां याने प्रयोक्तव्यो विचक्षणः । 130

अधोमुखौ स्वस्तिकौ तौ गुरुपादाभिवन्दने ॥१२६॥

विद्वज्जनो को चाहिए कि मनुष्यो की सवारी के अभिनय में वे त्रिपताक हस्त को पराङ्मुख (अर्थात् प्रतिकूल दिशा में) करके प्रयुक्त करें। गुरु के चरणस्पर्श के अभिनय में दोनों त्रिपताक हस्तों को स्वस्तिक बनाकर अधोमुख कर देना चाहिए।

विवाहदर्शने स्यातां श्लिष्टौ तावितरेतरम् । 131

भूपालदर्शने तौ स्तो विच्युतौ तु ललाटगौ ॥१२७॥

विवाह के अभिनय में दोनों त्रिपताक हस्त परस्पर सम्बद्ध करके रखने चाहिए और राज-दर्शन के अभिनय में दोनों को अलग करके ललाट पर अवस्थित करना चाहिए।

तौ तिर्यक्स्वस्तिकौ स्यातां सम्बद्धौ वेश्मदर्शने । 132

तपस्विदर्शने स्याता तावूध्वौ तु पराङ्मुखौ ॥१२८॥

गह दिखाने में दोनों त्रिपताक हस्तों को स्वस्तिकाकार में सम्बद्ध करके तिरछा प्रदर्शित करना चाहिए। तपस्वी के दर्शन में उन्हें ऊपर करके पराङ्मुख (अर्थात् विरुद्ध दिशा में) कर देना चाहिए।

अन्योन्याभिमुखौ तौ तु वियोज्यौ हारदर्शने । 133

मुखाग्रसंश्रितौ कार्यावुत्तानाधोमुखीकृतौ ॥१२९॥

हार के प्रदर्शन के अभिनय में उन दोनों हस्तों को एक-दूसरे के आमने-सामने करके दोनों के मुखाग्र भाग को मिलाकर उर्ध्वमुख तथा अधोमुख कर देना चाहिए।

नक्राणा वडवाग्नेश्च मकराणां च दर्शने । 134

अन्योन्याभिमुखौ द्वारे सहार्थे संयुतौ मतौ ॥१३०॥

घडियालो, वडवाग्नि, मगरो, द्वार तथा साथ के अभिनय में दोनों हाथों को परस्पर सम्मुख करके संयुक्त कर देना चाहिए।

वानरे मुखदेशस्थावुत्तानाभिमुखाविमौ । 135

न जानामीति वाक्यार्थे छादितश्रोत्रसम्पुटौ ॥१३१॥

वानर के प्रदर्शन में दोनों हस्तों को उत्तान एवं आमने-सामने मुख के पास रखना चाहिए। 'मैं नहीं जानता हूँ' इस कथन के प्रदर्शन में उनसे दोनों कर्ण-विवर्गों को ढक देना चाहिए।

हस्त प्रकरण

इमावन्योन्यसंश्लिष्टौ स (?ह) द्गतावुत्थितौ पुनः । 136
सम्भाविते प्रकर्तव्यौ पूर्वाचार्यैरिमौ करौ ॥१३२॥

पूर्वाचार्यों के मत से सम्भावना के अभिनय में दोनों त्रिपताक हस्तों को एक-दूसरे से मिलाकर पुन हृदय पर उठाकर रख देना चाहिए ।

१६ कर्तरीमुख हस्त और उसका विनियोग

हस्तस्य त्रिपताकस्य यद्यश्लिष्टा तु तर्जनी । 137
मध्यमायां स्थिता पृष्ठे तदासौ कर्तरीमुखः ॥१३३॥

यदि त्रिपताक हस्त-मुद्रा की तर्जनी उँगली को अलग करके उसे मध्यमा उगली के पृष्ठभाग में अवस्थित किया जाय (और मध्यमा को अनामिका के साथ हस्ततल की ओर मोड़ दिया जाय) तो उसे कर्तरीमुख हस्त कहते हैं ।

क्रमे स्थितौ च क्षेपे (च) तथैवात्मगतेऽप्यसौ । 138

अशून्ये तद्विधेत्यर्थे स भिन्नवलितो भवेत् ॥१३४॥

क्रम, स्थिति, क्षेपण, स्वगत भाषण, अशून्य तथा इसी प्रकार के अन्य अर्थों के अभिनय में कर्तरीमुख हस्त को बिना मोड़े हुए प्रदर्शित करना चाहिए ।

ऊर्ध्वास्योऽसौ कपोलादौ पत्रादिरचने मतः । 139

अलक्तकादिचरणरञ्जने मार्गदर्शने ॥१३५॥

असावधोमुखः कार्यो दर्शने कर्णदेशगः । 140

नासाक्षेत्रादथाग्रस्थो भवेदुत्तानिताङ्गुलिः ॥१३६॥

कपोल आदि पर पत्र आदि की रचना करने के प्रदर्शन में इस हाथ का मुख ऊपर को होना चाहिए । महावर आदि से चरणों को रँगने तथा मार्ग दिखाने में उसे अधोमुख कर देना चाहिए । देखने के आशय में उसे कान के समीप ले जाकर फिर नाक के अग्र भाग में, उँगली को उत्तान करके, अवस्थित रखना चाहिए ।

लेखप्रवाचनेऽथासौ मरणे पतनेऽपि च । 141

वितर्कितेऽपराधे च परिवर्ते व्यतिक्रमे ॥१३७॥

व्यत्यस्ततर्जनीकः स्यादवाङ्मुखचलाङ्गुलिः । 142

अग्रं तु पादविन्यासे योज्यस्तद्देशगो बुधैः ॥१३८॥

लेख वाँचने, मरण, पतन, दलील देने, अपराध, परिवर्तन और उल्लघन के भाव-प्रदर्शन में कर्तरीमुख हस्त की तर्जनी को विपरीत दिशा में रखकर शेष उँगलियों को कम्पित कर देना चाहिए ।

नृत्याध्यायः

सौधान्तःपुरयोरेष स्वस्तिकः परिदेवने । 143
 मुखदेशस्थितोऽथैकोऽनुगतोऽनुगते करः ॥१३६॥
 अपरेण करेणाथ हताशे परिवर्तितः । 144
 हृदयस्थोऽथ पार्श्वच्चैद्दक्षिणाद्वामपार्श्वगः ॥१४०॥

महल तथा अन्त पुर के भाव-प्रदर्शन में कर्तरीमुख हस्त को स्वस्तिकाकार होना चाहिए । विलाप करने के अभिनय में उसे मुख पर और अनुगमन करने के आशय में दोनों हाथों का परस्पर अनुगत कर देना चाहिए (अर्थात् एक हाथ के पीछे दूसरे हाथ को रख देना चाहिए) । हताश के भाव-प्रदर्शन में उसे दाहिनी बगल से बायीं बगल की ओर परिवर्तित करके हृदय पर अवस्थित करना चाहिए ।

तदा दाननिषेधे स प्रकाशे वृष्टिदेशतः । 145
 दक्षिणस्तु करो वामं पार्श्वमागत ईरितः ।

दान के निषेध तथा प्रकाश के अभिनय में दाहिने हाथ को क्षेत्रप्रान्त से लाकर वाम पार्श्व में रखना चाहिए ।

इमौ शिरःस्थौ कर्तव्यौ शृङ्गाभिनयने करौ ॥१४१॥ 146

सींग के अभिनय में दोनों कर्तरीमुख हाथों को शिर पर रखना चाहिए ।

१७ अर्धचन्द्र हस्त और उसका विनियोग

स्थितेऽन्यतोऽङ्गुलीसंघे विततेऽङ्गुष्ठके सति ।
 योऽर्धचन्द्राकृतिधरः सोऽर्धचन्द्राभिधः करः ॥१४२॥ 147

यदि चारों उँगलियों को सीधे खड़ी कर दिया जाय और अँगूठे को बाहर की ओर सीधे फैला दिया जाय तो उससे जो अर्धचन्द्राकार मुद्रा बनती है उसी को अर्धचन्द्र हस्त कहते हैं ।

ऊर्ध्वोत्तानोऽर्धचन्द्रेऽथोत्तानितो मण्डलभ्रमः ।

ग्लानिसन्तापयोः शोके नियोज्योऽसौ नियोक्तृभिः ॥१४३॥ 148

अभिनेताओं को चाहिए कि ग्लानि, सन्ताप और शोक के भाव-प्रदर्शन में वे अर्धचन्द्र हस्त को ऊपर उत्तान करके मण्डलाकार में घुमायें ।

मुखदेशस्थितः पाने वदनेऽपि भवेदसौ ।

पादाङ्कुरणे त्वेष करस्तद्देशगः स्मृतः ॥१४४॥ 149

पीने तथा बोलने के अभिनय में इस हस्त को मुख पर रखना चाहिए । पैरों के आभूषण प्रकट करने में उसे पैरों के पास ले जाना चाहिए ।

हस्त प्रकरण

मणिबन्धप्रदेशस्थवलये मण्डलाकृतिः ।

पराङ्मुखोऽथ खेदे स कपोलफलकाश्रितः ॥१४५॥ 150

कलाई पर धारित कंकण या चूड़ी के भाव-प्रदर्शन में अर्धचन्द्र हस्त को मण्डलाकार बनाना चाहिए और खेद प्रकट करने में उसे उलटा करके कपोल पर रखना चाहिए ।

कर्णान्तिकगतौ कार्यौ कर्णाभरणदर्शने । 151

लोकयुक्त्यनुसारेण बलान्निःकाशने मतः ॥१४६॥

कानों के आभूषण प्रकट करने में दोनों अर्धचन्द्र हस्तों को कानों के पास रखना चाहिए । किसी को बलपूर्वक निकालने के आशय में लोक-परम्परा के अनुसार अर्धचन्द्र हस्त का उपयोग करना चाहिए ।

कुम्भाभिनयने स्याता पुरतोऽन्योन्यसम्मुखौ ।

मध्यसाम्ये कटिस्थौ द्वावितरेतरसम्मुखौ ॥१४७॥ 152

घट के भाव-प्रदर्शन में दोनों अर्धचन्द्र हस्तों को आमने-सामने (समुखावस्था में) रखना चाहिए और मध्य का साम्य दिखाने में दोनों को उसी प्रकार परस्पर समुख करके कटिभाग में रखना चाहिए ।

नियोज्यौ रस(?श)नायां च कर्तव्यौ तावधोमुखौ ।

मुखदेशगतावेतौ शङ्खाभिनयने करौ ॥१४८॥ 153

करधनी या रस्सी के भाव-प्रदर्शन में उक्त दोनों हस्तों को अधोमुख करके प्रयुक्त करना चाहिए और शङ्खा अभिनय में दोनों को मुख पर रखना चाहिए ।

असंयुताविमावूर्ध्वावुत्थितौ निजपाश्वरतः ।

प्रयोक्तव्यौ करौ बालपादपाभिनये बुधैः ॥१४९॥ 154

छोट-छोटे पौधों के अभिनय में नाट्यविद् लोग दोनों अर्धचन्द्र हस्तों को ऊपर उठाये हुए, बिना सटाये ही अपने बगल में रखें ।

१८. अराल हस्त और उसका विनियोग

तर्जनी चापवद्धक्रा यत्राङ्गुष्ठस्तु कुश्रितः ।

अङ्गुल्याः पूर्वपूर्वस्या अङ्गुली चैत्परा परा ॥१५०॥ 155

भिन्नोच्चा स्यान्मनागवक्रा तदारालः स कीर्तितः ।

यदि तर्जनी घनुष की तरह टेढ़ी हो, अगुष्ठ कुछ मुड़ा हो, और पूर्व-पूर्व की उगली से उत्तर-उत्तर की उँगली भिन्नता धारण किये उन्नत तथा कुछ वक्र हो (अर्थात् कनिष्ठा, अनामिका और मध्यमा क्रमशः उन्नत होती हुई उसी क्रम से कुछ वक्र हो) तो उसे अराल हस्त कहते हैं ।

एषोन्नदावुपस्थाने याचने विजयेऽपि च ॥१५१॥ 156
अर्हादेवतयोश्च स्यादाशीर्वादे हृदि स्थितः ।

अन्त जादि, उपस्थिति या सामीप्य (उपस्थान), याचना, विजय, पूजा, देवता और आशीर्वाद के अभिनय मे अराल हस्त को हृदय पर रखना चाहिए ।

ऊर्ध्वास्यः शिरसः पश्चान्मयूराभिनये मतः ॥१५२॥ 157

मयूर के अभिनय मे उक्त हस्त को शिर के पीछे ऊर्ध्वमुख करके रखना चाहिए ।

अङ्कुशाभिनये त्वेष मनागूर्ध्वपराङ्मुखः ।

देहस्वभावभावेषु हितेष्वेष स्वसम्मुखः ॥१५३॥ 158

अकुश के अभिनय मे उसे थोडा ऊपर पराङ्मुख करके रखना चाहिए और देह, स्वभाव, भाव तथा हित के आशय मे उसे अपने सम्मुख रखना चाहिए ।

निवारणे बहिःक्षिप्तोऽभिनेतव्योऽभिनेतृभिः ।

पराङ्मुखः परित्राणे मन्त्रिते मुखदेशगः ॥१५४॥ 159

अभिनेताओ को चाहिए कि निवारण (दूर करने या हटाने) के भाव-प्रदर्शन मे वे उक्त हस्त को बाहर फेंक कर (अर्थात् झटका देकर) अभिनीत करे । बचाने के अभिनय मे उसे पराङ्मुख करके और मन्त्रणा के आशय मे मुख पर रखकर प्रयुक्त करना चाहिए ।

अखण्डिते महालाभे भाग्यमाहात्म्ययोरपि ।

योग्यतायां च कर्तव्य उत्थितोऽथ बहिर्मुखः ॥१५५॥ 160

अखण्डित वस्तु, महान् लाभ, भाग्य, माहात्म्य और योग्यता के अभिनय मे उसे उठाकर बहिर्मुख कर देना चाहिए ।

श्राद्धकर्मणि योज्योऽयमथ द्रव्ये सुगन्धिनि ।

नासादेशगतः कार्यस्तथा खल्विति दर्शने ॥१५६॥ 161

तर्जन्याङ्गुष्ठको युक्त्वा वियुक्तो जनने भवेत् ।

मुखदेशाद्विनिर्गच्छन्नुपदेशे मतः सताम् ॥१५७॥ 162

श्राद्धकर्म के अभिनय मे अराल हस्त का उपयोग करना चाहिए । सुगन्धित पदार्थ के अभिनय मे उसे नासिका के पास रखना चाहिए । 'वैसा निश्चित ही हुआ है' इस प्रकार के भाव-प्रदर्शन मे अराल हस्त की तर्जनी

हस्त प्रकरण

उँगली को अँगुष्ठ से मिला देना चाहिए, किन्तु प्रजनन या उत्पादन के आशय में उसे (तर्जनी को) अलग कर देना चाहिए। सज्जन लोगो का मत है कि उपदेश के भावाभिनय में उसे मुख के पाम से निकालने हुए दिखाना चाहिए।

तोषे तूत्तानितः स स्याच्चन्द्रिकासु चलाङ्गुलिः ।

केशानां बन्धने स्त्रीणामसो तेषां विकीर्णने ॥१५८॥ 163

द्विम्बिर्वा मण्डलाकारोऽथाह्वाने पतदङ्गुलिः ।

सन्तोष के अभिनय में उक्त हस्त को उत्तान रखना चाहिए। चन्द्रिका (ज्योत्स्ना) के भाव-दर्शन में उसकी उँगलियों को कम्पित कर देना चाहिए। स्त्रियों के केशों के बाँधने तथा छितराने में उस हस्त को दो या तीन बार मण्डलाकार बनाना चाहिए। किसी को बुलाने के आशय में उसकी उँगलियों गिरती हुई प्रदर्शित करनी चाहिए।

धृतिस्थैर्यबलोत्साहगर्वगाम्भीर्यदर्शने

॥१५९॥ 164

नाभिक्षेत्रादयं कार्यो धीरैरुर्ध्वं शिरोवधिः ।

अधोमुखो लाभ(?भाल)देशस्वेदापनयने भवेत् ॥१६०॥ 165

धैर्य, स्थिरता, बल, उत्साह, गर्व और गभीरता दिखाने में उसे धीर पुरुष, नाभि के निकट ले जाकर ऊपर शिर तक ले जायें। ललाट का पसीना पोछने के आशय में उसे अधोमुख कर देना चाहिए।

भालस्थोऽप्यन्यपार्श्वच्छेद् भ्रमन्नायाति वर्तुलः ।

स्वपाश्वे जनसंग्रे स्याद्विवाहे तु करद्वयम् ॥१६१॥ 166

प्रदक्षिणं भ्रमत् कार्यं स्वस्तिकाकारतां गतम् ।

अङ्गुल्यग्रस्थितं कार्यं केवलस्तु प्रदक्षिणम् ॥१६२॥ 167

जन-समूह के अभिनय में अराल हस्त को ललाट पर रख कर वहाँ से गोलाकार में घुमाते हुए दूसरे के बगल से अपने बगल में ले आना चाहिए। विवाह के अभिनय में दोनों अराल हस्तों को स्वस्तिक मूद्रा में प्रदक्षिणा कराते हुए घुमाना चाहिए, किन्तु प्रदक्षिणा केवल उँगलियों के अग्रभाग द्वारा ही होनी चाहिए।

भ्रमन्प्रदक्षिणे सद्भिर्देवानां स नियुज्यते ।

कोऽहं कस्त्व मया सार्धं सम्बन्धः क्वेति भाषणे ॥१६३॥ 168

असबद्धे बहिःक्षिप्ताङ्गुलिरेष पुनः पुनः ।

हस्त प्रकरण

२०. सन्दश हस्त और उसका विनियोग

लग्नाग्रे तु यदाङ्गुष्ठतर्जन्यौ निम्नक मनाक् ।

तलमध्यमरालस्य तदा सन्दश ईरितः ॥१६६॥ 175

यदि अराल हस्त-मुद्रा की तर्जनी आर अंगुष्ठ उँगलियों के अग्रभाग को मिला दिया जाय ओर हथेली को भीतर की ओर थोड़ा झुका दिया जाय तो उमे सन्दश हस्त (सँडामी) कहते हैं ।

इति त्रेधा भवेत्सोऽयमग्रजो मुखजस्तथा ।

पार्श्वजश्चाथ ते ज्ञेयोस्त्रयोऽप्यन्वर्थलक्षणाः ॥१७०॥ 176

इस प्रकार सन्दश हस्त के तीन भेद होते हैं अग्रज, मुखज और पार्श्वज । उनके नामार्थ के अनुमार ही उनका प्रयोग भी समझना चाहिए ।

कण्टकोद्धरणे सूक्ष्मपुष्पावचयनेऽपि च ।

केशपर्णनृणादीनां ग्रहणेऽप्यग्रजो मतः ॥१७१॥ 177

काँटा निकालने, सूक्ष्म पुष्पो को चुनने ओर केश, पत्ते तथा तृण आदि के ग्रहण करने में अग्रज सन्दश हस्त का उपयोग करना चाहिए ।

शल्यावयवनिष्कर्षेऽपकर्षे चाथ कीर्तितः ।

प्रसूनोद्धरणे वृन्ताद्विगित्युक्तो च रोषतः ॥१७२॥ 178

वर्त्यञ्जनशलाकादिपूरणे चास्यजस्त्वथ ।

शरीरागो में बरछा या तीर मारने तथा निकालने, डण्डल से फूल तोड़ने, 'धक्कार है' क्रोध से ऐसा कहने, बत्ती तथा अजन-शलाका आदि के व्यवहार के अभिनय में मुखज सन्दश का विनियोग करना चाहिए ।

मुक्तादीना गुणक्षेपे वेधनेऽपि च पार्श्वजः ॥१७३॥ 179

मणि-मुक्तादि के गुण बताने तथा (उनके) वेधन करने के अभिनय में अग्रज सन्दश का विनियोग करना चाहिए ।

सद्वितीयः प्रयोक्तव्यस्तत्त्वस्य च निरूपणे ।

ध्यानाभिनयने चित्रकर्मण्यपि च भाषणे ॥१७४॥ 180

सक्रोधे वामहस्तेन मनागप्रविवर्तनात् ।

निष्पीडने त्वलक्तस्य चायमुक्तो बुधैः करः ॥१७५॥ 181

नृत्याध्याय

तत्त्व-निरूपण में मुखज सन्दश का उपयोग करना चाहिए। न्यान चित्रकर्म, भाषण और थोडा आगे फैला कर बाँये हाथ से महावर पीसने के अभिनय में इसी हस्त का विनियोग करना चाहिए, ऐसा विद्वानो का अभिमत है।

योगे स्तोके निर्धने च मुख्यज्ञोपवीतयोः ।

वितर्के पेलवासूयानेत्ररञ्जन (द) शने ॥१७६॥ 182

कद्रौ तत्सुतविद्याया विद्यातो (ष) विधावपि ।

स्मृतौ सम्भावनायां चानयनेऽपि हृदि स्थितः ॥१७७॥ 183

योग, अल्प, निर्धन, गुरु, यज्ञोपवीत, वितर्क, कोमल, असूया, काजल, दर्शन, कद्रु (नागों की माता), सर्पविद्या (तत्सुतविद्याया), विद्या, सन्तुष्ट करने की विधि, स्मरण, सम्भावना और आनयन के भाव-प्रदर्शन में मुखज सन्दश हस्त को हृदय पर अवस्थित करना चाहिए।

उद्भिन्ने विच्युतः स स्यान्मोचनीये करावुभौ ।

विच्युतावथ नेत्रादिस्फुरणे स्यादसौ करः ॥१७८॥ 184

तद्देशसश्रिते लक्ष्ये त्वेष कार्यः पुरःस्थितः ।

फोड कर निकली हुई वस्तु (जैसे सोता) के अभिनय में सन्दश हस्त के सटे हुए अंग को अलग कर देना चाहिए। खोलने योग्य वस्तु के अभिनय में दोनों सन्दश हस्तों को वैसे ही विच्युत कर देना चाहिए। नेत्र आदि के फडकने के अभिनय में भी उसी सन्दश हस्त का विनियोग करना चाहिए। नेत्र प्रदेश के लक्ष्य का आशय प्रकट करने में उसे आगे रखना चाहिए।

पिपीलिकास्वयं योज्यश्चलाधोमुखः करः ॥१७९॥ 185

क्षुद्रे विवर्तितः किञ्चिद्दोषे तु परिवर्तितः ।

परिणामे पार्श्वमुखो ब्राह्मणे वामबाहुतः ॥१८०॥ 186

चीटियों के अभिनय में सन्दश हस्त को कम्पित करके अधोमुख कर देना चाहिए। क्षुद्र वस्तु के अभिनय में उसे घुमाकर और अल्प अपराव के आशय में बदल कर प्रदर्शित करना चाहिए। परिणाम के अभिनय के प्रदर्शन में उसे बगल की ओर झुका होना चाहिए और ब्राह्मण के भाव-निदर्शन में उसे बाईं भुजा की बगल से प्रयुक्त करना चाहिए।

आगते दक्षिणे पार्श्वे कर्तव्यो दशनेषु तु ।

तद्देशस्थो बुधैरुक्तः कर्णस्थः कर्णभूषणे ॥१८१॥ 187

हस्त प्रकरण

आये हुए व्यक्ति के अभिनय में सन्देश हस्त को दाहिनी बगल में, दाँतो के अभिनय में दाँतो के पास और कर्णाभूषण के अभिनय में कान के पास रखना चाहिए, ऐसा विद्वानों का अभिमत है।

मुखसंकोचने त्वेष देशीनृत्ये चलग्रहे ।

वधूभिर्भालदेशस्थः कार्यं श्वशवादिवञ्चने ॥१८२॥ 188

मुँह छिपाने या सिकोडने, देशी नृत्य (ग्राम्य नृत्य), चलग्रह और बहुओं द्वारा सास आदि को उगने के अभिनय में इस हाथ को ललाट पर रखना चाहिए।

युक्तोऽङ्कुरे तथा स्थाने इत्येवार्थे च युक्तितः ।

यथौचित्यं योजनीयो लोकैर्नृत्यविशारदैः ॥१८३॥ 189

समीचीन वस्तु, अकुर, स्थान, 'ऐसा ही' इम कथन के अभिनय में नृत्यवेत्ताओं को चाहिए कि वे लोक-परम्पराओं के द्वारा यथोचित रूप में सन्देश हस्त का विनियोग करें।

२१ मुकुल हस्त और उसका विनियोग

लग्नाग्राः सहता ऊर्ध्वा. पञ्चाप्यङ्गुलयो यदा ।

तदासौ मुकुलः प्रोक्तोऽशोकमल्लेन भूभुजा ॥१८४॥ 190

यदि ऊपर उठी हुई पाँचों उँगलियों के अग्रभाग को परस्पर मिला दिया जाय तो, नृपति अशोकमल्ल के मत से, उस मुद्रा को मुकुल हस्त कहते हैं।

बलिदाने भोजने च पद्मादिमुकुले तथा ।

प्रार्थने देवपूजायां योज्योऽसौ लोकयुक्तितः ॥१८५॥ 191

बलिदान, भोजन, कमल आदि की कली, प्रार्थना और देवपूजा के अभिनय में लोकरीति के अनुसार मुकुल हस्त का विनियोग करना चाहिए।

विटकर्तृककान्तादिचुम्बनेऽङ्गीकृतेऽपि सः ।

अधोमुख. सद्वर्णेषु विलोलविरलाङ्गुलिः ॥१८६॥ 192

कामुक द्वारा कान्ता आदि के चुम्बन, अगीकार और उत्तम वर्णों (द्विजाति) के अभिनय में मुकुल हस्त को अधोमुख करके उसकी उँगलियों को विरल (विलग) करके कम्पित कर देना चाहिए।

राक्षसेऽधोमुखः कार्यश्चलाङ्गुलिरसौ करः ।

ऊर्ध्वविच्युतसन्दंशस्तूत्क्षेपे सीकरेषु च ॥१८७॥ 193

नृत्याध्याय

राक्षस के अभिनय में मुकुल हस्त को अधोमुख करके उस की उँगलियों को कम्पित कर देना चाहिए । यदि किसी वस्तु को ऊपर फेंकने तथा जल-कणों का भाव प्रदर्शित करना हो तो उसकी ऊर्ध्वमुख सटी हुई उँगलियों को खोल देना चाहिए ।

असौ च सत्वरे दाने विकाश्य प्रकृति गतः ।

मुहुर्मुहुरथ द्रव्यगणनायां प्रकीर्तितः ॥१८८॥ 194

क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिरसौ पार्श्वत्पार्श्वोत्तरावधि ।

शीघ्रता और दान के अभिनय में मुकुल हस्त को विकसित कर (पुन) यथापूर्व कर देना चाहिए । यदि द्रव्यों की गणना का भाव-प्रदर्शन करना हो तो उसकी उँगलियों को खोलकर उसे एक बगल से दूसरी बगल में करना चाहिए ।

उच्छ्वासे च्युतसन्दंशो मुखक्षेत्रगतो भवेत् ॥१८९॥ 195

उच्छ्वास (ऊर्ध्व स्वास) लेने के आशय में उसे सँडसी की तरह खोल कर मुख के पास रखना चाहिए ।

पञ्चसंख्यादिनिर्देशे तथाच्छुरितकेऽप्यसौ ।

यत्कुचादौ कामिनीनां सशब्दं नखलेखनम् । 196

अङ्गुलीपञ्चकेन स्यात्तदाच्छुरितकं विदुः ॥१९०॥

पाँच की संख्या आदि बताने तथा नख-क्षत के अभिनय में मुकुल हस्त का प्रयोग करना चाहिए । कामिनियों के कुच आदि पर पाँचों उँगलियों के प्रहार से शब्द के साथ जो नख-क्षत किया जाता है उसी को आच्छुरितक कहते हैं ।

२२ पद्मकोश हस्त और उसका विनियोग

अङ्गुष्ठसहिताङ्गुल्यो विरलाश्चापवत्तताः । 197

ऊर्ध्वा यस्मिन्नलग्नाग्राः स करः पद्मकोशकः ॥१९१॥

यदि अँगुष्ठ सहित पाँचों उँगलियाँ अलग-अलग रहकर वनुष की तरह मुडकर ऊर्ध्वमुख हो और उनके अग्रभाग एक-दूसरे को स्पर्श न करते हों, तो उस मुद्रा को पद्मकोश हस्त कहते हैं ।

असौ देवार्चने स्त्रीणां कुचयोस्तद्ग्रहेऽपि च । 198

कबरीग्रहणे स्त्रीणां पुष्पाणां च ग्रहे तथा ॥१९२॥

हस्त प्रकरण

देवपूजन, स्त्रियों के कुच और कुचो को पकड़ने, स्त्रियों का जूड़ा पकड़ने और पुष्पो के चुनने के अभिनय में पद्मकोश हस्त का विनियोग होता है।

नान्दीपिण्डप्रदाने तूत्तानः क्षिप्ताङ्गुलिर्मतः । 199
अधोमुखः कुञ्चिताग्रः कपित्थश्रीफलग्रहे ॥१६३॥

नान्दी श्राद्ध में पिण्डदान करने के आशय में पद्मकोश हस्त को उत्तान करके उसकी उंगलियों को फेकने की शकल में करना चाहिए। कैथ आर बेल के ग्रहण में उसे अधोमुख करके, उस की उँगलियों के जग्रभाग को कुञ्चित कर देना चाहिए।

भूस्थितार्थग्रहे लोभेऽप्युत्तानो बलिकर्मणि । 200
क्षिप्ताङ्गुलिरथासौ तु पश्चादर्थे चलाङ्गुलिः ॥१६४॥

भूमि पर या भू-गर्भ में स्थित द्रव्य के आदान, लोभ और बलिकर्म के भाव-प्रदर्शन में उक्त हस्त को उत्तान करके अँगुलियों को क्षिप्त कर देना चाहिए। पश्चात् अर्थ के स्वीकार या निर्देन के अभिनय में उसकी उँगलियों को कम्पित कर देना चाहिए।

अधोमुखौ यथोचित्यं बीजपूरादिके फले । 201
अंसग्रहे च सिहाद्यैरथातिविरलाङ्गुली ॥१६५॥

बिजौरा नीबू आदि फलो के अभिनय में दोनों पद्ममुख हस्तों को यथोचित रूप से अधोमुख करना चाहिए। सिंह आदि के द्वारा कन्वा पकड़ लिये जाने के अभिनय में दोनों पद्ममुख हस्तों की उँगलियाँ अलग करके प्रयुक्त करनी चाहिए।

संश्लिष्टमणिबन्धौ च फुल्लपद्मादिदर्शने । 202
कुचदेशस्थितौ कार्यौ प्रौढायां पद्मकोशकौ ॥१६६॥

खिले हुए कमल आदि पुष्पो के भावाभिव्यजन में दोनों पद्मकोश हस्तों की कलाइयों को परस्पर सटा देना चाहिए और प्रौढा नायिका के अभिनय में उन्हें कुचो पर रख देना चाहिए।

पक्षिणां पञ्जरेष्वेतौ तथा संकीर्णवेशमनि । 203
विरलाङ्गुलिकौ कार्यावन्योन्यान्तरनिर्गतौ ॥१६७॥

पक्षियों के पिजरो तथा संकीर्ण गृह के अभिनय में उक्त दोनों हस्तों को एक-दूसरे के भीतर से निकालते हुए उनकी उँगलियों को विरल कर देना चाहिए।

संध्याकाले पृथक्स्याता मणिबन्धनताविमौ । 204

कुचयोः सम्मुखावेतौ काठिन्याभिनये करौ ॥१६८॥

संध्याकाल के अभिनय में दोनों पद्ममुख हस्तों की कलाइयों को अलग करके प्रदर्शित करना चाहिए, और कुचों की कठोरता के आशय में उन्हें सम्मुख रखकर दिखाना चाहिए ।

२३ ऊर्णनाभ हस्त और उसका विनियोग

पद्मकोशस्य हस्तस्य पञ्चाङ्गुल्योऽपि कुञ्चिताः । 205

यदा यत्र तदा स स्माद्गूर्णनाभाभिधः करः ॥१६९॥

यदि पद्मकोश हस्त मुद्रा की पाँचों उँगलियाँ मुड़ी हुई हों तो उसे ऊर्णनाभ हस्त कहते हैं ।

एष वस्तुग्रहे चौर्यात् पङ्काशमादिग्रहेऽपि च । 206

कुछ (? छ) व्याधौ तथा शीर्षकण्डूयायां च कीर्तितः ॥२००॥

चोरी से किसी वस्तु को लेने, कीचड़ तथा लोहा आदि ग्रहण करने, कुष्ठरोग और शिर खुजलाने के अभिनय में ऊर्णनाभ हस्त का विनियोग करना चाहिए ।

उद्धृत्याधोमुखः कार्यो मण्डकाभिनये करः । 207

मण्डक (एक प्रकार की रोटी या मॉड, मण्डूक पाठ के अर्थ में मेढक) के अभिनय में उक्त हस्त को ऊपर उठाकर अधोमुख कर देना चाहिए ।

विधायाधोमुखावेतौ नाभिदेशे प्रसारितौ ॥२०१॥

नीतोर्ध्वतर्जनीकौ चेतदान्त्रेषु नियोजितौ । 208

चिबुकस्थाविमौ कार्यौ व्याघ्रसिहादिदर्शने ॥२०२॥

यदि आँतों का अभिनय प्रदर्शित करना हो तो दोनों ऊर्णनाभ हस्तों की तर्जनियों को ऊर्ध्वमुख करके तथा दोनों हस्तों को अधोमुख करके नाभिदेश में फैला देना चाहिए । बाघ तथा सिंह आदि का भाव प्रकट करने में उनको टुडडी पर रखना चाहिए ।

२४ अल्पल्लव हस्त और उसका विनियोग

आवर्तिन्यः पार्श्वगता हस्तस्याङ्गुलयः स्थिताः । 209

तले यस्य विकीर्णाश्चेत्तदासावलपल्लवः ॥२०३॥

हस्त प्रकरण

जिस हाथ की (पाँचों) उँगलिया पाश्र्वगत होकर वृद्धाकार रूप में मुड़ी हुई आर हथेली की ओर फेंली हो, उसे अलपल्लव हस्त कहते हैं ।

अग्रमेवालपद्मः स्यादित्यन्येऽत्र बभाषिरे । 210

ता एव परिवर्त्तिन्यो भूत्वा व्यर्त्तिता मताः ॥२०४॥

कुछ पूर्वाचार्यों ने अलपल्लव को ही अलपद्म नाम में कहा है, जिससे उमकी पाश्र्वगत उँगलियाँ परिवर्तित होकर छितराये या अलग-अलग रूप में निर्दिशित की गयी हैं ।

अयुक्तानृततुच्छोक्तौ कस्य त्वमिति भाषणे । 211

नास्तीत्युक्तौ च नारीभिलोक्युक्त्यैष युज्यते ॥२०५॥

असगत, मिथ्या तथा छोटी बात कहने, 'तुम किसके हो ?' ऐसा भाषण करने और 'नहीं है' इस तरह बोलने में अलपल्लव हस्त का विनियोग होता है । नारियों को चाहिए कि वे लोकरीति के अनुसार उसका प्रयोग करें ।

सर्वार्पणं(?)ग्रहणे योज्यो वामहस्तेन पातितः । 212

अनुरूपे प्रसन्ने च विश्रान्तौ च गुणोत्तरे ॥२०६॥

विनष्टे च तथासत्ये शोभासंहर्षयोरपि । 213

केवले परितोषे च रसग्रहणयोरपि ॥२०७॥

मुधा विनार्थे सिहे चावहिते नवभोगयोः । 214

क्रीडायामपि पर्याप्तेऽप्येष धीरैर्नियुज्यते ॥२०८॥

सब प्रकार के अर्थों के ग्रहण में बाँये अलपल्लव हस्त को गिरा कर प्रयुक्त करना चाहिए । अनुरूप, प्रसन्न, विश्राम, गुणश्रेष्ठ, विनष्ट, सत्य, शोभा, हर्ष, केवल, परितोष, रस, ग्रहण, व्यर्थ, सिह, सावधान, नवीन, भोग, क्रीडा और पर्याप्त के अभिनय में भी वीर पुरुष इस हस्त का विनियोग करते हैं ।

लोकयुक्त्यनुसारेण साधौ त्वेष चलो मतः । 215

तारुणोऽसौ प्रसिद्धे स्याद्वक्षस्थस्त्वात्मदर्शने ॥२०९॥

साधु के अभिनय में उक्त हस्त को कम्पित कर लोकरीति के अनुसार प्रयुक्त करना चाहिए । प्रसिद्ध वस्तु के अभिनय में यह हाथ सर्वथा उपयुक्त है । आत्मदर्शन के भाव-प्रदर्शन में उसे छाती पर रखना चाहिए ।

देवेषु दक्षिणो वामबाहुःशीर्षं समुत्थितः । 216
सुखे कर्णगतः कार्यो नवनीते त्वधोलुठन् ॥२१०॥

देवताओं के अभिनय में दायाँ अलपल्लव हस्त बाम बाहु या शिर पर रखना चाहिए । सुख के अभिनय में उसे कान के पास रखना चाहिए और मुख के भाव-प्रदर्शन में नीचे लुढ़का देना चाहिए ।

विशेषे तु चलावेतौ कान्तायां कुचदेशगौ । 217

किसी विशेष वस्तु या बात के अभिनय में दोनों अलर्कपल्लव हस्तों को कम्पित कर प्रयुक्त करना चाहिए और प्रिया के अभिनय में उन्हें कुचों के पास रख देना चाहिए ।

एवमन्ये बुधैरुह्याः शास्त्रलोकानुसारतः ॥२११॥

नृत्तविद्या-विशारदों को चाहिए कि शास्त्र-दृष्टि और लोक-परम्परा के अनुसार वे अलपल्लव हस्त का अन्य अभिनयों में भी विनियोग करें ।

चौबीस असयुत हस्तों का निरूपण समाप्त



संयुत हस्त और उनका विनियोग

१ अजलि हस्त और उसका विनियोग

तलश्लिष्टौ पताकौ चेत्तदा हस्तोऽजलिर्मतः । 218

यदि दोनों पताक हस्तों के तल भाग को परस्पर जोड़ दिया जाय तो उसे अजलि हस्त कहते हैं ।

देवताया द्विजातेश्च गुरोरपि नमस्कृतौ ॥२१२॥

शिरोवक्षोमुखस्थोऽयं क्रमात्पुंभिर्नियुज्यते । 219

कामिनीभिर्यथाकाममिति नृत्यविदां मतम् ॥२१३॥

देवता, ब्राह्मण तथा गुरु को नमस्कार करने में अजलि हस्त को क्रमशः शिर, वक्ष और मुख पर प्रदर्शित करना चाहिए । नृत्याचार्यों का अभिमत है कि पुरुषों और स्त्रियों को उसका यथेच्छा प्रयोग करना चाहिए ।

हस्त प्रकरण

२ कपोत हस्त और उसका विनियोग

मूलाग्रपाश्वर्संश्लेषाद्विश्लेषात्तलयोरपि । 220

यदा हस्तौ कपोताभौ कपोतो हस्तकस्तदा ॥२१४॥

केचिदेनं करं प्राहुः कूर्मसंज्ञं विचक्षणाः । 221

यदि दोनो हाथो के मूल भाग (कलाई) ओर अग्र भाग (उँगलियो के छोर) आपस मे सटे रहे और तल भाग (हथेली) अलग-अलग रहे, तो उसे कपोत हस्त कहते हे । कुछ विद्वान इसे कूर्म हस्त कहते हे ।

प्राणामे विनये कार्यो गुरुसंभाषणेऽपि च ॥२१५॥

प्रणाम करने, विनय और गुरु से बात-चीन करते समय कपोत हस्त का विनियोग होता है ।

प्राङ्मुखः कम्पितो वक्षःस्थितः शीते स्त्रियामपि । 222

कातरे स्यादथेयत्तापरिच्छेदे तु विच्युतः ॥२१६॥

शीत और स्त्री के अभिनय मे इस हस्त को कम्पित एव पूर्वमुख रूप मे छाती पर रगना चाहिए । कातरता और परिणाम या सीमा-निर्धारण के आशय मे उसे विच्युत (अर्थात् सटे हुए अश को जलग) कर देना चाहिए ।

सखेदवचसीदानीमित्यर्थस्य च सूचने । 223

आज्ञाप्रतिज्ञयोनथि प्रसादेऽवहितेऽपि च ॥२१७॥

पक्षपाते पराधीने भक्षणे प्रतिपादने । 224

सेवायामपि योज्योऽसौ लोकयुक्त्यनुसारतः ॥२१८॥

खेद के साथ बोलने, 'इस समय' इस अर्थ को सूचित करने, आज्ञा, प्रतिज्ञा, स्वामी, प्रसन्नता, सावधान, पक्षपात, पराधीन, भक्षण, प्रतिपादन (निरूपण या समर्पण) ओर सेवा के अभिनय मे भी लोक-परम्परा के अनुसार कपोत हस्त का प्रदर्शन करना चाहिए ।

विच्युतश्छिष्टपाश्वोऽसौ भिक्षायां करपात्रिणाम् । 225

जिनके हाथ ही पात्र का काम करते है, ऐसे भिक्षुओ को भिक्षा देने के अभिनय मे कपोत हस्त के तल मुख से सटे हुए भाग को अलग कर देना चाहिए ।

इतराण्यपि कर्माणि बुधैरूह्यानि युक्तितः ॥२१९॥

नृत्याध्याय

इनके अतिरिक्त अन्य कार्यों एव भावों के अभिनय में भी विद्वान नृत्यवेत्ताओं को यथाविधि कपोत हस्त का प्रदर्शन करना चाहिए ।

३ कर्कट हस्त और उसका विनियोग

करयोरखिलागुड्ल्योऽन्योन्यमन्तरनिर्गताः । 226

दृश्यन्तेऽन्तर्बाहिर्वा चेत्तदा स्यात्कर्कटः करः ॥२२०॥

यदि दोनों हाथों की सभी उँगलियाँ परस्पर बीच से निकल कर या गुँथी होकर भीतर ओर बाहर दोनों ओर से दिखायी दें, तब उसे कर्कट हस्त कहते हैं ।

एष सुप्तोत्थजृम्भायामङ्गानां च प्रसारणे । 227

अग्रे पार्श्वेऽथवोर्ध्वे वा पराङ्मुखतलः करः ॥२२१॥

सोकर उठने के बाद जमुहाई लेने, अगो के फैलाने, आगे, बगल अथवा ऊपर के भाव प्रदर्शित करने में कर्कट हस्त के तल भाग (हथेली) को पराङ्मुख कर देना चाहिए ।

बहिस्स्थिताङ्गुलिस्तु स्यादनङ्गादङ्गमोटने । 228

स्थूलोदरेऽप्यसावेवोदरसंस्थित इष्यते ॥२२२॥

अगो में कामजन्य पीडा का भाव दर्शाने में उक्त हस्त की उँगलियों को बाहर की ओर रखना चाहिए । स्थूल उदर का भाव दिखाने में उसी हस्त को पेट पर रखना चाहिए ।

हनुं बिभ्रदसौ पृष्ठेऽङ्गुलीनां खेदसूचने । 229

अथान्तःस्थाङ्गुलिः कार्यश्चिन्ताया चिबुके स्थितः ॥२२३॥

खेद प्रकाश करने के आशय में कर्कट हस्त की उँगलियों पर ठुड्डी रख देनी चाहिए और चिन्ता के भाव-दर्शन में उसकी उँगलियों को ठुड्डी पर रख देना चाहिए ।

ईषद्वक्रीकृतान्योन्याभिमुखाङ्गुलिरेष तु । 230

शङ्खस्य धारणे योज्यो मुखेऽधः स्नानकर्मणि ॥२२४॥

द्विस्त्रिर्वा मूर्ध्नि संयोज्यो गृहे तु स्यादधस्तलः । 231

हृदयक्षेत्रगः कार्यः किञ्चित्कुञ्चितकूर्परः ॥२२५॥

शंख धारण करने की मुद्रा में उक्त हस्त की उँगलियों को थोड़ा टेढा और एक-दूसरे के आमने-सामने करके मुख पर रखना चाहिए । स्नान करने के अभिनय में उसे नीचे रखना चाहिए, अथवा दो-तीन बार मस्तक

हस्त प्रकरण

पर रख देना चाहिए। घर का भाव दिखाने में उमके निम्न भाग को नीचे की ओर करके, कुहनी को कुछ मोड़ कर, हृदय पर रखना चाहिए।

अन्त पुरे वामभागस्थितः कार्योऽथ कार्मुके । 232

पाश्वोत्थितः प्रयोक्तव्यः पराङ्मुखतलाङ्गुलिः ॥२२६॥

अन्त पुर के अभिनय में उक्त हस्त को वाम भाग में अवस्थित करना चाहिए और वक्ष के अभिनय में उसकी उँगलियों को पीछे की ओर फेरकर वगल से उठाते हुए प्रदर्शित करना चाहिए।

४ गजदन्त हस्त और उसका विनियोग

सर्पशीर्षै करौ मध्यं स्कन्धकूर्परयोर्मिथः । 233

दधाते चेतदा प्रोक्तो गजदन्ताभिधः करः ॥२२७॥

यदि दोनों सर्पशीर्ष हस्त परस्पर कन्धे और कोहनी के मध्य भाग को धारण करे तब उस मुद्रा को गजदन्त हस्त कहते हैं।

स्कन्धस्थौ सर्पशीर्षौ चेदितरेतरसम्मुखौ । 234

कुञ्चत्कूर्परकौ प्राहुर्गजदन्तं तथाऽपरे ॥२२८॥

कुछ आचार्यों का कहना है कि यदि दोनों सर्पशीर्ष हस्त कन्धे पर अवस्थित होकर एक-दूसरे के सामने रहे, और उनकी कोहनियाँ मुड़ी रहे, तब उस मुद्रा को गजदन्त हस्त कहते हैं।

वरवध्वोर्विवाहार्थं नयने स प्रयुज्यते । 235

वर-वधू को विवाहार्थ ले जाने के अभिनय में गजदन्त हस्त का विनियोग होता है।

भारस्योद्वहने स्तम्भग्रहणे च गतागते ॥२२९॥

अधः शैलशिलोत्पाटे करः कार्यो विचक्षणैः । 236

सुवीजनो के अभिमत से बोझा ढोने, खूँटा पकड़ने, आने-जाने और पर्वतशिला के उखाड़ने के अभिनय में उक्त हस्त का प्रयोग करना चाहिए।

अस्यान्येऽभिनया धीरैर्विज्ञेयाः शास्त्रदृष्टितः ॥२३०॥

गजदन्त हस्त के शास्त्रदृष्टि से अन्य अभिनय-प्रयोगों को विद्वानों द्वारा जान लेना चाहिए।

५ निषध हस्त और उसका विनियोग

कपित्थं मुकुलं हस्तं परिवेष्ट्य यदा स्थितः । 237

तदा निषधनामासौ-

नृत्याध्याय

यदि एक हाथ को कपित्थ मुद्रा में बना कर उससे दूसरे मुकुल हस्त को परिवेष्टित कर अवस्थित किया जाय तो उसे निषध हस्त कहते हैं ।

—सम्यक्स्थापितवस्तुनि ॥२३१॥

निषेधे तथा सत्यमिदमित्यपि कीर्त्तने । 238

सम्यक्तया च शास्त्रार्थस्वीकारेऽपि प्रकीर्त्तितः ॥२३२॥

भली भाँति स्थापित की गयी वस्तु, पीसने, 'यह सत्य है' इस प्रकार के कथन और सम्यक् प्रकार से शास्त्रार्थ स्वीकार करने के अभिनय में निषध हस्त का विनियोग होता है ।

पूर्वोक्तं गजदन्तं तु निषधं संजगुः परे । 239

गर्वगाम्भीर्यधैर्यादिष्वसौ शौर्यं च कीर्त्तितः ॥२३३॥

कुछ आचार्य पूर्वोक्त गजदन्त हस्त को ही निषध हस्त कहते हैं । गर्व, गाम्भीर्य, धैर्य और वीरता आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

६ पुष्पपुट हस्त और उसका विनियोग

बाह्यपार्श्वसुसंश्लिष्टौ सर्पशीर्षौ यदा करौ । 240

तदा पुष्पपुटौ हस्तोऽशोकमल्लेन कीर्त्तितः ॥२३४॥

यदि दोनों सर्पशीर्ष हस्तों के बाह्य पार्श्वों को भली भाँति मिला दिया जाय तो, अशोकमल्ल के मत से, उस मुद्रा को पुष्पपुट हस्त कहा जाता है ।

पुष्पधान्यजलादोनामर्पणे ग्रहणेऽपि च । 241

पुष्पाञ्जलौ प्रसादे चोपायनेऽपि स कीर्त्तितः ॥२३५॥

फूल, धान्य और जल आदि के देने-लेने, पुष्पाञ्जलि, प्रसन्नता तथा उपहार के अभिनय में पुष्पपुट हस्त का विनियोग होता है ।

७ खटकावर्धन हस्त और उसका विनियोग

अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ खटकामुखसंज्ञितौ । 242

यदा यद्वा स्वस्तिकौ तौ मणिबन्धस्थितौ तथा ॥२३६॥

खटकावर्धमानोऽसौ—

यदि दोनों खटकामुख हस्तों को एक-दूसरे के आमने-मामने कर दिया जाय, अथवा अन्योन्याभिमुख करके दोनों स्वस्तिक हस्तों को परस्पर कलाइयों पर अवस्थित किया जाय, तो उसे खटकावर्धन हस्त कहते हैं ।

हस्त प्रकरण

—प्रणामकरणे मतः । 243

ग्रथने च प्रसूनाना तथ्योक्तौ चादिमे मते ॥२३७॥

प्रणाम करने, फूल गूँथने, सत्य बोलने ओर जादिम मत के अभिनय मे खटकावर्धन हस्त का विनियोग होता है ।

मतान्तरे कामिनां स पर्णादिग्र (ह)णे करः । 244

तिर्यंगास्योऽथ सूर्यस्योदये तूत्तानितो मतः ॥२३८॥

निर्णयाङ्गीकृतौ योज्यो मितेऽपि स युक्तितः । 245

कामियो के मतभेद और पत्ते आदि के ग्रहण के अभिनय मे उक्त हस्त को निरखा करके प्रस्तुत करना चाहिए । सूर्योदय के अभिनय मे उसे उत्तान रखना चाहिए । निर्णय को स्वीकार करने आर परिमितता का भाव दर्शाने मे उसे यथाविधि प्रयुक्त करना चाहिए ।

अस्य क्रियान्तराण्येवं सिद्धिरूह्यानि शास्त्रतः ॥२३९॥

खटकावर्धन हस्ताभिनय के अन्य प्रयोगो को शास्त्रानुसार जान लेना चाहिए ।

८ उत्सग हस्त और उसका विनियोग

स्वस्तिकाकृतिसम्प्राप्तावन्योन्यस्कन्धदेशगौ । 246

अरालौ विततौ स्वाभिमुखौ स्याता यदा तदा ॥२४०॥

उत्सङ्ग हस्तमाचष्टाशोकमल्लो नृपाग्रणीः । 247

यदि दोनो अराल हस्तो को स्वस्तिक हस्त मुद्रा मे करके समुखावस्था मे एक-दूसरे की बाजुओ के ऊपर रख दिया जाय तो उसे, महाराज अशोकमल्ल ने, उत्सग हस्त कहा है ।

स्वस्तिकं केचिदत्राहुरार्या दक्षिणदेशगम् ॥२४१॥

अधस्तलत्वमप्याहुरन्ये त्वत्र विचक्षणाः । 248

कुछ विद्वान् उक्त हस्त को दक्षिणदेशगामी स्वस्तिक कहते हे । दूसरे विद्वान् उसे अधस्तल भी कहते है ।

बहुयत्नप्रसाध्येऽर्थे तुषाराश्लेषयोरपि ।

अलङ्कारानुपादाने लज्जादावपि सुभ्रुवाम् ॥२४२॥ 249

नृत्याध्यायः

बहु यत्न-साध्य वस्तु, तुपार, आलिंगन, आभूषण न पहनने ओर सुन्दरियो की लज्जा आदि के अभिनय मे उसग हस्त का विनियोग होता है ।

९ स्वस्तिक हस्त और उसका विनियोग

खटकास्थौ पताकौ वा यद्वारालौ करौ यदा ।

मणिबन्धस्थितौ स्यातामितरेतरपार्श्वगौ ॥२४३॥ 250

उत्तानौ वामभागस्थौ यद्वा हृदयसंस्थितौ ।

तदा करः स्वस्तिकाख्योऽशोकमल्लेन कीर्तितः ॥२४४॥ 251

यदि दोनो खटकामुख हस्तो या पताक हस्तो अथवा अराल हस्तो को एक-दूसरे की बगल मे करके उनकी कलाइयो को बाँध कर उत्तान करके बाँयी ओर या हृदय पर रख दिया जाय, तो उस मुद्रा को अशोकमल्ल ने स्वस्तिक हस्त के नाम से कहा है ।

विच्युतोऽसौ कामिनीभिरेवमस्त्विति भाषणे ।

विस्तीर्णं गगनेऽम्भोधिस्रसृतौ च नियुज्यते ॥२४५॥ 252

कामिनियो के 'अच्छा' ऐसा कहने, विस्तृत आकाश और समुद्र-विस्तार के अभिनय मे स्वस्तिक हस्त को फैला कर प्रयुक्त करना चाहिए ।

स्वस्तिकाधोमुखौ रात्रौ विच्युतोत्तानितौ दिने ।

मेधप्रच्छादिते तस्मिन् विच्युताधोमुखाविमौ ॥२४६॥ 253

रात्रि के अभिनय मे दोनो स्वस्तिक हस्तो को अधोमुख, दिन के अभिनय मे फैला कर उत्तान और मेघाच्छन्न दिन के अभिनय मे फैलाकर अधोमुख रूप मे प्रस्तुत करना चाहिए ।

१०. दोला हस्त और उसका विनियोग

विरलाङ्गुली पताकौ चेल्लम्बमानौ श्रुथांसकौ ।

तदा दोलाभिधो हस्तो

यदि दोनो पताक हस्त लम्बायमान तथा शिथिल या ढीले हो और उनकी उँगलियाँ अलग-अलग हो, तो उसे दोला हस्त कहते है ।

—विषादे मदमूर्च्छयोः ॥२४७॥ 254

हस्त प्रकरण

व्याधौ च सम्भ्रमे गर्वगतावपि स युज्यते ।

धीरैः स्तब्धो दोलितो वा पार्श्वयोर्लोकयुक्तितः ॥२४८॥ 255

विषाद, मद, मूर्च्छा, व्याधि, हडवटी तथा गर्वपूर्वक चलने के अभिनय में दोला हस्त का विनियोग होता है। धीर पुरुषों को चाहिए कि दोनों पाश्वर्यों के अभिनय में दोला हस्त को लोक-परम्परा के अनुसार निश्चल या चलायमान, जैसा उचित समझे, प्रयुक्त करें।

११ अवहित्थ हस्त और उसका विनियोग

शुकतुण्डाभिधौ हस्तौ हृदयक्षेत्रसम्मुखौ ।

अधोमुखौ विधायाधो नीतौ तावद्वहित्थकः ॥२४९॥ 256

यदि दोनों शुकतुण्ड हस्त हृदय के सामने अधोमुख करके नीचे की ओर ले जाये जाय तो उसे अवहित्थ हस्त कहते हैं।

निःश्वासौत्सुक्यदौर्बल्यकायकार्श्येण्वसौ मतः ।

सतृण्णे चानुरक्तोऽपि प्रतापे मण्डलेऽपि च ॥२५०॥ 257

साँस को बाहर निकालने या साँस लेने, उत्सुकता, दुर्बलता, शरीर-क्षीणता, सतृण्ण, अनुरक्त होने, प्रताप और मण्डल के अभिनय में अवहित्थ हस्त का विनियोग होता है।

१२ मकर हस्त और उसका विनियोग

यदा पताकौ संश्लिष्टावुपरिस्थौ परस्परम् ।

उर्ध्वाङ्गुष्ठावधौवक्त्रौ तदासौ मकरः करः ॥२५१॥ 258

यदि दोनों पताक हस्तों को ऊपर उठा कर तथा उनकी हथेलियों को निम्नमुख करके (अर्थात् एक हथेली की पीठ पर दूसरी हथेली को रख कर) उन्हें परस्पर मिला दिया जाय और दोनों हाथों के अँगुष्ठ ऊपर की या बाहर की ओर निकले हों, तो उसे मकर हस्त कहते हैं।

ऋव्यादे मकरे मीने सिंहे च द्वीपिदर्शने ।

नदीपूरे च नक्तोऽपि धीरैरेष प्रयुज्यते ॥२५२॥ 259

राक्षस, मकर, मछली, सिंह, हाथी, नदी-प्रवाह और घड़ियाल के अभिनय में मकर हस्त का विनियोग होता है।

नृत्याध्याय

१३. वर्धमान हस्त और उसका विनियोग

मृगशीर्षा हंसपक्षौ करौ वा सर्पशीर्षकौ ।

पराङ्मुखौ स्वस्तिकौ चेद्वर्धमानस्तदा करः ॥२५३॥ 260

यदि दोनो मृगशीर्ष या हंसपक्ष जथवा सर्पशीर्ष हस्तो को पराङ्मुख (उलटा) करके स्वस्तिकाकार बना दिया जाय तो उसे वर्धमान हस्त कहते है ।

कपाटोद्घाटने त्वेष च्युतस्वस्तिक इष्यते ।

तादृगेव भवेदेष वक्षसः प्र(विदारणे) ॥२५४॥ 261

किवाड खोलने के अभिनय मे इस हाथ की स्वस्तिक मुद्रा को खोल कर प्रयुक्त करना चाहिए । छाती फाडने के अभिनय मे भी उसे उसी रूप मे प्रदर्शित करना चाहिए ।

विना कृतं स्वस्तिकेन केचिदिच्छन्ति तं बुधाः ।

सीमन्ताभिनये योज्यः स्त्रीभिस्तद्देशगः करः ॥२५५॥ 262

कृष्ण विद्वानो का अभिमत है कि वर्धमान हस्त को स्वस्तिक मुद्रा की सहायता के विना ही प्रदर्शित करना चाहिए । सिर की माँग (सीमन्त) के अभिनय मे स्त्रियो को चाहिए कि वर्धमान हस्त को वे सीमन्त पर अवस्थित करे ।

तेरह सयुन हस्तो का निरूपण समाप्त



नृतहस्त और उनका विनियोग

१ चतुरस्र हस्त और उसका विनियोग

समांसकूर्परौ वक्षःस्थलादष्टाङ्गुलान्तरौ ।

स्थितावुरः पुरस्ताच्चेत्प्राङ्मुखौ खटकामुखौ । 263

चतुरस्रो तदा—

यदि दोनो मासल कुहनियाँ छाती से आठ अँगुल की दूरी पर अवस्थित रहे और दोनो खटकामुख हस्त छाती के सामने पूर्वमुख होकर रहे तब उस मुद्रा को चतुरस्र हस्त कहते है ।

हस्त प्रकरण

—हारमौलाद्याकर्षणे करौ ॥२५६॥

हार और मुकुट आदि के उतारने में चतुरक्ष हस्त का विनियोग होता है ।

२. उद्वृत्त हस्त और उसका विनियोग

चतुरस्रौ विधायादावथोद्वेष्टितकर्मणा । 264

हंसपक्षावुरोदेशे कृतावेकस्तयोः करः ॥२५७॥

व्यावृत्तिक्रिययोर्ध्व तु गत्वोत्तानो वृजेदधः । 265

अथान्यः परिवृत्त्याधोमुखो वक्षो वृजेद्यदि ॥२५८॥

तद्वृत्तौ करौ स्याता—

पहले दोनों हाथों को उद्वेष्टित मुद्रा के द्वारा चतुरस्र बना दिया जाय, तदनन्तर उन्हें हंसपक्ष मुद्रा में करके हृदय पर रख दिया जाय । उनमें से एक को व्यावृत्त क्रिया द्वारा ऊपर ले जाकर उत्तानावस्था में नीचे कर दिया जाय । दूसरे हंसपक्ष हस्त को परिवृत्त करके अधोमुख छाती पर रख दिया जाय, तो उस अभिनय मुद्रा को उद्वृत्त हस्त कहते हैं ।

—तालवृन्तनिदर्शने । 266

पक्षे के अभिनय में उद्वृत्त हस्तों का विनियोग होता है ।

एतावेव परे प्राहुस्तालवृन्ताभिधौ करौ ॥२५९॥

कुछ नाट्याचार्यों ने उक्त उद्वृत्त हस्तों को तालवृन्त नाम में कहा है ।

व्यावृत्तपरिवृत्तौ चेत् हंसपक्षौ पुरोमुखौ । 267

तदोद्वृत्तौ जगु. केचित्—

यदि दोनों हंसपक्ष हस्तों को व्यावृत्त तथा परिवृत्त करके पूर्व मुख कर दिया जाय तो, कुछ विद्वानों के मत से, उसे उद्वृत्त हस्त कहते हैं ।

—जयशब्दनिरूपणे ॥२६०॥

‘जय’ शब्द के उच्चारण में उसका विनियोग होता है ।

३. तलमुख हस्त और उसका विनियोग

उद्वृत्तसंज्ञकौ हस्तौ त्र्यस्रो भूत्वा स्वपार्श्वयोः । 268

मिथोऽभिमुखतां यातौ हंसपक्षौ यदा करौ ।

तदा तलमुखौ स्यातां-

जब दोनो हस्त उद्वृत्त मे स्थित होकर हसपक्ष की मुद्रा बनाते है ओर अपने पार्श्वों मे तिरछे (त्यस्त) होकर आमने-सामने अवस्थित किये जाते है, तब उन्हे तलमुख हस्त कहते है ।

-मधुरे मर्दूलध्वनौ ॥२६१॥ 269

मर्दूल (मृदग के समान वाद्ययंत्र) की मधुर ध्वनि के अभिनय मे तलमुख हस्तो का विनियोग होता है ।

४. नितम्ब हस्त

उत्तानोऽधो मुखीभूय क्रमादंसप्रदेशतः ।
करौ पताकौ निर्गम्य नितम्बक्षेत्रमागतौ । 270
रेचक विदधाते च नितम्बौ कथितौ तदा ॥२६२॥

जब पताक की मुद्रा मे दोनो हस्त उत्तान तथा अधोमुख होकर क्रमश दोनो कन्धो से बाहर की ओर निकल कर नितम्ब तक आ जाँय और नितम्ब रेचक मे हो, तब उन्हे नितम्ब हस्त कहते है ।

५. केशबन्ध हस्त

पताकौ त्रिपताकौ वा केशदेशाद्विनिर्गतौ ॥२६३॥ 271
अस्पृशन्तौ करौ पार्श्वौ पार्श्वदेशसमुत्थितौ ।
उत्तानाऽधोमुखौ शश्वन्निक्षिप्योपशिरः स्थितौ । 272
पृथगुत्तानितौ चेत् सः (? तौ) केशबन्धौ तदोदितौ ॥२६४॥

जब पताक या त्रिपताक मुद्रा मे दोनो हस्त पार्श्वदेश से उठकर, दोनो पार्श्वों से विलग होकर, उत्तान एव अधोमुखावस्था मे शिर पर पहुँच जाँय, फिर वहाँ से निकल कर उन्हे अलग-अलग उत्तान करके बार-बार गतिशील करके शिर के समीप अवस्थित किया जाय, तब उन्हे केशबन्ध हस्त कहते है ।

६. उत्तानवञ्चित हस्त

अंसभालकपोलानां मध्येऽन्यतमदेशगौ । 273
अन्योन्याभिमुखावीषत्तिर्यञ्चौ कूर्परासयोः ॥२६५॥
मनाक्कलितयोरुर्ध्वतलौ स्थित्वा क्षणं करौ । 274
त्रिपताकौ प्रचलितौ प्रोक्तावुत्तानवञ्चितौ ॥२६६॥

हस्त प्रकरण

जब दोनो त्रिपताक हस्त कन्धा, ललाट तथा कपोल (गाल) में से किसी एक पर ले जा कर परस्पर आमने-सामने कुछ तिरछे होकर किञ्चिन्मात्र पकड़ी हुई कुहनी तथा कन्वे के ऊपर क्षण भर ठहर कर चलायमान हो जाँय, तब उन्हें उत्तानवञ्चित हस्त कहते हैं ।

७ लताकर हस्त

पार्श्वयोर्दोलितौ तिर्यक् प्रसृतौ च यदा करौ । 275

पताकौ त्रिपताकौ वा तदा हस्तौ लताकरौ ॥२६७॥

जब दोनो पताक या त्रिपताक हस्त दोनो पार्श्वो (अगल-बगल) में तिरछे फैले तथा थिरकते रहे, तब उन्हें लताकर हस्त कहते हैं ।

८ करिहस्त

दोलितोत्थो लताहस्तः दोलावत्पार्श्वयोर्यदि । 276

अन्यः कर्णस्थितो यत्र खटकास्योऽथवा करः ॥२६८॥

त्रिपताकस्तदा प्राहुः करिहस्तमिमं बुधाः । 277

इहैकवचने मानं मुनेर्वचनमेव हि ॥२६९॥

जब ऊपर उठा हुआ एक लता हस्त दोनो पार्श्वो में झूले की तरह झूले और दूसरा हाथ खटकास्य या त्रिपताक मुद्रा में कान पर रहे, तब बुवजन उसे करिहस्त कहते हैं । यहाँ एकवचन (अर्थात् एक ही हस्त के प्रयोग) में भरत मुनि का वचन प्रमाण है ।

९ रेचित हस्त

प्रसारितौ तथोत्तानतलौ हस्तौ तु रेचितौ । 278

द्रुतभ्रान्तौ हसपक्षावथवा रेचितौ मतौ ॥२७०॥

यद्द्वानयोर्मिलित्वामू लक्ष्मणी लक्ष्म सम्मतम् । 279

हिरण्यकशिपोर्वक्षो दारणे नृहरेर्मतौ ॥२७१॥

जब दोनो करतलो को उत्तान कर फैला दिया जाय तो उन्हें रेचित हस्त कहते हैं । अथवा हसपक्ष हस्तो को द्रुत गति से घुमाने पर वे रेचित हस्त बन जाते हैं । अथवा इन दोनो हस्तो को मिला कर प्रयोग करने में वे लक्ष्मण हस्त कहलाते हैं, जो लक्ष्मण को, और हिरण्यकशिपु के वक्ष स्थल को विदीर्ण करने में नृसिंह भगवान् को अभीष्ट थे ।

१०. अर्धरेचित हस्त

चतुरस्रस्तयोरेकश्चेत्तदा

त्वर्धरेचितौ ॥२७२॥ 280

(उक्त रेचित हस्तो मे) एक (बाँया) हाथ चतुरस्र मे और दूसरा (दाँया) रेचित मुद्रा मे हो तो उन्हे अर्धरेचित हस्त कहते है ।

११ पल्लव हस्त

व्यावृत्त्या तु भुजावूर्ध्वं प्रसार्य परिवृत्तितः ।

अधोमुखौ पताकौ चेत्स्वस्तिकौ पल्लवौ तदा ॥२७३॥ 281

जब दोनो भुजाओ को ऊपर पीछे की ओर घुमाकर फैला दिया जाय और फिर दोनो हस्तो को पताक मुद्रा मे घुमाते हुए अधोमुख करके स्वस्तिक बना दिया जाय, तब उन्हे पल्लव हस्त कहते है ।

शिथिलौ मेनिरे केचित् त्रिपताकौ कराविह ।

यदा नतोन्नतौ स्यातां पद्मकोशाभिधौ करौ ॥२७४॥ 282

शिथिलौ मणिबन्धस्थौ पुरो यद्वा स्वपार्श्वयोः ।

तदाहुः पल्लवौ केचित् नृत्तविद्याविशारदाः । 283

पताकौ तु बुधाः प्राहुः स्थाने तौ पद्मकोशयोः ॥२७५॥

कुछ नाट्याचार्यों के मत से यदि त्रिपताक हस्तो को शिथिल कर दिया जाय तो उन्हे पल्लव हस्त कहते है । कुछ नृत्तविद्याविशारदो का कहना है कि यदि पद्मकोश दोनो हस्तो को नतोन्नत कर दिया जाय और वे सामने कलाइयो पर या दोनो पार्श्वों मे शिथिल रहे तो वे पल्लव हस्त कहलाते है । किन्तु कुछ विद्वानो ने पद्मकोश हस्तो के स्थान पर पताक हस्तो को पल्लव हस्त कहा है ।

१२ ललित हस्त

शिरःक्षेत्रे यदा प्राप्तौ पल्लवौ ललितौ तदा ।

284

चतुरस्रक्रियोपेतौ

शीर्षस्थावचलौ परे ॥२७६॥

जगुरेतावथान्ये तु

करौ तौ खटकामुखौ ।

285

शनैर्गत्वा शिरोदेशं

लग्नाग्राविति मेनिरे ॥२७७॥

जब दोनो पल्लव हस्तो को शिर पर रख दिया जाय, तब उस मुद्रा को ललित हस्त कहते है । दूसरे आचार्यों का कहना है कि जब दोनो चतुरस्र हस्त निश्चल हों कर शिर पर अवस्थित रहे, तब उन्हे ललित हस्त कहा

१०८

हस्त प्रकरण

जाता है। किन्तु अन्य आचार्यों का अभिमत है कि जब दोनों घटकामुख हस्तों को बीरे में ले जाकर उनके अग्रभाग को शिर पर सलग्न कर दिया जाय तब उन्हें पल्लव हस्त कहते हैं।

१३ पक्षवञ्चितक हस्त

त्रिपताकौ कटीर्मूध्न धृताग्रौ पक्षवञ्चितौ ॥२७८॥ 286

जब दोनों हाथ त्रिपताक मुद्रा में, अग्रभाग में एक कमर पर और दूसरा शिर पर रखा हुआ हो, तब उन्हें पक्षवञ्चितक हस्त कहते हैं।

१४ पक्षप्रद्योतक हस्त

एतावेव परावृत्तौ पक्षप्रद्योतकौ करौ ।
उत्तानितौ केचिदिमौ परे तूर्ध्वगताङ्गुली । 287
पराङ्मुखौ च पूर्वाभ्यां प्राहुरेतावनन्तरम् ॥२७९॥

यदि पक्षवञ्चितक हस्तों को उलटा कर दिया जाय तो उन्हें पक्षप्रद्योतक हस्त कहते हैं। कुछ आचार्य दोनों पक्षवञ्चित हस्तों को उत्तान कर देने पर पक्षप्रद्योतक हस्त कहते हैं। अन्य आचार्यों का मत है कि उक्त पक्षवञ्चितक उत्तान हस्तों के विपरीत यदि उनकी उँगलियों को ऊर्ध्वमुख कर दिया जाय तो उन्हें पक्षप्रद्योतक हस्त कहते हैं।

१५ ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्त

व्यावृत्तिक्रियया वक्ष.स्थलात्प्राप्य ललाटकम् । 288
तत्पार्श्वमागतौ हस्तौ विततौ मण्डलभ्रमात् ॥२८०॥
ऊर्ध्वमण्डलिनौ प्रोक्तावथ लक्ष्मापरे जगुः । 289
ललाटप्राप्तिमर्यादमथैतौ नृतकोविदाः ।
चक्रवर्तिनिकेत्याहुर्लोकशास्त्रानुसारतः ॥२८१॥ 290

जब दोनों हाथों को घुमाते हुए वक्षस्थल में ललाट पर और फिर बगल में आ जाय तथा मण्डलकार में घूमे हुए फैल जाय, तब उन्हें ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्त कहा जाता है। दूसरे आचार्यों का कहना है कि उनका ललाट तक पहुँचना ही पर्याप्त है। किन्तु नृत्तविद्याविशारदों का अभिमत है कि लोक और शास्त्र के अनुसार (चक्राकृत होने के कारण) उन्हें चक्रवर्तिनिका नाम से भी कहा जाता है।

नृत्याध्यायः

१६. पार्श्वमण्डलिन् हस्त

पताकीकृत्यतावेव यदा पार्श्वस्थितौ करौ ।

सिथः सम्मुखतां प्राप्तौ पार्श्वमण्डलिनौ तदा ॥२८२॥ 291

केचिदावेष्टिताख्येन कर्मणा निजपार्श्वयोः ।

आविद्धभ्रामितभुजौ पार्श्वमण्डलिनौ जगुः ॥२८३॥ 292

जब दोनो ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्तो को पताक मुद्रा मे करके उन्हे परस्पर सम्मुख करके पार्श्व मे रख दिया जाय, तब उन्हे पार्श्वमण्डलिन् हस्त कहा जाता हे । कुछ आचार्यों का मत है कि यदि वेष्टित क्रिया के द्वारा दोनो भुजाओ को कुटिल गति से घुमाया (आविद्धभ्रामित) जाय, तब उन्हे पार्श्वमण्डलिन् हस्त कहते है ।

१७ उरोमण्डलिन् हस्त

उद्वेष्टितं विधायापवेष्टितं चैकदा करौ ।

स्वपार्श्वे वक्षसो जातौ क्रमान्मण्डलवद् भ्रमात् ॥२८४॥ 293

व्युत्क्रमाच्चेदुरः प्राप्तावुरोमण्डलिनौ तदा ।

एतयोर्भ्रमणं वक्षःस्थयोः केचन मन्वते ॥२८५॥ 294

उरोवर्त्तनिकात्वेन प्रसिद्धौ नृत्तधीमताम् ।

पताकौ हंसपक्षौ वा ज्ञेयौ मण्डलिषु त्रिषु ॥२८६॥ 295

जब एक हाथ उदवेष्टित और दूसरा अपवेष्टित हो, उन्हे अपने पार्श्व मे वक्ष पर क्रमश मण्डलाकार मे घुमाते हुए फिर वक्ष पर रख दिया जाय तब उन्हे उरोमण्डलिन् हस्त कहा जाता है । कुछ आचार्यों का कहना है कि दोनो हाथो को छाती पर ही घुमाया जाय । किन्तु नृत्तविदो का अभिमत हे कि तीनो प्रकार के उरोमण्डलिन् हस्तो मे पताक या हंसपक्ष हस्त उरोवर्त्तनिका रूप मे प्रसिद्ध हे ।

१८. उर पार्श्वार्धमण्डल हस्त

पार्श्वे प्रसारितस्त्वेको वक्षस्थुत्तानितोऽपरः ।

व्यावृत्त्योरःस्थलायातः स्वपार्श्वमलपल्लवः ॥२८७॥ 296

एवं यदा तदैवान्यः क्रिययावेष्टिताख्यया ।

संप्राप्यारालतां याति वक्षस्येवं परः करः । 297

अभ्यासात्कथितावेवमुरःपार्श्वार्धमण्डलः ॥२८८॥

हस्त प्रकरण

जब एक हाथ पार्श्व में फैला दिया जाय और दूसरा उत्तान करके छाती पर रख दिया जाय, फिर अलपल्लव हस्त को व्यावृत्त करके छाती से अपने पार्श्व में ले आया जाय, इस प्रकार जब एक हाथ आवेष्टित क्रिया द्वारा अराल मुद्रा वारण कर वक्ष पर और दूसरा भी आवृत्ति द्वारा इसी स्थिति में पहुँच जाय, तब उन्हें उर पार्श्वार्धमण्डल हस्त कहा जाता है। (इसमें एक हाथ अलपल्लव में छाती पर और दूसरा अराल में पार्श्व पर अवस्थित होता है)।

१९ नलिनीपद्मकोश हस्त

व्यावृत्तिक्रियया यत्र पद्मकोशौ करौ यदा ।	298
अश्लिष्टस्वस्तिकीभूय मिथः स्याता पराङ्मुखौ ॥२८६॥	
तदा स्तो नलिनीपद्मकोशावथ परेऽन्यथा ।	299
पद्मकोशाभिधौ हस्तावितरेतरसम्मुखौ ॥२९०॥	
मणिवन्धसमायुक्तौ भूत्वा प्राप्तौ पृथग्यदा ।	300
व्यावृत्तौ परिवृत्तौ च तदैताविति मेनिरे ॥२९१॥	
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां करौ चेत्यद्मकोशकौ ।	301
जानुर्नोर्निकटं प्राप्ताविमौ केचित्तदा जगुः ॥२९२॥	
अंसयोः कुचयोर्वापि निकटस्थौ विवर्तितौ ।	302
इमौ कीर्तिधरः प्राह पद्मवर्तनिकामपि ॥२९३॥	

जब दोनो पद्मकोश हस्त व्यावृत्ति क्रिया द्वारा स्वस्तिक मुद्रा में परस्पर पृथक् होकर विमुख स्थिति में रहे तब उन्हें नलिनीपद्मकोश हस्त कहा जाता है। अन्य आचार्यों का कहना है कि जब दोनो पद्मकोश हस्त पृथक्-पृथक् एक-दूसरे के आमने-सामने रहे और मणिवन्ध से युक्त होकर व्यावृत्त तथा परिवृत्त हो, तब उन्हें नलिनीपद्मकोश कहा जाता है। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि जब दोनो पद्मकोश हस्त व्यावृत्त तथा परिवृत्त क्रिया द्वारा घुटनों के निकट पहुँच जाय, तब उन्हें नलिनीपद्मकोश कहा जाता है। आचार्य कीर्तिधर का कहना है कि जब दोनो पद्मकोश हस्तों को कन्धों और कुचों के समीप करके घुमाया जाता है, तब उन्हें पद्मवर्तनिका भी कहा जाता है।

२० मुष्टिस्वस्तिक हस्त

अरालवर्तनापूर्वं करमेकं तदापरम् ।	303
कृत्वालपल्लवं शश्वद् विभूतः स्वस्तिकाकृतिम् ॥२९४॥	

खटकास्यौ यदा हस्तौ मुष्टिकस्वस्तिकौ तदा ।	304
कपित्थावथवा मुष्टिशिखरौ स्वस्तिकाकृती ॥२६५॥	
यदा स्यातां तदा प्रोक्तौ मुष्टिकस्वस्तिकौ करौ ।	305
कुञ्चितौ मुष्टिरेकश्चेत् खटकास्यः परोऽञ्चितः ॥२६६॥	
मुष्टिकस्वस्तिकावेवं प्राह कीर्तिधरस्तदा ।	306
खड्गवर्तनिकेत्याहुरनयोर्नाम पण्डिताः ॥२६७॥	

एक हाथ को अराल मुद्रा में और दूसरे को अलपल्लव मुद्रा में बनाकर जब दोनों स्वस्तिक का आकार वारण करे, तब वे दोनों हस्त मुष्टिस्वस्तिक कहलाते हैं। जथवा जब दोनों कपित्थ हस्तों को मुष्टि तथा शिखर मुद्राओं में करके स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित किया जाय, तब उन्हें मुष्टिस्वस्तिक कहा जाता है। आचार्य कीर्तिधर का कहना है कि जब एक मुष्टि हस्त कुञ्चित और दूसरा खटकास्य हस्त अचित हो, तब उन्हें मुष्टिस्वस्तिक कहा जाता है। कुछ विद्वानों ने मुष्टिस्वस्तिक हस्त को खड्गवर्तनिका हस्त नाम से कहा है।

२१. वलित हस्त

कूर्परस्वस्तिकाकारौ लताख्यौ वलितौ करौ ।	307
परे तौ विधुतौ भूर्धन मुष्टिकस्वस्तिकौ जगुः ॥२६८॥	
केचिदन्योन्यलग्नाग्रौ पृष्ठतो नम्रकूर्परौ ।	308
ऊर्ध्वाग्रौ खटकास्यौ च तदाहुर्वलितौ करौ ॥२६९॥	

जब दोनों हाथों से कुहनी पर स्वस्तिक से युक्त लता हस्तों का प्रयोग किया जाय, तब उन्हें वलित हस्त कहा जाता है। दूसरे आचार्यों का मत है कि जब दोनों वलित हस्तों को शिर पर कम्पित कर दिया जाय तब उन्हें मुष्टिस्वस्तिक कहा जाता है। कुछ आचार्यों का कहना है कि जब दोनों खटकास्य हस्तों के अग्रभाग एक-दूसरे से सट जाय और कुहनियाँ पीछे की ओर झुकी रहे तथा अग्रभाग ऊर्ध्वमुख रहे, तब उन्हें वलित हस्त कहा जाता है।

२२. दण्डपक्ष हस्त

यदैको हंसपक्षस्तु व्यावृत्त्या संश्रयेदुरः ।	309
बाहुः प्रसारितस्तिर्यक् तदान्यः परिवर्त्तितः ॥३००॥	

हस्त प्रकरण

तद्वदङ्गान्तरेणापि दण्डपक्षौ करौ मतौ । 310
परे प्रसारणं बाह्वोर्युगपत्प्रतिपेदिरे ॥३०१॥

जब एक हसपक्ष हस्त को व्यावृत्त करके वक्षस्थल पर रख दिया जाय, बाहु को तिरछा करके फैला दिया जाय और दूसरे हाथ को भी इसी मुद्रा में अवस्थित किया जाय, तब उन्हें दण्डपक्ष हस्त कहते हैं। कुछ आचार्यों का मत है कि दण्डपक्ष हस्त मुद्रा में दोनो भुजाओं को एक साथ फैलाना चाहिए।

२३. गरुडपक्षक हस्त

कटीदेशे करौ न्यस्तौ पताकौ चेदधोमुखौ । 311
तिर्यञ्चावुत्पतन्तौ द्रागगतौ गरुडपक्षकौ ॥३०२॥

जब दोनो पताक हस्तों को अधोमुख करके काटि पर रख दिया जाय और फिर वे तिरछे होकर तेजी से ऊपर की ओर उड़े या उठे, तब उन्हें गरुडपक्षक हस्त कहा जाता है।

२४ अलपद्म हस्त

कर्मणोद्वेष्टिताख्येन वक्षःस्थावलपल्लवौ । 312
अंसान्तिकं ततो गत्वा प्रसृतावलपद्मकौ ॥३०३॥

जब दोनो अलपल्लव हस्तों को उद्वेष्टित क्रिया द्वारा वक्षस्थल पर रख दिया जाय, फिर कन्धे के पास जाकर उन्हें फैला दिया जाय, तब वे अलपद्म हस्त कहे जाते हैं।

२५ उल्वण हस्त

वक्षसः स्कन्धयोरूर्ध्वं प्रसार्य स्कन्धसम्मुखौ । 313
विलोलाङ्गुलिकावेतौ कथिताबुल्वणौ करौ ॥३०४॥

जब दोनो हाथों को छाती और कन्धों के ऊपर फैलाकर कन्धों के सम्मुख उनकी उँगलियों को कम्पित कर दिया जाय, तो उन्हें उल्वण हस्त कहते हैं।

२६. स्वस्तिक हस्त

अश्लिष्टस्वस्तिकौ हंसपक्षौ चेत्स्वस्तिकौ तदा ॥३०५॥ 314

आश्लिष्ट (पृथक्) होकर जब दोनो स्वस्तिक हस्त हसपक्ष मुद्रा में अवस्थित हो, तब उन्हें कर स्वस्तिक हस्त कहते हैं।

२७. विप्रकीर्ण हस्त

विच्युतौ स्वस्तिकावेतौ विप्रकीर्णौ करौ मतौ ।

नताग्रावथवोच्चाग्रौ कुचयोरग्रतो गतौ । 315
विप्रकीर्णौ केचिदाहुर्हसपक्षौ पराङ्मुखौ ॥३०६॥

उक्त स्वस्तिक हस्तो को जब विच्युत (गिरा दिया) किया जाय, तब उन्हे विप्रकीर्ण हस्त कहा जाता है । कुछ आचार्यों का मत है कि जब हसपक्ष दोनो हाथो के अग्रभाग नत या उन्नत हो, और पराङ्मुख होकर कुचो के अग्रभाग मे स्थित हो, तब उन्हे विप्रकीर्ण हस्त कहा जाता है ।

२८. आविद्धवक्र हस्त

भुजांसकूर्परग्रेषु सविलासौ पताककौ । 316
कृत्वा व्यावर्तने स्यातां त्वरितं चेदधोमुखौ ।
तदा त्वाविद्धवक्राख्यौ विक्षेपवलने करौ ॥३०७॥ 317

जब भुजा, कन्धा और कुहनी के अग्रभाग मे दोनो पताक हस्त हाव-भाव-पूर्वक व्यावर्तित होकर (मुड़ कर) शीघ्र अधोमुख हो जाँय, तब, वक्रगति वाले उन दोनो हाथो को आविद्धवक्र कहा जाता है ।

२९. सूच्यास्य हस्त

संलग्नमध्यमांगुष्ठौ चतुरस्राकृती क्रमात् ।
तिर्यक्प्रसारितौ सर्पशीर्षौ चेतर्जनीं बहिः ॥३०८॥ 318
प्रसारितां दधानौ यौ सूच्यास्यौ तौ तदा मतौ ।
विधायादौ पताकौ द्वौ व्यावृत्तिपरिवृत्तितः ॥३०९॥ 319
भ्रान्त्वा प्रसारणं केचिद् विशेषमिह मन्वते ।
परे सर्पशिरोहस्तौ स्वस्तिकाकारतां गतौ । 320
मध्यप्रसारिताङ्गुष्ठौ जगुः सूच्यास्यलक्षणम् ॥३१०॥

जब दोनो सर्पशीर्ष हस्तो की मध्यमा और अगुष्ठ उँगलियाँ सटी रहे, तर्जनी बाहर की ओर फैली रहे और दोनो हाथ चतुष्कोण के आकार मे क्रमश तिरछे फैले रहे, तब उन्हे सूच्यास्य कहा जाता है । कुछ आचार्यों का कहना है कि पहले दोनो हाथो की पताक मुद्रा बना कर जब उन्हे व्यावृत्त तथा परिवृत्त क्रिया से घुमाकर विशेष रूप से फैला दिया जाय, तब उन्हे सूच्यास्य कहा जाता है । दूसरे आचार्यों का मत है कि जब दोनो सर्पशीर्ष हस्तो को स्वस्तिक मुद्रा मे बनाकर उनके दोनो अँगूठे को बीच से फैला दिया जाय, तब वे सूच्यास्य हस्त कहलाते हैं ।

हस्त प्रकरण

३० अरालखटकामुख हस्त

पताकौ स्वस्तिकीकृत्य व्यावृत्तपरिवर्तितौ ।	321
अलपद्मावधे(? द्वावदे)वाथ पद्मकोशौ करावुभौ ॥३११॥	
ऊर्ध्वमुखौ क्रमात् कृत्वा व्यावृत्तपरिवर्तितौ ।	322
अथारालं करं वाममुत्तानं रचयेत्ततः ॥३१२॥	
यदान्यं खटकावक्रं चतुरस्रमधोमुखम् ।	323
कुर्यादेवं तदा हस्तावरालखटकामुखौ ॥३१३॥	
अथवा स्वस्तिकाकारावरालखटकामुखौ ।	324
विधायादावरालौ चेद्रेचितौ खटकामुखौ ॥३१४॥	
तदा वा भवतो हस्तावरालखटकामुखौ ।	325
वितर्के सविवादानां वणिजामेष युज्यते ॥३१५॥	
वक्षोग्रस्थः पुरोवक्रः खटकास्याभिधः करः ।	326
उन्नताग्रः परोऽरालः तिर्यक्किञ्चित्प्रसारितः ॥३१६॥	
पाश्वर्व्यत्यासतो यद्वा निजे पाश्वर्णे करौ यदा ।	327
तालान्तरौ स्थितौ स्यातां तदैतावपरे जगुः ॥३१७॥	

पहले दोनो पताक हस्तो को स्वस्तिकाकार बना कर पीछे की ओर मोड़ दिया जाय तथा घुमा दिया जाय । फिर दोनो पद्मकोश हस्तो को अलपद्म की तरह ऊर्ध्वमुख करके उन्हे व्यावृत्त तथा परिवर्त्त कर दिया जाय । तदनन्तर बाँये अराल हस्त को उत्तान और दाँये खटकामुख हस्त को चतुरस्र तथा अधोमुख कर दिया जाय । इस प्रकार की अभिनय-मुद्रा को अराल खटकामुख कहते है । अथवा दोनो स्वस्तिक हस्तो को पहले अराल तथा खटकामुख बना दिया जाय, या पहले दोनो को अराल बना कर रेचित किया जाय अथवा पहले खटकामुख बना कर रेचित किया जाय, तो वे अरालखटकामुख कहलाते है । विवाद करते हुए बनियो के आशय मे इन हाथो का प्रयोग होता है ।

अन्य आचार्यो का अभिमत है कि जब एक खटकामुख हस्त छाती के अग्रभाग मे स्थित हो, वह वक्र होकर पूर्वाभिमुख हो, उसका अग्रभाग उन्नत हो, ओर दूसरा अराल हस्त तिरछा करके कुछ फैला हो, अथवा

नृत्याध्याय

पार्श्व-परिवर्तन के द्वारा दोनों हाथों को अपने पार्श्व में ताल-मात्रा के अन्तर पर अवस्थित किया जाय, तो उन्हें अरालखटकामुख कहते हैं ।

तीस नृत्यहस्तों का निरूपण समाप्त



हस्ताभिनय का उपसंहार

हस्ताभिनय विधान

स्थानादिन्यासभेदेन सम्भवन्तोऽप्यनेकधा । 328

क्रियन्तोऽपि मया प्रोक्ताः करा विस्तरभीरुणा ॥३१८॥

अशोकमल्ल का कहना है कि स्थानादिकृत (स्थान, समय, अवसर, व्यक्ति तथा वस्तु आदि) भेद से हस्ताभिनयों के अनेक प्रकार हो सकते हैं, किन्तु विस्तार-भय से यहाँ मैंने उनमें से कुछ ही निरूपित किये हैं ।

दृष्टिभ्रूमुखरागाद्यैरुपाङ्गैरपि पोषिताः । 329

प्रत्यङ्गैश्च करा योज्या रसभावप्रकाशकाः ॥३१९॥

(अभिनेताओं को चाहिए कि वे) दृष्टि, भ्रू और मुख आदि उपागों और (वक्ष, पार्श्व, हाथ आदि) प्रत्यगों से पोषित तथा रसों और भावों के प्रकाशक हाथों का प्रयोग करे ।

अभिनयेषूत्तमेषु भालस्था मध्यमेषु तु^१ । 330

उत्तम अभिनयों में हाथ भाल पर, मध्यम अभिनयों में (सभवतः हृदय पर) अवस्थित होना चाहिए ।

उत्तमे निकटस्थाः स्युर्मध्यस्थाः मध्यमेषु च ॥३२०॥

मध्यमे सात्त्विके प्रोक्तो मध्यमोऽथाल्पसात्त्विके । 331

प्रचुरः स बुधैरेवं प्रचारस्त्रिविधस्मृतः ॥३२१॥

महापुरुषों का अभिनय करने में हाथों को निकटवर्ती और मध्यम पुरुषों के अभिनय में मध्य में होना चाहिए । मध्यम सात्त्विक भावों के प्रदर्शन में हाथों का मध्यम प्रकार से प्रयोग करना चाहिए । अल्प सात्त्विक

१. यहाँ कुछ चरण छूट गये प्रतीत होते हैं । देखिए—संगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक २४९-९२ ।

हस्त प्रकरण

(अर्थात् अवम लोगो) के अभिनय मे हस्त-प्रचार के विभिन्न रूपो का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार विद्वानो ने हस्ताभिनय के तीन प्रकार (उत्तम, मध्यम और अधम) बताये हैं।

नियोज्यास्तूत्तमैः पात्रैः प्रतणङ्गद्युपबृहिताः । 332

ससौष्टवाः सुलक्षमाणः करास्तैर्मध्यमैः पुनः ॥३२२॥

सुव्यक्तलक्षणाः कार्याः सौष्टवाधिष्ठितास्तथा । 333

नीचैस्तैस्ते प्रयोक्तव्याः लोकवृत्तसमाश्रयाः ॥३२३॥

श्रेष्ठ अभिनेताओ को प्रत्यग आदि से परिपुष्ट, सुन्दर तथा सुलक्षण युक्त हस्तो का प्रयोग करना चाहिए। मध्यम अभिनेताओ को सुलक्षण तथा सुन्दर हस्तो का उपयोग करना चाहिए। इसी प्रकार निम्नष्ठ अभिनेताओ को लोक-प्रचलित (सामान्य) हस्तो का प्रयोग करना चाहिए।

मूर्च्छिते तन्द्रिते भीते व्याकुले च जुगुप्सिते । 334

ग्लाने जरादि ते सुप्ते ज्वरिते शोकपीडिते ॥३२४॥

शीतार्ते व्याधिते मत्ते विषण्णोन्मत्तयोरपि । 335

चिन्तान्विते प्रमत्तेऽपि निश्चेष्टे तापसेऽपि च ॥३२५॥

न कराभिनयः कार्य इत्युक्तं पूर्वसूरिभिः । 336

पूर्वाचार्यो का अभिमत है कि मूर्च्छित, तन्द्रित, भयभीत, व्याकुल, निन्द्रित, ग्लानि से युक्त, बृद्धावस्था-पीडित, सुप्त, ज्वरग्रस्त, शोकान्वित, शीत-पीडित, रोगग्रस्त, मत्त, दुःखी, मदोन्मत्त, चिन्तातुर, पागल, निश्चेष्ट और तपस्वी आदि के भावाभिव्यजन मे हस्ताभिनय नहीं करना चाहिए (अपितु सात्विक भावो द्वारा ही उनका प्रदर्शन करना चाहिए)।

ये करास्त्वान्तरं भावं सूचयन्तीह ते मताः ।

मूर्च्छितादिष्वपि प्रायः कराः कर्कटकादयः ॥३२६॥ 337

जो हस्त आन्तरिक भावो को प्रकट करे वे अभीष्ट एव उचित होते हैं। प्राय कर्कट आदि हस्त मूर्च्छित आदि के भावाभिव्यजन के लिए उपयुक्त समझे जाते हैं।

हस्ताभिनय प्रकरण समाप्त



अंग प्रत्यंग प्रकरण / दो

अङ्गाभिनय और उनका विनियोग

पाँच प्रकार का वक्षाभिनय

वक्षाभिनय के भेद

समं निर्भुग्नमाभुग्न तथा वक्षः प्रकम्पितम् ।

उद्वाहिताभिधं चेति वक्षः पञ्चविधं स्मृतम् ॥३२७॥ 338

वक्ष पाँच प्रकार का कहा गया है १ सम, २ निर्भुग्न, ३ आभुग्न, ४ प्रकम्पित आर ५ उद्वाहित ।

१ सम और उसका विनियोग

यद्वक्षः सौष्ट्रवोपेतं चतुरस्राङ्गसंयुतम् ।

स्वभावस्थं समं प्रोक्तं स्वभावस्य निरूपणे ॥३२८॥ 339

जो वक्ष सुन्दर, सुडौल, सब अंगों के विन्यास से युक्त और स्वाभाविक या सहज हो, उसे सम कहा जाता है । स्वभाव के निरूपण में उसका विनियोग होता है ।

२ निर्भुग्न और उसका विनियोग

यदुन्नतं पुरःस्तब्धमुरो निर्भुग्नमीरितम् ।

सत्योक्तिस्तम्भमानेषु तथा विस्मयदर्शने । 340

गर्वोत्सेके भाषणे च प्रहर्षादिदमिष्यते ॥३२९॥

जो पीठ स्तब्ध और वक्ष उन्नत हो, उसे निर्भुग्न कहा जाता है । सत्यवचन, स्तम्भन, मान, विस्मय, गर्व और दर्पोक्ति के अभिनय में इस वक्ष का अत्यन्त हर्ष से विनियोग होता है ।

३. आभुग्न और उसका विनियोग

यन्निम्नं शिथिलं वक्षस्तदाभुग्नमुदीरितम् । 341

शोकहृच्छल्ययोः शीतमूर्च्छयोर्गर्वहर्षयोः ॥३३०॥

व्याधिभीतिविषादेषु लज्जासम्भ्रमयोरपि । 342

जो वक्ष निम्न और शिथिल हो उसे आभुग्न कहते हैं । शोक, हृदय में शल्य के समान चुभने वाली बात,

नृत्याध्याय

शीत, मूर्च्छा, गर्व, हर्ष, व्याधि, भय, विषाद, लज्जा और ससम्भ्रम (उत्तावली) के भाव-प्रदर्शन में इस वक्ष का विनियोग होता है ।

४. प्रकम्पित और उसका विनियोग

निरन्तरोत्क्षेपणैर्यत्कम्पितं तत्प्रकम्पितम् ।
भीतिकासश्रमश्वासहिवकाहासेषु रोदने ॥३३१॥ 343

जो वक्ष बार-बार ऊपर उठाकर प्रकम्पित किया जाय, उसे प्रकम्पित कहते हैं । भय, खॉसी, श्रम, साँस, हिचकी, हँसी और रोने के अभिनय में इस वक्ष का नियोग होता है ।

५ उद्वाहित और उसका विनियोग

यन्निष्कम्पमृजूत्क्षिप्तं तदुद्वाहितमीरितम् ।
जृम्भोच्चवीक्षणे दीर्घोच्छ्वासाभिनयने च तत् ॥३३२॥ 344

जो वक्ष कम्पन-रहित हो तथा धीरे से चालित किया जाय, उसे उद्वाहित कहते हैं । जम्हाई लेने, ऊपर देखने और लम्बी साँस खींचने के अभिनय में इस वक्ष का विनियोग होता है ।

पाँच प्रकार का पार्श्वभिनय

पार्श्वभिनय के भेद

विवर्तिताभिधमथापसृतं च प्रसारितम् ।
नतं चोन्नतमेवेति पार्श्वं पञ्चविधं भवेत् ॥ 345

पार्श्व के पाँच भेद हैं १ विवर्तित, २ अपसृत, ३ प्रसारित, ४ नत और ५ उन्नत ।

१ विवर्तित और उसका विनियोग

विवर्तित परावृत्तौ भवेत् त्रिकविवर्तनात् ॥३३३॥

यदि कटिदेश को घुमा दिया जाय, तो उसे विवर्तित पार्श्व कहते हैं । पीछे की ओर मुड़ने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

२ अपसृत और उसका विनियोग

अपसृतं तन्निवृत्त्या स्यात्पार्श्वस्य विवर्त्तने ॥३३४॥ 346

यदि कटिदेश की निवृत्ति (अर्थात् उसको विवर्तित में घुमाकर जहाँ ले जाया गया हो, वहाँ से लौटाने में) की जाय तो उसे अपसृत पार्श्व कहते हैं । पार्श्व को घुमाने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

अग प्रत्यग प्रकरण

३ प्रसारित और उसका विनियोग

प्रसारितं मुदादौ तत्पाश्वर्योर्द्व्यप्रसारणात् ॥३३५॥

यदि दोनो पार्श्वों को फैला दिया जाय, तो उमे प्रसारित पार्श्व कहते ह । हर्ष आदि अभिनय मे उमका विनियोग होता है ।

४ नत और उसका विनियोग

नतं तु न्यञ्चितस्कन्धनितम्बमुपसर्पणे ॥३३६॥ 347

यदि कन्धा और नितम्ब को झुका दिया जाय तो उसे नत पार्श्व कहते हे । किमी के पास (कुछ वस्तु) ले जाने के अभिनय मे इस पार्श्व का विनियोग होता हे ।

५ उन्नत और उसका विनियोग

उन्नतं तद्विपर्यासात्कथितं त्वपसर्पणे ॥३३७॥

नत के विपरीत यदि कन्धा और नितम्ब को ऊपर उठा दिया जाय तो उसे उन्नत पार्श्व कहते है । भागने के अभिनय मे इस पार्श्व का विनियोग होता है ।

पाँच प्रकार का कटि अभिनय

कटि अभिनय के भेद

कम्पितोद्वाहिता छिन्ना विवृत्ता रेचतापि च । 348

कटिः पञ्चविधा ज्ञेया वीरमिहमुतोदिता ॥३३८॥

अशोकमल्ल ने कटि के पाँच प्रकार बताये है १ कम्पिता, २ उद्वाहिता, ३ छिन्ना, ४ विवृत्ता और ५ रेचिता ।

१ कम्पिता और उसका विनियोग

पार्श्वे गतागते शीघ्रं दधती कम्पिता कटिः । 349

कुब्जादिगमनप्रोक्ताऽशोकमल्लेन भूभुजा ॥३३९॥

यदि कटि को शीघ्रता से एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व मे ऊपर-नीचे कर दिया जाय, तो उसे कम्पिता कहते ह । कुब्जे, बौने आदि की गति के अभिनय मे इस कटि का विनियोग होता है ।

२ उद्वाहिता और उसका विनियोग

पार्श्वद्वयेन या किञ्चिच्चलता तूपलक्षिता । 350

सोद्वाहिता कटी लीलागतेषु गदिता स्त्रियाः ॥३४०॥

नृत्याध्याय

दोनों पाश्र्वों से किञ्चित् चलते हुए लक्षित होने वाली कटि को उद्वाहिता कहते हैं। स्त्री की लीला-गति (विलासपूर्वक चलने) के अभिनय में इस कटि का विनियोग होता है।

३ छिन्ना और उसका विनियोग

मध्यस्य बलनाच्छिन्ना पात्रे तिर्यङ्मुखे मता । 351

व्यावृत्तप्रेक्षणादौ स्याद् व्यायामे सम्भ्रमेऽपि च ॥३४१॥

मध्य भाग से मुड़ी या घूमी हुई कटि को छिन्ना कहते हैं। तिरछे मुख वाले अभिनेता, घूमकर देखने आदि, व्यायाम और उतावलीपन के अभिनय में इस कटि का विनियोग होता है।

४ विवृत्ता और उसका विनियोग

परागास्थेन पात्रेण सम्मुखं या विवर्तिता । 352

सा विवृत्ता कटी धीरैः प्रयुक्ता विनिवर्त्तने ॥३४२॥

उलटा मुँह किये हुए पात्र द्वारा जो सामने की ओर घुमायी जाय उस कटि को विवृत्ता कहते हैं। धीर पुरुष लौटने के अभिनय में इस कटि का विनियोग करते हैं।

५ रेचिता और उसका विनियोग

सर्वदिक्भ्रमणात्प्रोक्ता रेचिता भ्रमणे कटिः ॥३४३॥ 353

चारों ओर घूमने वाली कटि को रेचिता कहते हैं। भ्रमण के अभिनय में उसका विनियोग होता है।
तेरह प्रकार का पदाभिनय

पादाभिनय के भेद

सभाञ्चितौ कुञ्चिताख्यः सूच्यग्रतलसञ्चरौ ।

उद्घट्टितस्तथा पादः षड्विधो मुनिना मतः ॥३४४॥ 354

भरत मुनि ने पादाभिनय के छह प्रकार बताये हैं, जिनके नाम हैं १ सम, २ अञ्चित ३ कुञ्चित, ४ सूची, ५ अग्रतलसञ्चर और ६ उद्घट्टित।

त्रोटितोद्धटितोत्सेको घट्टितो मर्दिताग्रौ ।

पार्ष्णिगः पार्श्वगोऽप्येवं पादोऽन्यैः सप्तधोदितः ॥३४५॥ 355

अन्य आचार्यों ने पादाभिनय के सात भेद बताये हैं १ त्रोटित, २ उद्घटितोत्सेक, ३ घट्टित, ४ मर्दित, ५ अग्रग, ६ पार्ष्णिग और ७ पार्श्वग।

अथो तेषां लक्षणानि क्रमेणाहं ब्रुवेऽधुना ।

अब मैं क्रमशः उनके लक्षण बताता हूँ ।

१. सम पाद और उसका विनियोग

स्थितौ स्थितस्वभावेन समः पादः प्रकीर्तितः । 356

स्थिरः स्वभावाभिनये रेचकेऽसौ चलो मतः ॥३४६॥

प्रकृत रूप से भूमि पर अवस्थित पैरो को सम पाद कहा गया है । उसे स्वाभाविक अभिनय में स्थिर और रेचक अभिनय में चलायमान होना चाहिए ।

२ अञ्चित पाद और उसका विनियोग

यो भूमिस्थितपार्ष्णिः सन्नुत्क्षिप्ताग्रतलस्ततः । 357

प्रसृताङ्गुलिकः पादः सोऽश्वितोऽभिहितस्तदा ।

पादाहतौ तथा नानाभ्रमणादिषु कीर्तितः ॥३४७॥ 358

जिस पैर की एडी (पार्ष्णि) भूमि में हो, अग्रभाग उत्क्षिप्त हो और उँगलियाँ फैली रहे, उसे अञ्चित कहते हैं । पैरो से मारने और अनेक प्रकार की भ्रमरी आदि के अभिनय में इस पाद का विनियोग होता है ।

३ कुञ्चित पाद और उसका विनियोग

उत्क्षिप्तपार्ष्णिंराकुश्रन् मध्यो यः कुश्रिताङ्गुलिः ।

कुश्रितोऽसावतिक्रान्तक्रमे तुङ्गग्रहेऽपि च ॥३४८॥ 359

जिस पैर की एडी (पार्ष्णि) ऊपर को उठी हो और मध्य भाग तथा उँगलियाँ सिकुड़ी (कुञ्चित) हो, वह कुञ्चित पाद कहलाता है । अतिक्रान्त क्रम और उच्च ग्रह के अभिनय में इस पाद का विनियोग होता है ।

४. सूची पाद और उसका विनियोग

स्वाभाविको यदा वामोऽपरोऽङ्गुष्ठाग्रभूस्थितः ।

समुत्क्षिप्तान्यभागोऽसौ सूची नूपुरबन्धने ॥३४९॥ 360

जब बाँया पैर भूमि पर स्वाभाविक स्थिति में हो और दाहिना पैर अँगूठे के अग्रभाग में स्थित हो तथा उसका अन्य भाग ऊपर उठा हो, तब उसे सूची पाद कहते हैं । नूपुर बाँधने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

५ अग्रतलसञ्चर पाद और उसका विनियोग

उत्क्षिप्तपार्श्विः प्रसृताङ्गुष्ठको न्यश्चिताङ्गुलिः ।

यः पादोऽसावग्रतलसञ्चरः प्रेरणे भवेत् ॥३५०॥ 361

पीडने कुट्टने स्थाने भ्रमणे रेचके मदे ।

भूस्थापसारणे भूमिताडनेऽपि मतः सताम् ॥३५१॥ 362

जत्र पार्श्वि उठी हो, अंगुष्ठ फैला हो और उँगलियाँ सिकुड़ी (न्यश्चित्त) हो, तब उसे अग्रतलसञ्चर पाद कहते हैं । प्रेरणा, पीडन (पीडा देना), कूटने, स्थान, भ्रमण, रेचक प्राणायाम, मद, भूमि पर से किसी वस्तु को हटाने आर भूमि रोदने के अभिनय में सज्जनो ने इस पाद का विनियोग बताया है ।

६ उद्घट्टित पाद

स्थित्वा पादतलाग्रेण स्थितौ पार्श्विनिपात्यते ।

असकृद्वा सकृद्वापि तदोद्घट्टित ईरितः ॥३५२॥ 363

जब एक बार या बार-बार पैर के अग्रभाग के बल खडा होकर एडी को नीचे गिरा दिया जाता है, तब उस पाद को उद्घट्टित कहते हैं ।

७ त्रोटित पाद और उसका विनियोग

अवष्टभ्य भुवं पाश्या यः पादोऽग्रेण हन्ति ताम् ।

स त्रोटिताभिधो योज्यो गर्वे रोषेऽपि सूरिभिः ॥३५३॥ 364

जो पैर एडी से भूमि का सहारा लेकर अग्रभाग से भूमि को आहत करता रहता है, तो वह त्रोटित कहलाता है । गर्व और क्रोध के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

८ घट्टितोत्सेध पाद और उसका विनियोग

क्रमाद्यो घट्टयत्यग्रपार्श्विण्यामसकृद् भुवम् ।

स पादो घट्टितोत्सेधस्ताण्डवे सद्भिरीरितः ॥३५४॥ 365

जो पैर अग्रभाग तथा एडी से बार-बार भूमि को आहत करता है, वह घट्टितोत्सेध कहलाता है । सज्जनो के कथनानुसार ताण्डवनृत्य में उसका विनियोग होता है ।

९ घट्टित पाद और उसका विनियोग

घट्टितो घट्टयन्पार्श्विभुवं प्रोक्तोऽल्पनोदने ॥३५५॥

अग प्रत्यग प्रकरण

जब (केवल) एडी से भूमि को आहत किया जाता है, तब उस पाद को घट्टित कहते हैं। थोड़ा हटाने या ठेलने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

१० मर्दित पाद

तिर्यक् तलेन मृद्नाति भुवं यः स हि मर्दितः ॥३५६॥ 366

जो पैर अपने तिर्यक् तल भाग से भूमि का मर्दन करता है उसे मर्दित कहा जाता है।

११ अग्र पाद और उसका विनियोग

चरणोऽग्रे द्रुतं गच्छन् सोऽग्रगः पिच्छिलक्षितौ ॥३५७॥

जो पैर अपने अग्र भाग के बल शीघ्रता से संचालित हो, उसे अग्रग कहा जाता है। चिकनी भूमि पर चलने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

१२ पार्श्वग पाद

पृष्ठतो याति य. पाष्ण्या स पाद. पार्श्वगो भवेत् ॥३५८॥ 367

जो पैर एडी के सहारे पीछे की ओर चले उसे पार्श्वग कहा जाता है।

१३ पार्श्वग पाद

पार्श्व गच्छन् पार्श्वग. स्याद्यद्वा पार्श्वे स्थितो मतः ॥३५९॥

जो पैर बगल के सहारे चले या स्थित हो, उसे पार्श्वग कहते हैं।

सात प्रकार के अगो का निरूपण समाप्त



प्रत्यगाभिनय और उनका विनियोग

नौ प्रकार का ग्रीवाभिनय

ग्रीवा के भेद

समा नतोन्नता त्र्यस्रा वलिता कुञ्चिता[ञ्चिता] । 368

निवृत्ता रेचिता चेति ग्रीवा नवविधा मता ॥३६०॥

१२७

नृत्याध्यायः

ग्रीवा के नौ भेद कहे गये हैं, जिनके नाम हैं १ समा, २ नता, ३ उन्नता, ४ त्र्यस्रा, ५ बलिता, ६ कुञ्चिता, ७ अञ्चिता, ८ निवृत्ता और ९ रेचिता ।

१ समा और उसका विनियोग

स्वाभाविकी समोक्ता सा जपे ध्यानस्वभावयोः ॥३६१॥ 369

स्वाभाविक रूप में समस्थिति में अवस्थित ग्रीवा समा कहलाती है । जप, ध्यान और स्वभाव का भाव प्रदर्शित करने में उसका विनियोग होता है ।

२ नता और उसका विनियोग

नम्रा ग्रीवा नता प्रोक्ता धीरैः कण्ठावलम्बने ।

हारादिबन्धने चैषा कामिनीभिर्नियुज्यते ॥३६२॥ 370

नीचे की ओर झुकी हुई ग्रीवा को नता कहते हैं । धीर पुरुषों के मत से गले का सहारा लेने या गले लगाने और रमणियों द्वारा हार आदि धारण करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

३ उन्नता और उसका विनियोग

ऊर्ध्वगा तून्नता ग्रीवा भवेदूर्ध्वावलोकने ।

नियोज्या सा बुधैस्तद्वत्कण्ठालंकारदर्शने ॥३६३॥ 371

ऊपर की ओर उठी हुई ग्रीवा को उन्नता कहा जाता है । ऊपर ताकने और गले का आभूषण देखने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

४ त्र्यस्रा और उसका विनियोग

पाश्वर्नम्रा भवेत् त्र्यस्रा खेदे पार्श्वावलोकने ॥३६४॥

बगल की ओर झुकी हुई ग्रीवा त्र्यस्रा कहलाती है । खेद तथा अगल-बगल ताकने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

५ बलिता और उसका विनियोग

ग्रीवा पार्श्वोन्मुखी या तु सा सद्भिर्वलिता मता । 372

ग्रीवाभङ्गे तथा भर्तुः प्रेक्षाया गुरुसन्निधौ ॥३६५॥

जो ग्रीवा पार्श्व की ओर उन्मुख हो, उसे विद्वानों ने बलिता कहा है । गर्दन के टूटने, स्वामी को देखने और गुरु के समीप (बैठने) के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

६ कुञ्चिता और उसका विनियोग

अनन्ना कुञ्चिता ग्रीवा शिरोभारे स्वगोपने ॥३६६॥ 373

थोड़ी-सी झुकी हुई ग्रीवा कुञ्चिता कहलाती है। शिर पर बोझा ढोने और अपने को छिपाने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

७ अञ्चिता और उसका विनियोग

चञ्चला प्रसृता यासावञ्चिताऽधोनिरीक्षणे ।
केशपाशाकर्षणेऽपि विनियुक्ता नियोक्तृभि ॥३६७॥ 374

जो ग्रीवा कम्पित तथा फैली हुई हो वह अञ्चिता कहलाती है। प्रयोक्ताओं को नीचे देखने, और केशों को खींचने के अभिनय में उसका उपयोग करना चाहिए।

८. निवृत्ता और उसका विनियोग

यदा याभिमुखीभूय विनिवर्त्तदा तु सा ।
निवृत्ता कथिता स्कन्धभारे सा चकितेक्षणे ॥३६८॥ 375

यदि सम्मुख होकर ग्रीवा घूम जाय या लाट जाय तो उसे निवृत्ता कहते हैं। कन्धे पर बोझा ढोने तथा चकित होकर देखने में उसका विनियोग होता है।

९ रेचिता और उसका विनियोग

या ग्रीवा विधुतभ्रान्ता सा मता रेचिताभिधा ।
वर्तुले मथनेऽप्येषा नियुक्ता नृत्यपण्डितैः ॥३६९॥ 376

जो ग्रीवा कांपती तथा घूमती हो, वह रेचिता कही जाती है। नृत्यविशारदों ने गोलकार वस्तु और मन्थन का भाव प्रदर्शित करने में उसका विनियोग कहा है।

सोलह प्रकार का बाहु अभिनय

बाहु के भेद

प्रसारितोऽधोमुखाख्य ऊर्ध्वस्थोद्वेष्टिताञ्चिताः ।
स्वस्तिको मण्डलगतिस्तिर्यक्पृष्ठानुसारिणौ ॥३७०॥ 377
अपविद्धस्तथेत्युक्तो बाहुर्दशविधो बुधैः ।

नृत्याध्यायः

विद्वानो ने बाहु के दस भेद बताये हैं, जिनके नाम हैं १ प्रसारित, २ अधोमुख, ३ ऊर्ध्वस्थ, ४ उद्वेष्टित, ५ अञ्चित, ६ स्वस्तिक, ७ मण्डलगति ८ तिर्यक्, ९ पृष्ठानुसारी ओर १० अपविद्ध ।

कुञ्चितः सरलो नम्रो दोलितोत्सारितावपि । 378

आविद्धश्चेति षड् बाहूनन्यानन्ये जगुर्बुधाः ॥३७१॥

दूसरे विद्वानो ने बाहु के छह अन्य भेद बताये हैं। उनके नाम हैं १ कुञ्चित, २ सरल, ३ नम्र, ४ दोलित, ५ उत्सारित ओर ६ आविद्ध ।

१ प्रसारित और उसका विनियोग

प्रसरत्यग्रदेशे यो बाहुः स स्यात् प्रसारितः । 379

आदानेऽसौ फलादीनां याचनेऽपि नियुज्यते ॥३७२॥

जो बाहु आगे की ओर फैली रहती है वह प्रसारित कहलाती है। फल आदि के लेने और माँगने के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है।

२ अधोमुख

आलिङ्गस्तु धरां बाहुरधोमुख उदीरितः ॥३७३॥ 380

पृथ्वी का आलिंगन करती हुई बाहु अधोमुख कहलाती है।

३. ऊर्ध्वस्त और उसका विनियोग

शिरोदेशाद् व्रजन्तूर्ध्वमूर्ध्वगस्तुङ्गदर्शने ॥३७४॥

शिर से ऊपर को जाती हुई बाहु ऊर्ध्वस्थ कहलाती है। ऊँची चीज को देखने का भाव प्रदर्शित करने के लिए उसका विनियोग होता है।

४. उद्वेष्टित और उसका विनियोग

निर्गम्य मणिवन्धाद्यो व्यावृत्ति पुनराश्रितः । 381

उद्वेष्टितो भुजोऽसौ स्यादभिमाना [दना] दरे ॥३७५॥

जो बाहु कलाई से फैल कर पुन पीछे की ओर मुड़ कर मणिवन्ध पर ही अवस्थित हो, वह उद्वेष्टित कहलाती है। अभिमान से (किसी का) अनादर करने का भाव दर्शाने में उसका विनियोग होता है।

५ अञ्चित और उसका विनियोग

उरसः प्राप्य शीर्षं यो वक्षः पुनरुपाश्रितः । 382

स बाहुरश्रितः खेदे नियोज्यो नृत्यपण्डितैः ॥३७६॥

अग प्रत्यंग प्रकरण

जो बाहु छाती से शिर पर जाकर पुन छाती पर ही आकर अवस्थित हो जाय, वह अञ्चित कहलाती है। नृत्ताचार्यों ने खेद के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

६ स्वस्तिक और उसका विनियोग

पाश्र्वव्यत्यासतो लग्नौ बाहू स्वस्तिक ईरितः । 383
रवेर्भवेदुपस्थाने प्रणामे परिरम्भणे ॥३७७॥

यदि दोनो बाहुओ को दोनो विपरीत पार्श्वों (अगल-बगल) में सटा दिया या अवस्थित किया जाय तो उसे स्वस्तिक बाहु कहते हैं। मूर्धोपस्थान, प्रणाम तथा आलिंगन का भाव प्रदर्शित करने के लिए उमका विनियोग होता है।

७ मण्डलगति और उसका विनियोग

सर्वतो भ्रमणाद् यः स्यात् स मण्डलगतिर्भुजः । 384
भ्रमणे तु गदाखङ्गाद्यायुधानां प्रकीर्तितः ॥३७८॥

यदि बाहु को (वक्ताकार) चारो ओर घुमाया जाय तो उसे मण्डलगति कहते हैं। गदा तथा तलवार आदि आयुधो को भौंजने (घुमाने) का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है।

८ तिर्यक् (और उसका विनियोग)

पाश्र्वापगमनाद्बाहुस्तिर्यगास्थो बुधैर्मतः ॥३७९॥ 385

विद्वानो का अभिमत है कि यदि बाहु को पार्श्व भाग से हटा या अलग कर दिया जाय तो उसे तिर्यक् कहते हैं। (दूर हट जाने या अलग हो जाने के भाव को प्रदर्शित करने के लिए उसका विनियोग होता है)।

९ पृष्ठानुसारी और उसका विनियोग

पृष्ठतः सरणात्पृष्ठानुसारी बाहुरीरितः ।
वीटिका ग्रहणे त्वेष तूणाद्बाणग्रहे तथा ॥३८०॥ 386

यदि बाहु को पीठ की ओर ले जाया जाय तो उसे पृष्ठानुसारी कहते हैं। पान का बीडा लेने (या चोलि की ग्रन्थि बाँधने) और तूणीर (तरकश) से बाण निकालने का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है।

१० अपविद्ध और उसका विनियोग

उरसो मण्डलाकारभ्रान्त्या यो निःसृतो भुजः ।
सोऽपविद्धो गदाखङ्गयुद्धादिषु नियुज्यते ॥३८१॥ 387

नृत्याध्याय

यदि बाहु को वक्षस्थल के आगे मण्डलाकार में चारों ओर घुमाया जाय, तो उसे अपविद्ध कहते हैं। युद्ध आदि में गदा, खड्ग (तलवार) आदि का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है।

११ कुञ्चित और उसका विनियोग

सूचीं कुर्वन् कूर्परस्तु वक्रितः कुञ्चितो भवेत् ।

पानभोजनयोरेष प्रहारे खड्गधारणे ॥३८२॥ 388

यदि कूहनी को सूची के आकार में (नोकीती) बनाने हुए टेढ़ा कर दिया जाय तो उस बाहु को कुञ्चित कहा जाता है। पीने, भोजन करने, प्रहार करने और खड्ग धारण करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

१२ सरल और उसका विनियोग

प्रसारितः पार्श्वयोश्चेद्बाहुरूर्ध्वमधोऽपि यः ।

सरलोऽसौ तदा पूर्वः पक्षानुकरणेऽपरः । 389

माने भवेत्तृतीयस्त भूस्थापौरुषो गतिः(? षयोर्मतः) ॥३८३॥

यदि बाहु को दोनों पार्श्वों, ऊपर तथा नीचे फैला दिया जाय तो उसे सरल कहा जाता है। पार्श्व में फैलायी जाने वाली बाहु के पक्ष का अनुकरण करने में, ऊपर फैलायी जाने वाली बाहु का मान करने में, और नीचे फैलायी जाने वाली बाहु का भूमि पर स्थित वस्तु तथा अपौरुषेय वस्तु का भाव दर्शाने में उसका विनियोग होता है।

१३ नम्र और उसका विनियोग

मनाग्वक्त्रीकृतो नम्रः स्तोत्रे माल्यादिधारणे ॥३८४॥ 390

यदि बाहु को थोड़ा झुका दिया जाय तो उसे नम्र कहा जाता है। स्तोत्रपाठ तथा माल्यादि धारण करने में उसका विनियोग होता है।

१४ आन्दोलित और उसका विनियोग

बाहुरान्दोलितोऽन्वर्थः सविलासगतादिषु ॥३८५॥

अर्थ का अनुसरण करने वाली (अर्थात् इवर-उवर, ऊपर-नीचे चलायी जाने वाली) बाहु आन्दोलित कहलाती है। हाव-भाव के साथ संचालित होने आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

१५. उत्सारित और उसका विनियोग

निजं पार्श्वं सरन्नन्यपार्श्वान्द्रुत्सारितो भुजः । 391

जनतोत्सारणे प्रोक्ता नियोगोऽस्य मनीषिभिः ॥३८६॥

अंग प्रत्यंग प्रकरण

यदि बाहु को दूसरे के पार्श्व से हटाकर अपने पार्श्व में लाया जाय तो उसे उत्सारित कहते हैं। विद्वानों ने जन-समूह को दूर हटाने के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

१६ आविद्ध

बाहुरभ्यन्तराक्षेपाद् बुधैराविद्ध ईरितः ॥३८७॥ 392

भीतर की ओर चलायी जाने वाली बाहु को विद्वानों ने आविद्ध कहा है।

चार प्रकार का उदराभिनय

उदर के भेद

क्षामं खल्लं तथा पूर्णं रिक्तपूर्णमिति क्रमात् ।

चतुर्धोदरमाख्यातमेतल्लक्ष्माधुना ब्रुवे ॥३८८॥ 393

उर के चार प्रकार बताये गये हैं १ क्षाम, २ खल्ल, ३ पूर्ण और ४ रिक्तपूर्ण।

१ क्षाम और उसका विनियोग

नमनादुदरं क्षामं वीरसिंहसुतोदितम् ।

[भवेत् तज्] जृम्भणे हास्ये निःश्वस्य रुदिते तथा ॥३८९॥ 394

अशोकमल्ल ने पिचके या दबे उदर को क्षाम कहा है। जम्हाई लेने, हँसने, लम्बी साँस लेने और रुदन के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

२ खल्ल और उसका विनियोग

निम्नं खल्लं समाख्यातमातुरे श्रमकर्षिते ।

वेतालभृङ्गिरिठ्यादिधारणे च क्षुधादिते ॥३९०॥ 395

धँसे हुए पेट को खल्ल कहा जाता है। रोगी, यके-माँदे, पिशाच (वेताल), शिव का गण (भृगी तथा रिटि) आदि का रूप धारण करने और प्यास के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३ पूर्ण और उसका विनियोग

आध्मातमुदरं पूर्णं भवेदत्यशिते त्विदम् ।

जलोदराभिधे व्याधौ तुन्दिलाभिनयेऽपि च ॥३९१॥ 396

फूला हुआ पेट पूर्ण कहलाता है। अधिक भोजन करने, जलोदर नामक रोग तथा तोद वाले व्यक्ति के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

४ रिक्तपूर्ण और उसका विनियोग

स्यादन्वर्थं रिक्तपूर्णं श्वासरोगे प्रकीर्तितम् ॥३९२॥

नृत्याध्यायः

अर्थ का अनुसरण करने वाला उदर (अर्थात् ऐसा उदर, जो खाली रहने पर भी भरा मालूम हो रिक्तपूर्ण कहलाता है । श्वास गेग के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

चार प्रकार का पृष्ठाभिनय

क्रियाभिरुदरोक्ताभिर्यतः पृष्ठं विकारवत् । 397
ततः पृथग्मया नास्य लक्षणं प्रतिपादितम् ॥३९३॥

उदराभिनय के जो लक्षण-विनियोग बताये गये हैं, उन्हीं से (स्वभावतः) पृष्ठ का भी व्यत्यय हो जाता है । अतः पृष्ठाभिनय का पृथक् रूप से निरूपण नहीं किया गया । (अर्थात् उदराभिनय से ही पृष्ठाभिनय की क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिएँ) ।

पाँच प्रकार का उरु अभिनय

उरु (जाँघ) अभिनय के भेद

स्तब्धस्ततः कम्पितश्च वलितोद्वर्तितवपि । 398
निवर्तितस्तथेत्यूरोः पञ्चधा लक्षणं मतम् ।

उरु के पाँच भेद कहे गये हैं १ स्तब्ध, २ कम्पित, ३ वलित, ४ उद्वर्तित और ५ विवर्तित ।

१ स्तब्ध और उसका विनियोग

यो भवेन्निष्क्रियः स्तब्धः स साध्वसविषादयोः ॥३९४॥ 399

जो उरु निष्क्रिय या निश्चेष्ट हो, वह स्तब्ध कहलाता है । भय और विषाद के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

२ कम्पित और उसका विनियोग

नतोन्नतौ मुहुः स्यातां पार्श्वौ यस्य स कम्पितः ।
अधमानां गतौ प्रोक्तो विनियोगोऽस्य सूरिभिः ॥३९५॥ 400

जिस उरु में दोनों पार्श्व बार-बार झुके और उठे, वह कम्पित कहलाता है । विद्वानों ने कहा है कि अवम व्यक्तियों की गति को अभिव्यक्त करने में उसका विनियोग होता है ।

३. वलित और उसका विनियोग

जानुन्यन्तर्गतो यः स्याद्गुरुः स वलिताभिधः ।
योषितां स्वैरगमने मुनिना स नियोजितः ॥३९६॥ 401

अग प्रत्यग प्रकरण

जो उरु घुटने के अन्तर्गत हो वह **वलित** कहलाता है। भरत मुनि ने स्त्रियों की स्वच्छन्द गति का भाव प्रकट करने में उसका विनियोग बताया है।

४ उद्वर्तित और उसका विनियोग

मुहुरन्तर्बहिःक्षेपात् पाष्णोरग्रतलस्य च ।
उद्वर्तितस्ताण्डवेऽसौ व्यायामाभिनये तथा ॥३६७॥ 402

यदि एडी (पार्श्व) के अग्रभाग को बार-बार भीतर और बाहर चलाया जाय तो वह उरु उद्वर्तित कहलाता है। ताण्डव तथा नृत्य व्यायाम के प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है।

५ निर्वर्तित और उसका विनियोग

यो मध्यगतया पाष्ण्या भवेत् स तु निर्वर्तितः ।
शमसम्भवयोरुक्तो वीरसिंह सुसूनुना ॥३६८॥ 403

जिस उरु के मध्यभाग में एडी को रख दिया जाय वह निर्वर्तित कहलाता है। अशोकमल्ल ने शान्ति तथा सभवा वस्तु या उत्पत्ति के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग बताया है।

दस प्रकार का जघाभिनय

जघा के भेद

क्षिप्ता नतोद्वाहिताख्यावर्तिता परिवर्तिता ।
जङ्घ्रवं पञ्चधा प्रोक्ताऽशोकमल्लेन भूभुजा ॥३६९॥ 404
बहिर्गता तिरश्चीना निःसृता कम्पिता तथा ।
परावृत्ताभिधा [चासौ] प्रोक्ता पञ्चविधापरैः । 405

अशोकमल्ल ने जघा अभिनय के पाँच भेद बताये हैं, जिनके नाम हैं १ क्षिप्ता, २ नता, ३ उद्वाहिता, ४ आवर्तिता और ५ परिवर्तिता। दूसरे आचार्यों के मत से उसके पाँच भेद आर होते हैं १ बहिर्गता, २ तिरश्चीना, ३ निःसृता, ४ कम्पिता और ५, परावृत्ता।

१. क्षिप्ता और उसका विनियोग

बहिःक्षेपाद् भवेत् क्षिप्ता व्यायामे ताण्डवेऽपि च ॥४००॥

यदि जघा को बाहर की ओर चलाया जाय तो वह क्षिप्ता कहलाती है। व्यायाम आर ताण्डव नृत्य के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

नृत्याध्यायः

२ नता और उसका विनियोग

नमज्जानुस्तु या जङ्घा सा नता परिकीर्तिता । 406

गतस्थानासनेष्वेषा वीरसिहसुतोदिता ॥४०१॥

यदि घुटने को मोड़ दिया जाय तो वह नता जघा कहलाती है । अशोकमल्ल ने गमन, स्थान और आसन के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

३ उद्वाहिता और उसका विनियोग

उर्ध्व गतोद्वाहिता स्यादाविष्टगमनादिषु ॥४०२॥ 407

यदि जघा को ऊपर की ओर उठाया जाय तो वह उद्वाहिता कहलाती है । आवेश तथा गमन (या भूत आदि से आविष्ट व्यक्ति) आदि के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है ।

४ आवर्तिता और उसका विनियोग

दक्षिणे वामतः पादे वामे दक्षिणतो मुहुः ।

कृते योज्यावर्तिताख्या विदूषकपरिक्रमे ॥४०३॥ 408

यदि दाहिना पैर बाँयी ओर और बाँया पैर दाहिनी ओर बार-बार चलाया जाय तो उसे आवर्तिता जघा कहते हैं । विदूषक के चक्कर काटने में उसका विनियोग होता है ।

५ परिवर्तिता और उसका विनियोग

प्रतीपं यायिनी जङ्घा कथिता परिवर्तिता ।

ताण्डवेऽशोकमल्लेन नृपाग्रण्या मनीषिणा ॥४०४॥ 409

उक्त आवर्तिता जघा के विपरीत क्रिया वाली जघा को परिवर्तिता कहते हैं । मनीषी महाराज अशोकमल्ल ने ताण्डव नृत्य के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

६ बहिर्गता

पाश्र्वप्रसारिता नृत्ये सद्भिरुक्ता बहिर्गता ॥४०५॥

यदि नृत्य में जघा को वगल की ओर फैलाया जाय तो सज्जनो ने उसे बहिर्गता कहा है ।

७ कम्पिता और उसका विनियोग

कम्पिता कम्पनादुक्ता भये घर्घरिकाध्वनौ ॥४०६॥ 410

काँपती हुई जघा को कम्पिता कहा जाता है । भय और घर्घर ध्वनि का भाव प्रकट करने में उसका विनियोग होता है ।

८ तिरश्चीना और उसका विनियोग

क्षितिश्चिष्टबहिःपार्श्वी तिरश्चीना मतासने ॥४०७॥

जिस जघा का बाह्य पार्श्व भाग भूमि से सटा हो, उसे तिरश्चीना कहते हैं। आसन के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

९ परावृत्ता और उसका विनियोग

पश्चात्प्राप्ता परावृत्ता धराश्चिष्टेन जानुना । 411

वामेन पितृकार्येऽथ देवकार्येऽपरेण सा ॥४०८॥

यदि घुटने को भूमि से सटा कर (या टिका कर) जघा को पीछे की ओर मोड़ दिया जाय तो उसे परावृत्ता कहते हैं। पितृ-कार्य का भाव दर्शाने में परावृत्ता के बाँये घुटने को भूमिश्चिष्ट करके और देव-कार्य का भाव दर्शाना हो तो दाहने घुटने को भूमिश्चिष्ट करके उसका विनियोग करना चाहिए।

१० नि सूता

याग्रे प्रसारिता जङ्घा सा मता निःसृताभिधा ॥४०९॥ 412

जो जघा आगे की ओर फैला दी जाय उसे नि सूता कहते हैं।

सात प्रकार के जानु अभिनय

जानु (घुटने) के भेद

नतोन्नते संहतं च विवृतं कुञ्चितं समम् ।

ततोऽर्धकुञ्चितं चेति जानूक्तं सप्तधा बुधैः । 413

विद्वानो ने जानु के सात भेद बताये हैं १ नत, २ उन्नत, ३ सहत, ४ विवृत, ५ सम, ६ अर्धकुञ्चित और ७ कुञ्चित ।

१ नत और उसका विनियोग

भूमिप्राप्तं जानु नतं प्रोक्तं पातेऽभिवादाने ॥४१०॥

भूमि पर अवस्थित जानु को नत कहते हैं। किसी चीज को गिराने और अभिवादन करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

२ उन्नत और उसका विनियोग

कुचदेशगतं जानून्नतमुच्चाधिरोहणे ॥४११॥ 414

यदि जानु को कुच देश तक उठा लिया जाय तो, वह उन्नत कहलाता है। ऊपर उठने या ऊँची चीज पर चढ़ने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

नृत्याध्यायः

३ सहत और उसका विनियोग

लग्नान्तर्जानु यज्जानु सहतं तद् बुधैर्मतम् ।
तदीर्ष्याकोपलज्जादिरतिभावेषु योषिताम् ॥४१२॥ 415

यदि एक जानु को दूसरे जानु के नीचे सटा कर रख दिया जाय तो विद्वानों के कथनानुसार उसे सहत जानु कहा जाता है । ईर्ष्या, कोप, लज्जा और स्त्रियों के रति-भावों (कामकेलियों) के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

४. विवृत और उसका विनियोग

जानुद्वयं बहिर्भूतं विवृतं जानु सम्मतम् ।
नियुज्यते वाजिगजारोहणादिषु सूरिभिः ॥४१३॥ 416

यदि दोनों जानुओं को बाहर की ओर फैला दिया जाय तो उसे विवृत कहते हैं । हाथी और घोड़े आदि पर चढ़ने आदि के अभिनय में विद्वानों ने उसका विनियोग बताया है ।

५. सम और उसका विनियोग

स्वभाविकं सम जानु स्वभावावस्थितौ मतम् ॥४१४॥

यदि जानु को स्वाभाविक रूप में रखा जाय तो उसे सम कहते हैं । स्वाभाविक अवस्था का भाव व्यक्त करने में उसका विनियोग होता है ।

६. अर्धकुञ्चित

नमनात्तु नितम्बस्य प्रोक्तं जान्वर्धकुञ्चितम् ॥४१५॥ 417

यदि नितम्ब को झुका दिया जाय तो उसे कुञ्चित जानु कहते हैं ।

७ कुञ्चित और उसका विनियोग

श्लिष्टोरुजङ्घे जानूक्तं कुञ्चितं सद्भिरासने ॥४१६॥

यदि (घुटने को मोड़ कर) उरु और जघा को सटा दिया जाय तो उस जानु को कुञ्चित कहते हैं । सज्जनों ने आसन के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

पाँच प्रकार का मणिबन्ध अभिनय

मणिबन्ध (कलाई) के भेद

निकुञ्चाकुञ्चितौ स्यातां चलश्च भ्रमितः समः ।
एवं पञ्चविधो धीरैर्मणिबन्धः प्रकीर्तितः ॥४१७॥ 418

अंग प्रत्यंग प्रकरण

धीर पुरुषो ने मणिबन्ध के पाँच भेद बताये हैं १ निकुञ्च, २ आकुञ्चित, ३ चल, ४ भ्रमित और ५ सम ।

१ निकुञ्च और उसका विनियोग

बहिर्यो निम्नतां प्राप्तो निकुञ्चोऽसौ मतः सताम् । 419

दाने त्वभयदानेऽपि मुनिना सप्रदर्शितः ॥४१८॥

जो कलाई बाहर की ओर झुकी हो उसे सज्जनो ने निकुञ्च कहा है । भरत मुनि ने दान तथा अभयदान के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

२ आकुञ्चित और उसका विनियोग

अन्तर्निम्नः समाख्यातो धीरैराकुञ्चिताभिधः । 420

प्रायः प्रयुज्यते धीरैरेष वस्त्वपसारणे ॥४१९॥

भीतर की ओर झुके हुए मणिबन्ध को धीर पुरुषो ने आकुञ्चित कहा है । धीरो के मत से वस्तु के हटाने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

३ चल और उसका विनियोग

अभ्यासाद् रचितौ चेत् स्तो निकुञ्चाकुञ्चिताविमौ । 421

चलस्तदा नियोगोऽस्यावाहने सद्भिरीरितः ॥४२०॥

यदि दोनो मणिबन्धो की निकुञ्च और आकुञ्चित में रचना की जाय तो, वह चल कहलाता है । सज्जनो ने आह्वान करने के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

४ भ्रमित और उसका विनियोग

भ्रमणाद् भ्रमितः खड्गच्छुरिकाभ्रमणादिषु ॥४२१॥ 422

यदि मणिबन्ध को घुमाया जाय तो वह भ्रमित कहलाता है । तलवार और छुरे आदि के घुमाने में उसका विनियोग होता है ।

५. सम और उसका विनियोग

ऋजुः समे धारणे तु पुस्तकस्य प्रतिग्रहे ॥४२२॥

यदि मणिबन्ध को (स्वाभाविक रूप में) सीधा रखा जाय तो वह सम कहलाता है । पुस्तक के धारण करने तथा दान लेने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

नृत्याध्याय

प्रत्यंग भूषणो का निरूपण

भूष्यन्तेऽङ्गानि यैस्तानि भूषणानि प्रचक्षते । 433

प्रत्यङ्गत्वं कथं तेषां तन्मतेऽप्युपपद्यते ॥४२३॥

मणिबन्धौ जानुनी च प्रत्यङ्गे स्तो यथाकथम् । 424

आभूषण से अग सुशोभित (विभूषित) होते हैं। इसलिए उन्हें भूषण कहा गया है। किन्तु जो यथाकथञ्चित् मणिबन्धो ओर जानुओ को प्रत्यंग मानते हैं उनके मत में भी आभूषणो में प्रत्यंगत्व कैसे सिद्ध होता है ?

अत्र प्राह समाधानमशोको विदुषां वरः ॥४२४॥

शक्त्या यदपि बाधःस्याद् दृश्यतेऽत्र तथापि हि । 425

वृत्त्या लक्षणया तेषां तदङ्कृतिहेतुता ।

प्रत्यङ्गत्वं भवेदेवमिति सर्वं समञ्जसम् ॥४२५॥ 426

इस समस्या का समाधान विद्वद्वर अशोकमल्ल ने इस प्रकार किया है कि यद्यपि भूषण का प्रत्यंगत्व अभिघ्न शक्ति से सिद्ध नहीं होता, तथापि लक्षणा वृत्ति से सिद्ध हो जाता है, क्योंकि वे (मणिबन्ध तथा जानु) शोभा के कारण हैं। इसलिए प्रत्यंग है। इस प्रकार उनका समञ्जस्य हो जाता है।

नौ प्रकार के प्रत्यंगो का निरूपण समाप्त



दृष्टि नाना, नीन

दृष्टि अभिनय और उनका विनियोग

[अशोकमल्ल ने दृष्टि अभिनय के छत्तीस प्रकार बताये हैं, जिनमें रसजा दृष्टि के आठ, स्थायी भावजा दृष्टि के आठ और सचारी भावजा दृष्टि के बीस भेद होते हैं।]

रसजा दृष्टि के भेद

कान्ताहास्या च करुणा रौद्रा वीरा भयानका ।

बीभत्सा चाद्भुतेत्यष्टौ विज्ञेया रसदृष्टयः ॥४२६॥ 427

रसजा दृष्टि के आठ भेद होते हैं १ कान्ता, २ हास्या, ३ करुणा, ४ रौद्रा, ५ वीरा, ६ भयानका, ७ बीभत्सा और ८ अद्भुता ।

स्थायी भावजा दृष्टि के भेद

स्निग्धा हृष्टा तथा दीना क्रुद्धा दी(?दृ)प्ता भयान्विता ।

जुगुप्सिता विस्मितेति दृशौऽष्टौ स्थायिभावजाः ॥४२७॥428

स्थायी भावों से उत्पन्न दृष्टि के आठ भेद होते हैं १ स्निग्धा, २ हृष्टा, ३ दीना, ४ क्रुद्धा, ५ दृप्ता, ६ भयान्विता, ७ जुगुप्सिता और ८ विस्मिता ।

सचारी भावजा दृष्टि के भेद

शून्या च मलिना श्रान्ता तथान्या लज्जिताभिधा ।

ग्लाना तथा शङ्किता च विषण्णा मुकुला ततः ॥४२८॥429

कुञ्चिता चाभितप्ता च जिह्या च ललिता तथा ।

वितर्किता ततोऽप्यर्धमुकुलाकेकरा परा ॥४२९॥430

विभ्रान्ता विप्लुता त्रस्ता विशोका(?कोशा)मदिरा तथा ।

विशतिर्व्यभिचारिण्यो दृष्टयो मुनिनोदिताः ॥४३०॥431

नृत्याध्याय

भरत मुनि के मतानुसार सचारी भावो या व्यभिचारी भावो से उत्पन्न दृष्टि के बीस भेदो के नाम इस प्रकार है १ शून्यता, २ झलना, ३ श्रान्ता, ४ लज्जिता, ५ ग्लाना, ६ शकिता, ७ विषण्णा, ८ मुकुला, ९ कुञ्चिता, १० अभिनन्ता, ११ जिह्मा, १२ ललिता, १३ वितर्किता, १४ अर्धमुकुला, १५ आकेकरा, १६ विभ्रान्ता, १७ विलुप्ता, १८ त्रस्ता, १९ विकोशा ओर २० मदिरा ।

दृष्टयो मिलिताः सर्वा षट्त्रिंशत् परिकीर्तिताः ।

इस प्रकार दृष्टियो के सभी भेदो को मिलाकर कल छत्तीस दृष्टियाँ होती है ।

आठ रसजा दृष्टियाँ (१)

१ कान्ता

या दृश्यमापिबन्तीव भृशं स्वच्छा विकाशिनी ॥४३१॥ 432

सभ्रूक्षेपकाटाक्षा सा कान्तानङ्गविर्वाधनी ।

यद्गतागतविश्रान्तिवैचित्र्येण विवर्तनम् । 433

तारकायाः कलाभिज्ञास्तं कटाक्षं प्रचक्षते ॥४३२॥

जो दृष्टि मानो दृश्य पदार्थ को पी रही हो, अन्यन्त स्वच्छ एव विकसित हो, भ्रू भंग (टेढ़ी भवो वाली) तथा कटाक्ष से युक्त हो और कामोत्पादक (या कामिनियो के शरीर की शोभा का उत्कर्ष वताने वाली) हो, हो, वह कान्ता कहलाती है ।

२ हास्या और उसका विनियोग

या कुञ्चितपुटा तीव्रमध्यमन्दतया क्रमात् । 434

मनागभ्यन्तराविष्टा चित्रभ्रान्तकनीनिका ।

हास्या दृष्टिरसावुक्ता सद्भिर्विस्मापने मता ॥४३३॥ 435

यदि सिकुडी हुई पलको वाली दृष्टि क्रमश तीव्र, मध्य और मन्द गति से कुछ भीतर की ओर चली जाय ओर पुतलिया आश्चर्यजनक रूप में घूमती हो, तो वह हास्या कहलाती है । नाट्याचार्यो के मत से आश्चर्यचकित करने वाले भावो के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

३ करुणा और उसका विनियोग

या स्रस्तोर्ध्वपुटा सास्त्रा नासिकाग्रानुगामिनी ।

शोकमन्थरतारा सा करुणा करुणे मता ॥४३४॥ 436

जो दृष्टि नीचे गिरी हो, पलक ऊपर उठी हो, अँच् बहा रही हो, नाक के जग्रभाग पर जनी हो आर शोक के कारण जिसकी पुतली शिथिल पड गयी हो, वह करुणा कहल गती है । अरण रम के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

४ रौद्री और उसका विनियोग

रूक्षा क्रूरा स्तब्धतारा चकितोभपुटारणा ।

उग्रा भ्रुकुटिभीष्मा या सा रौद्री दृष्टिरीरिता ॥४३५॥ 437

जो दृष्टि रूक्ष, क्रूर, स्थिर पलको वाली, चकित, उग्रा पलको वाली, अरण, तीक्ष्ण और भयानक भ्रुकुटि वाली हो, वह रौद्री कहलाती है । रौद्र रम के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

५. वीरा और उसका विनियोग

अक्षुब्धा समतारा या गम्भीरोत्फुल्लमध्यभाक् ।

दीप्ता विकासिता दृष्टिर्वीरा सा वीरगोचरा ॥४३६॥ 438

माधुर्यधैर्यगाम्भीर्यैदार्याणि तु विवृण्वती ।

शोभातेजोविशेषादीन् सत्त्वभेदाश्च सा किल ॥४३७॥ 439

जो दृष्टि क्षोभरहित, सम तारो वाली, गभीर, उत्फुल्ल मध्य भाग वाली, दीप्त, विकसित और वीरोचित हो, वह वीरा कहलाती है । मधुरता, वीरता, गभीरता, उदारता, शोभा, विशेष तेज आर अनेक प्रकार के पराक्रमो की अभिव्यक्ति मे उसका विनियोग होता है ।

६ भयानका और उसका विनियोग

विलोलोद्वृत्ततारा या स्तब्धोद्वृत्तपुटोभया ।

दृश्यात्पलायमानेव सोक्ता दृष्टिर्भयानका ॥४३८॥ 440

चंचल, फडकते हुए तारो वाली, स्तब्ध एव खुले हुए पलको वाली और देखने से मानो पलायन कर देने वाली दृष्टि भयानका कहलाती है । भयानक रस के भावो के अभिव्यजन मे उसका विनियोग होता है ।

७. बीभत्सा और उसका विनियोग

घृणयोद्वेगमापन्ना दृश्याद् या लोलतारका ।

निकुञ्चितपुटापाङ्गा संश्लिष्टचलपक्ष्मभाक् । 441

बीभत्सा दृष्टिस्तथा सा बीभत्सरससंश्रया ॥४३९॥

नृत्याध्याय

घृणा के भावो को उद्दीप्त करने वाली, दृश्य से चचल तारो वाली, सिकुडी हुए पलको के कोरो वाली, सटी हुई और घूमते हुए पलको वाली दृष्टि बीभत्सा कहलाती है। बीभत्स रस के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

८. अद्भुता और उसका विनियोग

किञ्चित्कुञ्चितपक्षमाग्रा याश्चर्योद्भूततारका । 442

सौम्यापाङ्गविकासाह्याऽद्भुता सा दृष्टिरद्भुते ॥४४०॥

ईषत् सिकुडी हुई बरौनियो के अग्रभाग वाली, अश्चर्य के साथ घूमती हुई पुतली वाली, सोम्य तथा खि ले हुए कोरो (अपागो) से सम्पन्न दृष्टि अद्भुता कहलाती है। जद्भुत रस के अभिनय मे उमका विनियोग होता है।

आठ स्थायिभावजा दृष्टियाँ (२)

१ स्निग्धा

स्मिततारा साभिलाषोत्क्षिप्तभ्रूयां विकाशिनी । 443

कटाक्षिणी सहर्षा सा दृष्टिः स्निग्धोदिता बुधैः ।

उत्क्षेपं केचिदुभयोभ्रुवोराहुर्मनीषिणः ॥४४१॥ 444

मुस्कराती हुई पुतली वाली, चाहभरी, ऊपर फेकी हुई भवो वाली, खिली हुई, कटाक्ष करने वाली और हर्षित दृष्टि स्निग्धा कहलानी है। कुछ विद्वानो का कहना हे कि उसमे दोनो भवो को ऊपर फेकना चाहिए।

२ हृष्टा और उसका विनियोग

स्मिताकृतिर्विशतारा फुल्लगल्लयुगा चला ।

मनागाकुञ्चितप्रान्ता दृष्टिर्या च निमेषिणी । 445

सा हृष्टा दृष्टिरादिष्टा हासे नृत्तविचक्षणैः ॥४४२॥

हास्ययुक्त आकृति वाली, विशद तारो वाली, दोनो कपोलो को उत्फुल्ल करने वाली, चचल, कुछ सिकुडी हुई कोरो वाली निमेष दृष्टि हृष्टा कहलाती हे। नाट्यशास्त्रियो ने हास्य रस के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है।

३. दीना

मनावस्रस्तोर्ध्वपुटा किञ्चिदावृत्ततारका । 446

बाष्पाविलाल्पसञ्चारा दृष्टिर्दीनोदिता बुधैः ॥४४३॥

दृष्टि प्रकरण

गिरी हुई, ऊपर उठे हुए पलको वाली, कछ खुली हुई पुतलियो वाली, आँसुओ से भरी आर मन्द-मन्द सचरण करने वाली दृष्टि को विद्वानो ने दीना कहा ह ।

४ क्रुद्धा और उसका विनियोग

कुटिल भ्रुकुटी रूक्षा [किञ्चित्तरलतारका] । 447
स्तब्धोद्वृत्तपुटा दृष्टिः क्रुद्धा क्रोधे निरूपिता ॥४४४॥

टेढी भवो वाली, रूखी, कुछ चचल तारो वाली स्थिर ओर उठे हुए पलको वाली दृष्टि क्रुद्धा कहलाती है । क्रोध के भावो को व्यक्त करने के लिए उसका विनियोग होता है ।

५ दृप्ता और उसका विनियोग

उद्गिरन्तीव या धैर्य स्थिरा चोत्साहिनी तथा । 448
दृष्टिर्दृशाभिधोत्साहे सा योज्या नृत्तकोविदैः ॥४४५॥

वैर्य को उगलति हुई-सी स्थिर तथा उत्साहयुक्त दृष्टि को नाटयाचार्यो ने दृप्ता कहा है । उत्साह के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

६ भयान्विता

त्रासान्निष्क्रान्तमध्येव विस्तारितपुटोभया । 449
विलोलतारका भीत्या दृष्टिस्त्रस्ता भयान्विता ॥४४६॥

मानो भय से बाहर निकली मध्यभाग वाली, दोनो खली हुई पलको वाली, भय से काँपती हुई तारो वाली भयग्रस्त दृष्टि भयान्विता कहलाती है ।

७ जुगुप्सिता

योद्विग्रा दृश्यमालोक्य सकुचत्पुटतारका । 450
अव्यक्तालोकिनी धीरैरसावुक्ता जुगुप्सिता ॥४४७॥

दृश्य को देखकर उदविग्न (व्याकुल) हुई, सकुचित पलको एव पुतलियो वाली और साफ न दिखायी देने वाली दृष्टि को धीर पुरुषो ने जुगुप्सिता कहा है ।

८ विस्मिता और उसका विनियोग

विस्तारितपुटद्वन्द्वातिशयोद्भ्रान्ततारका । 451
विकाशिनी समा दृष्टिर्विस्मिता विस्मयोद्भवा ।

नृत्याध्यायः

फैली हुई, दोनो पलको वाली, अत्यन्त घूमने वाले तारो वाली, ग्विली हुई और सम दृष्टि को विस्मिता कहते हैं। विस्मय के भावो के अभिव्यजन मे उसका विनियोग होता है।

दृशोऽनूक्ताभिनयना ज्ञेयाः - १ ॥४४८॥ 452

जिन दृष्टियो के यहाँ अभिनय-विनियोग गही बताये गये हैं, अपने-अपने रसो के अभिनय मे उनका विनियोग समझना चाहिए।

सचारी भावजा दृष्टियाँ (३)

१ शून्या और उसका विनियोग

निष्कम्पा समतारा या मलिना शून्यदर्शना ।

तथा समपुटा बाह्याविषयेषु गतस्पृहा । 453

सा दृष्टिः कथिता शून्या धीरैश्चिन्तानिरूपणे ॥४४९॥

कम्पनरहित, सम तारो वाली, मलिन, शून्य दिखायी पडने वाली, सम पलको वाली और बाह्य विषय को ग्रहण करने मे निस्पृह दृष्टि शून्या कहलाती है। विद्वानो ने चिन्ता का भाव प्रकट करने मे उसका विनियोग बताया है।

२ मलिना और उसका विनियोग

किञ्चित्कुञ्चत्पुटा लक्ष्याद्द्वयार्वातितकनीनिका । 454

प्रस्पन्दमानपक्षमाग्रा मलिनान्ता च या भवेत् ॥४५०॥

सा दृष्टिर्मलिना प्रोक्ता वैवर्ण्ये विहृते स्त्रियाः । 455

प्रियेण यदसंलापः कालेऽपि विहृतं हि तत् ॥४५१॥

कुछ सिकुडे हुए पलको वाली, लक्ष्य को ग्रहण करने मे असमर्थ पुतलियो वाली, बरोनियो के अग्रभाग से कम्पित और अन्तिम भाग से मलिन (बुंधली) दृष्टि मलिना कहलाती है। मालिन्य तथा स्त्रियो के प्रेम-प्रदर्शन और उचित अवसर पर ही प्रिय के साथ वार्तालाप करने (विहृत-स्त्रियो के दस हावो मे एक) मे उसका विनियोग होता है।

३ श्रान्ता और उसका विनियोग

श्रमम्लानपुटा सन्ना किञ्चित्कुञ्चदपाङ्गिका । 456

पतत्कनीनिका श्रान्ता दृष्टिः सद्भिः श्रमे मता ॥४५२॥

श्रम से म्लान पलको वाली, स्तब्ध, कुछ सिकुडी हुई कोरो वाली और नीचे गिरती हुई तारो वाली दृष्टि श्रान्ता कहलाती है। श्रम के अभिनय मे विद्वानो ने उसका विनियोग बताया है।

दृष्टि प्रकरण

४ लज्जिता और उसका विनियोग

मनागञ्चितपक्षमाग्रा त्रपात्रस्तकनीनिका । 457
संत्रस्तोर्ध्वपुटा दृष्टिर्लज्जिता लज्जिते स्त्रिया. ॥४५३॥

बरौनियो से कछ सिक्की हुई अग्रभाग वाली, लज्जा से गिरी हुई पुतलियो वाली, बहुत डरी हुई आर ऊपर उठी हुई पलको वाली दृष्टि लज्जिता कहलाती है। स्त्रियो की लज्जा का भाव प्रकट करने में उसका विनियोग होता है।

५ ग्लाना और उसका विनियोग

श्लथपक्षमपुटा भ्रूया मलिना मग्नतारका । 458
अल्पसञ्चारिणी दृष्टिः ग्लानौ [ग्लाना] निरूपिता ॥४५४॥

शिथिल पलको, मलिन भवो, डूबी हुई बरौनियो वाली और मन्द-मन्द चलने वाली दृष्टि ग्लाना कहलाती है। ग्लानि के भावो के अभिव्यजन में उसका विनियोग होता है।

६ शक्तिता और उसका विनियोग

दृश्याद् द्रुतनिवृत्ता च मुहुर्लोलस्थिरोन्नता । 459
तिरश्चीना यथा गूढा तथा चकिततारका ।
सा दृष्टिः शङ्कता प्रोक्ता शङ्कायां पूर्वसूरिभिः ॥४५५॥ 460

दृश्य पदार्थ से तुरन्त लोट आने वाली, बार-बार चंचल, स्थिर, ऊपर उठी हुई, तिरछी, गूढ और चकित तारो वाली दृष्टि शक्तिता कहलाती है। पूर्वाचार्यो ने शका (द्विविधा, आशका) के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

७ विषण्णा और उसका विनियोग

स्त्रस्तापाङ्ग स्तब्धतारा विस्फारितपुटोभया ।
निमेषिणी या सा दृष्टिर्विषण्णोक्ता विषादिनी ॥४५६॥ 461

गिरी हुई पलको वाली, निश्चल पुतली वाली, फैली हुई दोनो पलको वाली और पलक भाजने वाली दृष्टि विषण्णा कहलाती है। विषाद का भाव व्यक्त करने में उसका विनियोग होता है।

८ मुकुला और उसका विनियोग

योत्लसल्लग्रपक्षमाग्रा सुखामीलत्कनीनिका ।
सा दृष्टिर्मुकुलानन्दे मञ्जुलसर्शगन्धयोः ॥४५७॥ 462

नृथ्याध्यायः

जिसमे बरौनियो के अग्रभाग खिले हुए तथा मिले हुए हो और पुतलियो सुख के कारण उन्मीलित हो वह दृष्टि मुकुला कहलाती है। आनन्द, सुन्दर, स्पर्श तथा गन्ध के भावों को अभिव्यक्त करने में उसका विनियोग होता है।

९ कुञ्चिता और उसका विनियोग

आकुञ्चत्पुटपक्षमाग्रा सम्यक्कुञ्चत्कनीनिका ।

या दृष्टिः कुञ्चिता सोक्ता तेजोदुष्प्रेक्षव[स्तु]नि । 463

असूयिते तथानिष्टे नेत्रसंव्यथनेऽपि च ॥४५८॥

यदि पलक और बरौनियो के अग्रभाग सिकुड़े हुए हो और तारे भी अच्छी तरह सिकुड़े हुए हो, तो उसे कुञ्चिता दृष्टि कहते हैं। तेज, कठिनाई से दिखायी देने वाली वस्तु को देखने, ईर्ष्या, अनिष्ट और नेत्र-पीडा के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

१० अभितप्ता और उसका विनियोग

निरीक्षणालसे तारे व्यथया चलितौ पुटौ । 464

यत्र सन्तापलघ्नान्ता साभितप्ता दृगीरिता ।

उपतापेऽभिघातेऽपि निर्वेदाभिनये तथा ॥४५९॥ 465

जिसकी पुतलियाँ देखने में आलस्ययुक्त हो, व्यथा के कारण दोनों पलके चलायमान हो आर कोरे सन्ताप में झुञ्जी हुई हो, वह दृष्टि अभितप्ता कहलाती है। रोग, चोट और अवसाद के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

११ जिह्मा

निगूढम्रस्ततारा या शनैस्तिर्यग्निरीक्षणा ।

आकूणितपुटा गूढा जिह्मा दृष्टिरुदीरिता ॥४६०॥ 466

जिसकी पुतलियाँ छिपी एव गिरी या लटकी हुई हो, धीरे-धीरे तिरछी चितवन डालती हो, जिसकी पलके कुछ सकुचित हो और जो गूढ हो, वह दृष्टि जिह्मा कहलाती है।

१२ ललिता और उसका विनियोग

सस्मिता कुञ्चितप्रान्ता मधुरा भ्रूविकारयुक् ।

विकाशिता मनोजन्मविस्तारसहिता च या । 467

सा दृष्टिर्ललिता धीरैर्ललिते सम्प्रयुज्यते ॥४६१॥

दृष्टि प्रकरण

मुसकुराती हुई, सिकुड़ी हुई कोरे वाली, मधुर, भ्र-भगिमा से युक्त, विकसित, कामभाव प्रकट करने वाली ओर लम्बी दृष्टि ललिता कहलाती है। ललित भावों के अभिव्यजन में वीर पुम्पों ने उसका विनियोग बताया है।

१३ वितर्किता और उसका विनियोग

तर्कंद्भुते पुटद्वन्द्वया या विकाशिततारका । 468

अधस्तात्सञ्चरन्ती सा दृष्टिरुक्ता वितर्किता ॥४६२॥

अद्भुत तर्क में लगी हुई दोनों पलकों वाली, ग्विले हुए तारों वाली ओर नीचे की ओर मचरण करने वाली दृष्टि वितर्किता कहलाती है। (अद्भुत रम को उपस्थित करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है)।

१४ अर्धमुकुला और उसका विनियोग

स्तोकोन्मीलितताराख्या मानाकुञ्चत्पुटद्वया । 469

किञ्चिद्दुत्फुल्लपक्षमाग्रा दृक् सार्धमुकुला सुखे ॥४६३॥

अर्ध मुकुलित तारों वाली, कुछ कृञ्चित हुई दोनों पलकों वाली और ईपत् ग्विली हुई वरानियों के अग्रभाग वाली दृष्टि अर्धमुकुला कहलाती है। सुख के भावों के अभिव्यजन में उसका विनियोग होता है।

१५ आकेकरा और उसका विनियोग

आकुणितपुटापाङ्गा मुहुस्तरलतात्का । 470

तिर्यग्निवेशिता यार्धनिमेषसहिता च दृक् ॥४६४॥

साकेकरा दुर्नरीक्ष्ये विच्छेदप्रेक्षितेऽपि च । 471

स्नेहविच्छेदतः कान्ते सापराधे यदीक्षणम् ।

वीरसहसुतेनोक्तं विच्छेदप्रेक्षितं हि तत् ॥४६५॥ 472

जिसकी पलकें तथा कोरे कुछ सिकुड़ी हुई हों, पुतलियाँ बार-बार घूमती हों, जो तिरछी चितवन से युक्त हों और आधी खुली हुई हों, वह दृष्टि आकेकरा कहलाती है। कठिनाई से देखने और स्नेहभगपूवक दृष्टिपात करने में उसका विनियोग होता है। प्रिय के अपराधी होने पर स्नेहविच्छेदपूवक जो दृष्टि उस पर डाली जाती है, उसको अशोकमल्ल ने विच्छेदप्रेक्षित कहा है।

१६ विश्रान्ता और उसका विनियोग

या विश्रान्तिं कचिन्नैति लोलोत्फुल्लकनीनिका ।

विस्तीर्णा च बुधैः सोक्ता दृष्टिर्विभ्रान्तसंज्ञिका । 473
विभ्रमे सा तथा वेगे विरामेऽपि नियुज्यते ॥४६६॥

जो कही विश्राम नहीं पाती तथा चञ्चल रहती है, जिसकी पुतलियाँ खिली हुई हो और जो फैली हुई हो, उसे विद्वानो ने विभ्रान्ता दृष्टि कहा है। भ्रान्ति (बेचैनी), आवेग और विराम के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है।

१७ विलुप्ता और उसका विनियोग

स्फुरितौ या पुटौस्तब्धौ पतितावपि चेत्क्रमात् । 474
धत्ते सा विप्लुता दृष्टिर्गदिता चापले बुधैः ।
उन्मादे च तथात्तौ च दुखादावपि युज्यते ॥४६७॥ 475

जो दृष्टि क्रमशः क्षुब्ध, स्थिर तथा गिरी हुई दोनों पलको को धारण करती है (अर्थात् इन स्थितियों में वर्तमान रहती है) उसे विलुप्ता कहते हैं। चपलता, उन्माद, पीडा तथा दुःख आदि के अभिनय में विद्वानो ने उसका विनियोग बताया है।

१८ त्रस्ता और उसका विनियोग

त्रासोद्भ्रमत्पुटद्वन्द्वौ या कम्पितकनीनिका ।
उत्फुल्लमध्यमा त्रस्ता सा दृष्टिस्त्रासगोचरा ॥४६८॥ 476

जिसकी दोनों पलके भय से घूमती हो, पुतलियाँ कापती हो और जिसका मध्य भाग विकसित हो उसे त्रस्ता दृष्टि कहा जाता है। त्रास के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

१९ विकोशा और उसका विनियोग

उत्फुल्लपुटयुग्माग्रा यानवस्थिततारका ।
निर्निमेषा समुत्फुल्ला विकोशा सा दृगीरिता । 477
उग्रदर्शनविज्ञानक्रोधेषु ज्ञानगर्वयोः ॥४६९॥

जिसकी दोनों पलको के अग्रभाग खिले हो, पुतलियाँ घूमती हो, पलके निर्निमेष (अपलक) हो और जो अत्यन्त विकसित हो, वह दृष्टि विकोशा कहलाती है। भयकर दर्शन, विज्ञान, क्रोध, पाण्डित्य और गर्व के भावों के अभिव्यजन में उसका विनियोग होता है।

दृष्टि प्रकरण

२० त्रिविधा मदिरा और उसका विनियोग

आघूर्णितान्तरा क्षान्ना किञ्चिदञ्चिततारका ।	478
त्रिक्रमिता चला दृष्टिर्मदिरा तरणे मदे [१] ॥४७०॥	
मनाक्स्त्रस्तपुटा दृष्टिर्या किञ्चिद्भ्रान्ततारका ।	479
अनवस्थितसंचारा मुहुः पक्षमाग्रपीडिता ॥४७१॥	
मदिरा सा मदे धीरैर्मध्यमे परिकीर्तिता [२] ।	480
अधस्तात्सञ्चरन्ती या किञ्चिल्लक्षिततारका ।	
सनिमेषा च सा धीरैर्मदिरोक्ताऽधमे मदे [३] ॥४७२॥	481

मदिरा दृष्टि के तीन भेद कहे गये हैं, जिनका लक्षण-विनियोग इस प्रकार है (१) जिस दृष्टि का भीतरी भाग घमता हो, जो क्षीण हो, जिमकी पुतली कुछ झुकी हो और जो खिली हुई तथा चञ्चल हो, उसे मदिरा कहते हैं। पर्ण मद के अभिनय में उसका विनियोग होता है। (२) जिस दृष्टि की पलक कुछ गिरी हुई हो, पुतली कुछ घम रही हो, गति अस्थिर हो और जो वगानी के अग्रभाग से बार-बार पीडित हो, उसे भी मदिरा कहते हैं। धीर पुरुषों ने मन्थम मद के अभिव्यजन में उसका विनियोग बताया है। (३) जो दृष्टि नीचे की ओर संचरण करती हो, जिसकी पुतली कम दिखायी पडती हो और जो पलक मारती हो, उसे भी मदिरा कहते हैं। धीर पुरुषों ने अधम मद के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

दृष्टि के अनन्त भेद

षट्त्रिंशद् दृष्टयस्त्वेता दिङ्मात्रेण मयोदिताः ।	
अनन्ता भ्रू पुटादीना सन्दर्भात् सन्ति दृष्टयः ॥४७३॥	482
स्फुटयन्त्यो रसादीन् याः करैरपि निवेदिताः ।	
चतुर्मुखोऽपि ता वक्तुं समर्थो नेतरः कथम् ॥४७४॥	483

उक्त छत्तीस प्रकार की दृष्टियाँ मैंने केवल दिग्दर्शन के लिए बतायी हैं। भवो तथा पलको आदि के संयोग से उनके अनन्त भेद हो जाते हैं। विभिन्न रमों के अनुसार उनका अभिव्यजन होता है, जो कि हस्ताभिनयो के सन्दर्भ में यथास्थान निरूपित की गयी है। स्वयं ब्रह्मा भी उन समस्त भेदों का वर्णन करने में असमर्थ है, फिर दूसरे की बात का तो कहना ही क्या ?

छत्तीस प्रकार की दृष्टियों का निरूपण समाप्त



सात प्रकार की भ्रू (भौ) का अभिनय

भ्रू के भेद

सहजा रेचितोत्क्षिप्ता कुञ्चिता पतिता तथा ।

चतुरा भ्रुकुटी चेति सद्भिर्भ्रूः सप्तधोदिता ।

484

सज्जनो ने भौ के सात भेद बताये हैं १ सहजा, २ रेचिता, ३ उत्क्षिप्ता, ४ कुञ्चिता, ५ पतिता, ६ चतुरा ओर ७ भ्रुकुटी ।

१ सहजा और उसका विनियोग

सहजा तु स्वभावस्था भावेषु सहजेषु सा ॥४७५॥

स्वाभाविक स्थिति में रहने वाली भौ सहजा कहलाती है । सहज भावों के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

२. रेचिता और उसका विनियोग

भ्रूरेका ललितोत्क्षिप्ता रेचिता नृत्तसंश्रया ॥४७६॥ 485

एक ही भौ को सुन्दरता के साथ ऊपर उठाने को रेचिता कहते हैं । ललित भावों के अभिव्यजन में उसका विनियोग होता है ।

३ उत्क्षिप्ता और उसका विनियोग

अन्वर्थलक्षणोत्क्षिप्ता क्रमाद्वाथान्यया सह ।

कोपे स्त्रीणा वितर्के च श्रवणे दर्शने निजे ।

486

लीलादावपि हेलायां नियोज्यैषा मनीषिभिः ॥४७७॥

यदि भौवों को क्रमशः अथवा एक के साथ दूसरी को (अर्थात् एक साथ) ऊपर उठाया जाय तो उसे उत्क्षिप्ता कहा जाता है । स्त्रियों के कोप, तर्क-वितर्क, श्रवण, आत्मदर्शन, लीला और अवज्ञा के भावों के अभिव्यजन में मनीषियों ने उसका विनियोग बताया है ।

४ कुञ्चिता और उसका विनियोग

मृदुभङ्गा तु यैकाभ्रूर्यद्वा सार्धद्वितीयया ।

487

भ्रुवा सा कुञ्चिता प्रोक्ता विलासे किलकिञ्चिते ।

सोढायिते कुट्टमिते नियुक्ता सा प्रयोक्तृभिः ॥४७८॥

488

दृष्टि प्रकरण

यदि एक या दोनो भौहो को मूढुना के साथ टेटा कर दिया जाय या झुका दिया जाय तो उमे कुञ्चिता भौ कहते ह । विलास (क्रीडा-खेल-मनोरंजन) किलकजित, मोट्टायित और कूट्टमित के अभिनय मे नाट्याचार्यो ने उसका विनियोग बताया हे । (किलकजित एक हाव है, जिसमे नायिका एक साथ कई भाव प्रकट करती है । मोट्टायित भी एक हाव ह, जिसमे नायिका का अनुराग छिपाने की चेष्टा करने पर भी प्रकट हो जाता है । इसी प्रकार कूट्टमित भी एक हाव है, जिसमे नायिका मुग्धानुभव के समय बनावटी दुःखचेष्टा प्रकट करती है) ।

५ पतिता और उसका विनियोग

पतिता भ्रूधः प्राप्ता म्द्वितीया क्रमेण वा ।

हासे ध्राणे विस्मये च रोषे हर्षजुगुप्सयोः । 489

असूयोत्क्षेपयोश्चोभे पतिते गदिते भ्रुवौ ॥४७६॥

यदि दोनो भौ एक साथ या क्रमश एक-एक करके नीचे झुका दी जाय तो उन्हे पतिता कहा जाता है । हास, ध्राण, विस्मय, क्रोध, हर्ष और घृणा के अभिनय मे उसका विनियोग होता है । ईर्ष्या और फंफने के भावो के अभिव्यजन मे दोनो पतिता भौहो का प्रयोग करना चाहिए ।

६ चतुरा और उसका विनियोग

स्तोकस्पन्दाऽलसा या भ्रूरायता स्याद् द्वितीयया । 490

चतुरा सा भवेत्सौम्यसस्पर्शं ललितेऽपि च ।

श्रृङ्गाराभिनयेऽप्येव ज्ञेया अभिनयाः परे ॥४८०॥ 491

जो भौ किञ्चित् चलती हो, आलस्ययुक्त हो और दूसरी भौ के साथ फैली हुई हो उसे चतुरा कहते है । कोमल स्पर्श, ललित वस्तु ओर श्रृंगारिक अभिनय मे उसका विनियोग होता है । अन्य अभिनयो मे भी इसी प्रकार उसका विनियोग समझ लेना चाहिए ।

७ भ्रुकुटी और उसका विनियोग

द्वितीयया सहामूलोत्क्षिप्ता भ्रूकुटिना(?भ्रूकुटी)रुषि ॥४८१॥

यदि एक भौ दूसरी भौ के साथ जड के ऊपर उठा दी जाय (अर्थात् खूब तान दी जाय) तो उसे भ्रुकुटी कहते है । क्रोध के अभिनय मे उसका विनियोग होता है।

नौ प्रकार की पलको का अभिनय

पलको के भेद

समौ विवर्तितौ स्याता प्रसृतौ कुञ्चितौ तथा । 492

पिहितौ स्फुरितौ स्याताम्कुञ्चितनिमेषितौ ॥४८२॥

वितालिताभिधौ चैव नवधेति पुटौ मतौ ।

493

पलको के नौ भेद बताये गये हैं १ सम, २ विवर्तित, ३ प्रसून, ४ कुञ्चित, ५ पिहित, ६ स्फुरित, ७ उन्मेषित, ८ निमेषित और ९ वितालित ।

१ सम और उसका विनियोग

पुटौ साहजिकौ स्यातां समौ सहजगोचरौ ॥४८३॥

स्वाभाविक स्थिति में विद्यमान पलके सम कही जाती है । स्वाभाविक स्थिति के प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है ।

२. विवर्तित और उसका विनियोग

विवर्तितौ समुद्भ्रान्तौ क्रोधे प्रोक्तौ मनीषिभिः ॥४८४॥

494

भ्रमित या अस्तव्यस्त पलके विवर्तित कहलाती है । क्रोध के अभिनय में उनका विनियोग होता है ।

३. प्रसून और उसका विनियोग

प्रसृतौ त्वायतावुक्तौ विस्मये हर्षवीरयोः ॥४८५॥

फैली या लम्बायमान पलके प्रसृत कहलाती है । विस्मय, हर्ष, तथा वीरता के अभिनय में उनका विनियोग होता है ।

४ कुञ्चन और उसका विनियोग

अन्वर्थौ कुञ्चितौ स्यातामनिष्टे प्रेक्षणे रसे ।

495

गन्धे स्पर्शे तथा प्रोक्तौ वीरत्तहजुसूनुना ॥४८६॥

सिकुडी हुई पलके कुञ्चित कहलाती है । अनिष्ट, निरीक्षण, रस, गन्ध तथा स्पर्श के अभिनय में उनका विनियोग होता है ।

५ पिहित और उसका विनियोग

अन्वर्थौ पिहितौ प्रोक्तौ सुप्तेऽक्षिव्यथनेऽपि च ।

496

मूर्च्छातिवर्षयोरुष्णवातधूमाञ्चनार्तिषु ॥४८७॥

बन्द की हुई दोनों पलके पिहित कहलाती है । शमन, नेत्रपीडा, मूर्च्छा, अतिदृष्टि, उष्णवात (लृ), घुआँ, आँजन और पीडा के अभिनय में उनका विनियोग होता है ।

६ स्फुरित और उसका विनियोग

अन्वर्थौ स्फुरितौ ज्ञेयौ धीरैरीर्ष्यास्विमौ मतौ ॥४८८॥ 497

फडकने वाली दोनो पलके स्फुरित कहलाती है। ईर्ष्या के अभिनय में वीर पुरुषो ने उनका विनियोग बताया है।

७. उन्मेषित और ८ निमेषित तथा उनका विनियोग

उन्मेषितावलग्नौ स्तः संलग्नौ तु निमेषितौ ।

इमावुभावपि ज्ञेयौ क्रोधाभिनयने बुधैः ॥४८९॥ 498

यदि दोनो पलको को खोल दिया जाय तो वे उन्मेषित और बन्द कर दिया जाय तो निमेषित कहलाती है। विद्वानो ने क्रोध के अभिनय में इन दोनो पलको का विनियोग बताया है।

९ वितालित और उसका विनियोग

वितालितावुत्तरेण पुटेनाध स्थिताहतेः ।

प्राहुः परे त्वलक्ष्ये तावतिविस्तारितौ पुटौ ॥४९०॥ 499

यदि ऊपर की पलक से नीचे की पलक पर चोट की जाय तो वे वितालित कहलाती है। दूसरे आचार्यों के मत से अत्यन्त फैली हुई पलके वितालित कहलाती है। अदृश्य वस्तु के अभिनय में उनका विनियोग होता है।

तारो (आँखो की पुतलियो) का निरूपण

तारो के भेद

ब्रुवेऽहं तानि कर्माणि ताराभेदा भवन्ति ये ।

द्विधा तान्यात्मनिष्ठानि विषयाभिमुखानि च ॥४९१॥ 500

अब तारा भेदो तथा उनके कार्यों का निरूपण किया जा रहा है। उनके कार्य दो प्रकार के होते हैं एक आत्मनिष्ठ और दूसरे विषयाभिमुख।

आत्मनिष्ठ ताराकर्म (१)

प्राकृतं भ्रमणं पातो वलनं चलनं तथा ।

प्रवेशनं समुद्वृत्तं निष्क्रामश्च विवर्तनम् ॥४९२॥ 501

नवोक्तान्यात्मनिष्ठानि ताराकर्माणि कोविदैः ।

विद्वानो ने आत्मनिष्ठ ताराकार्यों के नौ भेद बताये हैं १ प्राकृत, २ भ्रमण, ३ पात, ४ वलन, ५. चलन, ६ प्रवेशन, ७ समुद्वृत्त, ८ निष्क्राम और ९ विवर्तन।

नृत्याध्याय

१ प्राकृत

तारयोः समवस्थानं प्रकृत्या प्राकृतं मतम् ॥४६३॥ 502

तारो (पुतलियो) की समवस्थित स्वाभाविक स्थिति प्राकृत कहलाती है ।

२ भ्रमण

पुटान्तर्मण्डलावृत्तिस्तारयोर्भ्रमणं मतम् ॥४६४॥

पलको के भीतर तारो को मण्डलाकार में घुमाना भ्रमण कर्म कहलाता है ।

३ पात

पातोऽधोगमनम्—

तारो का नीचे गिराना पात कहलाता है ।

४ वलन

—तिर्यग्गमनं वलनं मतम् । 503

तारो का तिरछा घुमाना वलन कहलाता है ।

५ चलन

कम्पनं चलनं ज्ञेयम्—

तारो का काँपना चलन कहलाता है ।

६ प्रवेशन

—अथ तत् स्यात् प्रवेशनम् ॥४६५॥

पुटान्तरे प्रवेशो यः—

तारो का पलको के भीतर प्रवेश करना प्रवेशन कहलाता है ।

७ समुद्भूत

—समुद्भूतं समुन्नतम् । 504

तारो को ऊपर की ओर घुमाना या उन्नत करना समुद्भूत कहलाता है ।

८ निष्क्राम

निष्क्रामो निर्गमः प्रोक्तः—

तारो का बाहर निकलना निष्क्राम कर्म कहलाता है ।

९ विवर्तन

—कटाक्षः स्याद् विवर्तनम् ॥४६६॥

तारो का कटाक्ष करना विवर्तन कहलाता है ।

प्राकृतं समभावेषु भ्रमणं वीररौद्रयोः । 505
पातस्तु करुणे योज्यो बलनं वीररौद्रयोः ॥४६७॥

प्राकृत ताराकर्म का समभाव में, भ्रमण का वीर तथा रौद्र रस में, पात वा करुण रस में और बलन का वीर तथा रौद्र रस के अभिनय में प्रयोग होता है ।

भयानके तु चलनं युज्यते तु प्रवेशनम् । 506
हास्यबीभत्सयोर्धिरैः समुद्वृतं सता मतम् ॥४६८॥

भयानक रस के अभिनय में चलन तथा प्रवेशन ताराकर्मों का विनियोग होता है । वीर पुरुषों का कहना है कि हास्य तथा बीभत्स रस के अभिनय में समुद्वृत्त ताराकर्म का विनियोग करना चाहिए ।

वीरे रौद्रेऽथ निष्क्रामो वीरे रौद्रे भयानके । 507
अद्भुतेऽप्यथ कर्तव्य शृङ्गारे तु विवर्तनम् ॥४६९॥

वीर तथा रौद्र रस के अभिनय में निष्क्राम का ओर वीर, रौद्र, अद्भुत तथा शृंगार रस के अभिनय में विवर्तन तारा कर्म का विनियोग होता है ।

विषयाभिमुख ताराकर्म (७)

समं साच्यनुवृत्तं चावलोकितविलोकिते । 508
आलोकितोल्लोकिते च प्रविलोकितमित्यपि ॥५००॥

विषयाभिमुखान्याहुर्दर्शनानीति सूरयः । 509
विद्वानो ने तारो (पुतलियो) के विषयाभिमुखदर्शनो के आठ भेद बताये हैं १ सम, २ साचि, ३ अनुवृत्त, ४ अवलोकित, ५ विलोकित, ६ आलोकित, ७ उल्लोकित और ८ प्रविलोकित ।

१ सम

मध्यस्थतारक सौम्यं दर्शनं सममीरितम् ॥५०१॥

यदि तारो को बीच में अवस्थित करके सौम्य दृष्टि से देखा जाय तो उसे सम कहते हैं ।

२ साचि

तत् साचि यत् तिरश्चीनं पक्ष्मप्राप्तकनीनिकम् ॥५०२॥ 510

यदि बरौनियो की ओर तारो को घुमाकर तिरछी चितवन से देखा जाय तो उसे साचि कहते हैं ।

३ अनुवृत्त

कात्स्न्यादन्तश्चिरस्था या दिदृक्षा सा बुधैर्मता ।

निर्वर्णना तथा युक्तमनुवृत्तमुदीरितम् ॥५०३॥ 511

नूत्याध्याय

विद्वानो का मत है कि सम्पूर्ण रूप से चिरकाल तक रहकर भीतर देखने की जो इच्छा होती है वह निर्वर्णना कहलाती है और उस (निर्वर्णना) से युक्त दर्शन अनुवृत्त कहलाता है ।

४ अवलोकित

अधस्ताद्दर्शनं यत् स्यादवलोकितमीरितम् ॥५०४॥

नीचे पृथिवी की ओर तारना अवलोकित कहलाता है ।

५ विलोकित

तद् विलोकितमाख्यातं पृष्ठतो यन्निरीक्षणम् ॥५०५॥ 512

पृष्ठभाग से निरीक्षण करना या तारो को घुमाकर पीछे देखना विलोकित कहलाता है ।

६ आलोकित

यदीक्षणं स्वभावस्थमुक्तमालोकितं हि तत् ॥५०६॥

स्वाभाविक स्थिति में रहकर दृष्टिपात करना आलोकित कहलाता है ।

७ उल्लोकित

यदूर्ध्वं दर्शनं सद्भिस्तदुल्लोकितमीरितम् ॥५०७॥ 513

ऊपर की ओर जो दृष्टिपात किया जाता है, सज्जनो ने उसे उल्लोकित कहा है ।

८ प्रविलोकित

पार्श्वतः प्रेक्षणं धीरैर्गदितं प्रविलोकितम् ॥५०८॥

पार्श्व देश से दृष्टिपात करने को विद्वानो ने प्रविलोकित कहा है ।

विनियोग

रसभावेषु तान्याहुः साधारण्येन सूरयः ॥५०९॥ 514

विद्वानो ने सामान्यत रस-भावो के प्रदर्शन में विषयाभिमुखदर्शनो का विनियोग बताया है ।

दृष्टि निरूपण समाप्त



उपाग प्रकरण / चार

उपांगाभिनय और उनका विनियोग

छह प्रकार का नासाभिनय

अशोकमल्ल ने नासाभिनय के छह भेदों का उल्लेख किया है। उनके नाम हैं १ स्वाभाविकी, २ विकृष्टा, ३ सोच्छ्वासा, ४ विकूणिता, ५ नता जार ६ मन्दा।

१ स्वाभाविकी और उसका विनियोग

स्वाभाविकी स्वभावस्था स्वाभावाभिनये मता ॥५१०॥

स्वाभाविक रूप में अवस्थित नासिका को स्वाभाविकी कहते हैं। स्वभाव के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

२ विकृष्टा और उसका विनियोग

अत्युत्फुल्लपुटा नासा विकृष्टा भीतिरोषयोः । 515

आतौ तथोर्ध्वश्वासे च तीव्रगन्धेऽप्युदाहृता ॥५११॥

यदि नासिका के नथुनों को अत्यधिक रूप से फुला दिया जाय, तो उसे विकृष्टा कहते हैं। भय, रोष, पीडा, ऊर्ध्वश्वास और तीव्र गन्ध के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३ सोच्छ्वासा और उसका विनियोग

योत्कृष्टमाहता नासा सा सोच्छ्वासोदिता बुधैः । 516

उच्छ्वासे सौरभेऽप्येषा दीर्घोच्छ्वासविधायिषु ।

निर्वेदादिष्वपि च या भावेषु विनियुज्यते ॥५१२॥ 517

विद्वानों का कहना है कि यथेष्ट वायु से भरी (अर्थात् तेजी से ऊपर साँस खिचती) हुई नासिका सोच्छ्वासा कहलाती है। साँस को ऊपर खींचने, सुगन्ध ग्रहण करने, उच्छ्वास लेने और वैराग्य या दुःख आदि के भावों को अभिव्यक्त करने में उसका विनियोग होता है।

४. विकूणिता और उसका विनियोग

नासा संकुचिता या स्यात् सोक्ता धीरैर्विकूणिता ।

आतौ हास्ये जुगुप्सायामसूयायामपि सा स्मृता ॥५१३॥ 518

जिस नासिका के नथुने सिकोड लिये जायँ उसे विकूणिता कहते हैं । विद्वानो ने पीडा, हास्य, जुगुप्सा और असूया के भावों में उसका विनियोग बताया है ।

५. नता और उसका विनियोग

मुहुर्लग्नपुटा या तु सा नता सद्भिरीरिता ।

विच्छिन्नमन्दरुदिते सोच्छ्वासे सा निरूपिता ॥५१४॥ 519

यदि नथुनो को बार-बार सटाया या हिलाया जाय तो, विद्वानो ने उस नासिका को नता कहा है । सिसकने और साँस को ऊपर खींचने में उसका विनियोग होता है ।

६. मन्दा और उसका विनियोग

ईषच्छ्वासोच्छ्वासयुक्ता नासा मन्दोदिता बुधैः ।

चिन्तानिर्वेदयोः शोके तथोत्सुक्ये नियुज्यते ॥५१५॥ 520

मन्द श्वास एव उच्छ्वास से युक्त नासिका को विद्वानो ने मन्दा कहा है । चिन्ता, निर्वेद (वैराग्य), शोक और उत्सुकता का भाव प्रदर्शित करने में उसका विनियोग होता है ।

उन्नीस प्रकार का वायु अभिनय

वायु के भेद (ऊर्ध्वश्वास अधश्वास)

स्वस्थौ चलौ विमुक्तश्च प्रवृद्धोल्लासितौ तथा ।

निरस्तस्खलितौ श्वासः प्रसृतो विस्मितस्तथा ॥५१६॥ 521

नवधोच्छ्वासनिःश्वासावेवं कोहलकीर्त्तितौ ।

आचार्य कोहल के मत से उच्छ्वास (साँस खींचने) ओर निश्वास (साँस छोड़ने) के नौ भेद होते हैं । १ स्वस्थ २. चल, ३ विमुक्त, ४ प्रवृद्ध, ५ उल्लासित, ६. निरस्त, ७ स्खलित, ८ प्रसृत और ९ विस्मित ।

समो भ्रान्तः कम्पितश्च विलीनान्दोलितौ नतः ॥५१७॥ 522

स्तम्भितश्च तथोच्छ्वासनिःश्वासौ सूत्कृतं तथा ।

सोत्कृतं चेति स प्रोक्तो दशधा लक्ष्मवेदिभिः ॥५१८॥ 523

उपांग प्रकरण

शास्त्रकारो ने वायु के दस भेदों का उल्लेख किया है, जिनके नाम हैं १ सम २ भ्रान्त, ३ कम्पित, ४ बिलीन, ५ आन्दोलित, ६ स्तम्भित, ७ उच्छ्वास, ८ निश्वास, ९ सूक्त और १० सीकृत ।

१ स्वस्थ और उसका विनियोग

स्वभावजौ यावुच्छ्वासनिश्वासाख्यौ तु माहृतौ ।

तौ स्वस्थौ स्वस्वकार्येषु विन्द्युत्तौ नियोक्तृभिः ॥५१६॥ 524

उच्छ्वास और निश्वास नामक स्वाभाविक रूप से गृहीत एव निःसृत वायु स्वस्थ कहलाता है । नृत्ताचार्यों ने सामान्यतः सभी अभिनयों के भावों में उसका विनियोग बताया है ।

२ चल और उसका विनियोग

उष्णावुच्छ्वासनिश्वासौ सशब्दौ वक्त्रनिर्गतौ ।

यौ तौ चलौ शोकचिन्तासमौत्सुक्येषु कीर्तितौ ॥५२०॥ 525

जो उच्छ्वास तथा निश्वास गर्म, शब्दयुक्त तथा मुख से निकले वे चल कहलाते हैं । शोक चिन्ता तथा तत्सम उत्सुकता के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

३ विमुक्त और उसका विनियोग

चिर निरुध्य यो मुक्तो विमुक्तः सोऽनिलो मतः ।

ध्याने योगे सद्भिरेष प्राणायामे च युज्यते ॥५२१॥ 526

जिस वायु को चिरकाल तक रोक कर छोड़ दिया जाय उसे विमुक्त कहा जाता है । सज्जनों ने ध्यान, योग तथा प्राणायाम के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

४ प्रवृद्ध और उसका नियोग

यो निःश्वासः प्रवृद्धः सन्न सशब्दः स्याद् विनिर्गतः ।

प्रवृद्धनामासौ वायुः क्षयव्याध्यादिसंश्रयः ॥५२२॥ 527

जो निश्वास-वायु बहुत बढ़ कर या (अवरुद्ध होकर) शब्द के साथ बाहर निकलता है, उसे प्रवृद्ध कहते हैं । क्षय रोग आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

५ उल्लासित और उसका विनियोग

यो नासया शनैः पीतश्चिरादुल्लासितस्तु सः ।

हृद्यगन्धे च सन्दिग्धे नियुक्तः पूर्वसूरिभिः ॥५२३॥ 528

नृत्याध्याय

जिस वायु को चिरकाल तक धीरे-धीरे नासिका द्वारा पिया (ज्यात् खीचा) जाय, उसे उल्लासित कहा जाता है। सुगन्ध और सन्दिग्ध वस्तु के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

६ निरस्त और उसका विनियोग

क्षिप्तः सकृत् सशब्दो यो निरस्तः सोऽभिधीयते ।

स रोगे दुःखसंयुक्ते श्रान्तेऽप्येष नियुज्यते ॥५२४॥ 529

जिस वायु को एक ही बार शब्द के साथ छोड़ दिया जाय, वह निरस्त कहलाता है। रोग, दुःख, सतप्त और थके हुए के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

७ स्वलित और उसका विनियोग

यो निष्क्रान्तोऽतिदुःखेन स वायुः स्वलिताभिधः ।

दशायामन्तिमायां स व्याधिस्खालितयोरपि ॥५२५॥ 530

जो वायु अत्यन्त कष्ट से बाहर निकलता है, उसे स्वलित कहा जाता है। अन्तिम दशा, व्याधि तथा पतन के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

८ प्रसृत और उसका विनियोग

मुखाद् यो निर्गतो दीर्घः सशब्दः प्रसृतस्तु सः ।

प्रसुप्ताभिनये प्रोक्तोऽशोकमल्लेन धीमता ॥५२६॥ 531

जो दीर्घ श्वास शब्द के साथ मुख से निकलता है, वह प्रसृत कहा जाता है। धीमान् अशोकमल्ल ने सोये हुए के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

९ विस्मित और उसका विनियोग

प्रयत्नेन विना यः स्याच्चित्तस्यान्यप्रसक्तितः ।

स विस्मितोऽद्भुते कार्यश्चिन्ताविस्मययोरपि ॥५२७॥ 532

अन्यमनस्कावस्था में, विना प्रयत्न के (स्वभावतः) जो वायु मुख से निकलता है वह विस्मित कहा जाता है। आश्चर्य, चिन्ता और विस्मय के अभिनय में उसका विनियोग करना चाहिए।

दसविध वायु के विनियोग

दश त्वन्वर्थलक्षमाणो विज्ञातव्याः समादयः ।

(श्लोक ५१७ और ५१८ में) वायु के दस भेद बताये गये हैं उनके लक्षणों के अनुरूप ही विनियोग भी समझने चाहिएँ।

समः सहजकार्येषु भ्रान्तो बल्लभसंगमे ॥५२८॥	533
प्रथमेऽथ बुधैरुक्तः कम्पितः सुरतेऽनिल ।	
मूर्च्छते तु विलीनोऽथ मरुदान्दोलितो भवेत् ॥५२९॥	534
पर्वतारोहणेऽथ स्यात् स्तम्भितः शस्त्रमोक्षणे ।	
आघ्राणे कुसुमादीनामुच्छ्वासः परिकीर्तितः ॥५३०॥	535
पश्चात्तापादिषु प्रोक्तो निःश्वासो नृत्तपण्डितैः ।	
वेदनादौ सूक्तं स्याच्छीतदुःखे तु सीत्कृतम् ॥५३१॥	536
नखक्षते कामिनीना निर्दयाधरपीडने ।	

नृत्तविद्या-विशारदो का कहना है कि सम वायु का विनियोग स्वाभाविक कार्यो मे होता है । इसी प्रकार अभिनय मे भ्रान्त वायु का प्रिय-समागम मे, कम्पित वायु का प्रथम रति-प्रसंग मे, विलीन वायु का मूर्च्छा मे, आन्दोलित वायु का पर्वत पर चढने मे, स्तम्भित वायु का शस्त्र-संचालन मे, उच्छ्वास वायु का पुष्प आदि स्रग्ने मे, निःश्वास वायु का पश्चात्ताप आदि मे, सूक्त वायु का वेदना मे, और सीत्कृत वायु का शीत, पीडा, नखक्षत्रत तथा कामिनियो के अधरो का कसकर दन्तक्षत करने मे विनियोग होता है ।

एवं लोकाद् बुधैरुह्या नियोगा इतरेऽपि च ॥५३२॥	537
नासानिलप्रसङ्गेन मुखवातोऽपि लक्षितः ॥५३३॥	

इसी प्रकार विज्ञ अभिनेताओ को चाहिए कि लोक-परम्परा के द्वारा वे अन्य वायु-भेदो तथा उनके विनियोगो को जान ले । यहाँ नासा-वायु मे मुख-वायु को भी ग्रहण कर लेना चाहिए ।

दस प्रकार के अधरो का अभिनय

अधर के भेद

विवर्त्तितो विसृष्टश्च कम्पितो विनिगूहितः ।	538
सन्दष्टकः समुद्गाख्योऽधरः षोढेति दर्शितः ॥५३४॥	

अधरो (नीचे के ओठ) के छह भेद होते है, जिनके नाम है १ विवर्त्तित, २ विसृष्ट, ३ कम्पित ४ विनिगूहित, ५ सन्दष्टक और ६ समुद्गक ।

विकासिरेचितोद्बृत्तायतानन्यान् परे विदुः ।	539
--	-----

दूसरे आचार्यो ने अधरो के चार भेद और बताये है १ विकासी, २ रेचित, ३ उद्बृत्त और ४ आयत ।

१. विवर्तित और उसका विनियोग

तितर्वसंकुचितो यः स्यादधरः स विवर्तितः । 540

असूयावज्ञयोर्हास्यवेदनादिषु कीर्तितः ॥५३५॥

जो अधर (घृणा से) तिरछा होकर सिकुड जाय वह विवर्तित कहलाता है। असूया, अवज्ञा (अनादर), हास्य और वेदना आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

२ विसृष्ट और उसका विनियोग

विनिष्क्रान्तो विसृष्टः स्याद् द्रव्येणालक्तकादिना ।

रञ्जने सविलासेऽपि बिम्बोकेऽपि च सुभ्रुवाम् ॥५३६॥ 541

जो अधर आगे निकला हो वह विसृष्ट कहलाता है। सुन्दरियो द्वारा विलामपूर्वक महावर आदि से अवरो को रगने और रूपादि के गर्व से प्रिय की उपेक्षा करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३ कम्पित और उसका विनियोग

अन्वर्थः कम्पितः शीतरुद्भीषीडाजपादिषु ॥५३७॥

काँपता हुआ अधर कम्पित कहलाता है। शीत, रोग, पीडा, और जप आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

४ विनिगूहित और उसका विनियोग

वदनान्तःप्रवेशनायासे स्याद् विनिगूहितः । 542

स ईर्ष्यारोषयोः स्त्रीणां हठाच्चुम्बति च प्रिये ॥५३८॥

जिस अधर को मुख के भीतर छिपा लेने से कण्ट (आयास) हुआ हो (अर्थात् जिस अधर को आयासपूर्वक मुख के भीतर छिपा लिया जाय), वह विनिगूहित कहलाता है। स्त्रियों की ईर्ष्या तथा कोप और उनका बलात् चुम्बन लेते हुए प्रिय के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

५ सन्दष्टक और उसका विनियोग

योऽधरो दशनैर्दण्डः क्रोधे सन्दष्टकस्तु सः ॥५३९॥ 543

जिस अधर को दाँतो से काटा (या चबाया) जाय, वह सन्दष्टक कहलाता है। क्रोध के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है।

६ समुद्गक और उसका विनियोग

यो दधात्युन्नतावोष्ठसम्पुटौ स समुद्गकः ।

चुम्बनेष्वनुकम्पायां फूत्कारेऽप्यभिनन्दने ॥५४०॥ 544

उपाग प्रकरण

जिसके दोनो ओष्ठपुट उन्नत हो (अर्थान् जो ओष्ठ अपनी स्वाभाविक स्थिति में हो) वह अघर **समुद्गक** कहलाता है । चुम्बन आदि कृपा, फूकने ओर अभिनन्दन करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

७ उद्वृत्त और उसका विनियोग

उद्वृत्तो वदनोत्क्षेपात् सोऽवज्ञापरिहासयोः ॥५४१॥

जिस अघर को मुँह की ओर उठाया गया हो, वह उद्वृत्त कहलाता है । अनादर आर परिहास के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

८ विकासी और उसका विनियोग

किञ्चिल्लक्ष्योर्ध्वदन्तो यः स विकासी स्मिते मतः ॥५४२॥ 545

जिस अघर के ऊपर दाँत कुछ दिखायी पड़े, वह विकासी कहलाता है । ईपत् हास्य (मुसकुराहट) के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

९ रेचित और उसका विनियोग

रेचितोन्वर्थलक्ष्मा स्याद् विलासे स नियुज्यते ॥५४३॥

साफ किया गया अघर रेचित कहलाता है । विलास के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

१० आयत और उसका विनियोग

ततः सहोत्तरोष्ठेनायतः स्यात् सोऽद्भुते रसे ॥५४४॥ 546

ऊपर के ओठ के साथ फैला हुआ अघर आयत कहलाता है । अद्भुत रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

छह प्रकार का जिह्वा अभिनय

जिह्वा के भेद

ऋज्वी लोला लेहिनी च वक्रा सृक्कानुगोन्नता ।

षोढेति रसनां प्राहाऽशोकमल्लो नृपाग्रणीः ॥५४५॥ 547

महाराज अशोकमल्ल ने जिह्वा के छह भेद बताये हैं, जिनके नाम हैं १ ऋज्वी, २ लोला, ३ लेहिनी, ४ वक्रा, ५ सृक्कानुगा और ६ उन्नता ।

१. ऋज्वी और उसका विनियोग

ऋज्वी सा व्यात्तवक्त्रे या रसना स्यात् प्रसारिता ।

एषा श्रमे श्वापदानां पिपासायामपि स्मृता ॥५४६॥ 548

१६९

नृत्याध्याय

खोले हुए मुँह में फैलायी गयी जिह्वा को ऋज्वी कहते हैं। थम और हिंस्र पक्षुओं की प्यास के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

२. लोला और उसका विनियोग

व्यात्तास्ये या चला लोला सा वेतालनिरूपणे ॥५४७॥

खोले हुए मुँह में लपलपाती जिह्वा को लोला कहते हैं। वेताल के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३. लेहनी

या जिह्वा लेढि दन्तोष्ठं सा सद्भिर्लेहिनी मता ॥५४८॥ 549

जो जिह्वा दाँत और ओष्ठ को चाटती हो, सज्जनों ने उसे लेहनी कहा है।

४. वक्रा और उसका विनियोग

प्रसृतास्यान्नताग्रे या सा वक्रा नृहरो मता ॥५४९॥

जो आगे फैली हुई जिह्वा अग्र भाग से झुकी हो, वह वक्रा कहलाती है। नृमिह के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

५. सूक्कानुगा और उसका विनियोग

या जिह्वा लीढसूक्का सा प्रोक्ता सूक्कानुगा रुषि । 550

स्वादुभक्ष्ये चैवमन्ये ज्ञेया अभिनया अपि ॥५५०॥

जो जिह्वा ओष्ठ के प्रान्त भाग को चाटती हो वह सूक्कानुगा कहलाती है। त्रोंव तथा स्वादिष्ट भोजन के अभिनय में उसका विनियोग होता है। इसी प्रकार अन्य अभिनयों में भी उसका विनियोग समझ लेना चाहिए।

६. उन्नता और उसका विनियोग

प्रसारितमुखे या वोन्नता जिह्वोन्नता मता । 551

सा वक्त्रान्तस्थवीक्षया जृम्भाभिनयनेऽपि च ॥५५१॥

फैलाये हुए मुँह में जो जिह्वा ऊपर की ओर उठी हो, वह उन्नता कहलाती है। मुँह के भीतर देखने तथा जम्हाई लेने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

आठ प्रकार के दन्तकर्म का निरूपण

दाँतों के भेद

भिद्यन्ते दशाना यैस्तु तानि कर्माण्यहं ब्रुवे ।

552

समं छिन्नं खण्डनं च चुक्कितं कुट्टनं तथा ॥५५२॥

दष्टनिष्कर्षणे तद्वद् ग्रहण चेति सञ्जगु । 453
अष्टौ दशनकर्माणि लक्ष्मलक्ष्यविशारदा ।

जिनमे दाँतो के भेद अवगत होते हैं उन कार्या का मैं यहाँ निरूपण कर रहा हूँ । लक्षण आर लक्ष्य के ज्ञाताओ ने दन्तकर्म के आठ भेद बताये हैं । उनके नाम हैं १ सम, २ छिन्न, ३ खण्डन, ४ चुक्कित, ५ कुट्टन, ६ दष्ट, ७ निष्कर्षण और ८ ग्रहण ।

१ सम और उसका विनियोग

सममुक्त मनाक् श्लेषस्तत् स्यात् सहजकर्मणि ॥५५३॥ 554

जिन दाँतो को किञ्चित् मिला लिया जाय उन्हें समकर्म कहन ह । सामान्यत मभी प्रकार के अभिनयो मे उसका विनियोग होता है ।

२ छिन्न और उसका विनियोग

छिन्न तु दृढसंश्लेषो रोदने व्याधिशीतयोः ।

वीटिकाश्लेदने भीतौ व्यायामादिष्वपि स्मृतम् ॥५५४॥ 555

दाँतो को दृढता से मिलाना छिन्न कर्म कहलाना ह । रुदन, व्याधि, शीत, कपडे की गाँठ काटने, भय ओर व्यायाम आदि के अभिनय मे उसका विनियाग होता ह ।

३ खण्डन और उसका विनियोग

मुहुर्दशनसंश्लेषविश्लेषः खण्डनं मतम् ।

संलापेऽध्ययने तत् स्याज्जपभक्षणयोरपि ॥५५५॥ 556

दाँतो को बार-बार मिलाना ओर जलग करना खण्डन कर्म कहलाता है । वार्तालाप, अव्ययन जप ओर भक्षण आदि के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

४ चुक्कित और उसका विनियोग

दूरे स्थितिर्दन्तपङ्क्तयोः चुक्कितं तच्च जृम्भणे ॥५५६॥

दोनो दन्त-पक्कियो को दूरी मे रखना चुक्कित कर्म कहलाता है । जम्हाई लेने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

५ कुट्टन और उसका विनियोग

कुट्टनं दन्तसघर्षः शीते भीरुग्जरास्विदम् ॥५५७॥ 557

दाँतो को रगडना या किटकिटाना कुट्टन कर्म कहलाता ह । ठडक भय, गेग और बुढापे के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

६. दष्ट और उसका विनियोग

अधरे दशनैर्दशो दष्टं क्रोधे निरूपितम् ॥५५८॥

दाँतो से अधर (नीचे का ओठ) को काटना दष्ट कर्म कहलाता है। क्रोध के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

७ निष्कर्षण और उसका विनियोग

निष्कर्षणं स्यान्निकासो मतं मर्कटरोदने ॥५५९॥ 558

दाँतो को बाहर निकालना निष्कर्षण कर्म कहलाता है। बन्दर के चिच्चियाने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

८ ग्रहण और उसका विनियोग

तृणादेर्धारणं दन्तैर्ग्रहणं परिकीर्तितम् ।

लेहनं जिह्वया लेहस्तल्लौल्याभिनये मतम् । 559

इत्याह ग्रहणस्थाने भरतो मुनिसत्तमः ॥५६०॥

दान्तो से तृण आदि पकड़ना ग्रहण कर्म कहलाता है। मुनिश्रेष्ठ भरत ने ग्रहण कर्म के स्थान पर लेहन कर्म बताया है और जिह्वा से चाटने को लेहन कर्म कहा है। चंचलता या लोभ के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

छह प्रकार के कपोलो का अभिनय

कपोलो के भेद

समौ क्षामौ कम्पितौ च फुल्लाख्यौ कुञ्चितौवपि । 560

पूर्णौ कपोलौ षोढेति तल्लक्ष्माद्यधुना ब्रुवे ।

दोनो कपोलो के छह भेदों के नाम हैं १ सम, २ क्षाम, ३ कम्पित, ४ फुल्ल, ५ कुञ्चित और ६ पूर्ण। अब उनके लक्षणों का निरूपण किया जाता है।

समादि और उनका विनियोग

अन्वर्थलक्षणाः पञ्च ज्ञेयास्तत्र समादयः ॥५६१॥ 561

सम आदि पाँच भेदों के लक्षण (अपने-अपने) अर्थ के अनुरूप समझने चाहिए। (अर्थात् जो कपोल स्वाभाविक सम स्थिति में हो उन्हें सम, जो क्षीण या पिचके हुए हो वे क्षाम, जो कम्पनयुक्त हो वे कम्पित, जो प्रफुल्लित हो उन्हें फुल्ल, और जो सिकुड़े हुए हो उन्हें कुञ्चित कहते हैं)।

पूर्ण

यावुन्नतौ कपोलौ तौ पूर्णौ धीरैरुदीरितौ ॥५६२॥

उपाग प्रकरण

जो कपोल उन्नत हो, उन्हें धीर पुरुषों ने पूर्ण कहा है ।

समौ सहजभावेषु क्षामौ दुःखे निरूपितौ । 562

कम्पितौ रोमहर्षेषु फुल्लौ प्रीतौ बुधर्मतौ ॥५६३॥

कुञ्चितौ साध्वसे स्पर्शे शीते रोमाञ्चितेऽपि च । 563

पूर्णावशोकमल्लेन प्रोक्तावुत्साहगर्वयोः ॥५६४॥

विद्वानों का कहना है कि स्वाभाविक भावों के अभिनय में सम कपोलों का, दुःख के अभिनय में क्षाम कपोलों का, रोमाच के अभिनय में कम्पित कपोलों का, प्रीति के अभिनय में फुल्ल कपोलों का आरंभ, स्पर्श, शीत तथा रोमाच के अभिनय में कुञ्चित कपोलों का विनियोग होता है । अशोकमल्ल का कहना है कि उत्साह तथा गर्व के अभिनय में पूर्ण कपोलों का प्रदर्शन करना चाहिए ।

आठ प्रकार के चिबुक का अभिनय

चिबुक (ठोड़ी) के भेद

चिबुकं लक्षितप्रायं यद्यप्योष्ठादिकर्मणा । 564

तथाप्यहं सुबोधाय तल्लक्ष्म व्याहरेऽधुना ॥५६५॥

यद्यपि ओष्ठ आदि के लक्षण-विनियोग से चिबुक के अभिनय का भी बोध हो जाता है, फिर भी (उनकी) सहज जानकारी (स्पष्टीकरण) के लिए यहाँ (पृथक् रूप से) उनका निरूपण किया जा रहा है ।

व्यादीर्णं चलितं लोलं श्वसितं चलसंहतम् । 565

संहतं स्फुरितं वक्रं चैवं चिबुकमष्टधा ॥

चिबुक के आठ भेदों के नाम इस प्रकार हैं १ व्यादीर्ण, २ चलित, ३ लोल, ४ श्वसित, ५ चलसंहत, ६ संहत, ७ स्फुरित और ८ वक्र ।

१. व्यादीर्ण और उसका विनियोग

चिबुकं दूरनिष्क्रान्तं व्यादीर्णं जृम्भणादिषु ॥५६६॥ 566

दूर तक बाहर निकला हुआ चिबुक व्यादीर्ण कहलाता है । जम्हाई लेने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

२. चलित और उसका विनियोग

चलितं श्लेषविश्लेषे क्षोभवावस्तम्भयो र्षि ॥५६७॥

नृत्याध्याय

चिबुक को सयुक्त-वियुक्त करना **चलित** कहलाता है। क्षोभ, वाणी के स्तम्भन और क्रोध के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३ लोलित और उसका विनियोग

तिर्यग्गतागते विभ्रल्लोलं चर्वितचर्वणे ॥५६८॥ 567

तिरछे गमनागमन को धारण करने वाला चिबुक **लोल** कहलाता है। चवाये हुए को चवाने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

४ श्वसित और उसका विनियोग

एकाङ्गुलादधःपाति श्वसितं प्रेक्षितेऽद्भुते ॥५६९॥

एक अंगुली नीचे गिरने वाला चिबुक **श्वसित** कहलाता है। आश्चर्यजनक वस्तु के देखने के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है।

५. चलसहत और उसका विनियोग

चलसंहतमन्वर्थं कामिनीचुम्बने मतम् ॥५७०॥ 568

अपने अर्थ के अनुरूप (अर्थात् चंचल और सयुक्त) चिबुक **चलसहत** कहलाता है। कामिनियों के चुम्बन के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है।

६ सहत और उसका विनियोग

निश्चलं मीलितास्यं यत् तन्मौने संहतं मतम् ॥५७१॥

जो चिबुक निश्चल तथा सकुचित मुख वाला है, उसे **सहत** कहा जाता है। मौन के भावाभिव्यक्ति में उसका विनियोग होता है।

७ स्फुरित और उसका विनियोग

स्फुरित कम्पनादुक्तं शीते शीतज्वरेऽपि च ॥५७२॥ 569

जो चिबुक कांपता हो उसे **स्फुरित** कहते हैं। शीत तथा शीतज्वर के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

८ वक्र और उसका विनियोग

तिर्यग्गतं यत् तद् वक्रं ग्रहावेशादिषु स्मृतम् ॥५७३॥

जो चिबुक तिरछा चलाया जाय, वह **वक्र** कहलाता है। ग्रहों के आवेश आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

उपाग प्रकरण

छह प्रकार का मुख का अभिनय

मुख के भेद

भुग्नमुद्वाहि विवृतं विधुत विनिवृत्तकम् । 570
व्याभुग्नं चेति षोडोक्तं मुख तल्लक्ष्म चोच्यते ।

मुख के छह भेद होते हैं, १ भुग्न, २ उद्वाहि, ३ विवृत, ४ विधुत, ५ विनिवृत्त आर ६ व्याभुग्न । अब उनके लक्षण बताये जाते हैं ।

१ भुग्न और उसका विनियोग

तद्भुग्नं यदधोवक्त्रं यतिप्रकृतिलज्जयो ॥५७४॥ 571

नीचे झुका या लटका हुआ मुख भुग्न कहलाता है । यतियों के स्वभाव ओर लज्जा का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है ।

२ उद्वाहि और उसका विनियोग

उत्क्षिप्तमास्यमुद्वाहि लीलानादरयानयो. ॥५७५॥

ऊपर को खुले या उठे हुए मुख को उद्वाहि कहते हैं । स्त्रियों की लीला, अनादर आर वाहन के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

३ विवृत और उसका विनियोग

विवृतं त्वोष्ठविश्लेऽपि शोके हास्ये भयादिषु ॥५७६॥ 572

अलग-अलग ओठों से युक्त खुले हुए मुख को विवृत कहा जाता है । गोक, हास्य ओर भय आदि के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है ।

४ विधुत और उसका विनियोग

विधुतं तिर्यगायामि नैवमित्यादिवारणे ॥५७७॥

तिरछे फैलाये हुए मुख को विधुत कहते हैं । 'ऐसा नहीं' इस प्रकार गोकने या मना करने के भाव में उसका विनियोग होता है ।

५ विनिवृत्त और उसका विनियोग

व्यावृत्तं विनिवृत्तं तद् रुषीर्ष्यासूययोरपि । 573
विहृतावज्ञया चैतत् कामिनीनामपि स्मृतम् ॥५७८॥

नृत्त्याध्याय

खुले हुए मुख को विनिवृत्त कहते हैं। क्रोध, ईर्ष्या, असूया, विहृत (भावविशेष) और कामिनियो की अवज्ञा के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

६ व्याभुग्न और उसका विनियोग

यन्मनागायतं वक्त्रं तद् व्याभुग्नमितीरितम् । 574
श्रौत्सुक्यचिन्तानिर्वेदगम्भीरालोकनादिषु ॥५७६॥

(दोनों पार्श्वों में) किञ्चित् फैले हुए मुख को व्याभुग्न कहते हैं। उत्सुकता, चिन्ता, विरक्ति और गभीरता-पूर्वक अवलोकन आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

चार प्रकार के मुखराग का निरूपण

मुखराग (मुख के भाव)

येनाभिव्यज्यते चित्तवृत्तिर्धौरै रसात्मिका । 575
रसाभिव्यक्तिहेतुत्वात् मुखरागः स उच्यते ॥५८०॥

जिस (भाव) के द्वारा वीर पुरुष रसात्मक चित्तवृत्ति को अभिव्यक्त करते हैं, वह (भाव) रसाभिव्यक्ति का हेतु होने से मुखराग कहलाता है।

मुखराग के भेद

स्वाभाविकः प्रसन्नश्च रक्तः श्यामो बुधैरिति । 576
मुखरागश्चतुर्धोक्तस्तल्लक्षणमथोच्यते ॥५८१॥

विद्वानों ने उसके चार भेद बताये हैं १ स्वाभाविक, २ प्रसन्न, ३ रक्त और ४ श्याम। अब उनके लक्षणों का निरूपण किया जाता है।

१ स्वाभाविक और उसका विनियोग

तत्र स्वाभाविकोऽन्वर्थः स्वभावाभिनये मतः । 577

स्वाभाविक रूप से किये जाने वाले मुखराग को स्वाभाविक कहते हैं। स्वाभाविक अभिनय में उसका विनियोग होता है।

२ प्रसन्न और उसका विनियोग

स्वच्छः प्रसन्नः शृङ्गारेऽद्भुते हास्येऽपि जायते ॥५८२॥

स्वच्छ (सुन्दर-निर्मल) मुखराग प्रसन्न कहलाता है। शृङ्गार, अद्भुत तथा हास्य रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

उपांग प्रकरण

३. रक्त और उसका विनियोग

रक्तोऽन्वर्थोऽद्भुते वीरे रौद्रे च करुणे तथा ॥५८३॥ 578

लाल मुखराग रक्त कहलाता है। अद्भुत, वीर, रौद्र और करुण रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

४. श्याम और उसका विनियोग

भयानके सबीभत्से श्यामोऽन्वर्थो निरूपितः ॥५८४॥

काला मुखराग श्याम कहलाता है। भयानक तथा वीभत्स रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

एवमेव विशेषज्ञैर्यथाभावं यथारसम् । 579

मुखरागो नियुक्तोऽसौ रसभावप्रकाशकः ॥५८५॥

इस प्रकार नाट्याचार्यों ने निर्देश किया है कि भाव और रस के अनुरूप, रस तथा भाव के प्रकाशक मुखराग का प्रयोग करना चाहिए।

कृतोऽप्यभिनयस्तावच्छाखाङ्गोपाङ्गसंयुतः । 580

न भाति यावन्नोपैति मुखरागं यथारसम् ॥५८६॥

(भरत आदि नाट्याचार्यों का यह भी कहना है कि) शाखा, अंग और उपांग के सहित किया गया अभिनय तब तक शोभा नहीं देता, जब तक वह रस के अनुरूप मुखराग से समन्वित नहीं होता।

आङ्गिकाभिनयोऽल्पोऽपि मुखरागेण संयुतः । 581

शोभां द्विगुणितां धत्ते शशाङ्कनेव शर्वरी ॥५८७॥

थोडा भी आंगिक चेष्टाओं द्वारा किया गया अभिनय मुखराग से समन्वित होने पर उसी प्रकार द्विगुणित शोभा को धारण करता है, जैसे चन्द्रमा से युक्त होने पर रात्रि।

रसभावसमाकीर्णदृष्टिभ्रूवदनान्वितम् । 582

प्रतिक्षणं तथा नेत्रमन्यदन्यत् प्रवर्तते ॥५८८॥

तथोचितं प्रकुर्वीत मुखरागं प्रयोगवित् । 583

यथारसं यथाभावमिति नृत्यविदां मतम् ॥५८९॥

नाट्याचार्यों का अभिमत है कि रस तथा भाव से समाकीर्ण दृष्टि और भ्रू तथा मुख से संयुक्त होकर प्रतिक्षण जैसे-जैसे नेत्रों का अन्यान्य रूप में प्रसार हो, प्रयोगवेत्ताओं (अभिनेताओं) को चाहिए कि, उसी प्रकार रस तथा भाव के अनुरूप मुखराग का भी उचित रीति से प्रयोग करे।

नृत्याध्यायः

बीस प्रकार के पार्ष्णि, गुल्फ और हस्तागुलि निरूपण

पार्ष्णि (एडी) के भेद

बहिर्गता मिथोयुक्ता वियुक्ताङ्गुलिसङ्गता । 584

उत्क्षिप्ता पतितोत्क्षिप्ता पतितान्तर्गता तथा ।

पार्ष्णिरष्टविधा ज्ञेया नाम्नैव व्यक्तलक्षणा ॥५६०॥ 585

एडी (पार्ष्णि) के आठ भेद होते हैं १ बहिर्गता (बाहर की ओर निकली हुई), २ मिथोयुक्ता (परस्पर मिली हुई), ३ वियुक्ता (अलग-अलग हुई), ४ अगुलिसगता (उँगलियों से मिली हुई), ५ उत्क्षिप्ता (ऊपर को उठी हुई), ६ पतितोत्क्षिप्ता (गिर कर उठी हुई), ७ पतिता (गिरी हुई) और ८ अन्तर्गता (भीतर की ओर गयी हुई)। इन आठों भेदों के लक्षण उनके नामों से ही स्पष्ट हैं।

गुल्फ (टखनों या घुट्टी) के भेद

मिथोयुक्तौ वियुक्तौ च श्लिष्टाङ्गुष्ठौ बहिर्गतौ ।

अन्तर्यातौ चेति गुल्फौ स्थानकादिषु पञ्चधा ॥५६१॥ 586

टखनों (गुल्फ) के पाँच भेद होते हैं १ मिथोयुक्त (परस्पर सटे हुए), २ वियुक्त (अलग हुए), ३ श्लिष्टाङ्गुष्ठ (सटे हुए अंगूठों वाले), ४ बहिर्गत (बाहर किये हुए) और ५ अन्तर्यात (भीतर किये हुए)। बाण साधते समय शरीर की मुद्रा आदि के अभिनय में उनका विनियोग होता है।

कराङ्गुलि (हाथ की उँगलियों) के भेद

वियुक्ताः संहता वक्राः पतिता वलितास्तथा ।

प्रसृताश्च तथा कुञ्चन्मूलाः सप्तविधा मताः । 587

कराङ्गुल्यो बुधैरुक्ता नामतो ज्ञातलक्षणाः ॥५६२॥

विद्वानों ने हाथ की उँगलियों के सात भेद बताये हैं १ वियुक्ता (अलग हुई), २ संहता (मिली हुई), ३ वक्रा (टेढ़ी), ४ पतिता (गिरी हुई), ५ वलिता (मुड़ी हुई), ६ प्रसृता (फैली हुई) और ७ कुञ्चन्मूला (सिकुड़े हुए मूलभाग वाली)। इनके लक्षण उनके नामों से ही स्पष्ट हैं।

पाँच प्रकार की चरणागुलि निरूपण

चरणागुलि (पैरों की उँगलियों के) भेद

प्रसारिता अर्धःक्षिप्ता उत्क्षिप्ता कुञ्चितास्तथा । 588

संलग्नाश्चेति पदयोरङ्गुल्यः पञ्चधा क्रमात् ॥५६३॥

उर्ध्व प्रकरण

पैरो की उँगलियों के पाँच भेद होते हैं। १ प्रसारिता, २ अध क्षिप्ता ३ उत्क्षिप्ता, ४ कुञ्चिता और ५ सलग्ना ।

१ प्रसारिता और उसका विनियोग

अङ्गुल्यः सरलास्तब्धा यास्ता उक्ता प्रसारिताः । 589
नियुज्यन्ते बुधैरेताः स्वापे स्तम्भेऽङ्गुल्योऽने ॥५६४॥

जो उँगलियाँ सीधी (स्वाभाविक स्थिति में) तथा स्थिर हो वे प्रसारित कहलाती हैं। विद्वानो ने निद्रा, स्तम्भन और अगो को फोड़ने या चटकाने के अभिनय में उनका विनियोग बताया है।

२ अध क्षिप्ता और उसका विनियोग

अध. क्षिप्ता मुहुः पाताद् बिम्बोकादिषु ता मताः ॥५६५॥ 590

जिन उँगलियों को बार-बार गिराया जाय, उन्हें अध क्षिप्ता कहते हैं। रूपादि के गर्व से प्रिय की उपेक्षा (बिम्बोक) आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३ उत्क्षिप्ता और उसका विनियोग

उच्चैर्या मुहुरुत्क्षिप्ता नवोढायास्त्रपाभरैः ॥५६६॥

जो उँगलियाँ बार-बार ऊपर की ओर चलायी या फेकी जाँय, उन्हें उत्क्षिप्ता कहते हैं। नव विवाहिता की लज्जा के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

४ कुञ्चिता और उसका विनियोग

अन्वर्थाः कुञ्चितास्त्रासमूर्च्छाशीतग्रहार्दिते ॥५६७॥ 591

सिकुड़ी हुई उँगलियाँ कुञ्चिता कहलाती हैं। त्रास, मूर्च्छा, ठंडक और ग्रहपीडा के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

५ सलग्ना और उसका विनियोग

मिथःश्लिष्टास्तु साङ्गुष्ठाः संलग्नाः कर्षणे मताः ॥५६८॥

अगुष्ठ सहित परस्पर सटी हुई उँगलियाँ सलग्ना कहलाती हैं। खींचने के अभिनय में उनका विनियोग होता है।

अंगुष्ठ के लक्षण-विनियोग

अङ्गुष्ठस्यापि भेदाः स्युरेत एवोक्तलक्षणाः ।

592

उक्त उँगलि-भेदो के ही अनुरूप अंगुष्ठ के भी लक्षण-विनियोग होते हैं ।

छह प्रकार के पादतल का निरूपण

तल (पादतल) के भेद

कुञ्चन्मध्यं तिरश्चीनं पतित्ताग्रमधोगतम् ।

उद्वृत्ताग्रं भूमिलग्नं षोढान्वर्थं तलं मतम् ॥५९६॥ 593

अर्थ के अनुरूप पादतल के छह भेद होते हैं १ कुञ्चन्मध्य (सिकुड़े हुए मध्य भाग वाला), २ तिरश्चीन (तिरछा), ३ पतित्ताग्र (गिरे हुए अग्रभाग वाला), ४ अधोगत (नीचे की ओर गया हुआ), ५ उद्वृत्ताग्र (उठे हुए अग्रभाग वाला) और ६ भूमिलग्न (भूमि से सटा हुआ) ।

उपाग निरूपण समाप्त



हस्तप्रचार प्रकरण / पॉच

पन्द्रह हस्तप्रचार का निरूपण

हस्तप्रचार (सचालन) के भेद

उत्तानोऽधोमुखः पार्श्वगत एवं त्रिधोदितः । करप्रचारोऽशौकेनापरे तं पञ्चधा जगुः ॥६००॥	594
अग्रगोऽधस्तलश्चेति द्वौ त्रयः प्रथमोदिताः । प्राहोत्तानोऽग्रगं भट्टोऽधोमुखोऽधस्तलं यतः ॥६०१॥	595
अन्तर्भूतं ततस्त्रित्वं सङ्गतं प्रथमे मते । उत्तानोऽधस्तलः पार्श्वमुखोऽप्यग्रतलस्तथा ॥६०२॥	596
स्वसम्मुखतलः पार्श्वतलः पार्श्वगतोऽग्रगः । ऊर्ध्वगोऽधोगतश्चाथ सम्मुखः सम्मुखागतः ॥६०३॥	597
ऊर्ध्वमुखस्तथा चाधोवदनोऽथ पराङ्मुखः । एवं पञ्चदश प्राहुः प्रचारान् केऽपि सूरयः ॥६०४॥	598

अशोकमल्ल ने हस्तप्रचार (हस्त-सचालन) के तीन भेद बताये हैं १ उत्तान २ अधोमुख और ३ पार्श्वगत । दूसरे विद्वानों ने उसके पाँच भेदों का उल्लेख किया है १ अग्रग, २ अधस्तल, ३, उत्तान, ४ अधोमुख और ५ पार्श्वगत । आचार्य भट्ट का कहना है कि अग्रग और उत्तान तथा अधोमुख और अधस्तल अभिन्न हैं । इसलिए प्रथम मत से ही दूसरे मत का अन्तर्भाव हो जाता है । कुछ विद्वानों ने उसके पन्द्रह भेद बताये हैं उनके नाम हैं १ उत्तान, २ अधस्तल, ३ पार्श्वमुख, ४ अग्रतल, ५ स्वसम्मुखतल, ६ पार्श्वतल, ७ पार्श्वगत, ८ अग्रग, ९ ऊर्ध्वग, १० अधोगत, ११ सम्मुख, १२ सम्मुखागत, १३ ऊर्ध्वमुख, १४ अधोमुख और १५ पराङ्मुख ।

नृत्याध्याय

तेरह हस्तक्षेत्र का निरूपण

हस्तक्षेत्र (हाथों के स्थानों) के भेद

शिरो ललाटं श्रवणं स्कन्धोरः कटिशीर्षकम् ।

नाभौ पार्श्वद्वयं पश्चाद्दूर्ध्वं चाधः पुरस्ततः । 599

ऊरुद्वयं च हस्तानां क्षेत्राणीति त्रयोदश ॥६०५॥

हाथों के तेरह स्थान (क्षेत्र) बताये गये हैं, जिनके नाम हैं १ शिर, २ ललाट, ३ कान, ४ कन्धा, ५ वक्षस्थल, ६ कमर, ७ नाभि, ८ दोनों पार्श्व, ९ पीछे, १० ऊपर, ११ नीचे, १२ सामने और १३ दोनों जँघाएँ ।

बीस करकर्मों का निरूपण

करकर्म (हाथों के कार्यों) के भेद

मोक्षणं रक्षणं क्षेपो निग्रहश्च परिग्रहः । 600

धूननं स्फोटनं श्लेषो विश्लेषो मोटनं तथा ॥६०६॥

तोलनं ताडनं छेदोत्कृष्टाकृष्टविकृष्टयः । 601

विसर्जनं तथाह्वानं तर्जनं भेद इत्यपि ।

संज्ञया ज्ञातलक्ष्माणि करकर्माणि विशतिः ॥६०७॥ 602

मकेत या इशाये से निष्पादित होने वाले हस्त-कार्यों के बीस भेदों का अर्थ-ग्रहण उनके लक्षणों से ही कर लेना चाहिए । उनके नाम हैं १ मोक्षण (छुड़ाना), २ रक्षण (रक्षा करना), ३ क्षेप (फेंकना), ४ निग्रह, (गोकना), ५ परिग्रह (लेना), ६ धूनन (कपाना), ७ स्फोटन (फोड़ना), ८ श्लेष (मिलाना), ९ विश्लेष (अलग करना), १० मोटन (चूर्ण करना), ११ तोलन (तौलना), १२ ताडन (पीटना), १३ छेद (काटना), १४ उत्कृष्ट (ऊपर उठाना), १५ अकृष्ट (खींचना), १६ विकृष्ट (हटाना), १७ विसर्जन (समाप्ति या विदा करना), १८. आह्वान (बुलाना), १९ तर्जन (मारना) और २० भेद (फोड़ना) ।

चार हस्तकरणों का निरूपण

हस्तकरण (हस्त चेष्टाएँ)

यथालक्ष्मविनिष्पन्नहस्तस्याभिनयाय या ।

कृतिः क्रियाविशेषस्य तद्वस्तकरणं भवेत् ॥६०८॥ 603

हस्तप्रचार प्रकरण

शास्त्रीय विधि से निष्पन्न हस्ताभिनय के लिए जो हस्तमुद्रा विगेष रूप से प्रयुक्त होती है उसे हस्तकरण कहा जाता है ।

हस्तकरण के भेद

आवेष्टिताभिधं पूर्वमुद्वेष्टितमत. परम् ।
व्यावर्तितं तथा ज्ञेयं परिवर्तितमित्यपि ॥६०६॥ 604
चतुर्ध्वं तदाख्यात तल्लक्ष्म व्याहरे क्रमात् ।

हस्तकरण के चार भेद होते हैं १ आवेष्टित, २ उद्वेष्टित ३ व्यावर्तित और ४ परिवर्तित । उनके लक्षण क्रमशः निरूपित किये जा रहे हैं ।

१ आवेष्टित

तर्जन्याद्या यदाङ्गुल्यः कुर्वन्त्यावेष्टनं क्रमात् ॥६१०॥ 605
तलसम्मुखमावक्ष एति हस्तोऽपि पार्श्वतः ।
आवेष्टितं तदा प्रोक्तं करणं नृत्यकोविदैः ॥६११॥ 606

जब (अँगूठे को छोड़कर) शेष चारों उँगलियाँ क्रमशः मोड़ ली जाती हैं और हथेली को सम्मुख करके हाथ को भी बगल से छाती तक पहुँचा दिया जाता है, तब नृत्यविगारदो ने उसको आवेष्टित करण कहा है ।

२ उद्वेष्टित

तर्जन्याद्यङ्गुलीना चेन्निर्यातं स्यात् तलाद्वहिः ।
क्रमात् पाणेश्च बक्षस्तस्तदोद्वेष्टितमीरितम् ॥६१२॥ 607

जब (आवेष्टित में हथेली की ओर झुकी हुई) उँगलियाँ उसी प्रकार क्रमशः हथेली से खोलकर बाहर निकाली जाँय और हाथ को छाती से अलग किया जाय, तब उसे उद्वेष्टित करण कहते हैं ।

नृत्याध्यायः

३ व्यावर्तित

व्यावर्तन्ते कनिष्ठाद्या यत्राङ्गुल्यः क्रमाद्यदि ।
अभ्यन्तरेण तत् प्रोक्तं सद्भिर्व्यावर्तितं तदा ॥६१३॥ 608

जब हाथ की उगलियाँ कनिष्ठिका से लेकर तर्जनी तक क्रमशः हथेली की ओर झुकायी जाती हैं, तब विद्वानों ने उसे व्यावर्तित करण कहा है ।

४ परिवर्तित

कनिष्ठाद्यङ्गुलीना चैन्निष्क्रमो बाह्यतः क्रमात् ।
तदा तत् करणं धीरैः परिवर्तितमीरितम् ॥६१४॥ 609

जब कनिष्ठा से लेकर तर्जनी तक की सब उगलियाँ क्रमशः बारी-बारी करके बाहर की ओर खुलती हैं, तब विद्वानों के मत से, उसे परिवर्तित करण कहते हैं ।

हस्त प्रचार निरूपण समाप्त



विचित्राभिनय प्रकरण/ छह

विचित्राभिनय निरूपण

भावाभिनय (१)

नाट्योपयोगिनः प्रायो विचित्राभिनया मया ।

ते लिख्यन्तेऽभिनयार्थं व्यञ्जयन्तीव ये स्फुटम् ॥६१५॥ 610

जो मानो अभिनय योग्य वस्तु के भावो को अभिव्यक्त करने में समर्थ नाट्योपयोगी विचित्र अभिनय हैं, (नृत्य-जिज्ञासुओ के) अभिनय के लिए मैं प्रायः उन (सब का) यहाँ निरूपण कर रहा हूँ ।

सन्निकर्षं विना यस्य न वेत्यर्थं कथञ्चन ।

तस्योक्तो मनसो भावस्त्रिधा यत्प्रतिकोविदैः । 611

इष्टोऽनिष्टस्तथा मध्यस्तस्याभिनयनं यथा ॥६१६॥

जिसके सयोग या सामीप्य के बिना पदार्थ को किसी भी प्रकार नहीं समझा जा सकता है, उस मन के भाव को विद्वानो ने तीन प्रकार का बताया है १ इष्ट, २ अनिष्ट और ३ मध्य। उस त्रिधा विभक्त भाव का अभिनय जिस प्रकार किया जाता है, उसे बताया जा रहा है ।

मुखस्यातिविकाशेन शरीरालहादनेऽपि(?नेन) च । 912

तथोल्लुकसितेनेष्टं दर्शयेन्नटाचकोविदः ॥६१७॥

अप्रदानेन नेत्रस्य संकोचादक्षिणासयोः । 613

परावृत्ताख्यशीर्षेणाप्यनिष्टं सम्प्रदर्शयेत् ॥६१८॥

जुगुप्सया न चात्यन्तं मनसा नातिहर्षिणा । 614

मध्यभावेन मध्यस्थं भावं धीमान् निरूपयेत् ॥६१९॥

नाट्यवेत्ता को चाहिए कि वह मुख को अति विकसित करके तथा शरीर को आह्लादित करके स्वच्छता (स्पष्टता) से इष्ट भाव का प्रदर्शन करे। फिर दृष्टिपात किये बिना आँख और नाक को सकुचित करके

नृत्याध्याय

परावृत्त शीर्षं मुद्रा से अनिष्ट भाव को प्रदर्शित करे । वृद्धिमान् अभिनेता को चाहिए कि वह न अत्यन्त घृणा से और न अत्यन्त प्रसन्न मन से, अपितु मध्य भाव से मध्यस्थ भाव को अभिव्यक्त करे ।

इन्द्रियाभिनय (२)

कर्णदेशस्थतर्जन्या तथा तिर्यग्निरीक्षणात् । 615
पाश्र्वानतेन शिरसा सुधीः शब्दं प्रदर्शयेत् ॥६२०॥

सुधीजनो के चाहिए कि कान के पास तर्जनी उँगली को रखकर तिरछी चितवन डालते हुए बगल में झुके हुए शिर में वे शब्द के भाव को प्रदर्शित करे ।

सभ्रञ्क्षेपेण नेत्रेण मनागाकुञ्चितेन च । 616
तथा गण्डमुखस्पर्शः स्पर्शो धीरैर्निरूपितः ॥६२१॥

वीर पुरुषो को चाहिए कि भ्रू-भंगिमा से युक्त तथा कुछ आकुचित नेत्र से ओर कपोल तथा मुख के स्पर्श से वे स्पर्श के भाव को प्रदर्शित करे ।

शिरस्थितौ पताकौ द्वौ कृत्वेषद्वलिताननः । 617
दृष्ट्या निर्वर्णयन्त्यापि रूपमेवं विनिर्दिशेत् ॥६२२॥

दोनों पताक हस्तों को शिर पर रखकर और मुख को किञ्चित् झुकाकर गौर से देखते हुए रूप के भाव का द्यौतन करना चाहिए ।

नयने किञ्चिदाकुञ्च्य फुल्लां कृत्वा च नासिकाम् । 618
एकोच्छ्वासेन च प्राज्ञो रसगन्धौ प्रदर्शयेत् ॥६२३॥

नेत्रों को कुछ आकुचित करके, नासिका को फुलाकर और एक ही साँस खींचकर पण्डित जन को रस और गन्ध के भाव का प्रदर्शन करना चाहिए ।

नृत्याय देवरङ्गनायाः (?) शब्दाद्यभिनयो मया । 619
निरूपितस्तथा ज्ञेया इन्द्रियाभिनया बुधैः ॥६२४॥

नर्तकी (?) के अभिनय के लिए मैंने शब्द आदि (इन्द्रिय विषयो) के अभिनय का निरूपण किया है । किन्तु विद्वानों को चाहिए कि इसी प्रकार वे कर्ण, त्वक्, अक्षि, जिह्वा और घ्राण आदि इन्द्रियों का अभिनय भी जान ले ।

विचित्राभिनय प्रकरण

विचित्राभिनय (३)

विधायोत्तानितौ हस्तौ पताकौ स्वस्तिकच्युतौ । 620

शिरसोद्वाहिताख्येन तथोर्ध्वप्रेक्षणेन च ॥६२५॥

प्रदोषं दिवसं रात्रिं प्रभातं गगनं घनान् । 621

जलाशयान् वनान्तांश्च नक्षत्राणि ग्रहान् दिशः ।

नानादृष्टियुतं धीरोऽभिनयेन्नाट्यनृत्ययोः ॥६२६॥ 622

वीर पुरुष को नाट्य तथा नृत्य के अवसर पर दोनों पताक हस्तों को उत्तान तथा स्वस्तिक मुद्रा में च्युत करके उद्वाहित शिर से ऊपर ताकने या देखने के द्वारा प्रदोष, दिन, रात, प्रातःकाल, आकाश, मेघ, तालाव, वनभूमि, नक्षत्र, ग्रह आदि दिशाओं का अनेक दृष्टियों में समन्वित होकर अभिनय करना चाहिए ।

[एता]भ्यामेव हस्ताभ्यां तेनैव शिरसा तथा ।

अधस्तात्प्रेक्षणेनापि भूमिस्थं सम्प्रदर्शयेत् ॥६२७॥ 623

हाथ की इन्ही मुद्राओं और शिर की इसी मुद्रा से नीचे ताकते हुए भूमि पर रखी हुई वस्तु या (बने हुए स्थानों) का प्रदर्शन करना चाहिए ।

दृष्ट्या मुकुल [या] किञ्चिन्नतेन शिरसापि च ।

हृदि सन्देशहस्तेन सव्येनैकमना नटः । 624

वितर्कितं तथा ध्यानं निर्दिशेन्नाट्यनृत्ययोः ॥६२८॥

नाट्य और नृत्य के समय नट को चाहिए कि वह सावधान होकर मुकुल दृष्टि से जो किञ्चित् झुके हुए शिर तथा हृदय पर रखे हुए दाहिने सन्देश हस्त से सन्देश तथा ध्यान का अभिनय करे ।

विधायोद्वाहितं शीर्षं तथोर्ध्वं हंसपक्षकम् । 625

दीर्घं मानं तथोच्चतवं प्रासादस्य प्रदर्शयेत् ॥६२९॥

उद्वाहित शिर ओर ऊपर हस्तपक्ष हस्त बनाकर महल की लम्बाई तथा ऊँचाई का प्रदर्शन करना चाहिए ।

अरालेन तथा वामभागोद्वाहितशीर्षतः । 626

नतध्वस्तनिमित्तानि श्रान्तं वाक्यं च दर्शयेत् ॥६३०॥

अराल हस्त तथा वाम भाग में उद्वाहित शिर से झुके हुए, नष्ट हुए, निमित्त, श्रान्त आदि वाक्य का अभिनय करना चाहिए ।

गन्धघ्राणैः प्रसूनानामृतुजाना तथा बुधः ।

संस्पर्शाद् रूक्षवातस्य शिशिरं सुनिरूपयेत् ॥६३७॥ 634

विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह ऋतुजनित पुष्पो की गन्ध को सूँध कर तथा रूक्ष वायु के स्पर्श से शिशिर ऋतु का अभिनय करे ।

सहर्षोत्पादकारम्भैस्त्वभोगैर्विचित्रितैः ।

अभिनेयो वसन्तस्तु नानापुष्पप्रदर्शनात् ॥६३८॥ 635

हर्षोत्पादक कार्यों सहित विचित्र प्रकार के उपभोगों आर नाना प्रकार के पुष्पो के प्रदर्शन से वसन्त ऋतु का अभिनय करना चाहिए ।

सुवीजनैर्भूमितापैस्तथा स्वेदापमार्जनात् ।

संस्पर्शाच्चोष्णवातस्य धीरो ग्रीष्मं विनिर्दिशेत् ॥६३९॥ 636

अच्छी तरह पखा झेल कर, भूमि का ताप दिखा कर, पसीना पोछ कर ओर गर्म वायु का स्पर्श करके धीर पुरुष ग्रीष्म ऋतु का भाव प्रदर्शित करे ।

हस्तौ सिरस्तथा दृष्टिं शरद्दीव विनिर्दिशेत् ।

शिशिरतौ वसन्ते च ग्रीष्मेऽपि निपुणौ नटः ॥६४०॥ 637

निपुण अभिनेता को, शरद् ऋतु की तरह, दोनों हाथों, शिर ओर दृष्टि को शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतुओं में भी प्रयुक्त करना चाहिए ।

शिखिनां रम्यवाणीभिरिन्द्रगोपैः सशाद्वलैः ।

अधोमुखपताकाभ्यां शिरसोद्वाहितेन च । 638

तथोर्ध्वप्रेक्षणादेवं प्रावृषं सन्निरूपयेत् ॥६४१॥

मयूरो की रमणीय वाणी, हरितभूमि महित वीरवहटी (इन्द्रगोप) और अधोमुख दोनों पताक हस्तों, उद्वाहित शिर तथा ऊपर निरीक्षण द्वारा वर्षा ऋतु का भाव प्रकट करना चाहिए ।

चिह्नं यद्यच्च रूपं च कर्म वा वेष एव च । 639

निर्दिशेत् तमृतुं तेन यथेष्टानिष्टदर्शनात् ॥६४२॥

दृष्ट और अनिष्ट का भाव (जहाँ जो उचित हो) दिखाते हुए जिस ऋतु के लिए जो चिह्न या लक्षण, जो रूप, जो कार्य या जो वेष उचित हो, उसी से उस ऋतु का भाव प्रकट करना चाहिए ।

ऋतूनिमानर्थवशात् प्रयुञ्जीत यथारसम् । 640
सुखितः सुखितेष्वेव दुःखितो दुःखितेषु च ॥६४३॥

इन ऋतुओ को (उनके) प्रयोजनवश रस के अनुरूप प्रकट करना चाहिए । सुखी होकर सुखित वस्तुओ का और दुःखी होकर दुःखित वस्तुओ का भाव अभिव्यक्त करना चाहिए ।

आविष्टो येन भावेन यः सुखेनापरेण वा । 641
स तज्जनितसंस्कारस्तन्मयं वीक्षतेऽखिलम् ॥६४४॥

जो व्यक्ति जिस भाव से, चाहे दुःख से या सुख से आविष्ट रहता है, उसमे उसका संस्कार निहित रहता है । अतः वह सब वस्तुओ को उसी रूप में देखता है ।

प्रह्लादनेन गात्रस्य स्पर्शस्य ग्रहणात् तथा । 642
सुखं गन्धं रसवायु चन्द्रं ज्योत्स्नां निरूपयेत् ॥६४५॥

शरीर के आह्लादन और स्पर्श-ग्रहण से सुख, गन्ध, रस, वायु, चन्द्रमा तथा चाँदनी का अभिनय करना चाहिए ।

वासोवगुण्ठनाद् भानुं धूलि धूमधनञ्जयौ । 643
उष्णं च भूमिसन्तापं दिशेच्छायाभिवाञ्छया ॥६४६॥

वस्त्र का घुँघट काढकर या ओट लगाकर मर्य, बूल, धूम, अग्नि, गर्मी, भूमि-ताप तथा छाया का प्रदर्शन करना चाहिए ।

दृष्ट्योर्ध्वयाकेकरया मध्याह्ने दर्शयेद् रविम् ॥६४७॥ 644

आकेकरा दृष्टि को ऊपर की ओर करके दोपहर-मूर्य का भाव प्रदर्शित करना चाहिए ।

सौम्यानि यानि वस्तूनि सुखभावोद्भवान्यपि ।

निर्दिशेत् तानि रोमाञ्चैर्गात्रस्पर्शैश्च नाट्यवित् ॥६४८॥ 645

जो वस्तुएँ सुखपूर्ण तथा अच्छे भावों से उत्पन्न हों उन्हें नाट्यवेत्ता को रोमांच तथा शरीर-स्पर्श से प्रकट करना चाहिए ।

उद्वेगैरास्यसकोचैरसंस्पर्शैश्च नाट्यवित् ।

दर्शयेत् तीक्ष्णरूपाणि वस्त्वयोग्यकृतानि च ॥६४९॥ 646

नाट्यवेत्ता को अयोग्य व्यक्ति द्वारा निर्मित तीक्ष्ण रूपवाली वस्तुओ का अभिनय विना स्पर्श किये, उद्वेग के साथ तथा मुख सिकोड कर करना चाहिए ।

विचित्राभिनय प्रकरण

ससौष्टवैः साभिमानैर्गात्रैराटोपसयुते ।

गम्भीरार्थानुदात्तार्थान् नाट्यज्ञ सन्नदर्शयेत् ॥६५०॥ 647

नाट्यवेत्ता को सुन्दरता, गर्व तथा साठव से युक्त अंगों को फेंकाकर गम्भीर तथा उदात्त भावों वाली वस्तुओं का अभिनय करना चाहिए ।

ध्वजच्छत्रपताकादीन् दर्शयेद् दण्डधारणः ।

प्रहारान् विविधाश्चैव नानाशस्त्रग्रहैर्दिशेत् ॥६५१॥ 648

दण्ड-धारण द्वारा ध्वज, छत्र तथा पताका का चार अनेक शस्त्रों के ग्रहण द्वारा विभिन्न प्रकार के आयुधों का प्रदर्शन करना चाहिए ।

विस्फुलिङ्गान् घनरवान् विद्युदुल्कार्चिषस्तथा ।

स्त्रस्तैरङ्गैस्तद्वक्षिनिमेषैर्निदिशेद् बुधः ॥६५२॥ 649

विद्वान् व्यक्ति को शरीर कम्पाकर आर उमी प्रकार आँख मीच कर आग की चिनगारियों, मेघ गर्जनो, बिजली, उल्का और लपटों का अभिनय करना चाहिए ।

उद्वेष्टितौ परावृत्तौ कृत्वा हस्तौ शिरो नतम् ।

जिह्वादृष्ट्याङ्गसंकोचादास्यप्रच्छादनेन च ॥६५३॥ 650

अलिरेणुपतङ्गानां तोयस्य च निवारणम् ।

नभस्तेजोऽनिलं चोष्णं नाट्यज्ञः सन्निरूपयेत् ॥६५४॥ 651

दोनो हाथों को उद्वेष्टित ओर परावृत्त में करके, शिर झुकाकर, कुटिल दृष्टि से, अंगों को सिकोड कर और मुख को ढक कर नाट्यवेत्ता को भ्रमर, बूल, पतंग, जल-निवारण, आकाश, तेज तथा गर्म वायु (लू) का अभिनय करना चाहिए ।

अथ पुंसां तथा स्त्रीणामखिलाभिनयं पृथक् ।

भावानुभावसंयुक्तं कथयाम्यधुना क्रमात् ॥६५५॥ 652

अब पुरुषों तथा स्त्रियों के भावों तथा अनुभावों से युक्त समस्त अभिनय को पृथक्-पृथक् रूप में क्रमशः निरूपित किया जा रहा है ।

हर्ष

आश्लेषणाच्छरीराणां सस्मितान्नयनादपि ।

तथोल्लुकसनेनापि पुमान् हर्षं विनिदिशेत् ॥६५६॥ 653

नृत्याध्याय

शरीर के आलिंगन और मुस्कराहट भरे नेत्र तथा उलूक गति (उद्विकसन) से पुरुष हर्ष का अभिनय करें ।

शीघ्रमुत्पन्नरोमाञ्चवाष्पसंरुद्धलोचना ।

भावं विनिदिंशेत् त्वेव नर्तकी स्मितसंयुता ॥६५७॥ 654

तत्काल उत्पन्न हुए रोमाच, (हर्ष के) आँसुओं से अवरुद्ध दृष्टि और मुसकराहट द्वारा नर्तकी हर्ष के भाव को प्रकट करे ।

क्रोध

निःश्वासेनाङ्गकम्पेन दशनेनाधरस्य च ।

क्रोधं निरूपयेद् धीमानुद्वृत्तारुणलोचनः ॥६५८॥ 655

उठे हुए लाल नेत्रों से, लम्बी साँस लेते हुए, शरीर को थर-पर कम्पाते हुए, दाँतों से अधरो को चबाते हुए, पुरुष क्रोध का अभिनय करे ।

त्रिबुकोष्ठप्रकम्पेन बाष्पपूर्णक्षणेन च ।

शीर्षस्य कम्पनेनापि भ्रुकुटीरचनेन च ॥६५९॥ 656

अङ्गुलिस्फोटनान्मौनात् स्रगालङ्कारवर्जनात् ।

आग्रतस्थानकस्था च रोषेर्ष्ये निदिंशेत् स्त्रियाः ॥६६०॥ 657

ठोड़ी तथा ओठों को कम्पाते हुए, आँखों को साँसू से भरकर, शिर को कम्पाते हुए, भौ सिकोडते हुए, उँगलियों को चटकाते हुए, मौन होकर, माला और आभूषण उतार कर, आग्रतस्थानक मुद्रा धारण कर स्त्रियाँ क्रोध तथा ईर्ष्या का अभिनय करे ।

दुःख

अधिकोच्छ्वासनिःश्वसैरधौमुखविलोकनैः ।

विहायःप्रेक्षणाच्चापि नृणां दुःखं निदर्शयेत् ॥६६१॥ 658

अत्यधिक नि श्वास और उच्छ्वास से युक्त मुख नीचा करके देखने और आकाश की ओर ताकने से पुरुष दुःख का भाव प्रकट करे ।

शिरोभिघातात् सध्वानै रौदनैरभिपाततः ।

भूमिघातादपि स्त्रीणां दुःखं धीमान् नियोजयेत् ॥६६२॥ 659

सिर पीटने, चिल्लाकर रोने, धरती पर गिरने और भूमि पर चोट करने से धीमान्, पुरुष स्त्रियों के दुःख को प्रकट करे ।

विचित्राभिनय प्रकरण

भय

उद्वेगसम्भ्रमैः शस्त्रसम्पातेनापि साधवसम् ।

पुंसामभिनयेद् धीमान् धैर्यद्विगादिभिस्तथा ॥६६३॥ 660

उद्वेगजन्य हडबडी, शस्त्रपात, धैर्य और उद्वेग आदि से बुद्धिमान् पुरुष को पुरुषो का भय प्रदर्शित करना चाहिए ।

लोलतारकनेत्राभ्यामङ्गस्फुरितकम्पितैः ।

पाश्चावलोकनैश्चित्रशब्दादाक्रन्दितेन च । 661

आलिङ्गनेन पुंसोऽपि स्त्रिया भीति प्रदर्शयेत् ॥६६४॥

आँखों के तारे चलाने, अंग-स्फुरण, शरीर को कम्पाने, बगल की ओर देखने, हाय-हाय करके चिल्लाने और आलिङ्गन के द्वारा पुरुषों को स्त्रियों का भय प्रदर्शित करना चाहिए ।

पुंस्कृतः स्त्रीकृतो भावो द्विधेत्यभिनय प्रति । 662

तत्राद्यो धैर्यमाधुर्यसपन्नौ ललितोऽपरः ॥६६५॥

अभिनय-योजना में पुरुष तथा स्त्री द्वारा प्रकट किया जाने वाला भाव दो प्रकार का होता है। पुरुषों के अभिनय में धैर्य तथा माधुर्य से सयुक्त भावों और स्त्रियों के अभिनय में लालित्यपूर्ण भावों का प्रदर्शन करना चाहिए ।

शब्द

कम्पनेन शरीरस्य घूर्णनान्नेत्रयोरपि । 663

आकाशवीक्षणात् पादस्खलितैःकौमलैस्तथा ।

विलोमवचनैर्धीमान् नादं स्त्रीणां विनिर्दिशेत् ॥६६६॥ 664

शरीर के कम्पन, नेत्रों के घूमने, आकाश की ओर ताकने, पैरों के लडखडाने और कोमल तथा विपरीत वचनों द्वारा धीमान् पुरुष स्त्रियों के शब्द का अभिनय करे ।

उक्ता येऽभिनयास्तेऽमी प्रायः स्त्रीनीचसंश्रयाः ॥६६७॥

ऊपर जो अभिनय बताये गये हैं, वे प्रायः स्त्रियों और निकृष्ट पुरुषों के लिए हैं ।

पक्षियों का अभिनय (५)

सारसान् केकिहंसौ च स्थूलानन्यांश्च पक्षिणः । 665

रेचकैरङ्गहारैश्च निर्दिशेन्नाट्यकोविदः ॥६६८॥

नृत्याध्यायः

नाट्यवेत्ता को रेचिको तथा अगहारो के द्वारा सारस, मोर, हंस तथा अन्य बड़े पक्षियों का अभिनय करना चाहिए ।

अश्वेभोष्ट्रखरव्याघ्रसिंहांश्च महिषादिकान् । 666
अङ्गैर्गतिप्रकारैश्चाभिनयेन्निपुणो नटः ॥६६६॥

निपुण अभिनेता को घोडा, हाथी, ऊँट, गवा, बाघ, सिंह तथा भैंसा आदि का अभिनय गति-प्रचार के अगो से करना चाहिए ।

यक्षो तथा देवताओ आदि का अभिनय (६)

ये यक्षा राक्षसा दैत्याः पिशाचाद्यास्तथापरे । 667
परोक्षास्तेऽभिनेतव्या अङ्गहारैः प्रयोक्तृभिः ॥६७०॥
प्रत्यक्षा येऽभिनेयास्ते भयोद्वेगैः सविस्मयैः ॥६७१॥ 668

अभिनेताओ को यक्षो, राक्षसो, दैत्यो, पिशाचो और परोक्ष प्राणियो या वस्तुओ को अगहारो द्वारा अभिनीत करना चाहिए । प्रत्यक्ष यक्ष आदियो का अभिनय भय, उद्वेग तथा आश्चर्य के भावो द्वारा करना चाहिए ।

सभावैश्चेष्टितैर्देवाः प्रणामकरणादिभिः ।
अप्रत्यक्षा विनिर्देश्याः प्रयोगनिपुणैर्नटैः ॥६७२॥ 669
प्रत्यक्षाः देवताः साक्षात्पूजोपकरणादिभिः ॥६७३॥

नाट्य-प्रयोग मे निपुण अभिनेताओ को भावपूर्ण चेष्टाओ और प्रणाम आदि के द्वारा अप्रत्यक्ष देवताओ का अभिनय करना चाहिए । किन्तु प्रत्यक्ष देवताओ का अभिनय साक्षात् पूजन-सामग्री आदि के द्वारा करना चाहिए ।

निर्दिशेद्यथ वृक्षादीनचलांश्च समुच्छ्रितान् । 670
ऊर्ध्वप्रसारणाद् बाह्वोर्दर्शयेल्लोकयुक्तितः ॥६७४॥

ऊँचे वृक्षो और पर्वतो का भाव बाहुओ को ऊपर फैला कर लोक-रीति के अनुसार प्रदर्शित करना चाहिए ।

मञ्जुलैरुज्ज्वलैर्वेषैर्निनिमेषैः सुलोचनैः । 671
मुदितेनापि मनसा दर्शयेद् दिव्ययोषितः ॥६७५॥

सुन्दर तथा उज्ज्वल वेशो, अपलक नेत्रो और प्रसन्न मन से दिव्य स्त्रियो (देवागनाओ तथा अप्सराओ) का अभिनय करना चाहिए ।

विचित्राभिनय प्रकरण

चमूं समूहमम्भोधि विस्तीर्ण वनमेव च । 672
 विक्षिप्ताभ्यां पता[का]भ्यांनिर्दिशेन्नाट्यनृत्तयोः ॥६७६॥

नाट्य तथा नृत्त के समय सेना, समूह, समुद्र तथा विस्तृत वन का भाव दानो पताक हस्तों को फला कर प्रदर्शित करना चाहिए ।

कामेन ग्रहपाशाभ्या ज्वरेणापि च येऽदिताः । 673
 तेषामभिनयं कुर्याच्छथिलाङ्गविचेष्टितैः ॥६७७॥

जो काम, ग्रह, बन्धन तथा ज्वर से पीडित हो, उनका अभिनय शिथिल अंग-चेष्टाओं द्वारा करना चाहिए ।

अङ्गैर्लानैरिवाङ्गेषु तथा वासोवगुण्ठनात् । 674
 दृष्ट्याधोगतया धीरैर्निदेश्या कुलजाङ्गना ॥६७८॥

अंगों को मानों अंगों में लीन करके, वस्त्र का घुंघट काढ कर और दृष्टि को नीचे करके वीर पुरुषों को कुलीन स्त्री का अभिनय करना चाहिए ।

नानालंकृतचिन्नाङ्गैः समदैर्बहुचेष्टितैः । 675
 नि.शङ्कगमनेनापि नटो वेश्या प्रदर्शयेत् ॥६७९॥

नाना अलंकारों से सज्जित अंगों, मद्युक्त चेष्टाओं और निश्चक गमन के द्वारा अभिनेता को वेश्या का भाव प्रदर्शित करना चाहिए ।

खेदनिःश्वासचिन्ताभिस्तथा हृदयतापतः । 676
 सम्प्रलापैस्तथालीनामात्मावस्थानिदर्शनैः ॥६८०॥

खेद, निश्वास, चिन्ता, हृदय-ताप, प्रलाप तथा व्याकुल चित्त वालों का अभिनय तदनुसार आंगिक अभिनय द्वारा करना चाहिए ।

ग्लान्यश्रुपातदैन्यैश्च सरोषवदनैरपि । 677
 अङ्गैर्निर्भूषणैर्दुःखै रोदनैरपि नाट्यचित् ॥६८१॥

विप्रलब्धाः खण्डिताश्च कलहान्तरिता अपि । 678
 इत्थं प्रदर्शयेन्नाट्ये तथा प्रोषितभर्तृकाः ॥६८२॥

नृत्याध्याय

नाट्यनिपुण अभिनेता को, **विप्रलब्धा** (सकेत-स्थल में प्रिय के न मिलने से दुःखी नायिका), **खण्डिता** (नायक में अन्य स्त्री के संयोग-चिह्न देखकर कुपित हुई नायिका), **कलहान्तरिता** (पति या नायक का अपमान कर पीछे पछताने वाली नायिका) और **प्रोषितभर्तृका** (वह स्त्री जिसका पति परदेश गया हो) नायिकाओं का भाव (क्रमशः) ग्लानि, अश्रुपात, दीनता, क्रोधयुक्त मुख, आभूषणरहित अंग, दुःख और रोदन के द्वारा प्रदर्शित करना चाहिए।

विचित्रमण्डनैर्हर्षवैर्षैर्नानाविधैरपि । 679
तथातिशयशोभाभिर्दिशेत् स्वाधीनभर्तृकाः ॥६८३॥

स्वाधीनभर्तृका (पति को अपने वश में रखने वाली) नायिकाओं का विचित्र प्रकार के आभूषण, नाना प्रकार के वेश तथा प्रचुर अग्राग-प्रसाधनों द्वारा अभिनय करना चाहिए।

एवं वासकसज्जापि निर्देश्या नाट्यकोविदैः ॥६८४॥ 680

इसी प्रकार नाट्यनिपुण अभिनेताओं को **वासकसज्जा** (श्रुगार करके नायक की प्रतीक्षा करने वाली) नायिका का भी अभिनय करना चाहिए।

नियुज्यन्ते बुधैरेतेऽभिनया भावसंयुताः ॥६८५॥

विद्वानों को चाहिए कि उक्त अभिनयों को वे भावसंयुक्त होकर सम्पन्न करें।

अभिनेताओं को नाट्य-निर्देश

या यस्य नियता लीला गतिश्च स्थितिरेव च । 681

तस्य रङ्गप्रविष्टस्तां नटस्तावद् निनिर्दिशेत् ।

यावन्न निर्गतो रङ्गादिति सामान्यतो विधिः ॥६८६॥ 682

रंगमंच पर प्रवेश करने वाले अभिनेता को चाहिए कि जिस अभिनेय वस्तु की जो लीला, गति तथा स्थिति निश्चित हो, उसको तब तक प्रदर्शित करें, जब तक वह रंगमंच पर अवस्थित रहे, यह सामान्य विधान है।

दक्षिणेनालपद्मेन वामेन चतुरेण च ।

परिमण्डलितेनाथ मयूरललितेन च ॥६८७॥ 683

वीराख्यया तथा दृष्ट्या शिरसोद्वाहितेन च ।

एवं विनिर्दिशेत् षड्जं कोविदो नाट्यनृत्ययोः ॥६८८॥ 684

विचित्राभिनय प्रकरण

नाट्य तथा नृत्य में निपुण अभिनेता को चाहिए कि रगमच पर वह दक्षिण अलम्ब हस्त, वाम चतुर हस्त, परिमण्डल हस्त, मयूरललित हस्त, वीग दृष्टि आर उद्वाहित शिर में षड्ज स्वर (सगीत के सात स्वरों में प्रथम) का अभिनय प्रस्तुत करे ।

हंसास्याभिधहस्तेन दक्षिणेनेतरेण तु ।
कटिस्थेनार्धचन्द्रेण समेन शिरसा तथा । 685
ब्राह्माख्यस्थानकेनापि धीमानृषभमादिशेत् ॥६८६॥

बुद्धिमान् अभिनेता को चाहिए कि दक्षिण हस्त हस्त, कटि पर अवस्थित वाम अर्धचन्द्र हस्त, सम शिर और ब्राह्म नामक स्थानक के द्वारा वह ऋषभ स्वर (सगीत के सात स्वरों में द्वितीय) का अभिनय प्रस्तुत करे ।

शुकतुण्डेन हस्तेन दृष्ट्या करुणया तथा । 686
अधोमुखेन शीर्षेणाश्वक्रान्तस्थानकेन च ।
चार्याप्यश्रितया धीमान् गान्धारं स्वरमादिशेत् ॥६९०॥ 687

धीमान् अभिनेता को चाहिए कि शुकतुण्ड हस्त, वक्रणा दृष्टि, अधोमुख शिर, अश्वक्रान्त स्थानक और अचिता चारी की रचना द्वारा वह गान्धार स्वर (सगीत के सात स्वरों में तृतीय) का अभिनय प्रस्तुत करे ।

पताकौ स्वस्तिकौ कृत्वा शिरसा विधुतेन च ।
शैवाख्यस्थानकेनापि कटीच्छिन्नेन वा पुनः । 688
दृष्ट्या सहास्यया धीरोऽभिनयेन्मध्यग स्वरम् ॥६९१॥

नाट्यनृत्य अभिनेता को चाहिए कि दोनों पताक हस्तों को स्वस्तिकाकार करके, विधुत शिर, शैव स्थानक या कटीच्छिन्न स्थानक और हास्ययुक्त दृष्टि की रचना द्वारा वह मध्यम स्वर (सगीत के सात स्वरों में चतुर्थ) का अभिनय प्रस्तुत करे ।

कृत्वालपल्लवौ हस्तौ धुतेन शिरसा तथा । 689
वैष्णवस्थानकेनापि दृष्ट्या कान्ताख्यया तथा ।
एवं विनिर्दिशेद् धीमान् स्वरं पञ्चमसंज्ञितम् ॥६९२॥ 690

बुद्धिमान् अभिनेता को चाहिए कि दोनों अलपल्लव हस्तों, धुत शिर, वैष्णव स्थानक और कान्ता दृष्टि की रचना करके वह पञ्चम स्वर का अभिनय प्रस्तुत करे ।

नृत्याध्याय

काङ्गूल]हस्तकौ कृत्वा दृष्ट्या बीभत्सया तथा ।

परावृत्ताख्यमूर्ध्ना च प्रत्यालीढाभिधेन च । 691

स्थानकेन विनिर्देश्यो धैवतौ निपुर्णैर्नटैः ॥६९३॥

निपुण अभिनेताओं को चाहिए कि दोनों कागूल हस्तों, बीभत्सा दृष्टि, परावृत्त शिर और प्रत्यालीढ स्थानक की रचना करके वे धैवत स्वर का अभिनय प्रस्तुत करें ।

हस्तेन करिहस्तेन करिहस्तेन दीनया । 692

दृष्ट्यावधूतशिरसा निषादं सन्निरूपयेत् ॥६९४॥

(अभिनेता को चाहिए कि) करिहस्त, दीना दृष्टि और अवधूत शिर की रचना करके वह निषाद स्वर का अभिनय प्रस्तुत करें ।

सुधाब्धिमतामाश्रित्याशोकमल्लेन भूभुजा । 693

अभिनीताः स्वराः सप्त षड्जाद्याः नाट्यवेदिना ॥६९५॥

नाट्यशास्त्रवेत्ता राजा अशोकमल्ल ने सुधाब्धि (? सभवन भरत) के मत का अनुसरण करके षड्ज आदि सात स्वरों के अभिनय का निरूपण किया है ।

विभिन्न अभिनय प्रयोग

तं निर्दिशेत् पताकेन धिकार चतुरेण च । 694

तो(?थो) शब्द त्वर्धचन्द्रेण तथा टे त्रिपताकतः ॥६९६॥

पताक हस्त मुद्रा से त शब्द का, चतुर हस्त मुद्रा से धिकार शब्द का, अवचन्द हस्त मुद्रा से, (? थो) शब्द का और त्रिपताक हस्त मुद्रा से टे शब्द का अभिनय करना चाहिए ।

कर्तार्योऽस्य ततं(?ते) पञ्च वर्णा वाद्योद्भवा मया । 695

अभिनीता यथौचित्यमभिनेयाः परे बुधैः ॥६९७॥

कर्तारीमुख हस्त मुद्रा से वाद्य के पाँचों वर्णों का अभिनय करना चाहिए । अन्य वर्णों के अभिनय के लिए विद्वान् जैसा उचित समझे, वैसा करें ।

ब्राह्मस्थः शुकतुण्डेन वामेनान्येन पाणिना । 696

तिर्यक् स्थितेनोपलाभं सूच्यास्येन विनिर्दिशेत् ॥६९८॥

ध्यानस्थ होकर वाम शुकतुण्ड हस्त तथा तिर्यक् स्थित दक्षिण सूचीमुख हस्त से पकड़ने का अभिनय करना चाहिए ।

विचित्राभिनय प्रकरण

तेन शब्दं सुधीरेवन्नयं च विरुतादिकम् । 697
यथोचित्य हस्तबाह्यं रम्येरभिनयेदिति ॥६२६॥

इसी प्रकार निपुण अभिनेता उक्त (वाम नुकतुड तथा नियक् स्थित दक्षिण म्चाम्य) हस्त से शब्द का ओर अन्य हस्तमुद्रा से गुजन का भाव प्रकट करे। उन्हें चाहिए कि अन्यान्य के भावों के प्रदर्शन के लिए वे यथोचित रीति से रमणीय हस्तमुद्राओं का प्रयोग करे।

प्रसारितभुजो मुष्टिर्वासोऽन्यः खटकामुखः । 698
कर्णस्थो धनुराकर्षे नियुक्तो नृत्यपण्डितैः ॥७००॥

नृत्यवेत्ता लोगो को फैली हुई भुजा वाले वाम मुष्टि हस्त तथा कान पर स्थित दक्षिण खटकामुख हस्त को धनुष खींचने के अभिनय में प्रयुक्त करना चाहिए।

खटकास्यकरस्थाने करः सूचीमुखो यदा । 699
तदासौ बाणसन्धाने विद्वद्भिः परिकीर्तितः ॥७०१॥

जब उक्त मुद्रा में खटकास्य हस्त के स्थान पर सूचीमुख हस्त को प्रयुक्त किया जाता है, तब विद्वानों ने बाण-सन्धान के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

श्रव्यं श्रवणयोगेन मुखयोगेन वाचिकम् । 700
स्पृश्यमङ्गलदियोगेन चक्षुर्योगेन चाक्षुषम् ॥७०२॥
गन्धं घ्राणस्य योगेन स्वादं जिह्वाभियोगतः । 701
एवं योग्येन हस्तेनाभिनयेन्नृत्यकोविदः ॥७०३॥

इस प्रकार नृत्यनिपुण अभिनेता को चाहिए कि वह कान के योग से सुनने योग्य विषय का, मुख के योग से वाचिक विषय का, अंग आदि के योग से स्पर्श करने योग्य विषय का, नेत्र के योग से चाक्षुष विषय का, नाक के योग से गन्ध विषय का और जिह्वा के योग से स्वाद विषय का अभिनय करे।

मयैवमेते सम्प्रोक्ता भावा अभिनयं प्रति । 702
सम्प्रोक्ता ये न ते ज्ञेयाः प्रायशो लोकतो बुधैः ॥७०४॥

इस प्रकार मैंने विभिन्न अभिनयों से सम्बद्ध भावों का निरूपण कर दिया है, किन्तु जिनके सम्बन्ध में नहीं कहा गया है, विज्ञ अभिनेताओं को चाहिए उन्हें लोक-व्यवहार द्वारा अवगत या ग्रहण करे।

नृत्याध्यायः

लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम् । 703

तस्मान्नाट्यप्रयोगे तु प्रमाणं लोक इष्यते ।

इत्युक्तं मुनिना सर्वदर्शना भरतेन हि ॥७०५॥ 704

सर्वदर्शी भरत मुनि ने तीन प्रकार के प्रमाण बताये हैं लोक, वेद और अ-यात्म (धर्म) । इसलिए नाट्य-प्रयोग में लोक-प्रमाण को मानना चाहिए ।

स्वस्वचेष्टासमुद्भूतै रसभावैः पृथक् पृथक् ।

ज्येष्ठमध्यमनीचेषु नाट्यं प्रीतिकरं भवेत् ॥७०६॥ 705

उत्तम मध्यम और अधम वस्तुओं या व्यक्तियों के अभिनय उनकी चेष्टाओं (प्रकृति) से उत्पन्न रस-भावों द्वारा पथक-पथक रूप में प्रदर्शित नाट्य-प्रयोग हृदयग्राही होता है ।

संग्रामधीरधुर्येण नृपाग्रण्या मनीषिणा ।

अशोकेन समादिष्टा विचित्राभिनया इमे ॥७०७॥ 706

संग्राम में धैर्य धारण करने वाले पुरुषों में श्रेष्ठ, भूपतियों में अग्रणी और मनीषी (बुद्धिमान्) राजा अशोकमल्ल ने उक्त विचित्र अभिनयों का निरूपण किया ।

विचित्राभिनय निरूपण समाप्त



वर्तना प्रकरण / सात

वर्तना (हस्तविन्यास) का निरूपण

कराभिनयशोभा या विचित्रा रचयन्ति हि ।
ततो मयेह लिख्यन्ते वर्तनास्ता मनोहरा ॥७०८॥ 707

विचित्र प्रकार की मनोहर वर्तनाएँ हस्ताभिनय की शोभा में चाम्ना उत्पन्न करती हैं । इसलिए यहाँ उनका निरूपण किया जा रहा है ।

वर्तना के भेद

वर्तनाद्या पताकाख्यालपद्मारालयोः परे ।
वर्तने शुकनुण्डाख्याबहिथ्वाख्ये च वर्तने ॥७०९॥ 708
मकराख्या ततो ज्ञेया खटकामुखवर्तना ।
अन्योर्ध्ववर्तना तद्वद् रेचिताभिधवर्तना ॥७१०॥ 709
आविद्धवर्तना केशबन्धाख्या वर्तना तत ।
भालवर्तनिकोरःस्थवर्तना कक्षवर्तना ॥७११॥ 710
खड्गवर्तनिका दण्डवर्तना पद्मवर्तना ।
नितम्बपल्लवाख्ये द्वे तथा ललितवर्तना ॥७१२॥ 711
अर्धमण्डलपूर्वा च वर्तना बलिताभिधा ।
घातवर्तनिका गात्रवर्तना प्रतिवर्तना ॥७१३॥ 712
पञ्चविंशतिरित्युक्ता वर्तना वायुसूनुना ॥७१४॥

हनुमान जी ने पच्चीस प्रकार की वर्तनाएँ बतायी हैं । उनके नाम हैं १ पताकवर्तना, २ अल्पद्वन्द्ववर्तना, ३ अरालवर्तना, ४ शुकनुण्डवर्तना, ५ अबहिथवर्तना, ६ मकरवर्तना ७ खटकामुखवर्तना, ८ ऊर्ध्ववर्तना,

नृत्याध्यायः

९ रेचितवर्तना, १० आविद्धवर्तना, ११ केशबन्धवर्तना, १२ भालवर्तना, १३ उरस्थवर्तना, १४ कक्षवर्तना, १५ खड्गवर्तना, १६ दण्डवर्तना, १७ पद्मवर्तना, १८ नितम्बवर्तना, १९ पल्लवर्तना, २० ललित-वर्तना, २१ अर्धमण्डलवर्तना, २२ वलितवर्तना, २३ घातवर्तना, २४ गात्रवर्तना और २५ प्रतिवर्तना ।

१ पताकवर्तना

मणिबन्धावधिभ्रान्तिः पताकस्य मुहुर्भवेत् । 713

सव्यापसव्यतो यत्र सा पताकाख्यवर्तना ॥७१५॥

यदि पताक हस्त को दाये-बाये क्रम से बार-बार मणिबन्ध (कलाई) तक घुमाया जाय तो वह पताकवर्तना कहलाती है ।

२ अल्पदमवर्तना

अल्पद्वकरे यत्र व्यावृत्तिक्रियया यदा । 714

वर्तितः सालपद्माख्या वर्तना गदिता बुधैः ॥७१६॥

यदि दोनो अल्पद्व हस्तो को घुमा कर रख दिया जाय तो विद्वानो ने उसे अल्पदमवर्तना कहा है ।

३ अरालवर्तना

कर्मणा वेष्टिताख्येन रचयित्वा यदा करः । 715

अरालो वर्तितः पश्चाद् यत्रोद्वेष्टितकर्मणा ।

प्रत्यपादि तदा धीरैररालकरवर्तना ॥७१७॥ 716

यदि पहले वेष्टित (घेरने) क्रिया के द्वारा अराल हस्त की रचना करके तत्पश्चात् उदवेष्टित (चारो ओर घेरने की) क्रिया द्वारा उसे अवस्थित किया जाय, तो विद्वानो ने उसे अरालहस्तवर्तना कहा है ।

४. शुकुतुण्डवर्तना

आविद्धाधोमुखो यत्र वक्षसः शुकुतुण्डकः ।

वर्तितश्चोरुपृष्ठे सा शुकुतुण्डाख्यवर्तना ॥७१८॥ 717

यदि शुकुतुण्ड हस्त को छाती के सामने टेढा तथा अधोमुख करके जाँघ पर रख दिया जाय तो उसे शुकुतुण्डवर्तना कहते हैं ।

५ अवहित्थवर्तना

करावेवमुभौ यत्र सावहित्थाख्यवर्तना ॥७१९॥

यदि दोनो शुकुतुण्ड हस्तो को शुकुतुण्डवर्तना मे अवस्थित किया जाय तो उसे अवहित्थवर्तना कहते हैं ।

विचित्राभिनय प्रकरण

६. मकरवर्तना

करो मकरनामा चेत् पुरतः पार्श्वयोस्तथा । 718
व्यार्विततो बहिश्चान्तस्तदा मकरवर्तना ॥७२०॥

यदि मकर हस्त को सामने तथा दोनो पार्श्वों में बाहर आर भीतर व्यार्वित (घुमा) दिया जाय तो उसे मकरवर्तना कहते हैं ।

७. खटकामुखवर्तना

सव्यापसव्यतो नाभिदेशे या खटकास्ययोः । 719
आन्तरामणिवन्धं सा खटकामुखवर्तना ॥७२१॥

यदि दोनो खटकामुख हस्तों को नाभि के पास बाँये-दाँये क्रम से कलाई तक घुमाया जाय तो उसे खटकामुखवर्तना कहते हैं ।

८ ऊर्ध्ववर्तना

वर्तितावूर्ध्वदेशे चेदुद्वृत्ताभिधहस्तकौ । 720
तदोर्ध्ववर्तना प्रोक्ता कोहलेन मनीषिणा ॥७२२॥

यदि उद्वृत्त दोनो हस्तों को ऊपर उठा कर अवस्थित किया जाय तो आचार्य कोहल ने उसे ऊर्ध्ववर्तना कहा है ।

९. रेचितवर्तना

हंसपक्षौ स्वस्तिकाच्चेद्विच्युतौ त्वरितभ्रमौ । 721
रच्येते रेचितौ यत्र सोक्ता रेचितवर्तना ॥७२३॥

यदि हंसपक्ष दोनो हस्तों को स्वस्तिक मुद्रा से हटाकर शीघ्रतापूर्वक घुमाया जाय और फिर रेचित हस्तों की रचना की जाय, तो उसे रेचितवर्तना कहते हैं ।

१०. आविद्धवर्तना

आविद्धवक्रयोर्यत्र बाहू व्यार्वितौ क्रमात् । 722
आविद्धौ चेत् तदा सोक्ता धीरैराविद्धवर्तना ॥७२४॥

यदि आविद्धवक्र दोनो हाथों की बाँहों को क्रमशः घुमाकर मोड़ लिया जाय तो धीर पुरुषों ने उसे आविद्धवर्तना कहा है ।

११. केशबन्धवर्तना

केशबन्धाभिधौ हस्तौ निर्गतौ केशदेशतः । 723

२०९

विचित्रवर्तनायोगादेकदाथ क्रमाहृतौ ।

वर्तितौ यत्र तत्रासौ केशबन्धाख्यवर्तना ॥७२५॥ 724

यदि केशबन्ध दोनो हस्तो को केशो के पास से निकाल कर विचित्रवर्तना के योग से एक-एक बार क्रमश दोनो को आहत किया जाय तो उसे केशबन्धवर्तना कहा जाता है ।

१२ भालवर्तना

उर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ वर्तितौ भालवर्तना ।

चक्रवर्तनिकेत्यस्या नामान्तरमुदीरितम् ॥७२६॥ 725

यदि दोनो ऊर्ध्वमण्डली हस्तो की रचना की जाय तो उसे भालवर्तना कहते है । उसका अपर नाम चक्रवर्तनिका भी कहा गया है ।

१३ उर स्थवर्तना

उरःस्थवर्तनां विद्यादुरोमण्डलिनोः क्रियाम् ॥७२७॥

दोनो उरोमण्डली हस्तो की रचना को ही उर स्थवर्तना कहा जाता है ।

१४. कक्षवर्तनिका

पार्श्वमण्डलिनोः स्वस्वपार्श्वयोर्भ्रमणं यदा । 726

युगपत् क्रमतो वा स्यात् कक्षवर्तनिका तदा ॥७२८॥

यदि दोनो पार्श्वमण्डली हस्तो को अपने-अपने पार्श्वो मे एक साथ या क्रमश एक-एक करके घुमाया जाय तो उसे कक्षवर्तनिका कहते है ।

१५ खड्गवर्तना

कुञ्चितो मुष्टिरेकोऽन्योऽञ्चितः स्यात् खटकामुखः । 727

इमौ कीर्त्तिधरः प्राह खड्गवर्तनिकाख्यया ॥७२९॥

यदि एक मुष्टि हस्त कुञ्चित (सिकुडा हुआ) आर दूसरा खटकामुख हस्त अञ्चित (झुका हुआ) हो, तो उसे खड्गवर्तना कहते है ।

१६. दण्डवर्तना

वर्तितौ दण्डपक्षौ चेत् तदा स्याद् दण्डवर्तना ॥७३०॥ 728

यदि दोनो हाथो की दण्डपक्ष मुद्रा मे रचना की जाय तो उसे दण्डवर्तना कहते है ।

२१०

विचित्राभिनय प्रकरण

१७ पद्मवर्तना

नलिनीपद्मकोशौ चेत् सविलासं लुठन्ति तौ ।

पूर्वसूरिभिरादिष्टा पद्मवर्तनिका तदा ॥७३१॥ 729

यदि नलिनीपद्मकोश नामक दोनो हस्त हाव-भाव के साथ लुठके नो पूर्वाचार्यो ने उमे पद्मवर्तना कहा है ।

१८ नितम्बवर्तना

नितम्बौ तु यदा हस्तौ विश्लिष्टाङ्गुलिपल्लवौ ।

मणिबन्धावधि आन्तौ वर्तित्वा स्कन्धदेशयोः ॥७३२॥ 730

पुनर्नितम्बदेशस्थौ वर्तितौ क्रमशस्तदा ।

नितम्बवर्तना सोक्ता लक्ष्यलक्ष्मविशारदैः ॥७३३॥ 731

यदि नितम्ब मुद्रा मे दोनो हाथो को, जिनकी उंगलियाँ अलग-अलग रह, कगई तक घुमाते हुए कन्वे तक ले जाया जाय और फिर क्रमश लाकर नितम्बो पर रख दिया जाय तो अभिनेताओ जोर नाट्याचार्यो ने उसे नितम्बवर्तना कहा है ।

१९ पल्लववर्तना

पल्लवौ वर्तितौ चेत् सा सविलासमनोहरौ ।

निरवादि तदा धीरैः पल्लवाभिधवर्तना ॥७३४॥ 732

यदि दोनो पल्लव हस्तो को हाव-भाव तथा मुन्दरना के साथ प्रदर्शित किया जाय तो उमे वीर पुरुषो ने पल्लववर्तना कहा है ।

२० ललितवर्तना

लीलया ललितौ हस्तौ वर्तितौ स्वोक्तरीतितः ।

यदा स्यातां तदा प्रोक्ता ललिताभिधवर्तना ॥७३५॥ 733

यदि दोनो ललित हस्तो को लीलापूर्वक हाव-भाव तथा मुन्दरना के साथ अवस्थित किया जाय तो उसे ललितवर्तना कहते है ।

२१ अर्धमण्डलवर्तना

सविलासं यदा स्यातामुरःपार्श्वार्धमण्डलौ ।

वर्तितौ स्वोक्तरीत्यैव त्वर्धमण्डलवर्तना ॥७३६॥ 734

नृत्याध्याय

यदि उर पार्श्वार्धमण्डल दोनो हस्तो को हाव-भाव के साथ अपने उक्त प्रकार से ही अवस्थित या प्रस्तुत किया जाय तो उसे अर्धमण्डलवर्तना कहते है ।

२२ वलितवर्तना

वलिताभिधहस्तौ चेद्वर्तितौ स्वोक्तरीतितः ।

सौष्ठवेन तदा सोक्ता धीरैर्वलितवर्तना ॥७३७॥ 735

यदि दोनो वलित हस्त चास्तापूर्वक अपने उक्त प्रकार से प्रस्तुत किये जाँय तो धीर पुरुषो ने उसे वलितवर्तना कहा है ।

२३ घातवर्तना

उल्वणौ वर्तितौ स्वोक्तरीत्योक्ता घातवर्तना ॥७३८॥

यदि दोनो उल्वण हस्तो को अपने उक्त प्रकार से प्रस्तुत किया जाय तो उसे घातवर्तना कहते ह ।

२४ गात्रवर्तना

अलपल्लवहस्तोऽन्तर्गात्रं व्यावर्तितो यदि ।

736

परागास्योऽपविद्धः स्यात् तदोक्ता गात्रवर्तना ॥७३९॥

यदि अलपल्लव हस्त को अन्दर शरीर की ओर घुमाकर पराङ्मुख (उलटा) करके अपविद्ध किया जाय तो उसे गात्रवर्तना कहते हे ।

२५ प्रतिवर्तना

प्रातिलोभ्येन गात्रस्य हस्त आक्षिप्य वर्तितः ।

737

अलपल्लवनामा चेत् तदोक्ता प्रतिवर्तना ॥७४०॥

यदि अलपल्लव हस्त को शरीर के विपरीत भाव से (बाहर की ओर) आक्षिप्त करके अवस्थित या प्रस्तुत किया जाय तो उसे प्रतिवर्तना कहते है ।

वर्तना के अन्य भेद

वर्तना चतुरस्राख्यापरा तलमुखाह्वया ।

738

वर्तना स्वस्तिकाख्यान्या विप्रकीर्णाभिधा परा ॥७४१॥

तथा पुष्पपुटाख्यान्या त्रिपताकाह्वया परा ।

739

कर्तर्यास्याभिधा मुष्टिवर्तना (ख्या ततः) परा ॥७४२॥

शिखराख्या कपित्थाख्या तथा सूचीमुखाह्वया । 740
एवमेकादश ज्ञेया वर्तनाश्च मतान्तरे ॥७४३॥

अन्य आचार्यों के मत से वर्तना के ग्यारह भेद बताये गये हैं, जिनके नाम हैं १ चतुरस्रवर्तना, २ तुलमुखवर्तना, ३ स्वास्तिकवर्तना, ४ विप्रकीर्णवर्तना, ५ पुष्पपुटवर्तना, ६ त्रिपताकवर्तना, ७ कर्तरीमुखवर्तना, ८ मष्टि-वर्तना, ९ शिखरवर्तना, १० कपित्थवर्तना आर ११ सूचीमुखवर्तना ।

१ चतुरस्रवर्तना

चतुरस्रौ यदा हस्तौ चलितौ सांसकूर्परौ । 741
उद्वेष्टितक्रियापूर्वौ पश्चाद् वक्षः समाश्रितौ ।
तदा धीरैः समादिष्टा चतुरस्राख्यवर्तना ॥७४४॥ 742

यदि दोनो चतुरस्र हस्तो को कर्ण्य तथा कुहनी सहित चलाया जाय ओर उद्वेष्टित (चारो ओर से घेरने की) क्रिया करने के अनन्तर उन्हें छाती पर अवस्थित किया जाय, तो धीर पुरुषो ने उसे चतुरस्रवर्तना कहा है ।

२ तलमुखवर्तना

यदा तलमुखौ हस्तौ वर्तितौ स्वोक्तरीतितः ।
सौष्ठवेन तदा धीरैरुक्ता तलमुखाह्वया ॥७४५॥ 743

यदि दोनो तलमुख हस्तो को अपने उक्त प्रकार से सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया जाय तो धीर पुरुषो ने उसे तलमुखवर्तना कहा है ।

३ स्वस्तिकवर्तना

व्यावर्तनक्रियापूर्वं क्रियेते स्वस्तिकौ यदा ।
तदा सद्भिः समादिष्टा वर्तना स्वस्तिकाभिधा ॥७४६॥ 744

यदि दोनो स्वस्तिक हस्तो को व्यावर्तन क्रिया के द्वारा प्रस्तुत किया जाय तो मज्जनो ने उसे स्वस्तिकवर्तना कहा है ।

४ विप्रकीर्णवर्तना

उद्वेष्टितक्रियापूर्वं भ्रमन्तौ विच्युताविमौ ।
स्वस्वपार्श्वगतौ प्रोक्ता विप्रकीर्णाख्यवर्तना ॥७४७॥ 745

नृत्याध्याय

यदि उक्त स्वस्तिक हस्तो को चारो ओर घेरते तथा घुमाते हुए अलग-अलग करके अपने-अपने पार्श्व में अवस्थित कर दिया जाय तो उसे विप्रकीर्णवर्तना कहते हैं ।

५ पुष्पपुटवर्तना

परिवृत्त्या पुष्पपुटः करः पार्श्वे व्रजेद् यदि । 746

ततो वक्षःस्थलं प्राप्तो व्यावृत्त्या नेत्रमुन्दरः ।

तदा धीरैः पुष्पपुटवर्तना समुदाहता ॥७४८॥ 747

यदि पुष्पपुट हस्त को घुमाते हुए पार्श्व में ले जाया जाय और फिर, नेत्रो को अच्छा लगने वाले, उस हस्त को वहाँ से वक्ष स्थल पर पहुँचा दिया जाय तो धीर पुरुषो ने उसे पुष्पपुटवर्तना कहा है ।

६ त्रिपताकवर्तना

सव्यापसव्यतो भ्रान्तौ त्रिपताकौ मुहुः करौ ।

मणिबन्धावधि प्रोक्ता त्रिपताकाख्यवर्तना ॥७४९॥ 748

यदि दोनो त्रिपताक हस्तो को बार-बार बाँये-दाँये क्रम से कलाई तक घुमाया जाय तो उसे त्रिपताकवर्तना कहते हैं ।

७ कर्तरीमुखवर्तना

त्रिपताकोत्तरीत्यैव

कर्तरीमुखवर्तना ॥७५०॥

यदि दोनो कर्तरीमुख हस्तो को उक्त त्रिपताक हस्तो की तरह प्रस्तुत किया जाय तो उसे कर्तरीमुखवर्तना कहते हैं ।

८ मुष्टिवर्तना

व्यावृत्तिक्रियया मुष्टिं कृत्वा चेद् भ्रामयेन्मुहुः । 749

सव्यापसव्यतो मुष्टिवर्तना सद्भिरीरिता ॥७५१॥

यदि मुष्टि हस्त को व्यावृत्ति (चक्कर काटने की) क्रिया द्वारा बाँये-दाँये क्रम से बार-बार घुमाया जाय तो उसे सज्जनो ने मुष्टिवर्तना कहा है ।

विचित्राभिनय प्रकरण

९ शिखरवर्तना, १० कपित्थवर्तना, ११ सूचीमुखवर्तना

शिखरस्य कपित्थस्य तथा सूचीमुखस्य च । 750

भवन्ति वर्तना मुष्टिवर्तनोक्तप्रकारतः ॥७५२॥

शिखर, कपित्थ और सूचीमुख हस्तो की वर्तनाएँ उक्त मुष्टिवर्तना में निर्दिष्ट क्रिया के अनुरूप सम्पन्न होती हैं।

करणामेवमन्येषामनन्ता वर्तना मताः । 751

अभिनेयवशाद् धीरैस्तत्तन्नाम्नीपलक्षिताः ॥७५३॥

इसी प्रकार अन्य हाथों की अनन्त वर्तनाएँ कही गयी हैं। अभिनय योग्य उन वर्तनाओं को विद्वानों ने अभिनय के अनुरूप उन-उन नामों से अभिहित किया है।

छत्तीस प्रकार की वर्तना का निरूपण समाप्त



चालन प्रकरण / आठ

हस्त संचालन क्रियाओ का निरूपण

नृत्यज्ञैर्यदि रेच्यन्ते वाहवो बहुभङ्गिभिः । 752
बहुधा चालनानि स्युस्तदा तान्यधुना ब्रुवे ॥७५४॥

जब निपुण अभिनेता अनेकानेक भाव-भंगिमाओ से वाहवो को गतिशील करने ह, तब वृत्तों नाना प्रकार की संचालन-क्रियाएँ बनती या उत्पन्न होती हैं। यहाँ उनका निरूपण किया जा रहा है।

विशिष्टवर्तित त्वाद्यं वेपथुव्यञ्जकं परम् । 753

अपविद्धं ततो ज्ञेयं लहरीचक्रसुन्दरम् ॥७५५॥

वर्तनास्वस्तिकाख्यं च सम्मुखीनरथाङ्गकम् । 754

पुरोदण्डभ्रमाख्यं च त्रिभङ्गीवर्णसारकम् ।

दोलं नीराजिताख्यं च स्वस्तिकाश्लेषचालनम् ॥७५६॥ 755

वामदक्षतिरश्चीनं वर्तनाभरणं तथा ।

मिथोसवीक्षाबाह्याख्यं मौलिरेचितकं तत ॥७५७॥ 756

मणिबन्धासिकर्षाख्यमंसवर्तनिकं तथा ।

आदिकूर्मावताराख्यं कलविद्धुविनोदकम् ॥७५८॥ 757

मण्डलाग्रं ततः पश्चाच्चतुष्पत्राब्जसंज्ञितम् ।

बालव्यजनकं चान्यत् ततो विरुडिबन्धनम् ॥७५९॥ 758

विशृङ्गाटकबन्धाख्यं तथा हुण्डलिचारकम् ।

धनुराकर्षणाख्यं च हारदामविलासकम् ॥७६०॥ 759

समप्रकोष्ठबलनं मुरजाडम्बरं ततः ।

तिर्यग्यातस्वस्तिकार्णं ततो देवोपहारकम् ॥७६१॥ 760

नृत्याध्याय

अलातचक्रकाख्यं च	ततः साधारणाभिधम् ।	
तथोरभ्रकसम्बाधं	मणिबन्धगतागतम् ॥७६२॥	761
ताक्ष्यपक्षविनोदाख्यं	धनुर्वल्लीविनामकम् ।	
तिर्यक्ताण्डवचाराख्यं	व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तकम् ॥७६३॥	762
कररेचितरत्नं च	मण्डलाभरणं तथा ।	
अष्टबन्धविहाराख्यं	शरसन्धाननामकम् ॥७६४॥	763
पर्यायगजदन्ताख्यमंसपर्यायनिर्गतम्		
स्यात् स्वस्तिक त्रिकोणं च	रथमेमिसम तथा ॥७६५॥	764
लतावेष्टितकाख्यं च	कर्णयुग्मप्रकीर्णकम् ।	
नवरत्नमुखं चेति	पञ्चाशच्चालकाः स्मृताः ॥७६६॥	765

चालको के पचास भेद कहे गये हैं—१ विश्लिष्टवर्तित, २ वैपथ्यव्यञ्जक, ३ अपविद्ध ४ लहचक्रसुन्दर, ५ वर्तनास्वस्तिक, ६ समुखीनरथाङ्गा, ७ पुरोदण्डभ्रम, ८ त्रिभगीवर्णसारक, ९ देल, १० नीराजित, ११ स्वस्तिकाश्लेष, १२ वामदक्षतिरश्चीन, १३ वर्तनाभरण, १४ भिथोसवीक्षाबाह्य, १५ मौलिरेचितक, १६ मणिबन्धासिकर्ष, १७ असवतुनिक, १८ आदिकूर्मावितार, १९ कलविडकविनोद, २० मण्डलाग, २१ चतुष्पत्राब्ज, २२ बालव्यञ्जन चालन, २३ विरुडिबन्धन, २४ विशू गाटकबन्धन, २५ कुण्डलिचारक, २६ धनराकर्षण, २७ हारदामविलासक, २८ सप्तप्रकोष्ठचलन, २९ मुरजाडम्बर, ३० तिर्यग्यतस्वस्तिकाग्र, ३१ देवोपहारक, ३२ अलातचक्र, ३३ साधारण, ३४ उरभ्रकसबाध, ३५ मणिबन्धगतागत, ३६ ताक्ष्य-पक्षविनोदक ३७ धनुर्वल्लीविनामक, ३८ तिर्यक्ताण्डव, ३९ व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक ४० कररेचितरत्न ४१ मण्डलाभरण, ४२ अष्टबन्धविहार, ४३ शरसन्धान, ४४ पर्यायगजदन्तक, ४५ असपर्यायनिर्गत, ४६ त्रिकोणस्वस्तिक, ४७ रथमेमिसम ४८ लतावेष्टित, ४९ कर्णयुग्मप्रकीर्णक और ५० नवरत्नमुख ।

१ विश्लिष्टवर्तित

विधाय स्वस्तिकौ यत्र तिर्यगेको विलोडितः ।

अपरः पार्श्वयोर्त्राशीर्षमूर्ध्वमधस्तथा ।

766

लोडितः स्यात् तदाख्यातं सद्भिर्विश्लिष्टवर्तितम् ॥७६७॥

चालन प्रकरण

यदि दोनो हाथो को स्वस्तिक मे बनाकर एक को तिरछा करके हिलाया जाय और दूसरे को दोनो पार्श्वो मे शिर तक नीचे-ऊपर हिलाया जाय तो सज्जनो ने उसे विश्लिष्टवर्तित कहा है ।

२ वेपथुव्यजक

लुठत्येककरे तिर्यङ् नाभिदेशगते सति । 767

ततोऽन्यदेशचलनं यन्मञ्जुलरसोज्ज्वलम् ।

हस्तयोस्तत् समाख्यातं वेपथुव्यञ्जकं तदा ॥७६८॥ 768

यदि एक हाथ नाभिदेश मे जाकर तिरछा होकर लोटे ओर फिर वहाँ से अन्य स्थानो मे सुन्दरतापूर्वक उज्ज्वल होकर संचलित हो, तो दोनो हाथो की उस क्रिया को वेपथुव्यजक कहते है ।

३ अपविद्ध

लुठनं मण्डलाकारं नाभिकण्ठप्रदेशयोः ।

वामदक्षिणतो यत् स्यादपविद्धमितीरितम् ॥७६९॥ 769

यदि नाभि और कण्ठ के पास बाँये-दाँये क्रम से हाथो को लोटाया जाय तो उसे अपविद्ध चलन कहते है ।

४ लहरीचक्रसुन्दर

एकस्मिन्नाभिदेशस्थे तिर्यङ्गुठति हस्तके ।

ततो वामं सपर्यन्तं परं प्राप्य पराङ्मुखम् ॥७७०॥ 770

कर्मणान्दोलनेनाथ प्रसार्यामुं बहिर्यदा ।

क्षिप्रमन्तरमाक्षिप्य शिरसः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७७१॥ 771

विलोड्यपार्श्वयोः स्तोत्रं यद्विलासेन जायते ।

तदवादि तदा सद्भिर्लहरीचक्रसुन्दरम् ॥७७२॥ 772

पहले एक हाथ को नाभिदेश मे रखकर तिरछा लोटा दिया जाय, फिर बाये हाथ को हिलाते-डुलाते हुए किनारे सहित उलटा कर शिर के दोनो बगल मे किञ्चित् हाव-भाव के साथ चलायमान किया जाय, उसी को सज्जनो ने लहरीचक्रसुन्दर चालन कहा है ।

५. वर्तनास्वस्तिक

एकस्य वलने पार्श्वे विद्युदाकृतिधारिणः ।

अन्वक्षरेण हस्तेन योगश्चेच्च्युतिपूर्वकः ॥७७३॥ 773

नृत्याध्यायः

असकृद् यत्र तत् प्रोक्त वर्तनास्वस्तिकं तदा ।

अथवेदं त्रिखण्डोक्तवर्तनाभिर्भवेदिति ॥७७४॥ 774

यदि एक हाथ विजली की आकृति धारण करके, अर्थात् विद्युलता के समान, बगल में चक्कर लगाये और दूसरा हाथ उसका अनुगमन करते हुए बार-बार उससे जुट जाय तथा हट भी जाय, तो उसे वर्तनास्वस्तिक चालन कहते हैं। उसे त्रिखण्डोक्तवर्तनाओ द्वारा सम्पन्न किया जाय।

६ समुखीनरथाग

परस्परमुखीभूय तिर्यग्विततरेचितौ ।

विधाय पार्श्वयोरन्तरावृत्ती तीक्ष्णकूर्परौ ॥७७५॥ 775

रेचितौ पूर्ववद् यत्र हस्तौ मञ्जुलतान्वितौ ।

समुखीनरथाङ्गं तच्चालनं परिकीर्तितम् ॥७७६॥ 776

जहाँ दोनो रेचित हस्तो को सुन्दर ढंग से एक-दूसरे के आमने-सामने फैलाकर दोनो पार्श्वों में दोनो नोकीली कोहनियो को चलाया जाय, वहाँ उसे समुखीनरथाग कहा जाता है।

७ पुरोदण्डभ्रम

तिर्यङ्मुष्टि विधायैकं पश्चादस्यैव चेद्वहिः ।

अन्तश्च लीलियान्यस्मिन् लुठिते सति हस्तयोः ॥७७७॥ 777

पुरस्तान्निमृत्तिर्यत्र पर्यायेण तदीरितम् ।

पुरोदण्डभ्रमाख्यं तच्चालनं प्राच्यसूरिभिः ॥७७८॥ 778

जहाँ दोनो हाथों में से एक को मुष्टि हस्त बना कर पश्चात् उसी के बाहर या भीतर लीलापूर्वक दूसरे हाथ को लोटा दिया जाय और अनुक्रम से आगे निकाल दिया जाय, तो पूर्वाचार्यों ने उसे पुरोदण्डभ्रम चालन कहा है।

८ त्रिभगीवर्णसारक

पूर्वं पार्श्वे ततः पश्चाद् विदिश्यपि पदक्रिया ।

करयोर्जायते यत्र युगपत् क्रमतोऽथवा । 779

त्रिभङ्गीवर्णसारकं चालनं तद्दुदीरितम् ॥७७९॥

जहाँ दोनो हाथों का संचालन पूरब में, अगल-बगल में तथा दो दिशाओं के अन्तराल में एक साथ या क्रमशः किया जाता है, वहाँ वह त्रिभगीवर्णसारक चालन कहलाता है।

चालन प्रकरण

९ दोल

यत्रोर्ध्वोऽधोमुखस्त्र्यस्त्रं लीयया लुठित क्रमात् । 780
करस्तद्दोलमादिष्टं चालनं प्राक्तनैर्बुधैः ॥७८०॥

जहाँ एक हस्त क्रमश ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख होकर त्रिकोण में लोटता है, वही उमको पूर्वाचार्यो ने दोल चालन कहा है ।

१० नीराजित

स्वस्तिकीभूय चेद्धस्तौ बहिरेव विनिर्गतौ । 781
अन्तस्तिर्यक् चक्रभावान्मूर्धन सव्यापसव्ययोः ।
युगपत्लुठतो यत्र तन्नीराजितचालनम् ॥७८१॥ 782

यदि दोनो हाथो को स्वस्तिक मुद्रा में रच कर बाहर की ओर निकाला जाय आर फिर भीतर तिरछा करके चक्राकार में बाँये-दाँये क्रम से एक साथ मस्तक पर लोटा दिया जाय तो वह नीराजित चालन कहलाता है ।

११ स्वस्तिकाश्लेष

विभ्रतोः स्वस्तिकाकारं करयोः स्कन्धदेशतः ।
वलनं चेत् तदा प्रोक्तं स्वस्तिकाश्लेषचालनम् ॥७८२॥ 783

यदि स्वस्तिकाकृति धारण किये हुए दोनो हाथो को कन्धे के पास से घुमाया जाय, तो उसे स्वस्तिकाश्लेष चालन कहा जाता है ।

१२ वामदक्षतिरश्चीन

वामदक्षिणयोस्तिर्यग्लुठनं करयोर्यदा ।
स्वस्तिकाकारयोर्यत्र तत् तदा तण्डुना मतम् । 784
वामदक्षतिरश्चीनं तदप्यन्वर्थनामकम् ॥७८३॥

जब दोनो स्वस्तिकाकार हस्त बाँये-दाँये क्रम से तिरछे लोटा दिये जाय, तब उसे आचार्य तण्डु के मत से वामदक्षतिरश्चीन चालन कहते हैं । यह उसकी अन्वर्थसज्ञा (अर्थानुरूप नाम) है ।

१३ वर्तनाभरण

एकः करो यदा कर्णदेशगोऽन्यस्तु वर्तितः । 785
उत्सार्योद्वेष्टितेन स्याद् वर्तनाभरणं तदा ॥७८४॥

नृत्याध्यायः

जब एक हाथ कान के पास रहे आर दूसरे हाथ को हटाकर चारो ओर से घेर दिया जाय तब उसे वर्तनाभरण चालन कहते है ।

१४ मिथोसवीक्षाबाह्य

एकः करश्चेदन्यस्य स्कन्धदेशमृजुर्गतः । 786

निवृत्तः सन् निजे पार्श्वे क्रमाद् विहितमण्डलः ।

मिथोसवीक्षाबाह्यं तत्कथ्यते चालनं तदा ॥७८५॥ 787

यदि एक हाथ दूसरे के कन्धे पर सीधे चला जाय और फिर क्रमशः मण्डल बना कर पार्श्व में लोट आये, तो उसे मिथोसवीक्षाबाह्य कहते है ।

१५ मौलिरेचितक

कटिदेशगतस्त्वेकोऽपरस्तु पुरतो गतः ।

अथैतो केशपर्यन्तं लीलया लुठितौ यदि । 788

तदात्र सद्भिराख्यातं मौलिरेचितकं तदा ॥७८६॥

यदि एक हाथ को कमर पर और दूसरे को सामने रखा जाय तथा दोनो को केश पर्यन्त लीलापूर्वक लोटाया जाय तो सज्जन लोग उसे मौलिरेचितक चालन कहते है ।

१६ मणिबन्धासिकर्ष

हस्तावुद्यम्य युगपत् क्रमाद् वा स्कन्धधोर्यदि । 789

विलोडनं विधायाथ कूर्परस्वस्तिकात्मना ॥७८७॥

तत्रैव लोडयित्वाथ बहिरन्तश्च मुष्टितः । 790

द्रुतं निविश्य लुठनाच्चक्राकृतिविडम्बिनः ॥७८८॥

तदन्यस्मिन् क्रमाद्धस्ते पार्श्वयोर्वलनं गते । 791

परस्य लीलया यत्र समुत्क्षेपो विधीयते ।

मणिबन्धासिकर्षाख्यं तदा सद्भिर्निरूपितम् ॥७८९॥ 792

दोनो हाथो को एक साथ या क्रम से उठाकर दोनो कन्वो पर हिलाया जाय, फिर कुहनियो को स्वस्तिकाकार बनाकर हाथो को वही पर हिलाया जाय, अनन्तर बाहर और भीतर शीघ्र मुष्टि हस्त का प्रयोग करके चक्राकार हाथ को लोटाया जाय, पश्चात् एक हाथ को दोनो पार्श्वो में टेढा करके दूसरे हाथ को लीलापूर्वक ऊपर उठाया जाय, ऐसा करने पर सज्जनो ने उसे मणिबन्धासिकर्ष चालन कहा है ।

चालन प्रकरण

१७ असवर्तनिक

मणिबन्धप्रकोष्ठासवर्तनाच्चलितोद्धृतैः	।	793
किंश्चित्साचिनत शीर्षं विधायोपरिलोडनैः ॥७६०॥		
परागधोमुखत्वेन सुठितैरुरसः पुरः ।		794
ततश्चेच्चलितं पाण्योः कुटिलैः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७६१॥		
युगपत् क्रमतो यद्वा भूयते यत्र तत् तदा ।		795
अंसवर्तनिकं प्रोक्तं तल्लक्षणविशारदैः ॥७६२॥		

कलाई से लेकर कुहनी तक के भाग में चलाया जाय और मिर को कठ निरछा करके उसके ऊपर हाथों को हिलाया जाय, फिर ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख होकर वक्षस्थल के मध्य हाथों को लोटाया जाय, पश्चात् दोनों पार्श्वों में हाथों को कुटिल करके एक साथ या क्रमशः चलायमान किया जाय। ऐसी क्रिया को लक्षण के विशेषज्ञों ने असवर्तनिक चालन कहा है।

१८ आदिकूर्मावतार

वामदक्षिणयोर्मूर्ध्नो युगपत् क्रमतोऽथवा ।		796
ऊर्ध्वाधोमण्डलभ्रान्तौ करौ स्वस्तिकतां गतौ ॥७६३॥		
वर्तनास्वस्तिकौ पण्डरङ्गुद्वे मण्डलघूर्णितौ ।		797
बृहन्मण्डलपूर्णां चेत् पुरो विलुठतस्तदा ।		
आदिकूर्मावताराख्यं भणितं पूर्वसूरिभिः ॥७६४॥		798

मस्तक के वाम तथा दक्षिण भाग में एक साथ या क्रमशः स्वस्तिकाकार हाथों को ऊपर-नीचे मण्डलाकार में घुमाया जाय, फिर वर्तनास्वस्तिक नामक चालन वाले हाथों को दोनों पार्श्वों में मण्डल बनाकर घुमा दिया जाय, इस प्रकार बृहत् मण्डल से पूर्ण हाथ जब सामने लोटने लगते हैं, तब पूर्वाचार्यों ने उसे आदिकूर्मावतार चालन कहा है।

१९ कर्लाविकविनोद

मूर्ध्नि देशोपरि करौ यद् मध्याकाशमेकदा ।		
विलोड्य मण्डलाकारमथ चेत् पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७६५॥		799

१ देखिए भरतकोश, पृ० ८१० ।

नृत्याध्यायः

करयोः क्रियते यत्र पतनोत्पतनात्मिका ।
 पुनः[पुनः] क्रिया या स्यात् द्रुतमानेन लीलया । 800
 कलविद्धकविनोदाख्यं चालनं तत् तदेरितम् ॥७६६॥

मस्तक के ऊपर दोनों हाथों को मध्य जाकाज में एक बार हिलाकर दोनों पार्श्वों में मण्डलाकार घुमाया जाय, फिर बार-बार तेजी से दोनों हाथों को लीलापूर्वक गिरा दिया जाय ओर उठा दिया जाय। ऐसी क्रिया को कलविद्धकविनोद चालन कहते हैं।

२० मण्डलाग्र

मुष्टिविलुठित^१स्त्वेकस्तदूर्ध्वं यात्य[था]परः । 801
 गतागतः पार्श्वयोः स पश्चात्तु पुरतो गतः ॥७६७॥
 एव सति पुनर्यत्र व्यत्यासात् करयोः क्रिया । 802
 चालनज्ञैः समाख्यात मण्डलाग्रमिदं तदा ॥७६८॥

एक मुष्टि हस्त लोटता रहे ओर दूसरा ऊपर को जाय, फिर वह हाथ दोनों बगलो में जाय, पश्चात् आगे जाय, इस प्रकार बदल-बदल कर दोनों हाथों की क्रियाएँ जहाँ हों, वहाँ चालन के विशेषज्ञों ने उसे मण्डलाग्र चालन कहा है।

२१. चतुष्पत्राब्ज

ऊर्ध्वं विलुठितः पूर्वं पश्चान्मण्डलवद्भ्रमः । 803
 विलासेन चतुर्दिक्षु हस्तो यत्र प्रवर्तते ॥७६९॥
 नाभिदेशसमीपस्थे लुठत्यन्यकरे सति । 804
 पर्यायाच्चेत् तत् तदोक्तं चतुष्पत्राब्जचालनम् ॥८००॥

जहाँ एक हाथ पहले ऊपर में लोटे पश्चान चारों दिशाओं में हाव-भाव के साथ मण्डलाकार में घूमे और दूसरा हाथ नाभि के समीप बारी-बारी से लोटे, तो उसको चतुष्पत्राब्ज चालन कहते हैं।

२२. बालव्यजन

पर्यायेणोत्प्रकोष्ठं चेत् स्कन्धदेशान्तरं गतौ । 805
 करौ विलुठितौ भूत्वाधोगतौ चक्रभावतः ।
 यत्र स्तस्तत् तदादिष्टं बालव्यजनचालनम् ॥८०१॥ 806

१ देखिए, 'स्यैक' भरतकोश, पृ० ८१५।

चालन प्रकरण

जहाँ दोनों हाथ बारी-बारी में कलाई में कुहनी तक के भाग का टाडकर रज्जा पर पहुँच कर लोटने लगे और फिर चक्राकार धारण कर नीचे चले जाय, तो उसको बालव्यजन चालन कहते हैं।

२३ विरुडिबन्धन

अनुसृत्य त्रिकोणत्वं करो यत्र विलोड्यते ।

पुरतः पार्श्वयोस्तद्वद् यदा मण्डलवृत्तित् । 807

चालकज्ञास्तदा प्राहुरिदं विरुडिबन्धनम् ॥८०२॥

जब हाथ त्रिकोण बनाकर हिलाया जाता है आर उमी तरह मण्डलाकार में जागे तथा दोनों पार्श्वों में चलाया जाता है, तब चालन के विशेषज्ञ लोग उसे विरुडिबन्धन चालन कहते हैं।

२४ विशृगाटकबन्ध

प्रतिलोमानुलोमाभ्या भवेदेतस्य या क्रिया । 808

विशृङ्गाटकबन्धाख्यं तद्विदस्तदवादिषुः ॥८०३॥

इसी विरुडिबन्धन नामक चालन क्रिया को यदि अनुलोम-विलोम-भाव से सम्पन्न किया जाय, तो चालनज्ञों ने उसे विशृगाटकबन्ध चालन कहा है।

२५ कुण्डलिचारक

विलोड्यते यत्र करो वामदक्षिणयोर्यदि । 809

गतागते दधद् दिक्षु तिर्यग्व्यावर्तिता पुनः ।

सद्भिरेतत् समादिष्टं तदा कुण्डलिचारकम् ॥८०४॥ 810

यदि बाये-दाये क्रम से हाथ को चलाया जाय आर दिशाओं में यातायात करने हुए उस हाथ को तिरछा घुमाया जाय तो सज्जन लोग उसे कुण्डलिचारक चालन कहते हैं।

२६ धनुराकर्षण

स्वस्तिकीकृतयोः पाण्योर्वेगात् तिर्यक् प्रसर्पतोः ।

पार्श्वेऽथैककरोऽकस्मान्निवृत्य यदि कर्णगः । 811

धनुराकर्षणं प्रोक्तं तदा त्वन्वर्थनामकम् ॥८०५॥

स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित दोनों हाथों को पार्श्व में तिरछा करके चलाया जाय और फिर एक हाथ को अकस्मात् लोटाकर कान पर ले जाया जाय, तो उसे अर्थानुरूप नाम वाला धनुराकर्षण चालन कहते हैं।

२७ हारदामविलासक

भुजावंसान्तरं गत्वा युगपत् पार्श्वयोर्द्वयोः । 812
पतेतां यत्र तत् प्रोक्तं हारदामविलासकम् ॥८०६॥

जब दोनो भुजाएँ कन्धो के बीच में जाकर एक साथ दोनो पार्श्वों में गिरते हैं, तब उसे हारदामविलासक चालन कहते हैं ।

२८ समप्रकोष्ठ

समप्रकोष्ठचलनमन्वर्थं सद्भिरीरितम् ॥८०७॥ 813

सज्जनो ने समप्रकोष्ठ चालन नामक चालन को अन्वर्थ बनाया है, अर्थात् समप्रकोष्ठ (कलाई से कुहनी तक के भाग) पर हाथ के चलने को समप्रकोष्ठ चालन कहते हैं ।

२९ मुरजाडम्बर

गत्वा विदिशि तत्रैव भवेदादत्तमण्डलः ।
सव्यापसव्यतो यत्र पार्श्वयोर्वर्तनान्वितः ॥८०८॥ 814

दक्षिणस्तु ततो वामस्कन्धदेशमुपाश्रितः ।
क्षिप्रं विदिशि यात्वाथ लुठितः सव्यपार्श्वके ॥८०९॥ 815

ततोऽन्यस्मिन् करे तिर्यक् नाभिदेशसमीपगे ।
लुठत्येतत् समादिष्टं मुरजाडम्बरं बुधैः ॥८१०॥ 816

दो दिशाओं के बीच (कोण) में जाकर वही मण्डल बना लिया जाय, फिर बाये-दाये क्रम से पार्श्वों में वर्तना से युक्त दाहिने हाथ को बाये कन्धे पर रख दिया जाय, अनन्तर शीघ्रतापूर्वक बाये पार्श्व में दाहिने हाथ को लोटा दिया जाय, तत्पश्चात् बाये हाथ को नाभिदेश में तिरछा करके लोटा दिया जाय । इसी क्रिया को बुधगण मुरजाडम्बर चालन कहते हैं ।

३०. तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्रं

प्रसृतौ पार्श्वयोः पूर्वं हस्तकौ तदनन्तरम् ।
मिथोऽभिमुखतां प्राप्य जातस्वस्तिकबन्धनौ ॥८११॥ 817

पुरतो धावतो यस्मिन् सविलासं यदा तदा ।
तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्रं तत् सुमन्तुरभाषत ॥८१२॥ 818

चालन प्रकरण

पहले दोनो हाथो को पार्श्वो मे फैला दिया जाय, तदनन्तर एक-दुमरे के आमने-सामने करके दोनो को स्वस्तिक मुद्रा मे बाँध कर आगे की ओर हाव-भाव के साथ चलाया जाय, इम क्रिया को जाचाय समन्तु ने तिर्यग्यातस्वस्तिकाप्र चालन कहा है ।

३१ देवोपहारक

अरालकपरिवृत्तेरुभयो. पार्श्वयोरपि ।
 सरलप्रसृतस्याग्रे करस्य लुठति स्वयम् ॥८१३॥ 819
 सम्प्राप्य कूर्परक्षेत्रे परो लुठति यत्र तत् ।
 देवोपहारकं प्रोक्तं तदा नृत्तविचक्षणैः ॥८१४॥ 820

दोनो पार्श्वो मे अराल हस्त को परिवर्तित करके एक हाथ को सीधा फैलाकर स्वय लोटा दिया जाय, फिर कुहनी के आस-पास दुमरे हाथ को लोटा दिया जाय । इम क्रिया को नृत्य के विद्वानो ने देवोपहारक चालन कहा है ।

३२ अलातचक्र

कश्चिदन्तर्बहिश्चक्रचरो हस्तः पराङ्मुखः ।
 अन्यो विडम्बनां धत्तेऽलातचक्रस्य चेद् तदा । 821
 अलातचक्रमाख्यातं सद्भिरन्वर्थनामकम् ॥८१५॥

बाहर भीतर चक्र के समान चलने वाला एक हाथ किमी ओर से मुँह मोड ले और दूसरा हाथ अलातचक्र का अनुकरण करे, तो सज्जन लोग उसका अन्वर्थ (अर्थानरूप) नाम अलातचक्र बताते है ।

३३. साधारण

कटिदेशगतौ हस्तौ तिर्यग्यदि विलोडितौ । 822
 ततोऽन्तर्मण्डलभ्रान्तावथवा बहिरेकदा ।
 यत्र साधारणसदश्चालनं कथितं तदा ॥८१६॥ 823

यदि दोनो हाथ कमर पर तिरछे चलाये जायँ और उसके बाद भीतर अथवा बाहर एक वार मण्डलाकार मे घुमाये जायँ, तो उसको साधारण चालन कहते है ।

३४. उरभ्रकसम्बाध

स्वस्तिकाकृतितानां नीत्वा निष्क्रान्तौ बहिरेव चेत् ।

करो निवृत्तौ वेगेन मिथः सांमुख्यधारिणौ । 824
यत्रोरभ्रकसम्बाधचालनं तत् तदेरितम् ॥८१७॥

यदि दोनो हाथो को स्वस्तिकाकार बनाकर बाहर ही निकाला जाय और फिर एक-दूसरे को आमने-सामने करके वेग से हटा दिया जाय, तो उसको उरभ्रकसम्बाध चालन कहते हैं ।

३५ मणिबन्धगतागत

मणिबन्धे यदैकस्य करो विलुठितोऽपरः । 825
बहिर्मण्डलगः स्थित्वा तथान्तर्मण्डलैस्तदा ।
यस्मिन् प्रवर्तते तत् स्यान् मणिबन्धगतागतम् ॥८१८॥ 826

जब एक हाथ की कलाई पर दूसरा हाथ लोटा दिया जाता है और फिर उसको बाहर के गोल घेरे में रखकर भीतर के गोल घेरे में कर दिया जाता है, तब उसे मणिबन्धगतागत चालन कहते हैं ।

३६ तार्क्ष्यपक्षविनोदक

वर्तनास्वस्तिकीभूय विधुतौ युगपत् करौ ।
पार्श्वयोर्लोडितौ प्रोक्तौ तार्क्ष्यपक्षविनोदकम् ॥८१९॥ 827

यदि दोनो हाथो को वर्तनास्वस्तिक चालन बनाकर एक साथ कम्पित किया जाय और फिर दोनो पार्श्वों में संचालित किया जाय, तो उसे तार्क्ष्यपक्षविनोदक चालन कहते हैं ।

३७ धनुर्वल्लीविनामक

कृत्वोर्ध्वाधोमुखौ हस्तौ विलासात् क्रमतो यदि ।
मण्डलाकृतिसम्भ्रान्तौ ततस्तावेव पूर्ववत् ॥८२०॥ 828
शीर्षदेशे कटीदेशे पार्श्वयोर्नतिसंयुतौ ।
स्यातां यत्र तदा तत् स्याद् धनुर्वल्लीविनामकम् ॥८२१॥ 829

यदि दोनो हाथो को हाव-भावपूर्वक क्रमश ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख करके मण्डलाकार में घुमाया जाय और फिर उन्ही को पूर्ववत् सिर पर, कमर पर तथा पार्श्वों में मुकाकर अवस्थित किया जाय, तो उसे धनुर्वल्लीविनामक चालन कहते हैं ।

३८. तिर्यक्ताण्डच

पूर्वमूर्ध्व विधायैकं तिर्यग् नाभिप्रदेशगम् ।

- अपरं करमारच्य तिर्यक् पार्श्वान्तरं गतम् । 830
जायते या क्रिया तत् स्यात् तिर्यक्ताण्डवचालनम् ॥८२२॥
पहले एक हाथ को नाभिप्रदेश में निरडा करके ऊर्ध्वमुन किया जाय फिर दूसरे हाथ को दूसरे पाख में निरडा किया जाय, तो ऐसी क्रिया को तिर्यक्ताण्डव चालन कहते ह ।
- ३९ व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक
यत्र पार्श्वमुखौ पूर्व निःसृतौ त्वरया करौ । 831
तीक्ष्णकूर्परकौ स्याता श्लिष्टपूर्वमुखौ ततः ।
धराभिरुखला तत् स्याद् व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तकम् ॥८२३॥ 832
जहाँ दोनो हाथ पाख की ओर मुँह करके शीघ्रता से निकले, फिर तीक्ष्ण कुहनी वाले दोना के मुख सट जाँय, पश्चात् वे पृथ्वी की ओर अभिमुख हा, तो ऐसी क्रिया को व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक चालन कहते ह ।
- ४० कररेचितरसन
पार्श्वयोः प्रथमं यात्वा विदिश्यपि ततोऽनु च ।
संयतस्वस्तिकौ स्यातां कटिमूर्ध्वगतौ मिथ ॥८२४॥ 833
बालव्यजनचालाख्यक्रियां प्राग्वत्समाश्रितौ ।
वर्तनास्वस्तिकं कृत्वा ततो भूतलसम्मुखौ ॥८२५॥ 834
उद्गतौ मण्डलाकार स्वस्तिकौ पतितावधः ।
विधायैकं नितम्बाख्यमपर रथचक्रवत् ॥८२६॥ 835
भ्रामयित्वा विलासेन कर्मणान्दोलनेन च ।
सरलोत्सारितोद्वेष्टप्रसारितविनम्रकैः ॥८२७॥ 836
अंसान्ते लुठितौ स्वैरमेकैकं मण्डलोर्ध्वगौ ।
निर्गताभिमुखौ स्याता भुजौ पर्यायितौ यदि ॥८२८॥ 837
पतितोत्पतितौ शीर्षात् कटिच्छेत्रावसानकम् ।
पश्चात् स्वस्तिकबन्धेन रमणीयेषु केष्वपि ॥८२९॥ 838
द्रुतं तत्र प्रदेशेषु वामदक्षिणघूर्णितौ ।
अन्तर्वहिश्रचक्ररौ सविलासौ ततः परम् ॥८३०॥ 839

४१. मण्डलाभरण

अभ्यन्तरप्रवेशेन परिभ्राम्य तु चक्रवत् ।
पश्चाद् विलोड्य दोलावत् क्रियया पार्श्वयोर्यदा । 845
प्रातिलोम्येन यद्वेदं मण्डलाकरणं तदा ॥८३६॥

जब दोनों हाथ भीतर प्रवेश के साथ चक्र की तरह घूमकर दोनों पार्श्वों में उभरे की तरह झूले अथवा विपरीत भाव से उक्त क्रियाएँ हों, तो उसे मण्डलाभरण चालन कहते हैं ।

४२ अष्टबन्धविहार

बामदक्षिणपाश्चात्य [पु] रोदेशेषु सर्वतः । 846
मण्डलस्वस्तिको यात्वा क्रमेण सविलासकौ ॥८३७॥
दिशास्वष्टासु चेद्धस्तौ लुठितौ यत्र तत्तदा । 847
अष्टबन्धविहारारूपमादिष्टं नृत्तकोविदैः ॥८३८॥

जब मण्डल और स्वस्तिक का आकार धारण किये हुए दोनों हाथ क्रमशः विलामपूर्वक बाये, दाये, पीछे और आगे सब ओर आठ दिशाओं में जाकर लोटते ह, तब नृत्य के विद्वानों ने उसे अष्टबन्धविहार चालन कहा है ।

४३ शरसन्धानक

पराङ्मुखे लुठत्येककरे सति विलासतः । 848
परः करो मूर्धदेशपर्यन्तं चेद् गतागतः ॥८३९॥
पुनस्तन्मुख एव स्याच्छरसन्धानकं तदा ॥८४०॥ 849

जब एक हाथ पराङ्मुख होकर हाव-भाव के साथ लोटता है जोर दूसरा हाथ सिर तक जाता-आता हुआ पुन उसी के सम्मुख रहता है, तब उसे शरसन्धानक चालन कहते हैं ।

४४. पर्यायगजदन्तक

लुठत्येककरो तिर्यगथान्यस्तु प्रसारितः ।
पर्यायाद् यत्र तत् प्रोक्तं पर्यायगजदन्तकम् ॥८४१॥ 850

जहाँ बारी-बारी से एक हाथ तिरछा होकर लोटता है और दूसरा फैलता है, वहाँ उसे पर्यायगजदन्तक चालन कहते हैं ।

नृत्याध्याय

४५. असपर्यायनिर्गत

बध्वा तु स्वस्तिकं पूर्व कलाससमये यदा ।
निर्गतावंसदेशाच्च पर्यायात् कटिदेशगौ । 851
करौ यत्र तदोक्तं तदंसपर्यायनिर्गतम् ॥८४२॥

जब कलास नामक बाजा के बजने के समय दोनों हाथों को स्वस्तिक मुद्रा में बाँवकर कन्धे के प्रदेश से निकाल कर बारी-बारी से कमर के प्रदेश में पहुँचा दिया जाता है, तब उसे असपर्यायनिर्गत चालन कहते हैं ।

४६ स्वस्तिकत्रिकोण

विधाय स्वस्तिकौ पाश्चादाकुञ्च्य पुनरूर्ध्वगौ । 852
वामांसन्नेत्रपर्यन्तं करौ यदि गतौ तदा ।
तत् स्वस्तिकत्रिकोणाख्यमवदन् पूर्वसूरयः ॥८४३॥ 853

जब दोनों हाथों को स्वस्तिकाकार बनाकर पश्चात् मिकोड कर पुन कन्धे के क्षेत्र तक ऊर्ध्वगामी बनाया जाता है, तब पूर्वाचार्यों ने उसे स्वस्तिकत्रिकोण चालन कहा है ।

४७ रथनेमिसम

आदिमध्यावसानेषु दधतौ स्वस्तिकाकृती ।
रथचक्रकृती तिर्यगेकदा क्रमतोऽथवा । 854
हस्तौ विलुठितौ यत्र रथनेमिसमं विदुः ॥८४४॥

जब दोनों हाथ आदि, मध्य ओर अवसान में एक साथ या क्रमशः स्वस्तिक का आकार तथा रथ के पहिए का आकार धारण करके लोटते हैं, तब उसे रथनेमिसम चालन कहते हैं ।

४८ लतावेष्टित

अन्तर्बहिः करावूर्ध्व वलित्वोद्वेष्टितौ यदि । 855
पार्श्वयोः क्रमतस्तत्र तिर्यग् लुठति चैकके ।
लुठितोऽन्यः करो यत्र तल्लतावेष्टितं तदा ॥८४५॥ 856

जब दोनों हाथ भीतर, बाहर तथा ऊपर वक्र गति से जाकर चारों ओर से घिर जायँ और दोनों पार्श्वों में दोनों हाथ लोटने लगें, तो उसे लतावेष्टित चालन कहते हैं ।

४९ कर्णयुग्मप्रकीर्ण

उपकर्ण यदा तिर्यग्लुठितौ क्रमत. करौ ।
निजे पार्श्वे पुरोदेशपर्यन्तं यत्र तत्तदा । 857
कर्णयुग्मप्रकीर्णख्य चालक कथित बुधै ॥८४६॥

जब दोनो हाथ तिरछे होकर कानों के समीप, अपने पांव में जाग जग्नभाग में क्रमश लोटते हैं, तब विद्वानों ने उसे कर्णयुग्मप्रकीर्ण चालन कहा है ।

५० नवरत्नमुख

विश्लिष्ट^१ वर्तिताद्यैश्च नवभिर्दशभिश्च वा । 858
उक्तैः संसर्गरूपेण रचितैश्चालकैर्यदि ॥८४७॥
आकेशबन्धमुत्क्षिप्तैः पश्चात्स्वस्तिकतां गतैः । 859
ततोऽन्याङ्गपरावृत्तौ धरासम्मुखता गतौ ॥८४८॥
मण्डलाकारसम्प्राप्तौ तिरश्चीनौ तत. परम् । 860
आविद्धावपविद्धौ च युगपत् क्रमतोऽथवा ॥३४९॥
तत्कालार्हक्रियायोग्यौ तदान्दोलनसंयुतौ । 861
करावेवं यत्र तत् स्थान्नवरत्नमुखं तदा ॥८५०॥

उक्त नौ या दस अलग-अलग वर्तनाओं के सम्पर्क से बनाये हुए, जूड़े तक उछाले हुए और पश्चात् स्वस्तिक मुद्रा को प्राप्त किये हुए चालनों से दोनो हाथों को अन्य अंगों पर घुमाकर पृथ्वी के सम्मुख किया जाय, फिर तिरछा करके मोड़ दिया जाय और दूर फेंक दिया जाय, अनन्तर एक साथ या क्रमश तत्कालोचित क्रिया के योग्य आन्दोलन से युक्त किया जाय, अर्थात् हिलाया-डुलाया जाय । ऐसी क्रिया को नवरत्नमुख चालन कहते हैं ।

मतान्तर से अन्य भेद

दिग्दर्शख्यमनङ्गङ्गमोटनं तोरणाभिधम् । 862
अनङ्गोद्दीपनं चाथ तथा मुरजकर्तरी ।
पञ्चेति चालकानि स्युरधिकानि मतान्तरे ॥८५१॥ 863

१ देखिए : 'वर्णिता' भरतकोश, पृ० ८६४

नृत्याध्याय

दूसरे मत से चालनो के पाँच भेद और अतिक हे १ दिग्वर्ष, २ अनगागमोटन, ३ तोरण, ४ अनगोद्दीपन और ५ मुरजकर्तरी ।

१. दिग्वर्ष

पुरस्तात्पार्श्वयोस्तिर्यगूर्ध्वं पश्चाच्च लोडितः ।

करो यत्र तदुद्दिष्टं दिग्वर्षाभिधञ्जानम् ॥८५२॥ 864

जहाँ आगे, दोनो पार्श्वों में, तिरछे, ऊपर ओर पीछे हाथ चलाया जाता है, वहाँ दिग्वर्ष नामक चालन होता है ।

२. अनगागमोटन

यदा मण्डलतो हस्तौ लुठित्वा स्कन्धदेशयोः ।

तद्वद् यत्र शिरःक्षेत्रे नयनानन्ददायकैः । 865

लोडितौ तदनङ्गाङ्गमोटनं कीर्तितं तदा ॥८५३॥

जब दोनो हाथ मण्डल बनाकर दोनो कन्धों पर लोटे और उसी तरह नेत्रानन्ददायक हाव-भावों से वे शिर पर लौटे तो उसे अनगागमोटन चालन कहते हैं ।

३ तोरण

पुरस्तात्स्वस्तिकौ भूत्वा ततो विच्युतितौ गतौ । 866

पार्श्वयोर्लोडनैः प्राप्य पुनः स्वस्तिकबन्धनौ ॥८५४॥

स्थित्वा शीर्षोपरि करौ ततस्तौ विद्युतौ पुरः । 867

लोडितौ यत्र तत् प्रोक्तं चालकं तोरणाभिधम् ॥८५५॥

पहले दोनो हाथों को स्वस्तिकाकार बनाया जाय, तदनन्तर अलग-अलग करके दोनो पार्श्वों में हिलाया-डुलाया जाय, फिर स्वस्तिक मुद्रा में बाँधकर सिर के ऊपर रख दिया जाय, तत्पश्चात् अलग-अलग करके चलाया जाय । इसी को तोरण नामक चालक (चालन) कहते हैं ।

४ अनगोद्दीपन

विलोड्योरःस्थले हस्तौ क्रमादादत्तमण्डलौ । 868

विलासेनांसपर्यन्तं गत्वाभ्यन्तरमागतौ ॥८५६॥

उद्वेष्टितक्रियापूर्वं यत्राधोवदनौ यदा । 869

विद्वद्भिस्तत्समादिष्टमनङ्गोद्दीपनं तदा ॥८५७॥

चालन प्रकरण

वक्ष स्थल पर दोनो हाथो को क्रमश हिलाकर मण्डलाकार बना दिया जाय, फिर हाव-भावपूर्वक उन्हे कन्वे तक ले जाकर भीतर कर लिया जाय, अनन्तर चारो ओर से घुमाकर उन्हे जवामुख किया जाय । इस क्रिया को विद्वानो ने अनगोदीपन चालन कहा है ।

५ मुरजकर्तरी

अंसावधि स्तनक्षेत्राद् भ्रान्त्वा मण्डलवृत्तितः । 870

ततो वक्ष.स्थलं प्राप्तौ मुहुर्निक्षिप्य पार्श्वतः ॥८५८॥

अधस्तत्र ब्रजत्येको द्वितीयो मण्डलभ्रमः । 871

विलोडितो यदा पश्चाद्भौ हस्तौ कटिस्थितौ ।

अन्योन्याभिमुखौ भ्रान्तौ तदा मुरजकर्तरी ॥८५९॥ 872

दोनो हाथो को स्तनप्रदेश से लेकर कन्वे तक मण्डलाकार मे घुमाकर वक्ष स्थल पर ले आया जाय, उनमे से एक हाथ को बगल से बार-बार फेक कर तीचे किया जाय ओर दूसरे को मण्डलाकार मे घुमाकर कम्पित किया जाय, पश्चात् दोनो हाथो को कटि पर रखकर एक-दूसरे के सामने-सामने कर दिया जाय । ऐसी क्रिया को मुरजकर्तरी चालन कहते है ।

अमी नृत्तस्य तु प्राणाश्चालकाः सुमनोहराः ।

प्रायो वाद्यप्रबन्धेषु प्रयुज्यन्ते विचक्षणैः ॥८६०॥ 873

वे सुन्दर चालक (चालन) नृत्य के प्राण है । विद्वान् लोग बहुधा वाद्य-प्रबन्धो मे (अर्थात् वाद्यो के साथ) इनका प्रयोग करते है ।

भूरिनिर्भुजचेष्टाभिः सम्भवन्तोऽप्यनेकशः ।

अमी केचित् समासेन दृष्टान्तार्थं मयोदिताः ॥८६१॥ 874

अनयैव दिशा ज्ञेयाः सद्भिरन्येऽपि चालकाः ।

ग्रन्थविस्तारसंत्रासान्नातिविस्तर ईरितः ॥८६२॥ 875

बिना भुजा की अनेक चेष्टाओ द्वारा अनेकानेक चालनो की सभावना होने पर भी मैने सक्षेप मे कुछ चालन बताये है । इसी रीति से सज्जन लोग अन्य चालनो का भी ज्ञान कर ले । ग्रन्थ-विस्तार के भय से बहुत विस्तार मे चालनो पर प्रकाश नही डाला गया है ।

समवेत रूप मे पचपन चालको का निरूपण समाप्त



स्थानक प्रकरण / नौ

स्थानको का निरूपण

स्थानक (खडे होने का ढग)

रङ्गं प्रविश्य यैः स्थित्वा चार्यादी रचयेत्क्रियाः ।

नर्तको यत्नतस्तावत्स्थानान्येतान्यहं ब्रुवे ॥८६३॥ 876

नर्तक या अभिनेता रगमच पर प्रवेग कर जिनके द्वारा चारी (पाद-चेष्टा-विशेष) आदि क्रियाओ को सम्पन्न करे उन स्थानो का निरूपण किया जा हा ह ।

भावार्थे तिष्ठतेर्धातोरयाते प्रत्यये ल्युटि ।

स्थाने सिद्धे तत. पश्चात् स्वार्थे कप्रत्यये सति । 877

स्थानकं साधितं तस्य लक्षणं प्रतिपादये ॥८६४॥

स्था धातु से भाव अर्थ मे ल्युट् प्रत्यय होने पर स्थान गब्द निष्पन्न होता हे । फिर उससे स्वार्थ मे क प्रत्यय होने पर स्थानक शब्द की सिद्धि होती हे । जब उसका (स्थानक का) निरूपण किया जाता है ।

निश्चलात्माङ्गविन्यासविशेषात् स्थानकं मतम् ॥८६५॥ 878

अगो को निश्चल करके अवस्थित होने की क्रियाविशेष से स्थानक की रचना होती हे ।

पुरुष स्थानक के भेद

वैष्णवं सप्तपादं च तथा वैशाखमण्डले ।

आलीढं च तथा प्रत्यालीढं स्थानानि पुंसि षट् ॥८६६॥ 879

पुरुष के छह स्थानक होते है १ वैष्णव, २ सप्तपाद, ३ वैशाख, ४ मण्डल, ५ आलीढ और ६ प्रत्यालीढ ।

स्त्रियो के स्थानक के भेद

आयताख्यावहित्थाख्ये तथाश्वक्रान्तसज्ञकम् ।

स्त्रीणां त्रीणि स्युरेतानि स्थानानीति मुनेर्मतम् ॥८६७॥ 880

भरत मुनि के मत से स्त्रियो के तीन स्थानक होते है १ आयत, २ अवहित्थ और ३ अश्वक्रान्त ।

अन्य स्थानक के भेद

अथापि चेति स्वग्रन्थे भजन्त्यान्यसूदयत् ।
 मुनिस्तु यानि चत्वारि तानि स्थानान्यहं ब्रुवे । 881
 गतागतं च बलितं मोटितं विनिर्वतितम् ॥८६८॥
 अत्रैव केचिदिच्छन्ति पञ्चमं प्रोन्नताभिधम् ॥८६९॥ 882

भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में जिन अन्य चार स्थानको की सूचना दी है, उनको-भी यहाँ बताया जा रहा है। उनके नाम हैं १ गतागत, २ बलित, ३ मोटित जोर ४ विनिर्वतित। किसी के मत से ५ प्रोन्नत पाँचवाँ स्थानक होता है।

देशी स्थानक के भेद

त्रयोविंशतिमाचक्षे देशीस्थस्थानकान्यहम् ।
 समपादं स्वस्तिकं च सहतं वर्धमानकम् ॥८७०॥ 883
 नन्द्यावर्तं चैकपादं चतुरस्राभिधं तथा ।
 पृष्ठोत्तानतल पाष्णिर्विद्धं सूचि समाद्यपि ॥८७१॥ 884
 विषमादि च खण्डाद्यं पाष्णिर्पाश्वरगतं तथा ।
 एकपाश्वरगताख्यं च परावृत्ताभिधं तथा ॥८७२॥ 885
 एकजानु[नताख्यं च ब्राह्मं वैष्णव]मित्यपि ।
 कूर्मासनं गारुडं च वृषभासनमित्यपि ॥८७३॥ 886
 नागबन्धम्—

देशीस्थ स्थानको के तेईस भेदों के नाम उम प्रकार हैं १ समपाद, २ स्वस्तिक, ३ सहत, ४ वर्धमानक, ५ नन्द्यावर्त, ६ एकपाद, ७ चतुरस्र, ८ पृष्ठोत्तानतल, ९ पाष्णिर्विद्ध, १० समसूचि, ११ विषमसूचि, १२ खण्डसूचि, १३ पाष्णिर्पाश्वरगत, १४ एकपाश्वरगत, १५ परावृत्त, १६ एकजानुनत, १७ ब्राह्म, १८ वैष्णव १९ शैव, २० कूर्मासन, २१ गारुड, २२ वृषभासन आर २३ नागबन्ध ।

उपविष्ट स्थानक के भेद

—अथ स्वस्थं स्थानमन्यन्मदालसम् ।
 त्रिष्कम्भं च तथा क्रान्त[मुत्कटं] मुक्तजानु च ॥८७४॥ 887

स्थानक प्रकरण

विमुक्तकं जानुगतमथ स्वस्थालसाभिधम् ।

नवोप [विष्टस्था]नानि प्राहेति भरतो मुनिः ॥८७५॥ 888

भरत मुनि ने बैठने के ना म्यान बताये ह १ स्वस्थ, २ मदालस, ३ विष्कम्भ, ४ क्रान्त, ५ उत्कट, ६ मुक्तजानु, ७ विमुक्तक, ८ जानुगत जार ९ स्वस्थालस ।

सुप्त स्थानक

समं नताकुञ्चिते च प्रसारितविवर्तिते ।

[उद्धा]हित तथा सुप्तस्थानकानि भवन्ति षट् ॥८७६॥ 889

सुप्त स्नानको के छह भेद होने हे १ सम, २ नत, ३ आकुञ्चित, ४ प्रसारित, ५ विवर्तित आर ६ उद्धाहित ।

स्थानको की सम्पूर्ण सख्या

अथ स्थानानि षट् पुसामष्टान्यान्यपि योषिताम् ।

त्रयोविंशतिरन्यानि देशीस्थान्यासने नव ॥८७७॥ 890

स्थानान्यथ तथा सुप्तस्थानान्येतानि षट्विधा ।

द्वापश्चाशदिमानीति मिलितान्येव तान्यपि । 891

पुरुषो के छह स्थानक है, स्त्रियो के स्थानक आठ, देगी स्थानक तेरह जामन स्थानक ना ओर सुप्तस्थानक छह है । ये सब कुल मिलाकर बावन होने ह ।

विनियोग

अथैतेषा क्रमाल्लक्ष्म सर्वेषा ब्रूमहेऽधुना ॥८७८॥

अब क्रमश उन सबके लक्षण-विनियोग बताये जा रहे ह ।

छह पुरुष स्थानक (१)

१ वैष्णव और उसका विनियोग

समस्थितोऽङ्घ्रिरेकोऽन्यस्त्र्यन्नः पक्षस्थितोऽथ वा । 892

तालौ द्वावर्धतालश्च तयोरन्तरमीरितम् ॥८७९॥

जङ्घा मनाग् नता तु स्यात्सौष्ठवं यत्र तत्तदा । 893

वैष्णवं स्थानकं प्रोक्तं विष्णुरस्याधिदैवतम् ॥८८०॥

नृत्याध्यायः

जब एक पैर समभाव में (सीमा) स्थित और दूसरा व्यस्र या पक्षस्थित हो, दोनों में ढाई ताल का अन्तर हो, और जंघा सौष्ठवता के साथ कुछ झुकी हो, तो उसे वैष्णव स्थानक कहते हैं। इस स्थान के अधिष्ठाता देवता विष्णु हैं।

नानाकार्यान्तिरोपेतं संलापे तु स्वभावजे । 894

पुम्भिर्नियुज्यतेत्वेतदुत्तमैर्मध्यमैरपि ।

इत्याह मुनिरन्ये तु विष्णुवेषानुकारिणा ॥८८१॥ 895

नटेनेत्यवदन्नृत्ये नाचस्थितिपिधायिना ।

[सू]त्रधारादिनेत्याहुः -

भरत मुनि का कहना है कि स्वाभाविक वातचीत जोर उत्तम तथा मध्यम पुष्पा द्वारा नाना प्रकार के कार्यों का भाव प्रकट करने में वैष्णव स्थानक का विनियोग होता है। अन्य जाचार्यों का कहना है कि विष्णु का स्वरूप बनाये हुए नट को इसका प्रयोग करना चाहिए। दूसरे जाचार्यों का अभिमत है कि अभिनय में नाट्य की स्थिति का विधान करने वाले सूत्रधार आदि को इसका उपयोग करना चाहिए।

-अथ पक्षस्थितस्त्वसौ ॥८८२॥ 896

यो भवेच्चरणः पार्श्वमुखाङ्गुल्याभिमुख्यभाक् ।

स एव चेतपुरोदेशे गतोऽभिमुखता तदा ॥८८३॥ 897

त्र्यस्रः स्यादथ हस्तस्याङ्गुल्यावङ्गुष्ठमध्यमे ।

प्रसारिते तु ये स्यातामन्तरालं तदग्रयोः ॥८८४॥ 898

तालमत्र समाचष्टाशोकमल्लो नृपाग्रणी ।

पक्षस्थित चरण वह कहलाता है, जिसके सम्मुख बगल की जोर उँगलियाँ उन्मुख हो। वही चरण यदि अग्रभाग में सम्मुख होने का भाव प्रकट करे, तो वह व्यस्र कहलाता है। हाथ की उँगलियों में से अँगुष्ठ और मध्यमा उँगलियों को फैलाने पर उन दोनों के अग्र भागों की जो दूरी होती है, उसे महाराज अशोकमल्ल ने ताल कहा है।

शिरोसकूर्परं तुल्यं यत्र जानुसमा कटी ॥८८५॥ 899

समुन्नतमुरः सन्नमङ्गं तत्सौष्ठवं मतम् ।

स्वस्थाननिर्गतं सन्नं निषण्णं निश्चलं स्थितम् ॥८८६॥ 900

जहाँ सिर, कंधे और कुहनी बराबर (समभाव में स्थित) हो, कटि उन के समान (समभाव में स्थित) हो,

स्थानक प्रकरण

वक्ष स्थल उन्नत हो, और अन्य जग मत्त हा, उने सौष्ठव रहन ह । एने स्थान मे (स्वानादिक रूप मे) निर्गत अग को सन्न और निश्चल को निषण्ण कहते ह ।

अनत्युच्चं चलन्पादमकुब्जवत्प्रश्चलम् ।

अङ्गमिष्टं सौष्ठवेन योज्यमुत्त [मध्य] है. ॥८८७॥ 901

जो बहुत ऊचा न हो, जिसके पैर चल रहे हो जाँ जा कुब्ज नदी चचर न हो, ऐसे नुचिन्न शरीर को उत्तम तथा मध्यम श्रेणी के नर्तको को माण्डव मे प्राप्त करना चाहिए ।

स्थानकं वैष्णवं त्वेतच्चतुरस्रस्य जीवनम् ॥८८८॥

यह वैष्णव स्थानक चतुरस्र का जीवन है ।

स्थानकं वैष्णवं यत्र कटीनाभिगतौ करौ । 902

क्रमतो युगपद्वाथ दक्षश्चैव समुन्नतम् ।

चतुरस्रं तदाचष्ट वीरसिहात्मजः सुधीः ॥८८९॥ 903

जहाँ दोनो हाथ एक साथ या क्रमश कटि आर नाभि पर पहुच तथा वक्ष स्थल जत्यन्त उन्नत हो उस वैष्णव स्थानक को विद्वान् अशोकमल्ल ने चतुरस्र कहा ह ।

२ समपाद और उसका विनियोग

एकतालान्तरौ पादौ समौ सौष्ठवसयुतौ ।

यत्रैतत् समपादाख्यं स्थानकं ब्रह्मदैवतम् ॥८९०॥ 904

जहाँ एक ताल के अन्तर पर दोनो पैर समान रूप मे माण्डव के साथ युक्त हो, वहा समपाद स्थानक होता है । उसका अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा ह ।

एतद् द्विजातिदत्ताशीरङ्गीकारेऽथ दर्शने ।

पक्षिणा वरवध्वोश्च तथा लिङ्गव्रतिष्वपि । 905

स्यन्दनस्थे विमानस्थे नियोज्यं नृत्तपण्डितैः ॥८९१॥

ब्राह्मणो द्वारा दिये गये आशीर्वाद के स्वीकार, दर्शन, पक्षियो के निरूपण, वर-वधुओ, ब्रह्मन्तरी, व्रती (सन्ध्यासी), रथारूढ ओर विमानारूढ के अभिनय मे इस आमन का विनियोग होना है ।

३ वंशाख और उसका विनियोग

त्र्यस्रपक्षस्थितौ पादौ सार्धतालत्रयान्तरौ । 906

नृत्याध्यायः

निषण्णौ तु नभस्यूरु यत्रोर्ध्वं तावदन्तरौ ॥८६२॥

भुवो विशाखदैवं तद्वैशाखं स्थानकं मतम् । 907

जहाँ दोनो पैर त्र्यस्र तथा पक्षस्थित हो, दोनो मे साढे तीन ताल का अन्तर हो, आर जँघाएँ आकाश म स्थित (अर्थात् भूमि से ऊपर उठी) हो, तो उसे वैशाख स्थानक कहते है। उसका अघिष्ठाता देवता विशाख (स्कन्द)ह।

प्रेरणे वाजिनामाजौ तथा रङ्गप्रवेशने ।

वाहने वेगदाने च स्थूलपक्षिनि [री] क्षणे ॥८६३॥ 908

घोडो को हॉकने या ऊपर चढने, युद्ध, रगभूमि मे प्रवेश करने, वाहन, वेगवान ओर स्थूल पक्षियो के निरीक्षण मे उसका विनियोग होता है ।

४ मण्डल और उसका विनियोग

त्र्यस्रौ पक्षस्थितौ पादावेकतालान्तरौ क्षितौ ।

निषण्णौ व्योम्नि यत्रोरु सार्धतालद्वयान्तरे ॥८६४॥ 909

कटीजानुसमौ तत् स्यान्मण्डलं शक्रदैवतम् ।

जहाँ दोनो पैर त्र्यस्र मुद्रा मे पक्षस्थित हो, दोनो मे एक ताल का अन्तर हो, दोनो भूमि पर अवस्थित हो, दोनो जँघाएँ ढाई ताल के अन्तर पर आकाश मे स्थित हो, और कटिभाग जँघाओ के बराबर हों, तो उसे मण्डल स्थानक कहते है। उसका अघिष्ठाता देवता इन्द्र है ।

प्रयोगे चापवज्रादेस्तथा वारणवाहने ॥८६५॥ 910

प्रेक्षणे गरुडादीनामेतन्मुनिरभाषत ।

चतुस्तालान्तरौ पादौ परेऽत्र प्रतिपेदिरे ॥८६६॥ 911

धनुष तथा वज्र आदि के चलाने, हाथी की सवारी और गरुड आदि के देखने के अभिनय म भरत मुनि ने इस आसन का विनियोग बताया है। कुछ आचार्यों के मत से दोनो पैरो मे चार ताल का अन्तर होना चाहिए।

५. आलीढ और उसका विनियोग

वामो व्योम्नि निषण्णोर्यत्र पूर्वोक्तमानतः ।

अग्रे प्रसारितोऽङ्घ्रिश्च पञ्चतालान्तरेऽपरः ॥८६७॥ 912

त्र्यस्रौ द्वावपि चेत् तत् स्यादालीढं रुद्रदैवतम् ।

स्थानक प्रकरण

जहाँ उक्त मण्डल आसन के मान से बाँवा उर जाकाश मे स्थित हो । एक (बाँया) पैर जागे फैलाया हुआ हो, दूसरा (दाहिना) पैर पाँच ताल के अन्तर पर स्थित हो, आर दोनों पैर त्र्यम्ब मुद्रा मे हो, तो उमे आलीढ स्थानक कहते हे । रुद्र उसके अधिष्ठाता देवता ह ।

रोषेर्ष्याजनिते जल्पे तद्भवेदुत्तरोत्तरे ॥८६८॥ 913
संहर्षास्फोटनादौ च मल्लाना वीरताकृते ।

सन्धानेऽपि च शस्त्राणा..... ॥८६९॥ 914

रोप तथा ईर्ष्या से उत्पन्न एक-दूसरे के उत्तर-प्रत्युत्तर, पहलवानों के अत्यन्त हर्ष से ताल ठोकने आर वीरता के लिए शस्त्रों के सन्धान करने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

६ प्रत्यालीढ और उसका विनियोग

प्रत्यालीढं भवेत्स्थानमालीढाङ्गविपर्ययात् ।

अनेन मोक्षयेच्छस्त्रमालीढस्थानसन्धितम् ॥९००॥ 915

आलीढ स्थानक के विपरीत प्रत्यालीढ स्थानक की रचना होती हे । आलीढ स्थानक द्वारा निगाना लगाये हुए शस्त्र-विमोक्षण के अभिनय मे उसका विनियोग होना है ।

आठ स्त्री स्थानक (२)

१ आयत और उसका विनियोग

तालान्तरे यदा वामस्त्र्यस्त्रोङ्घ्रिर्दक्षिणः समः ।

प्रसन्नो मुखरागः स्यात्समुन्नतमुरस्तथा ॥९०१॥ 916

समुन्नतकटिर्हस्तो दक्षिणः स्यान्नितम्बगः ।

वामो लताकरो यत्र तदा तत् समुदीरितम् ॥९०२॥ 917

रमात्र देवता—

जब बायाँ पैर एक ताल की दूरी पर त्र्यम्ब मुद्रा मे तथा दाहिना पैर सम हो, मुखकृति प्रसन्न हो, वक्ष स्थल तथा कटि समुन्नत हो, दाहिना हाथ नितम्बगामी तथा बायाँ हाथ लताकर मुद्रा मे हो, तो उसे आयत स्थानक कहते हे । इस आसन की अधिष्ठाता देवी लक्ष्मी ह ।

—तत्स्यात्पुष्पाञ्जलिविसर्जने ।

रङ्गावतरणारम्भे सखीप्रियतमादिभिः ॥९०३॥ 918

आभाषणेऽभिलाषे च रोषे मानावलम्बने ।

प्रतिषेधे तथा स्त्रीणामीष्याष्वङ्गुलिमोटने ॥६०४॥ 919
 मौनविसर्जनगर्वगाम्भीर्यावाहनेष्वपि ।
 एतच्चिकीर्षितासु स्याद् गतिष्वपि कृतास्वपि ॥६०५॥ 920

पुष्पाजलि समर्पित करने में, रगभूमि पर उतरने के आरम्भ में, सखी तथा प्रियतम आदि से वार्तालाप करने, अभिलाप, रोष, मान करने, निषेध, स्त्रियों की ईर्ष्या, उँगली चटकाने, मोन, विसर्जन, गर्व, गभीरता, आवाहन करने के लिए इच्छित और सम्पन्न की हुई गतियों के अभिनय में उमका विनियोग होता है ।

रङ्गावतरणारम्भे उ - उरि वितरि ।
 स्त्रीभिरेवेति तद् योज्यं पूर्वरङ्गेष्वदन्परे ॥६०६॥ 921
 नरः स्त्रियोऽथवा कुर्युरिदमेव प्रवेशने ।
 यथाभिनेयं स्थानं हि प्रविष्टेष्विति केचन ॥६०७॥ 922

रगभूमि पर उतरने के आरम्भ में, पुष्पाजलि समर्पित करने में और विघ्न-गान्ति के लिए अभिनय के आरम्भ में किये जाने वाले कृत्य नान्दी पाठ आदि में स्त्रियों को ही उसका विनियोग करना चाहिए । किन्तु अन्य आचार्यों का कहना है कि स्त्री या पुरुष, कोई भी उमका विनियोग कर सकता है । प्रवेश करने तथा प्रविष्ट होने के अभिनय में भी कुछ आचार्य उसका विनियोग बताते हैं ।

आयतानन्तर योज्या रङ्गावतरणादयः ।
 यथोचितं तदा ज्ञेयाः प्रवारा हस्तपादजाः । 923
 भट्टाभिनवगुप्तस्य मयैतन्मतमीरितम् ॥६०८॥

आयत स्थानक के अनन्तर रगभूमि पर उतरने आदि की योजना करनी चाहिए । उस समय हाथ-पैर की संचालन-क्रिया को भली भाँति समझ लेना चाहिए । यह निरूपण भट्ट अभिनव गुप्त (अभिनवभारती टीका के रचयिता) के मत से किया गया है ।

२ अवहित्य और उसका विनियोग

एतदेवावहित्याख्य स्थानभङ्गयोर्विपर्ययात् । 924
 केचिद्विपश्चितोऽत्राहुर्व्यत्यास कटिहस्तयोः ॥६०९॥

अत्राधिदेवता दुर्गा-

दोनो पैरो को विपरीत क्रम में रखने पर अवहित्य स्थानक बनता है। यहाँ कोई विद्वान् कटि और हस्त में विपर्यय बताते हैं। दुर्गा इम आमन की अघिष्ठात् देवी है।

-तद् रोणे विस्मयेऽपि च । 925

चिन्तालज्जावितर्केषु संलापेऽपि स्वभावजे ॥६१०॥

स्वा [ङ्गा] बलोकने स्त्रीणां निजसौभाग्यगर्वतः । 926

वीक्षणे वरमार्गस्य [लीला] लावण्ययोरपि ।

विलासस्याप्यथाकारगोपनस्यापि सूचकम् ॥६११॥ 927

क्रोध, विस्मय, चिन्ता, लज्जा, वितर्क, स्वाभाविक वार्तालाप, स्त्रियों के अपने सौभाग्य के गर्व से अपने अंगों के अवलोकन करने, वर के मार्ग, लीला तथा मोन्दर्य को टकटकी (लगाकर) देखने के अभिनय में उमका विनियोग होता है। विलास तथा आकार को छिपाने के अभिनय में भी उमका प्रयोग होता है।

३ अश्वक्रान्त और उसका विनियोग

एकस्याङ्घ्रिः समस्यान्यः पाष्णिदेशमुपागतः ।

सूचीपादोऽथवा स्वीयपाश्वे तालान्तरे स्थितः ॥६१२॥ 928

समो यत्र तदाचष्टाश्वक्रान्तं वीरसिंहजः ।

जब एक सम पैर की एड़ी के पास दूसरा सूची पैर अवस्थित हो अथवा एक सम पैर दूसरे पार्श्ववर्ती पैर के एक ताल के अन्तर पर स्थित हो, तो अगोकमत्त के मन में उसे अश्वक्रान्त स्थानक कहते हैं।

तदश्वारेण ललिते विभ्रमे तथा । 929

द्रुमशाखावलम्बे च संलापेऽपि निसर्गजे ॥६१३॥

स्खलितेऽपि स्खलद्वासोधारणे गोप्यगोपने । 930

पुष्पगुच्छग्रहेऽप्येतत्सरस्वत्यस्य देवता ॥६१४॥

अश्वारोहण के आरम्भ, ललित हाव-भाव, वृक्षशाखा से लटकने, स्वाभाविक वार्तालाप, गिरने, गिरते हुए वस्त्र धारण करने, गोपनीय वस्तु को छिपाने और फूँगे का गुच्छा पकड़ने के अभिनय में उसका विनियोग होता है। इस आसन की अघिष्ठात् देवी सरस्वती है।

४ गतागत

यत्राङ्घ्रिमेकमुद्धृत्य नर्तकी गमनोन्मुखी । 931
निरोधात्तु गतिस्थित्योरुदास्ते तद् गतागतम् ॥६१५॥

जहाँ नर्तकी एक पैर को उठा कर आकाश की ओर मुँह किये गति और स्थिति को रोकने से (सयमन करने से) उदासीन हो, वहाँ गतागत स्थानक होता है ।

५ वलित और उसका विनियोग

यत्रेषद्वलित गात्रमङ्घ्रिर्बलितदिग्भवः । 932
कनीयस्योर्वीमाश्लिष्येत्पराङ्गुष्ठेन ता यदा ।
तदा तद् वलितं स्थानं साभिलाषनिरीक्षणे ॥६१६॥ 933

जब शरीर कुछ झुका हुआ हो, पर बल खाया हुआ हो, ओर कानी उँगली (कनीय) तथा अँगूठा बरती से चिपके हुए हो, तो उसे वलित स्थानक कहते हैं । उत्कण्ठापूर्वक देखने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

६ मोटित

एकः पादः समोऽन्यस्तु कुञ्चितोर्ध्वतलाङ्गुलिः ।
यदा करौ कर्कटाख्यान्ूर्ध्वगौ मोटितं तदा ॥६१७॥ 934

जब एक समस्थित पैर की उँगलियाँ ओर दूसरे कुञ्चित पैर की उँगलियाँ ऊपर को उठी हों तथा दोनों हाथ कर्कट मुद्रा में ऊर्ध्वगामी हों, तो उसे मोटित स्थानक कहते हैं ।

७ विनिवर्तित

तदेवाङ्गुपरिवृत्या पृष्ठतो विनिवर्तितम् ॥६१८॥

जब पृष्ठ भाग से अंगों की अदला-बदली की जाय, तो उसे विनिवर्तित स्थानक कहते हैं ।

८. प्रोन्नत और उसका विनियोग

पादाग्राभ्यां समानाभ्यां तथाङ्गुलितलैः स्थितिः । 935
या कायमायतीकृत्य तत् स्थानं प्रोन्नतं मतम् ॥६१९॥

जब शरीर को लम्बा करके पैरों के समान अग्रभागों तथा अँगुलितलों पर खड़ा हुआ जाय, तो उसे प्रोन्नत स्थानक कहते हैं ।

नासादहनजले धार्ये भित्त्याद्यन्तरितेऽपि च । 936
प्राशुग्राह्यफलादीना ग्रहणेषुपि तदीरितम् ॥६२०॥

नाक तक (ऊपर उठे) जल, वारण करने योग्य वस्तु दीवार आदि की जोट म होने तथा उम्बे मनुष्य द्वारा पकडे जाने योग्य फल आदि के लेने के अभिनय मे उसका विनियोग जाना हे ।

तेईस देवी स्थानक (३)

१ समपाद

वितस्त्यन्तरितावङ्घ्री ऋजू साहजिकं वपुः । 937
तत्र तन् स्थानमादिष्ट समपादं मनीषिभिः ॥६२१॥

जहा दोनो पैर एक बित्ते के अन्तर पर तथा भीचे हो आर शरीर स्वाभाविक स्थिति मे हो, उमे मनीषियो ने समपाद स्थानक कहा हे ।

२ स्वस्तिक

यत्राङ्घ्री नूपुरस्थाने स्वस्तिकौ कुञ्चितौ यदा । 938
मिथो लग्नकनिष्ठौ च तत् तदा स्वस्तिकं मतम् ॥६२२॥

जब दोनो कुचित पैर नपूरस्थान पर स्वस्तिकाकार हो आर दोनो की कानी (कनिष्ठा) उँगलियाँ परस्पर सटी हुई हो, तब उमे स्वस्तिक स्थानक कहते हे ।

३ सहत और उसका विनियोग

स्वाभाविकं यत्र गात्रमद्योरङ्गुष्ठकौ यदा । 939
गुल्फावपि मिथः श्लिष्टौ तत् स्थानं सहतं तदा ।

जब शरीर स्वाभाविक स्थिति मे हो और दोनो पैरो के जँगूठे तथा टखने परस्पर सटे हुए हो, तो उसे सहत स्थानक कहते है ।

एतन्नियुज्यते धीरैः पुष्पाञ्जलिविसर्जने ॥६२३॥ 940

पुष्पाञ्जलि समर्पित करने मे धीर पुरुष इस स्थानक का विनियोग बताते हे ।

४ वर्धमानक

पाणिंश्लिष्टौ तिरश्चीनौ पादौ स्तो वर्धमानके ॥६२४॥

जब दोनो पैर तिरछे हो और उनकी एडियाँ सटी हुई हो, तब उमे वर्धमानक स्थानक कहते हे ।

५. नन्द्यावर्त

षडङ्गुलं यदैतस्य पादयोरन्तरं भवेत् । 941
वितस्तिमात्रं तत् स्थानं नन्द्यावर्त [तदोदितम्] ॥६२५॥

जब वधमान स्थानक के पैरो मे छह अँगुल या एक वित्ते का जन्तर हो, तब उसे नन्द्यावर्त स्थानक कहते है ।

६. एकपाद

जानुशीर्षे बहिःपार्श्वे समपादस्य चेतपरः । 942
संश्लिष्टो बाह्यपार्श्वेन तदा स्यादेकपादकम् ॥६२६॥

जब समपाद स्थानक के घुटने के अग्रभाग मे तथा बाह्य पार्श्वभाग मे दूसरा पैर बाहरी पार्श्वभाग से सट जाय, तो उसे एकपाद स्थानक कहते ह ।

७ चतुरस्र

अष्टादशाङ्गुलं यत्र पादयोरन्तरं द्वयोः । 943
नन्द्यावर्तस्य चेतस्थानं चतुरस्रमिदं तदा ॥६२७॥

जब नन्द्यावर्त स्थानक के दोनो पैरो मे अठारह अँगुल का अन्तर हो, तब उसे चतुरस्र स्थानक कहते ह ।

८ पृष्ठोत्तानतल

एकः पश्चाद्बाराश्लिष्टाङ्गुलिपृष्ठो यदा परः । 944
समः पुरस्ताद् यत्रेदं पृष्ठोत्तानतलं तदा ॥६२८॥

जब, बिलग हुई उँगलियो वाला एक पैर पीछे रहे ओर दूसरा सम पैर आगे रहे, तो उसे पृष्ठोत्तानतल स्थानक कहते है ।

९ पाष्णिविद्ध

अङ्गुष्ठसंहता पाष्णिः पाष्णिविद्धे मता सताम् ॥६२९॥ 945

जब एडी अँगूठे से लगी रहे तो उसे पाष्णिविद्ध स्थानक कहते ह ।

१० समसूचि

पाष्णिजङ्घोरुसंश्लिष्टनतौ पादौ प्रसारितौ ।
तिर्यञ्चौ तौ तदा यत्र तदा स्यात् समसूचि तत् ॥६३०॥ 946

जब तिरछे फैले हुए दोनो पैर एडी, जाँघ आर घुटनो से सटकर झुक जायँ, तब उसे समसूचि स्थानक कहते है ।

११ विषमसूचि

युगपच्चेत्सूचीपादौ यत्र प्रसारितौ पुरः ।
पश्चादपि तदा प्रोक्तं [स्थानं विषमसूचि] तत् । 947
केचित् पादौ क्षितिश्छिष्टजानुगु[ल्फौ ब]भाषिरे ॥६३१॥

यदि सूची मुद्रा में दोनों पैर एक साथ जागे या पीछे फेला दिने जाय, तो उसे विषमसूचि स्थानक कहते हैं ।
कुछ आचार्य पृथ्वी में सटे हुए घुटने तथा टपने वाले पैरों को विषमसूचि स्थानक कहते हैं ।

१२ खण्डसूचि

अत्रैकः कुञ्चितः पादः परस्तिर्यक् [प्रसारि] तः । 948
क्षितिश्छिष्टोरुपाणिर्णश्चेत्तदोक्तं खण्डसूचि तत् ॥६३२॥

यदि एक पैर सिकुड़ा हुआ हो आर दूसरा पैर तिरछा फेला हुआ हो तथा जाँघ आर एड़ी पृथ्वी से सटी हुई हो,
तो उसे खण्डसूचि स्थानक कहते हैं ।

१३ पाणिपार्श्वगत

[पाणि]पार्श्वगतेऽन्यस्यान्तः पाणिः पार्श्वतो भवेत् ॥६३३॥ 949

यदि एक पैर की एड़ी दूसरे पैर के नीचे बगल में रखी जाय, तो उसे पाणिपार्श्वगत स्थानक कहते हैं ।

१४ एकपार्श्वगत

[अग्र]तः समपादस्य मनागङ्घ्रिः परो यदा ।
तिर्यग्बहिः पार्श्वगतः एकपार्श्वगतं त[दा] ॥६३४॥ 950

जब समस्थित एक पैर के आगे दूसरा पैर कुछ निरछा करके बाहरी बगल में रख दिया जाता है, तब उसे
एकपार्श्वगत स्थानक कहते हैं ।

१५ परावृत्त

उभौ भूत्वा तिरश्चीनौ चरणावेतयोर्यदा ।
एकस्याङ्गुष्ठको यत्र परस्य च कनिष्ठिका । 951
पार्श्वैकमिश्रिते द्वे स्तः परावृत्तमिदं तदा ॥६३५॥

जब दोनों पैर तिरछे रहे, उनमें से एक का अँगुष्ठ और दूसरे की कनिष्ठिका एक बगल में मिली रहे, तब उसे
परावृत्त स्थानक कहते हैं ।

१६ एक जानुनत

एकजानुनते त्वेकः समोऽङ्घ्रिपरोऽन्तरे । 952
तिर्यक्कुञ्चितजानुः स्या [चचतु] रङ्गुलसम्मिमे ॥६३६॥

जब एक पैर स्वाभाविक स्थिति मे हो और दूसरा पैर चार अँगुल की दूरी पर तिरछे तथा मुड़े हुए घुटने मे युक्त हो, तो उसे एकजानुनत स्थानक कहते है ।

१७ ब्राह्म

ब्राह्मे समोऽङ्घ्रिरेकोऽन्यः पृष्ठतःकु[ञ्चितः] कृतः । 953
जानुसन्धिसमत्वेनोत्क्षिप्तः पादो बुधैर्मतः ॥६३७॥

यदि एक पैर स्वाभाविक स्थिति मे हो दूसरे को पृष्ठभाग से मोड़ कर घुटने के जोड़ की बराबरी मे ऊपर उठा दिया जाय, तो उसे ब्राह्म स्थानक कहते है ।

१८ वैष्णव

एकं [पादं] समं कृत्वा किञ्चिच्चेत्कुञ्चितोऽपरः । 954
प्रसारितः पुनस्तिर्यक् तदोक्तं वैष्णवं बुधैः ॥६३८॥

जब एक पैर को समस्थित करके दूसरे को कुछ मोड़कर पुन तिरछा फैला दिया जाय, तब उसे विद्वान् लोग वैष्णव स्थानक कहते है ।

१९ शैव

यदा समस्य वामाङ्घ्रेर्जानुशीर्षसमः परः । 955
उत्क्षिप्तः कुञ्चितश्चैव तत् तदा शैवमीरितम् ॥६३९॥

जब दाहिना पैर समस्थित बाये पैर के घुटने के अग्रभाग के बराबर ऊपर उठा तथा मुड़ा हुआ हो, तब उसे शैव स्थानक कहते है ।

२०. कूर्मासन

स्थाने कूर्मासने जानुबाह्यगुल्फमि [लत्क्ष]तिः । 956
दक्षिणाङ्घ्रिः समो वामस्तदैवेतन् मतं समाम् ॥६४०॥

यदि बायाँ पैर समस्थित हो और दाहिना पैर घुटने तथा टखने से मिलने हुए पृथिवी पर अवस्थित हो, तो उसे सज्जनो ने कूर्मासन स्थानक कहा है ।

२५४

२१ गारुड

पुरोद्घ्रि कुञ्चितो वामो[दक्षिणो जानुना]क्षितिम् । 957
स्पृशेद् यदि तदा सद्भिर्गारुडं तदुदीरितम् ॥६४१॥

जब वाये पेर का जग्रभाग मुटा हो जाए दाहिना पेर घुटने से पृथिवी का स्पर्श करता हो, तब सज्जनों ने उसे गारुड स्थानक कहा है ।

२२ वृषभासन

संयुते वियुते यद्वा भूमिश्छिष्टे तु जानुनी । 958
[वृषभासनमाख्यातं सौष्ठवाधिष्ठितं तदा] ॥६४२॥

जब दोनों घुटने संयुक्त या वियुक्त हो, किन्तु भूमि में मटे हुए हो और मौँठव से युक्त हो, तब उसे वृषभासन स्थानक कहते हैं ।

२३ नागबन्ध

[दक्षिणां तु यदा जङ्घां वामोरु पृष्ठदेशगाम् । 959
निदध्यादुपविष्टः सन् नागबन्धं तदादिशेत्] ।

यदि भूमि पर बठे हुए स्थिति में वाये घुटने को पीठ की ओर गयी हुई दाहिनी पिडली पर रख दिया जाय, तो उसे नागबन्ध स्थानक कहते हैं ।

छह सुप्तस्थानक (४)

१ सम

उत्तानास्यं स्रस्तमुक्तहस्तं सुप्तं समं भवेत् ॥६४३॥ 960

यदि मुँह उत्तान और हाथ ढीला तथा खुला हुआ हो, तो उसे समसुप्त स्थानक कहते हैं ।

२ नत और उसका विनियोग

स्रस्तहस्तयुगं सुप्तं मनावप्रसृतजङ्घकम् ।
यत् नत् नतं श्रमालस्यखेदादिषु निरूपितम् ॥६४४॥ 961

यदि दोनों हाथ ढीले हो और जँघा थोड़ी फैली हुई हो, तो उसे नत सुप्त स्थानक कहते हैं । श्रम, आलस्य तथा खेद आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

नृत्याध्याय

३. आकुञ्चित और उसका विनियोग

आकुञ्चत्कायमाविद्धजानु त्वाकुञ्चित मतम् ।

शीतार्ताभिनयेऽशोकमल्लेन सुविपश्चिता ॥६४५॥ 962

जहाँ शरीर कुछ सिकुडा हुआ हो और घुटने मुड़े हुए हो, वहाँ आकुञ्चित सुप्त स्थानक होता है। विद्वान् अशोकमल्ल ने शीत-पीडित के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

४ प्रसारित

उपधाय यदा बाहु सम्प्रसार्य तु जानुनी ।

सुप्यते यत्र तत् प्रोक्तं सुखसुप्ते प्रसारितम् ॥६४६॥ 963

जब बाँह को तकिया बनाकर ओर घुटनों को फैलाकर सुख से सोया जाय, तो उसे प्रसारित सुप्त स्थानक कहते हैं।

५ विवर्तित

अधस्ताद्वदनं सुप्तं सद्भिर्हृत्तं विवर्तितम् ॥६४७॥

मुँह को नीचे करके सोने पर विवर्तित सुप्त स्थानक होता है, ऐसा सज्जनों का अभिमत है।

६ उद्वाहित और उसका विनियोग

असे निधाय शीर्ष चेतकूर्परेण धरातलम् । 964

आश्रित्य शयनं यत्र स्थानमुद्वाहितं तदा ।

लीलायावस्थितौ सद्भिर्निरयोजिमहीभुजाम् ॥६४८॥ 965

जहाँ कन्धे पर सिर रखकर कुहनी से पृथ्वीतल का आश्रय लेकर शयन किया जाय, तो उसे उद्वाहित सुप्त स्थानक कहते हैं। राजाजो की लीलापूर्वक अवस्थिति के अभिनय में इस आसन का विनियोग होता है।

समवेत रूप में बानन प्रकार के स्थानकों का निरूपण समाप्त ।



चारी प्रकरण / दस

चारियो का निरूपण

चारी (चेष्ठाकृतिविशेष भावाभिव्यजन)

गत्यर्थाच्चरते[र्धातो]भविऽर्थे करणेऽथवा ।

अस्त्रीजातौ तत डीषि सत्ति चारीति सिध्यति ॥६४६॥ 966

गमनार्थक चर् धातु से भाव अथवा करण अर्थ में अण् प्रत्यय तथा डीष् होने पर स्त्रीलिंग में चारी प्रयोग निष्पन्न होता है ।

या नर्तनेऽङ्घ्रिजङ्घोरुकटिना युगपत्कृतः ।

चेष्ठाकृतिविशेष. सा चारी सङ्घोरुदीरिता ॥६५०॥ 967

नृत्यकाल में पैर, जँघा, ऊरु और कटि द्वारा एक साथ जो चेष्ठाकृतिविशेष भावाभिव्यजन होता है, विद्वानों ने उसे चारी नाम से कहा है ।

चारियो के भेद

व्यायच्छत्तो मिथश्चार्यो यद्यथालक्ष्म निर्मिताः ।

अङ्गोपेतास्ततोऽन्वर्थो व्यायामः स चतुर्विधः ॥६५१॥ 968

चारी च करणं खण्डो मण्डल च क्रमादिति ।

स्यादेकाङ्घ्रिप्रचारो यः सा चारी परिकीर्तिता ॥६५२॥ 969

द्व्यङ्घ्रिप्रचारः करणं खण्डस्तु करणैस्त्रिभिः ।

खण्डैस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा मण्डलं स्यात् क्रमेण तु ॥६५३॥ 970

त्र्यस्रे ताले सद्भिरेतच्चतुरस्रे तथोदितम् ।

अगो के परस्पर प्रचार-प्रसार के अनुसार चारियो की रचना होती है । इसलिए अर्थानु रूप (अन्वर्थ) उसे व्यायाम भी कहा जाता है, जो कि चार प्रकार का होता है १ चारी, २ करण, ३ खण्ड और ४ मण्डल । एक पैर के सचरण को चारी, दोनो पैरों के सचरण को करण, तीन करणों के एक साथ सचरण को खण्ड और तीन

नृत्याध्याय

या चार खण्डों के एक साथ सचरण को मण्डल कहते हैं। त्र्यस्र, ताल और चतुरस्र परिमाण में सज्जनो ने क्रमशः उनका प्रयोग बताया है।

भूमिचारी के भेद

समपादाड्डिता बद्धा स्पन्दिता विच्यवा तथा ॥६५४॥ 971

जनितोत्सन्दिता चाषगतिरध्यर्धिका परा ।

एलकाक्रीडिताख्या च शकटास्याभिधा परा ॥६५५॥ 972

उरूद्वृत्ता स्थितावर्ता चार्यपस्पन्दिता तथा ।

समोत्सरितमत्तल्ली मत्तल्लीति क्रमादिमाः ॥६५६॥ 973

चार्यः षोडश भौम्य—

भूमिचारी के सोलह भेद होते हैं १ समपादा, २ अड्डिता, ३ बद्धा, ४ स्पन्दिता, ५ विच्यवा, ६ जनिता, ७ उत्सन्दिता, ८ चाषगति, ९ अर्ध्याधिका, १० एलकाक्रीडिता, ११ शकटास्या, १२ उरूद्वृत्ता, १३ स्थितावर्ता, १४ अपस्पन्दिता, १५ समोत्सरितमत्तल्ली और १६ मत्तल्ली।

आकाशचारी के भेद

—स्ताकाशिकीरधुना ब्रुवे ।

अतिक्रान्ता त्वपक्रान्ता भ्रमरी च मृगप्लुता ॥६५७॥ 974

पार्श्वक्रान्तोर्ध्वजानुश्च भुजङ्गत्रासिता परा ।

अलाता दण्डपादा च विद्युद्भ्रान्ता च सूच्यपि ॥६५८॥ 975

दोलापादा तथोद्वृत्ताविद्धा नूपुरपादिका ।

आक्षिप्ताख्येति सम्प्रोक्ता आकाशिक्यश्च षोडश ॥६५९॥ 976

अब आकाशचारियों का निरूपण किया जाता है। उनके भी सोलह प्रकार होते हैं १ अतिक्रान्ता, २ अपक्रान्ता, ३ भ्रमरी, ४ मृगप्लुता, ५ पार्श्वक्रान्ता, ६ ऊर्ध्वजानु, ७ भुजङ्गत्रासिता, ८ अलाता, ९ दण्डपादा, १० विद्युद्भ्रान्ता, ११ सूची, १२ दोलापादा, १३ उद्वृत्ता, १४ आविद्धा, १५, नूपुरपादिका और १६ आक्षिप्ता।

चार्यो भूमिलिताः मार्ग्यो द्वात्रिंशन् मुनिसंमता ।

इस प्रकार भरत मुनि के मत से दोनों चारियों के बत्तीस भेद होते हैं।

चारी प्रकरण

देशीचारी (भूमिगत) के भेद

अथ देशीप्रसिद्धाः	यास्ताश्चारीरभिदध्महे ॥६६०॥	977
रथचक्रा तलोद्भृत्ता मराला पाष्णिरेचिता ।		
परावृत्ततला तिर्यङ्मुखा नूपुरविद्धिका ॥६६१॥		978
कातरा करिहस्ता च हरिणत्रासिता परा ।		
अर्धमण्डलिकाप्युस्ताडिता च मदालसा ॥६६२॥		979
सञ्चारितोत्कुञ्चितापकुञ्चिता स्फुरिता परा ।		
स्तम्भक्रीडनिका तिर्यक् कुञ्चिता तलदर्शिनी ॥६६३॥		980
खुत्ता लङ्घितजङ्घा च स्वस्तिका च कुलीरिका ।		
निकुट्टकः पुराट्यर्धपुराटी स्फुरिका ततः ॥६६४॥		981
सारिका च लताक्षेपोऽन्याद्बुखलितिका तदा ।		
ऊरुवेणी च विश्लिष्टा समखलितिकेत्यपि ॥६६५॥		982
संघट्टितेत्यमूर्ध्म्यः	पञ्चात्रिंशद्द्वीरिताः ।	

अब देशी नाम से प्रसिद्ध चारियो का निरूपण किया जाता है । उनके पैतीस भेद होते हैं १ रथचक्रा, २ तलोद्भृत्ता, ३ मराला, ४ पाष्णिरेचिता, ५ परावृत्ततला, ६ तिर्यङ्मुखा, ७ नूपुरविद्धिका, ८ कातरा ९ करिहस्ता, १० हरिणत्रासिका, ११ अर्धमण्डलिका, १२ उस्ताडिता, १३ मदालसा, १४ सचारिता, १५ उकुञ्चिता, १६ अपकुञ्चिता, १७ स्फुरिता, १८ स्तम्भक्रीडनिका, १९ तिर्यक्कुञ्चिता, २० तलदर्शिनी, २१ खुत्ता, २२ लघितजङ्घा, २३ स्वस्तिका, २४ कुलीरिका, २५ निकुट्टक, २६, पुराटिका, २७, अर्धपुराटिका, २८ स्फुरिका, २९ सारिका, ३० लताक्षेप, ३१ अड्डखलितिका, ३२ ऊरुवेणी, ३३ विश्लिष्टा, ३४ समखलितिका और ३५ संघट्टिता ।

देशीचारी (आकाशगत) के भेद

दण्डपादा	पुरःक्षेपाऽपक्षेपा	हरिणप्लुता ॥६६६॥	983
बिद्युद्भ्रान्ता च	विक्षेपा जङ्घावर्ताङ्घ्रितार्डिता ।		
अलाता डमरी	विद्धा जङ्घालङ्घनिका परा ॥६६७॥		984
सूची	प्रावृतमुल्लालो	वेष्टनोद्वेष्टने तथा ।	

उत्क्षेपश्च तथा पृष्ठोत्क्षेप एकोनविंशतिः ॥६६८॥ 985

अमूराकाशिकास्ताश्च चतुष्पञ्चाशदीरिताः ।

आकाशगत देशी चारी के उन्नीस भेद होते हैं १ दण्डपादा, २ पुरक्षेपा, ३ अपक्षेपा, ४ हरिणप्लुता, ५ विद्धुद्भ्रान्ता, ६ विक्षेपा, ७ जघावर्ता ८ अघ्निताडिता, ९ अलाता, १० डमरी, ११ विद्धा, १२ जघालघनिका, १३ सूची, १४ प्रावृत्त, १५ उल्लाल, १६ बेष्टन, १७ उद्वेष्टन, १८ उत्क्षेप और १९ पृष्ठोत्क्षेप ।

उभय्योऽप्यथ सर्वास्ताः मार्गदेशीस्थिताः इमाः । 986

षडशीतिर्मताश्चार्यस्तासा लक्ष्माण्यह ब्रुवे ॥६६९॥

दोनों भूमिगत तथा आकाशगत देशी चारियों के चौवन भेदों और भूमिचारियों तथा आकाशचारियों के बत्तीस भेदों को मिला देने से चारियों के कुल छियासी भेद होते हैं । अब उनके लक्षण-विनियोगों का निरूपण किया जाता है ।

सोलह भूमिचारियाँ (१)

१ समपादा

अङ्घ्रोनिरन्तरौ तुल्यनखौ कृत्वा यदि स्थितः । 987

समपादस्थानकेन समपादा सता तदा ॥६७०॥

जब समपाद स्थानक के द्वारा दोनों चरणों को अव्यवहित तथा तुल्यनख करके रखा जाय (अर्थात् सटाकर इस प्रकार रखा जाय, जिससे दोनों के अग्रभाग बराबर माप में हों), तब उसे समपादा भूमिचारी कहते हैं ।

प्रचारयोग्यतामात्राद् यत् समाधत्त कश्चन । 988

स्थानकत्वेऽपि चारीत्वमस्यास्तत्र सतां मुदे ॥६७१॥

युक्त्यानयैवमन्येषा चारीत्वं सुवचं यतः । 989

स्थानकानामतश्चिन्त्यं समाधानं बुधैरिह ॥६७२॥

समाधत्ताशोकमल्लः संगीतविदुषांवरः । 990

समपादस्थानहेतोश्चारीत्वं चलनादिह ॥६७३॥

यहाँ आशका होती है कि उक्त लक्षण में स्थानक का अर्थ स्थिरता है और चारी का अर्थ चलना होता है । इन विरुद्ध धर्मों का समावेश कैसे होगा ? इसका उत्तर कोई (आचार्य) सज्जनो के सन्तोषार्थ यह

चारी प्रकरण

कहकर देते हैं कि समपादो मे चलने की योग्यता तो है, इसलिए स्थानक मे भी चारीत्व है। किन्तु डम युक्ति से 'दूसरे स्थानको मे भी चारीत्व है'—ऐसा कहना आसान हो जाएगा, इसलिए विद्वानो को यहाँ समाधान ढूँढना चाहिए। यहाँ सगीत के श्रेष्ठ विद्वान् अशोकमत्तल ने समाधान किया है कि बराबर परिमाण मे पैरो को रखकर चलना ही समपादा चारी है। (इस लक्षण मे कोई त्रुटि नहीं है।)

२ अड्डिता

समाङ्घ्रेः पुरतः पश्चादन्योऽग्रतलसञ्चरः । 991

निघृष्टोद्घ्रिः क्रमाद् यत्र सा धीरैरङ्गिता मता ॥६७४॥

जहाँ समपाद के आगे और पीछे दूसरा पैर अग्रभाग पर चले, फिर क्रमश एक-एक पैर घसीटा जाय, तो उसे अड्डिता भूमिचारी कहते हैं।

३ बद्धा

कृत्वोर्वोश्चलनं जङ्घास्वस्तिकेन समन्वितम् । 992

स्वस्तिकेन विना चाङ्घ्रितलाग्रे मण्डलभ्रमात् ॥६७५॥

स्वं स्वं पार्श्वं गते यत्र सोक्ता बद्धेति सूरिभिः । 993

मिलिते प्रोचिरे लक्ष्यलक्षमणी केचिदत्र हि ॥६७६॥

जहाँ ऊरुओ के सचरण को जँघाओ की स्वस्तिकमुद्रा से युक्त करके (अथवा) विना स्वस्तिक के भी, चरण-तल के अग्रभाग मे मण्डलाकार घुमाकर अपने-अपने पार्श्व मे पहुँचा दिया जाय, वहाँ विद्वानो ने उसे बद्धा भूमिचारी कहा है। कोई आचार्य यहाँ लक्ष्य और लक्षण को सम्मिलित रूप मे बताते हैं।

४ स्पन्दिता

वाम. समो निषण्णोरुहन्यस्तिर्यक् प्रसारितः । 994

पञ्चतालान्तरं पादो यत्र सा स्पन्दिता मता ॥६७७॥

जहाँ बायाँ पैर सम हो, ऊरु बैठा हुआ हो और दूसरा पैर पाँच तालो के अन्तर पर तिरछा फैला हुआ हो, तो उसे स्पन्दिता भूमिचारी कहते हैं।

५ विच्यवा

चरणौ समपादाया विच्युत्य क्षितिकुट्टनम् । 995

कुरुतश्चेत् तलाग्रेण सा तदा विच्यवोदिता ॥६७८॥

नृत्याध्याय

जब समपादा चारी के दोनो चरण अपने स्थान से हटकर अपने निचले अग्रभाग से पृथ्वी को कूटते हो, तो उसे विच्यवा भूमिचारी कहते हैं ।

६ जनिता

यत्र पादो भवेदग्रतल [सञ्चर] संज्ञितः । 996

हृदि मुष्टिकरोऽन्यो ग्रीवा यथाशोभं भवेद्यदि ॥६७६॥

सा तदा जनिता चारी विद्वद्भिः समुदीरिता । 997

मुख्या पादक्रिया चास्यामिति कर्तव्यता परा ॥६८०॥

जहाँ एक पैर अग्रतल पर हो, हृदय पर मुष्टि नामक हाथ हो और ग्रीवा सुशोभित हो, वहाँ विद्वानों ने उसे जनिता भूमिचारी कहा है । इसमें मुख्य चरण-क्रिया परम कर्तव्यता मानी गयी है ।

७ उत्सन्दिता

यत्राङ्गुल्याः कनीयस्था भागेनाङ्गुष्ठकस्य च । 998

क्रमेण रेचकस्यानुकृत्या पादो गतागतम् ॥६८१॥

विधत्ते सोत्सन्दिताख्या सद्भिश्चारी निरूपिता । 999

केचिन्नृतकरं ह्यत्र रेचितं सम्भवाषिरे ॥६८२॥

जहाँ कानी उँगली तथा अँगूठे के एक भाग से क्रमशः रेचक के अनुकरण द्वारा पैर बाहर-भीतर आता-जाता है, उसे विद्वानों ने उत्सन्दिता भूमिचारी कहा है । यहाँ कोई विद्वान् रेचित नामक नृत्य-हस्त का प्रयोग बताते हैं ।

८ चाषगति

तालान्तरे पुरो गत्वा सव्येऽङ्घ्रौ पृष्ठगामिनि । 1000

तालद्वयान्तरेऽथाङ्घ्रौ समावुत्प्लुत्य किञ्चन ॥६८३॥

अपगम्योपगच्छेतामुपगम्यापगच्छतः । 1001

यस्यां सैषा चाषगतिर्भीतिर्गत्यादिषु स्मृताः ॥६८४॥

जहाँ दाहिना पैर एक ताल के अन्तर पर आगे-आगे चले और बाँया पैर पीछे-पीछे चले, फिर दो तालों के अन्तर पर दोनो समस्थित पैर कुछ उछलकर एव हटकर समीप आ जाँय और समीप आकर फिर हट जाँय, ऐसी क्रिया को चाषगति भूमिचारी कहते हैं । भय और गमन आदि के अभिनय में इसका विनियोग किया जाता है ।

चारी प्रकरण

९. अध्याधिकारिका

- सव्याङ्घ्रेः पार्श्वदेशं चेद् वामः पादः समाश्रितः । 1002
 अथ सव्योऽपसृत्याङ्घ्रिः सार्धतालान्तरे स्थितः ॥६८५॥
 त्र्यस्रभावेन पार्श्वे स्वे सव्यो वामाङ्घ्रिपार्श्विणः । 1003
 ततोऽपसृत्य वामाङ्घ्रिः सार्धतालान्तरे तथा ।
 स्थितः सार्ध्याधिकारिका चारी तदावाचि विचक्षणैः ॥६८६॥ 1004

जहाँ दाहिने पैर की एडी के आश्रित होकर बायाँ पैर चले, और फिर दाहिना पैर हटकर डेढ़ ताल की दूरी पर स्थित हो, अनन्तर दाहिना पैर त्र्यस्र भाव से अपने पार्श्व में बाये पैर की एडी की तरफ गमन करे, तत्पश्चात् बायाँ पैर हटकर डेढ़ ताल की दूरी पर स्थित हो, ऐसी क्रिया को विद्वानो ने अध्याधिकारिका भूमिचारी कहा है ।

१० एलकाक्रीडिता

- मनागुत्प्लुत्य चेतपादौ यत्राग्रतलसञ्चरौ ।
 पर्यायात् पततश्चारी सैलकाक्रीडिता तदा ॥६८७॥ 1005

जहाँ अग्रतलसचर नामक दोनो पैर थोडा उछलकर अनुक्रम से गिरते हो, उसे एलकाक्रीडिता भूमिचारी कहते है ।

११ शकटास्या

- पूर्वभागं शरीरस्य यदा धृत्वा प्रयत्नतः ॥६८८॥
 प्रसारितो भवेद् यत्र पादोऽग्रतलसञ्चरः । 1006
 वक्ष उद्वाहितं सोक्ता शकटास्या बुधैस्तदा ॥६८९॥

जब शरीर के अगले भाग को यत्नपूर्वक पकडकर अग्रतलसचर पैर फैला दिया जाय और उद्वाहित वक्ष की मृदा बनायी जाय, तब उसे विद्वान् लोग शकटास्या भूमिचारी कहते है ।

१२ उरूद्वृत्ता

- पार्श्विणः स्याच्चरणस्याग्रतलसञ्चारकस्य चेत् । 1007
 पराङ्घ्रिपृष्ठाभिमुखी यद्वा व्यत्यासतो भवेत् ॥६९०॥

२६५

नतजानुर्यत्र जङ्घा वलिताभ्यन्यजङ्घिकम् । 1008

सोरुद्धृत्ता तदा चारी बुधैरीर्ष्यादिषु स्मृता ॥६६१॥

जब अग्रतलसचर पाद-मुद्रा की एडी दूसरे पैर की एडी के सम्मुख हो, अथवा विपरीत क्रम से हो, घुटना झुका हुआ हो और जँघा बल खायी हुई हो, तब से विद्वानो ने उसे उरुद्धृत्ता भूमिचारी कहा है। ईर्ष्या आदि के अभिनय में उसका विनियोग किया जाता है।

१३ स्थितावर्ता

गत्वान्यपादपार्श्वं चेद् यत्राग्रतलसञ्चरः । 1009

अन्तर्जानु स्वस्तिकत्वं प्राप्तोऽन्यश्च्युतिपूर्वकः ।

तथा स्वपार्श्वनीता सा स्थितावर्ता तदोदिता ॥६६२॥ 1010

जहाँ अग्रतलसचर पाद मुद्रा दूसरे पैर के पार्श्व में जाकर घुटने के नीचे स्वस्तिक मुद्रा को प्राप्त कर ले और दूसरा पैर हट कर अपने पार्श्व में ले आया जाय, तो उसे स्थितावर्ता भूमिचारी कहते हैं।

१४ अपस्पन्दिता

स्यादपस्पन्दिता चारी स्पन्दिताङ्घ्रिविपर्ययात् ॥६६३॥

चलायमान चरणों के परिवर्तन से अपस्पन्दिता भूमिचारी होती है।

१५ समोत्सरितमत्तल्ली

निहिते परपादस्य मध्येऽग्रतलसञ्चरे । 1011

कृते जङ्घा स्वस्तिके च परेऽग्रतलसञ्चरे ॥६६४॥

पादेऽङ्घ्री यत्र घूर्णन्तावपसृत्योपसर्पतः । 1012

समोत्सरितमत्तल्ली सा चारी मध्यमे मदे ॥६६५॥

जब अग्रतलसचर पाद-मुद्रा को दूसरे पैर के बीच में रखा जाय, फिर दूसरे अग्रतलसचर को जँघा के साथ स्वस्तिकाकार बनाया जाय, तत्पश्चात् दोनों पैर घूमते हुए हटकर समीप आ जाँय, तो उसे समोत्सरितमत्तल्ली भूमिचारी कहते हैं। मध्यम मद के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

१६ मत्तल्ली

क्षितिलगनाखिलतलौ जङ्घास्वस्तिकयोगिनौ । 1013

अर्धत्र्यस्रौ च यत्राङ्घ्री घूर्णन्तावुपसर्पतः ।

प्रदापसरतोऽसौ स्यान्मत्तल्ली तरुणे मदे ॥६६६॥ 1014

चारी प्रकरण

यदि दोनो चरणो का सम्पूर्ण तलभाग पृथ्वी से सटा हुआ हो, जँघाएँ स्वस्तिक मद्रा में हों, फिर दोनो चरण अर्ध त्र्यस्र स्थानक के रूप में होकर घूमते हुए उपसर्पण और अपसर्पण करे, तो उसे मत्तल्लौ भूमिचारी कहते हैं। तरुण मद्र के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

विनियोग

नाट्ये नृत्ये तथा नृत्ते नियुद्धेऽपि भवन्त्यसू. ।

नाट्यवेदेनादिमूलवेदेन परिकीर्त्तिताः ॥६६७॥ 1015

नाट्य (अभिनय), नृत्य (ताल, लय तथा रस के अनुसार किया जाने वाला अभिनय), नृत्त (केवल अग-विक्षेपपूर्वक किया जाने वाला अभिनय) आर वाटुयुद्ध के भाव-प्रदर्शन में भी इन चारियों का उपयोग किया जाता है। इनका वर्णन नाट्यवेद के मूल स्रोत वेदों में पाया जाता है।

सोलह आकाशचारियाँ (२)

१ अतिक्रान्ता

अङ्घ्रेरेकस्य गुल्फे चेदन्यमुद्धृत्य कुञ्चितम् ।

प्रसार्य पुरतः किञ्चिदथोत्क्षिप्य निपातयेत् ॥६६८॥ 1016

अग्रे लोकानुसारेण चतुस्तालान्तरादितः ।

अतिक्रान्ता तदा चारो विपश्चिद्धिः प्रकीर्त्तिता ॥६६९॥ 1017

जब एक पैर के टखने पर दूसरे पैर के मुड़े हुए (कुञ्चित) टखने को लाकर सामने फैला दिया जाय और फिर लोक-रीति के अनुसार चार तालों की दूरी पर उसे उछाल कर सामने गिरा दिया जाय, तो विद्वानों ने उसे अतिक्रान्ता आकाशचारी कहा है।

२ अपक्रान्ता

बद्धां विरच्य चारी चेदङ्घ्रिमुद्धृत्य कुञ्चितम् ।

पाश्वर्णे न्यस्येत् तदा चारीमपक्रान्ता जगुर्बुधाः ॥१०००॥ 1018

यदि बद्धा चारी की रचना करके कुञ्चित पैर को निकाल कर पार्श्व में रख दिया जाय, तो विद्वानों ने उसे अपक्रान्ता आकाशचारी कहा है।

३ अमरी

अतिक्रान्ताङ्घ्रिमारच्य त्र्यस्रं चेत्परिवर्त्तयेत् ।

ऊरुजानुत्रिकमधोऽपराङ्घ्रितलतस्तनुः । 1019

भ्राम्यते सकला यत्र सा चारी भ्रमरी तदा ॥१००१॥

यदि अतिक्रान्ता चारी से युक्त चरण की रचना करके ऊरु, जानु और कटिदेश को त्र्यस्र स्थानक में परिवर्तित कर दिया जाय, तत्पश्चात् दूसरे पैर के तलवे से शरीर को घुमा लिया जाय, तो उसे भ्रमरी आकाशचारी कहते हैं ।

४ मृगप्लुता

अङ्घ्रि कुञ्चितमुह्यस्योत्प्लुत्योर्व्यन्त निपात्य च । 1020

अञ्चितस्य परस्याङ्घ्रेर्जङ्घां पश्चाद्यदि क्षिपेत् ।

मृगप्लुता तदा चारी स्याद् विदूषककर्तृका ॥१००२॥ 1021

जब कुञ्चित पैर की रचना करके उछल कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया जाय और दूसरे अञ्चित पैर की जङ्घा को परिक्षिप्त किया जाय, तब उसे मृगप्लुता आकाशचारी कहते हैं । विदूषक के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

५ पार्श्वक्रान्ता

उन्नीय निजपार्श्वेन पादं कुञ्चितसंज्ञकम् । 1022

उर्व्या चेत् पातयेत् पाष्ण्यां पार्श्वक्रान्ता तदोदिता ॥१००३॥

लोके प्रसिद्धा सा पार्श्वदण्डपादेतिसंज्ञया । 1023

पादं परोरुपर्यन्तमुदस्योद्घट्टितं क्षितौ ।

क्षिपेदस्यामिति परे प्राहुर्नृत्तविचक्षणाः ॥१००४॥ 1024

यदि कुञ्चित पैर को अपने पार्श्व से ऊपर उठाकर एड़ी के बल धरती पर पटक दिया जाय, तो पार्श्वक्रान्ता आकाशचारी बनती है । यह चारी लोक में पार्श्वदण्डपादा नाम से प्रसिद्ध है । एक पैर को दूसरे पैर के ऊरु तक उठाकर उद्घट्टित पाद पृथ्वी पर पटकने से यह चारी बनती है, ऐसा नृत्ताचार्यों ने कहा है ।

६ ऊर्ध्वजानु

जानु यावत् स्तनसमं कुञ्चितं तावदुत्क्षिपेत् ।

अङ्घ्रिर्यत्रापरः स्तब्धः सोर्ध्वजानुरुदीरिता ॥१००५॥ 1025

चारी प्रकरण

यदि कुञ्चित पैर को तब तक ऊपर उठाया जाय जब तक उसका घुटना स्तन के बराबर ऊँचा न उठ जाय और दूसरा पैर स्थिर रहे, ऐसी क्रिया को ऊर्ध्वजानु आकाशचारी कहते हैं।

७ भुजंगत्रासिता

परोरुमूलक्षेत्रान्तमङ्घ्रिमुत्क्षिप्य कुञ्चितम् ।

नितम्बाभिसुखी यत्र पार्श्विण जानु स्वपार्श्वगम् ॥१००६॥ 1026

उत्तानिततल पादं कटीजानुविवर्तनार्थं ।

विदध्याद्यदि सान्बर्था भुजंगत्रासिता तदा ॥१००७॥ 1027

यदि दूसरे ऊरु के मूल भाग तक कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर एडी को नितम्ब के सम्मुख किया जाय तथा घुटने को अपने पार्श्व में पहुँचा दिया जाय, फिर चरण को कटि तथा घुटने के पास घुमाकर उसके तलवे को उत्तान कर दिया जाय, तो ऐसा करने पर वह अर्थानुरूप भुजंगत्रासिता आकाशचारी बनती है।

८ अलाता

पृष्ठप्रसृतपादस्य परोरोः सम्मुखं तलम् ।

कृत्वा पार्श्विणः स्वपार्श्वे भूक्षिप्त्वाऽलाता निरूपिता ॥१००८॥ 1028

यदि पीठ की ओर फैले हुए वलित पैर के तलवे को दूसरे घुटने के सम्मुख करके एडी को अपने पार्श्व में गिरा दिया जाय, तो अलाता आकाशचारी बनती है।

९ दण्डपादा

पार्श्विणदेशे स्थापयित्वा चरणं नूपुराभिधम् ।

यत्र स्वकायाभिमुखं जान्वग्रं पुरतो जवात् । 1029

यदा प्रसारयेद् दण्डपादा साभिहिता तदा ॥१००९॥

जब नूपुरपाद को एडी के पास रखकर घुटने के अग्रभाग को अपने शरीर के सम्मुख अति वेग से आगे की ओर फैला दिया जाय, तब उसे दण्डपादा आकाशचारी कहते हैं।

१०. विद्युद्भ्रान्ता

वलितः पृष्ठतः पादः शीर्षे स्पृष्ट्वाथ सर्वतः । 1030

भ्रान्त्वा च प्रसृतो यत्र विद्युद्भ्रान्ता तदोदिता ॥१०१०॥

जब वलित पैर को पीछे की ओर अग्रभाग में रगड़ दिया जाय और तत्पश्चात् चारों ओर मण्डलविद्ध किया जाय, तो विद्युद्भ्रान्ता आकाशचारी बनती है।

११ सूची

कुञ्चितार्द्धाग्र समुत्क्षिप्य प्रसार्यैतस्य जङ्घिकाम् । 1031
 पराङ्घ्रेर्जानुपर्यन्तमूर्पर्यन्तमेव च ॥१०११॥
 अग्रयोगेन चेदेतमर्द्धाग्र यत्र निपातयेत् । 1032
 समवाचि तदा सूची सा नृत्तसुविचक्षणैः ॥१०१२॥

जब कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर उसकी जंघा को दूसरे पैर के घुटने तक या ऊर तक फैलाकर अग्र-योग से उस पैर को नीचे गिरा दिया जाय, तब नाट्याचार्यों ने उसे सूची आकाशचारी कहा है ।

१२ दोलापादा

कुञ्चितं पादमुद्धृत्य पार्श्वयोर्दोलयेत् ततः । 1033
 यत्र पाष्ण्यां निजे पार्श्वे तं क्षिपेच्चेत् तदोदिता ।
 दोलापादाभिधा त्वेषा वीरसिहसुसुनुना ॥१०१३॥ 1034

जब कुञ्चित पैर को उछालकर दोनो पार्श्वों में हिलाया-डुलाया जाय, उसके बाद उसे एड़ी से अपने पार्श्व में फेंका या गिरा दिया जाय, तो अशोकमल्ल ने उसे दोलापादा आकाशचारी कहा है ।

१३ उद्बृत्ता

आविद्धाङ्घ्रिस्थितान्योरुपाष्णिकं प्रविधापयेत् ।
 उत्प्लुत्य भ्रमरी दत्त्वा धरायां विनिपातयेत् ॥१०१४॥ 1035
 यत्रान्घार्द्धाग्र समुद्धृत्य तदोद्बृत्ता भवेदसौ ।
 अस्या नामान्तरं केचिच्चिरावर्त्तयवादिषुः ॥१०१५॥ 1036

जब मुड़े हुए (आविद्ध) एक पैर को ऊर सहित, दूसरे पैर की एड़ी पर अवस्थित किया जाय, फिर उछल कर तथा चक्कर काट कर दूसरे पैर को उठा देने के बाद गिरा दिया जाय, तो उसे उद्बृत्ता आकाशचारी कहते हैं । कोई इसे चिरावर्त्ता अपर नाम से अभिहित करते हैं ।

१४ आविद्धा

जङ्घास्वस्तिकविश्लेषात् कुञ्चितं चरणं पुरः ।
 वक्रमेकं प्रसार्य स्वपार्श्वे तु यदि पातयेत् । 1037
 उपपाष्ण्यन्तरं पाष्ण्यां तदाविद्धेति कीर्तिता ॥१०१६॥

चारी प्रकरण

यदि स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित जँघाओं को अलग-अलग करके एक वक्र कुञ्चित पैर के आगे फैलाकर फिर अपने पार्श्व में एड़ी से गिरा दिया जाय, तो उसे आबिद्धा आकाशचारी कहते हैं।

१५ नूपुरपादिका

अञ्चितं चरणं पश्चादापयित्वाऽस्य पाष्णिना । 1038

स्पृशेत् स्फिजं यदि ततस्तमेवाञ्चितजङ्घकम् ॥१०१७॥

यस्यां निपानयेदग्रतलेन वसुधातले । 1039

तामाचष्टाशोकमल्लस्तदा नूपुरपादिकाम् ॥१०१८॥

यदि एक अचित चरण को पीछे उछालकर एड़ी से नितम्ब का स्पर्श किया जाय और उमी मुड़ी हुई जँघा वाले (अचित) चरण को निचले अग्रभाग के बल पृथ्वी पर गिरा दिया जाय, तो उसे अशोकमल्ल ने नूपुरपादिका आकाशचारी कहा है।

१६ आक्षिप्ता

त्रितालान्तरमुत्क्षिप्य पादमानीय कुञ्चितम् । 1040

पाश्वरान्तरं ततस्तं चेज्जङ्घास्वस्तिकयोगतः ।

यत्रोर्व्यं पातयेत्पाष्ण्यां साक्षिप्ताख्या मता तदा ॥१०१९॥ 1041

यदि एक कुचित पैर को तीन तालों की दूरी तक ऊपर उछाल कर दूसरे पार्श्व में लाया जाय और फिर स्वस्तिकाकार जँघा के योग से उसे एड़ी के बल पृथ्वी पर गिरा दिया जाय, तो उसमें आक्षिप्ता आकाशचारी बनती है।

विनियोग

नाट्ये नृत्ये गतौ युद्धे नियुद्धेऽपि प्रयोक्तृभिः ।

प्रयोक्तव्या इमाश्चार्यो ललिताङ्गक्रियायुताः ॥१०२०॥ 1042

अभिनेताओं को नाट्य, नृत्य, गमन, युद्ध तथा बाहुयुद्ध के अभिनय में भी, ललित आंगिक चेष्टाओं से युक्त इन चारियों का प्रयोग करना चाहिए।

क्वचिदङ्घ्रेः प्रधानत्वं क्वचित्पाणेः क्वचिद् द्वयोः ।

यथाप्रयोगशोभं हि परिज्ञेयं मनीषिभिः ॥१०२१॥ 1043

बुद्धिमान् अभिनेताओं को प्रयोग-सोष्ठव के अनुसार कही पैर की, कही हाथ की और कही दोनों की प्रधानता से चारियों का विनियोग करना चाहिए।

प्रधान्यं यत्र पादस्य करस्तदनुगो भवेत् ।
भवेच्चोद्धस्तको मुख्यः पादस्तदनुगस्तदा । 1044
यत्रोभयोः प्रधानत्वं तत्र तौ समगौ मतौ ॥१०२२॥

जहाँ पैर की प्रधानता हो, वहाँ हाथ उसका अनुगामी होना चाहिए । जहाँ हाथ की मुख्यता हो, वहाँ पैर उसका अनुगामी होना चाहिए । जहाँ दोनों की प्रधानता हो, वहाँ दोनों का समान रूप से प्रयोग करना चाहिए ।

यतः पादस्ततः पाणिर्यतः पाणिस्ततस्त्रिकम् । 1045
गतिमङ्घ्रैर्विदित्वैवं चार्यामङ्गानि योजयेत् ॥१०२३॥

जहाँ पर पैर का प्रयोग हो, वहाँ पर हाथ का भी और जहाँ पर हाथ का प्रयोग हो वहाँ पर कटिदेश का भी प्रयोग होना चाहिए । इस प्रकार पैर की गति समझ कर चारी में अन्य अंगों की योजना करनी चाहिए ।

गत्वा गत्वा यथा चार्या चरणो भुवि तिष्ठति । 1046
कृत्वा कृत्वा स्वकर्तव्यं करस्तद्वत्कटीतटे ॥१०२४॥

चारी में जिस प्रकार चरण जा-जाकर भूमि पर अवस्थित होता है, उसी प्रकार हाथ अपनी क्रियाओं को करके कमर पर अवस्थित होता है ।

अर्धचन्द्रकरो नाट्ये नृत्ते स्यात् पक्षवञ्चितः । 1047
पक्षप्रद्योतको यद्वा कटिच्छेत्रगतः करः ॥१०२५॥

नाट्य में अर्धचन्द्र हस्त-मुद्रा का और नृत्त में पक्षवञ्चितक या पक्षप्रद्योतक हस्त-मुद्रा का प्रयोग होता है । इन दोनों अभिनयों में हाथ कटिदेश पर अवस्थित रहता है ।

पैतीस देशी भूमिचारियाँ (३)

१ रथचक्रा

स्थानकं चतुरस्रं चेद् विधायाङ्घ्रि प्रगच्छतः । 1048
श्लिष्टौ पुरोऽथवा पश्चाद् रथचक्रा तदा मता ॥१०२६॥

जब चतुरस्र स्थानक की रचना करके सटे हुए दोनों पैरों को आगे या पीछे चलाया जाय, तब उसे रथचक्रा चारी कहते हैं ।

२ तलोद्वृत्ता

पुरश्चेत्सर्पतस्तूर्णमङ्गुलीपृष्ठभागतः । 1049
पादाग्रे सा तदादिष्टा तलोद्वृत्ता मनीषिभिः ॥१०२७॥

जब दोनो पैरो के अग्रभाग अँगुलियों के पृष्ठभाग पर (आश्रिन होकर) शीघ्रतापूर्वक आगे की ओर चले, तब विद्वानो ने उसे तलोद्वृत्ता चारी कहा है ।

३ मराला

नन्द्यावर्तस्थितावङ्घ्री पार्णिप्रपदरेचितौ । 1050
प्रसार्येते पुरो यत्र सा मरालोदिता बुधैः ॥१०२८॥

नन्द्यावर्त नामक स्थानक और रेचित मुद्रा में अवस्थित दोनो पैर एडी तथा अग्रभाग में जहाँ सामने फैलाये जाते हैं, वहाँ विद्वानो ने उसे मराला चारी कहा है ।

४ पार्णिरेचिता

पार्णिपाश्वर्गताख्येन स्थितास्थानेन यत्र चेत् । 1051
रेचिता क्रियते पार्णिः सा तदा पार्णिरेचिता ॥१०२९॥

पार्णिपाश्वर्गत स्थानक में अवस्थित एडी जब रेचित की जाती है, तब उसे पार्णिरेचिता चारी कहते हैं ।

५ परावृत्ततला

पृष्ठोत्तानतलो यत्र बहिरङ्घ्रिः प्रसारितः । 1052
चारी सा कथिता धीरैः परावृत्ततलाभिधा ॥१०३०॥

जहाँ तलवे को पीठ की ओर उत्तान करके पैर को बाहर फैला दिया जाता है, उसे धीर पुरुष परावृत्ततला चारी कहते हैं ।

६ तिर्यङ्मुखा

स्थित्वा चेद् वर्धमानने पादौ तिर्यक् प्रसर्पतः । 1053
वामदक्षिणयोस्तूर्णं तदा तिर्यङ्मुखा मता ॥१०३१॥

यदि वर्धमान स्थानक में अवस्थित होकर दोनो पैर वाम-दक्षिण पार्श्वों में शीघ्रता के साथ तिरछे फैला दिये जाँय, तो उसे तिर्यङ्मुखा चारी कहते हैं ।

७ नूपुरविद्धिका

संश्रित्य स्वस्तिकं पाष्ण्योस्तथा पादाग्रयोर्यदि । 1054

यत्राङ्घ्री रेचितौ सा स्यात्तदा नूपुरविद्धिका ॥१०३२॥

जब एङ्घ्रियो तथा पैरो के अग्रभागो के स्वस्तिक स्थानको का सहारा लेकर दोनो पैर रेचित किये जाते है, तब उसे नूपुरविद्धिका चारी कहते है ।

८ कातरा

नन्द्यावर्त्ते स्थिताङ्घ्रिभ्यामपसृत्या तु कातरा ॥१०३३॥ 1055

नन्द्यावर्त्त स्थानक मे अवस्थित पैरो के अलग कर देने से कातरा चारी होती है ।

९ करिहस्ता

संहतस्थानकेनाङ्घ्री स्थित्वोर्वी यत्र घर्षतः ।

पार्श्वार्भ्या चेत तदा सद्भिः करिहस्ताभिधीयते ॥१०३४॥ 1056

जब संहत स्थानक मे अवस्थित होकर दोनो पैर दोनो पार्श्वो से पृथ्वी को रगडते हे, तब उसे सज्जन लोग करिहस्ता चारी कहते हे ।

१० हरिणीत्रासिता

कुञ्चिते वलितप्रान्ते तले स्वस्तिकबन्धने ।

अङ्घ्रयोः कृत्वा यदोत्प्लुत्य नियते यत्र सा तदा । 1057

हरिणीत्रासिता चारी समवाचि विचक्षणैः ॥१०३५॥

जब कुचित पैरो के प्रान्तभाग बल खाये हुए हा तथा तलवे स्वस्तिकाकार मे बँधे हों और वे उछलकर एक जगह स्थिर हो जाँय, तो उमे विद्वानो ने हरिणीत्रासिता चारी कहा हे ।

११ अर्धमण्डलिका

क्षितिघृष्टौ बहिः प्राप्तौ पादौ यत्र शनैः क्रमात् । 1058

आवर्त्येते यदा सा स्यादर्धमण्डलिका तदा ॥१०३६॥

जहाँ दोनो पैरो को पृथ्वी पर रगड कर बाहर करके क्रमश वीरे-वीरे घुमाया जाता हे, तब वहाँ उसे अर्धमण्डलिका चारी कहते है ।

१२ ऊस्ताडिता

स्थित्वैकपादस्थानेन क्षितिस्थेनाङ्घ्रिणा यदा । 1059

यत्रोस्ताड्यते चारी तदासावूस्ताडिता ॥१०३७॥

चारी प्रकरण

जब एकपाद स्थानक में अवस्थित होकर पृथ्वी पर रखे हुए पैर में ऊपर की ओर पीटा जाता है, तब उसे ऊसताडिता चारी कहते हैं ।

१३ मदालसा

यस्याभितस्तत. पादौ स्थापयेन्मत्तवद्यदि । 1060

अलसौ सा तदा धीरैर्निरवाचि मदालसा ॥१०३८॥

यदि मतवाले की तरह, अलसाये हुए दोनों पैरों को एक-दूसरे के नीचे रख जाय, तो वीर पुरुष उसे मदालसा चारी कहते हैं ।

१४ सञ्चारिता

आकुञ्चिताङ्घ्रिमुत्क्षिप्यःसकृदन्येन योजयेत् । 1061

तिर्यक् सञ्चारयेदन्यं तदा सञ्चारिता मता ॥१०३९॥

जब कुछ मुड़े हुए एक पैर को ऊपर उठाकर वार-वार दूसरे पैर में मिला दिया जाय तथा दूसरे पैर को तिरछा चलाया जाय, तो उसे सञ्चारिता चारी कहते हैं ।

१५ उत्कुञ्चिता

आकुञ्च्य चरणावूर्ध्व यत्रोत्क्षिप्य पुरः क्षिपेत् । 1062

ऐकैकं चेत् तदोक्ता सोत्कुञ्चितान्वर्थनामभाक् ॥१०४०॥

जब दोनों चरणों को थोड़ा पीछे कर तथा ऊपर उठाकर एक-एक को आगे फेंका जाय, तब उसे अर्थानुरूप नाम वाली उत्कुञ्चिता चारी कहते हैं ।

१६ अपकुञ्चिता

यत्राकुञ्चितपादाभ्या क्रमात् पार्श्वहिंतिर्भवेत् । 1063

प्राहापकुञ्चितामेनां वीरसिहात्मजः सुधीः ॥१०४१॥

जहाँ कुछ मुड़े हुए दोनों चरणों से क्रमशः पार्श्वों की ओर पीटा जाय, वहाँ वीरसिंह के विद्वान् पुत्र अशोकमल्ल ने उसे अपकुञ्चिता चारी कहा है ।

१७ स्फुरिता

स्फुरिताग्रे सृतौ वेगाद् भूस्पृशोरङ्घ्रिपार्श्वयोः ॥१०४२॥ 1064

भूमि का स्पर्श करते हुए चरणों के पार्श्वों की ओर वेग से आगे फैलाने पर स्फुरिता चारी बनती है ।

१८. स्तम्भक्रीडनिका

तिर्यक्प्रसृतपादस्य पार्श्वं परतलेन चेत् ।

यत्र स्पृशेन्मुहुः सोक्ता स्तम्भक्रीडनिका तदा ॥१०४३॥ 1065

जहाँ तिरछे फँले हुए एक पैर के पार्श्व को दूसरे पैर का तलवा बार-बार स्पर्श करे, वहाँ उसे स्तम्भक्रीडनिका चारी कहते हैं ।

१९ तिर्यक्कुचिता

श्रद्धिं तिर्यश्चमाकुञ्च्य न्यस्येद्यत्र मुहुर्मुहुः ।

समवोचदिमा तिर्यक्कुञ्चितां वीरसहजः ॥१०४४॥ 1066

जहाँ एक पैर को तिरछा करके कुछसिकोड कर बार-बार (भूमि पर) रखा जाय, वहाँ उसे जशोकमल्ल ने तिर्यक्कुञ्चिता चारी कहा है ।

२० तलदर्शिनी

चरणौ संहतस्थौ चेत्तिर्यग्विच्युत्य भूतलम् ।

स्पृशतो बाह्यपार्श्वभ्या स्यात्तदा तलदर्शिनी ॥१०४५॥ 1067

जब सहत स्थानक मे स्थित दोनो चरण तिरछे अलग होकर बाहरी पार्श्वो से भूतल का स्पर्श करे, तब उसे तलदर्शिनी चारी कहते हैं ।

२१ खुत्ता

पादाग्रेण क्षितौ घातो यत्र खुत्तेति सा मता ॥१०४६॥

जहाँ चरणो के अग्रभाग से पृथ्वी पर आघात किया जाय, वहाँ उसे खुत्ता चारी कहते हैं ।

२२ लघितजघिका

खण्डसूचिः स्थितः पादो वेगेनाकृष्य लङ्घ्यते ।

1068

यत्रान्यचरणेनैषा भवेत्लङ्घितजङ्घिका ॥१०४७॥

जहाँ खण्डसूचि स्थानक मे अवस्थित एक पैर को वेग से खीचकर दूसरा पैर लॉघ जाता है, वहाँ उसे लघितजघिका चारी कहते हैं ।

२३ स्वस्तिका

स्वस्तिकाकृतिभागद्घ्रियत्र सा स्वस्तिका मता ॥१०४८॥ 1069

जहाँ पैर स्वस्तिकाकार धारण करे, वहाँ उसे स्वस्तिका चारी कहते हैं ।

२७६

चारी प्रकरण

२४ कुलीरिका

नन्द्यावत्तस्थानकस्थावङ्घ्री तिर्यवप्रसर्पतः ।

यदा यत्र तदा सद्भिरसौ प्रोक्ता कुलीरिका ॥१०४६॥ 1070

जब दोनो चरण नन्द्यावर्त्त स्थानक मे अवस्थित होकर तिरछे चले, तब उमे सज्जन लोग कुलीरिका चारी कहते है ।

२५ निकुट्टक

कुञ्चितेनाङ्घ्रिणाग्रेण गतिस्तु स्यान्निकुट्टकः ॥१०५०॥

मुडे हुए पैर के अग्रभाग से चलना निकुट्टक चारी कहलाता है ।

२६ पुराटिका

पुराटिका मिथोऽङ्घ्रिभ्यामुद्वृत्ताभ्यां निकुट्टनम् ॥१०५१॥ 1071

उठे हुए चरणो से परस्पर कूटना पुराटिका चारी कहलाती है ।

२७ अर्धपुराटिका

यत्रोद्वृत्तेन पादेन निकुट्टेन निकुट्टनम् ।

पराङ्घ्रेऽङ्घ्रितस्यैषा भवेदर्धपुराटिका ॥१०५२॥ 1072

जहाँ उठे हुए एक चरण से दूसरे अनावृत चरण को कूटा जाय, वहाँ अर्धपुराटिका चारी कहलाती है ।

२८ स्फुरिका

पुरः प्रसर्पतः पादौ समौ चेत् स्फुरिका तदा ॥१०५३॥

जब सम नामक दोनो पैर आगे चलते है, तब उसे स्फुरिका चारी कहते है ।

२९ सारिका

पुरः सरति यत्राङ्घ्रिरेकः सा सारिकोदिता ॥१०५४॥ 1073

जहाँ एक पैर आगे चलता है, उसे सारिका चारी कहते है ।

३० लताक्षेप

पश्चात्प्रक्षिप्य पादं चेत्पुरस्ताच्च प्रसार्यतम् ।

यत्रोर्वी कुट्टयेत्तेन लतान्नेपस्तदा त्वसौ ॥१०५५॥ 1074

जहाँ एक पैर को पीछे फेककर आगे फैला दिया जाय और उससे पृथ्वी को कूटा जाय, तो उसे लताक्षेप चारी कहते है ।

३१ अङ्गुलस्खलितिका

स्खलितोऽङ्घ्रियत्र तिर्यङ्गुलस्खलितिका तु सा ॥१०५६॥

जब पैर तिरछा गिरता है, वहाँ अङ्गुलस्खलितिका चारी होती है ।

३२ ऊरुवेणी

पादौ स्वस्तिकबन्धेन स्थित्वाङ्घ्री घर्षतो धराम् । 1075

पार्श्वभ्यां चेत्तदा धीरैरुरुवेणी निरूपिता ॥१०५७॥

जब दोनो चरण स्वस्तिक स्थानक मे अवस्थित होकर पार्श्वो से पृथ्वी को घिसते है, तब धीर पुरुष उसे ऊरुवेणी चारी कहते है ।

३३ विश्लिष्टा

स्थित्वाङ्घ्री पार्श्वविद्धेन चेद्विश्लिष्योपगच्छतः । 1076

यद्वापगच्छतो यत्र सा विश्लिष्टा तदोदिता ॥१०५८॥

जहाँ पार्श्व नामक स्थानक मे अवस्थित होकर दोनो पैर अलग होकर निकट आ जाँय या दूर हो जाँय तो उसे विश्लिष्टा चारी कहते है ।

३४ समस्खलितिका

अग्रतः पृष्ठतस्तिर्यक पादौ चेत्स्खलतः सप्तम् । 1077

यत्र सोक्ता तदा चारी समस्खलितिका[बुधैः] ॥१०५९॥

जब दोनो पैर आगे-पीछे तिरछे होकर एक साथ गिरे, तब उसे विद्वान् लोग समस्खलितिका चारी कहते है ।

३५ सघट्टिता

स्थित्वा विषमसूच्याख्यस्थानेनोत्प्लुत्य चेत् पतन् । 1078

क्षितौ संघट्टयेत् पादौ तदा संघट्टिता मता ॥१०६०॥

यदि विषमसूचि स्थानक मे अवस्थित होकर फिर उछल कर गिरते हुए पैरो से पृथ्वी पर चोट की जाय, तो उस क्रिया को सघट्टिता चारी कहते है ।

उन्नीस देशी आकाशचारियों (४)

१ दण्डपादा

अङ्घ्रि स्वस्तिकविश्लिष्टं निर्यगूर्ध्व प्रसारयेत् । 1079

यत्र सा दण्डपादाख्या चारी प्रोक्ता मनीषिभिः ॥१०६१॥

चारी प्रकरण

जहाँ स्वस्तिक मुद्रा से हटे हुए पैर को तिरछा ऊपर फैला दिया जाय, वहाँ मनीषियों ने उसे **दण्डपादा** चारी कहा है।

२ पुरक्षेपा

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य विस्तारत्वरया पुरः । 1080
क्षिपेत् क्षितौ यदा चारी पुरःक्षेपा तदोदिता ॥१०६२॥

कुञ्चित मुद्रा में पैर को ऊपर उठाकर यदि विस्तार की शीघ्रता से आगे पृथ्वी पर फेंक दिया जाय तो **पुरक्षेपा** चारी बनती है।

३ अपक्षेपा

बाह्यपार्श्वेन सस्पृश्य पृष्ठमूर्ोर्यदीतरः । 1081
अङ्घ्रिरेति नितम्बान्तमपक्षेपा तदा मता ॥१०६३॥

यदि ऊरु के पृष्ठभाग को दूसरा पैर, बाहर वाले पार्श्व से स्पर्श करके नितम्ब के अन्त तक पहुँच जाय तो उसे **अपक्षेपा** चारी कहते हैं।

४ हरिणप्लुता

उत्प्लुत्य चरणौ यस्यामवनौ विनिपातयेत् । 1082
समाचष्ट नृपाशोकमल्लस्ता हरिणप्लुताम् ।
एकाङ्घ्रिपातनं त्वस्यां मन्वतेऽन्ये मनीषिणः ॥१०६४॥ 1083

जिस (चारी) में दोनों चरण उछलकर पृथ्वी पर गिर पड़े, उसे राजा अशोकमल्ल ने **हरिणप्लुता** चारी कहा है। दूसरे मनीषी लोग उसमें एक ही चरण को गिराना मानते हैं।

५ विद्युद्भ्रान्ता

पुरस्तात्पादमुत्क्षिप्य भालस्योपरि सत्वरम् ।
संभ्राम्योर्व्या क्षिपेद्यत्र विद्युद्भ्रान्ता भवेदसौ ॥१०६५॥ 1084

जहाँ पैर को आगे शीघ्रता से उठाकर तथा ललाट के ऊपर घुमाकर पृथ्वी पर फेंक दिया जाय, वहाँ उसे **विद्युद्भ्रान्ता** चारी कहते हैं।

६ विक्षेपा

पुरस्तादन्तरिक्षेऽङ्घ्रि चेतप्रसार्य मुहुर्मुहुः ।
कुर्यादाकुञ्चितं यत्र सा विक्षेपा तदोदिता ॥१०६६॥ 1085

नृत्याध्याय

जब आगे आकाश में पैर को बार-बार फँलाकर मिकोड लिया जाय, तब उसे विक्षेपा चारी कहते हैं ।

७ जघावर्ता

अन्तर्भ्रान्त्या बहिर्भ्रान्त्या क्रमेणाङ्घ्रेस्तल यदि ।
यत्रान्यजानुनः पृष्ठे पार्श्वेऽपि क्षिप्यते तदा । 1086
जङ्घावर्ताभिधा सोक्ता चारी चारीविचक्षणैः ॥१०६७॥

जब क्रमशः भीतर-बाहर घुमाकर (एक पैर के) तलवे को दूसरे (पैर के) घुटने के पृष्ठभाग या पार्श्व-भाग पर रखा जाय, तब उरा चारी के विद्वान् जघावर्ता चारी कहते हैं ।

८ अँघ्रिताडिता

विस्तार्याङ्घ्री समुत्प्लुत्य मिथस्ताडयतस्तले । 1087
गगने चेत् तदा चारी मतान्वर्थाङ्घ्रिताडिता ॥१०६८॥

जब आकाश में पैरों को फँलाकर तथा उछलकर परस्पर तलवे को पीटा जाय, तब उसे अर्थ के अनुरूप अँघ्रिताडिता चारी कहने हैं ।

९ अलाता

किञ्चित्पृष्ठगतः पादः परपादेन लङ्घ्यते । 1088
यदि द्रुत तदालाता विद्वद्भिः परिकीर्तिता ॥१०६९॥

यदि पीठ की ओर थोड़ा गया हुआ एक पैर दूसरे पैर के द्वारा शीघ्रता से लँघा जाय, तो विद्वान् लोग उसे अलाता चारी कहते हैं ।

१० डमरी

जानुदहनं समुत्क्षिप्य कुञ्चितं चरणं यदि । 1089
सत्वरं भ्रामयेदन्तर्बहिश्च डमरी तदा ॥१०७०॥

यदि कुञ्चित चरण को घुटने तक उठाकर बाहर-भीतर शीघ्रता से घुमाया जाय, तो वह डमरी चारी कहलाती है ।

११ विद्धा

स्वस्तिकाकृतयोरङ्घ्र्योर्यत्रैको दोलितो मनाक् । 1090
परः पुरः कुञ्चितश्चेत्सा विद्धोक्ता बुधैस्तदा ॥१०७१॥

२८०

चारी प्रकरण

यदि स्वस्तिकाकार पैरो मे एक को थोडा हिलाया जाय ओर दूसरे पैर को आगे मोड दिया जाय, तो वह विद्धा चारी कहलाती है ।

१२ जघालघनिका

आकुञ्चिताङ्घ्रिमन्येन पादेन दिवि लङ्घयेत् । 1091

यत्रासौ कथिता चारी जङ्घालङ्घनिका बुधैः ॥१०७२॥

यदि किञ्चित् मुडे हुए एक पर को दूसरे पैर से आकाश मे लॉघा जाय, तो उसे विद्वान् लोग जघालघनिका चारी कहते है ।

१३ सूची

पाश्वेनोरो विनिक्षिप्य चरणं चेत् प्रसारयेत् । 1092

तीक्ष्णाग्रं यत्र सा सूची तदोक्ता नृत्तवेदिभिः ॥१०७३॥

यदि पार्श्व से छाती को दबाकर तीक्ष्ण अग्रभाग वाले चरण को फैला दिया जाय, तो नृत्त के विद्वान् उसे सूची चारी कहते है ।

१४ प्रावृत्त

यत्राङ्घ्रिरुद्धृतो मूर्तिर्वलिता ललिता भवेत् । 1093

तद्रुक्तं प्रावृत्तं सद्भिः कुसुमायुधजीवनम् ॥१०७४॥

जहाँ एक पैर उठा लिया जाय ओर झुकाया हुआ शरीर सुन्दर दीखता हो, वहाँ सज्जन लोग उसे कामदेव का जीवन स्वरूप प्रावृत्त चारी कहते है ।

१५ उल्लाल

उल्लालनं क्रमेणाङ्घ्रयोदिव्युल्लाल उदीरितः ॥१०७५॥ 1094

पैरो को क्रमश हिलाने को उल्लाल चारी कहते है ।

१६. वेष्टन

पादेनैकेन यद्यन्यं वेष्टयेद्वेष्टनं तदा ।

एतदेव परे प्राहुर्वलनं वृ (?नृ) त्तवेदिनः ॥१०७६॥ 1095

यदि एक पैर से दूसरे पैर को वेष्टित कर लिया जाय तो उसे वेष्टन चारी कहते है । दूसरे नृत्त-पण्डित इसी को बलन चारी (भी) कहते है ।

१७ उद्वेष्टन

वेष्टयित्वा यदाङ्घ्रिः स्यात् पृष्ठदेशे प्रसारणम् ।

तदोद्वेष्टनमाख्यातमशोकेन महीभुजा ॥१०७७॥ 1096

जब एक पैर को वेष्टित करके पृष्ठदेश में फैला दिया जाय, तब राजा अशोकमल्ल उसे उद्वेष्टन चारी कहते हैं।

१८ उत्क्षेप

अङ्घ्रोरकुञ्चितस्याग्रे पृष्ठे चोत्क्षेपणे यदा ।

क्रियते जानुपर्यन्तं तदोत्क्षेपोऽभिधीयते ॥१०७८॥ 1097

जब कुष्ठ मुंडे हुए पैर को आगे ओर पीछे घुटने तक ऊपर उठाया जाय, तब उसे उत्क्षेप चारी कहते हैं।

१९ पृष्ठोत्क्षेप

यद्येष पृष्ठ एव स्यात् पृष्ठोत्क्षेपस्तदा मतः ॥१०७९॥

यदि यह उत्क्षेप केवल पीछे की ओर ही किया जाय तो उसे पृष्ठोत्क्षेप चारी कहते हैं।

पच्चीस मुडुपचारियाँ (५)

अङ्गुलीपृष्ठभागं हि नृत्तज्ञा मुडुपं जगुः । 1098

चार्यते तेन मुडुपचारीत्यन्वर्थसज्ञिका ॥१०८०॥

नाट्याचार्यों ने अङ्गुली के पृष्ठभाग को मुडुप कहा है। उससे चेष्टा प्रकट की जाती है। इसलिए (उसकी) मुडुपचारी यह अन्वर्थसज्ञा (अर्थानुरूप नाम) है।

निरुक्तिमेवं केऽप्याहुरन्ये संज्ञां डवित्थवत् । 1099

अन्य विद्वान् मुडुपचारी शब्द की निरुक्ति (व्याख्याविशेष) इस प्रकार करते हैं और दूसरे आचार्य डवित्थ शब्द की तरह इसकी (अव्युत्पन्न) संज्ञा बताते हैं।

मुडुपोपपदाश्चार्यः सन्ति यद्यप्यनेकशः ॥१०८१॥

तथाप्यमूर्मया काश्चित्लिख्यन्ते कोहलोदिताः । 1100

यद्यपि मुडुप से सम्बद्ध चारियाँ अनेकानेक हैं, तथापि यहाँ आचार्य कोहल द्वारा प्रतिपादित कुछ चारियों का उल्लेख किया जा रहा है।

मुडुपचारी के भेद

पुरःपश्चात्सरा चारी तथा पश्चात्पुर.सरा ॥१०८२॥

१ देखिए 'लोहितोदिता' भरतकोश, पृ० ९११ ।

चारी प्रकरण

मध्यचक्राभिधा	चारी	तथैकपदकुट्टिता ।	1101
पदद्वयनिकुट्टान्या		पादस्थितिनिकुट्टिता ॥१०८३॥	
[क्रमपादनिकुट्टा	च	समपादनिकुट्टिता ।	1102
चारी	डमरुकुट्टाख्या	डमरुद्वयकुट्टिता] ।	
पुरःक्षेपनिकुट्टा	च	पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता ।	1103
पार्श्वक्षेपनिकुट्टान्या	चक्रकुट्टनिका	परा ॥१०८४॥	
मध्यस्थापनकुट्टा	च	चतुष्कोणनिकुट्टिता ।	1104
चारी	त्रिकोणचारान्या	तिरश्चीननिकुट्टिका ॥१०८५॥	
अनुलोमविलोमा	च	प्रतिलोमानुलोमका ।	1105
पुरस्ताल्लुठिता	पृष्ठलुठिता	चक्र(?वक्र)कुट्टिता ॥१०८६॥	
पार्श्वद्वयचरी	मध्यलुठिताख्या	परा तथा ।	1106
श्रीमताशोकमल्लेनेत्युद्दिष्टाः		पञ्चाविंशतिः ॥१०८७॥	

श्रीमान् अशोकमल्ल ने मुडुपचारी के पचीस भेद बताये हैं १ पुरपश्चात्सरा, २ पश्चात्पुरसरा, ३ मध्यचक्रा, ४ एकपदकुट्टिता, ५ पदद्वयनिकुट्टा, ६ पादस्थितिनिकुट्टिता ७ क्रमपादनिकुट्टिका ८ समपादनिकुट्टिता, ९ डमरुट्टिता, १० डमरुद्वयकुट्टिता, ११ पुरक्षेपनिकुट्टिता १२ पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता १३ पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता, १४ चक्रकुट्टनिका, १५ मध्यस्थापनकुट्टा, १६ चतुष्कोणनिकुट्टिता, १७ त्रिकोणचारी, १८ तिरश्चीनकुट्टिता, १९ अनुलोमविलोमका, २० प्रतिलोमानुलोमका, २१ पुरस्ताल्लुठिता २२ पृष्ठलुठिता, २३ चक्रकुट्टिता, २४ पार्श्वद्वयचरी आर २५ मध्यलुठिता ।

इमा मुडुपचार्योऽथ लक्षणं प्रतिपाद्यते ॥१०८८॥ 1107

ये मुडुपचार्यो ह । अब इनके लक्षण बताते हैं ॥

१ पुरपश्चात्सरा

तलेनादौ निकुट्ट्याथ पुरः पश्चात्त्रिवेशितः ।
 अङ्घ्रिरङ्गुलिपृष्ठेन स्वस्थाने कुट्टितो यदा । 1108
 पुरपश्चात्सरा चारी तदान्वर्था निरूपिता ॥१०८९॥

नृश्याध्याय

पहले तलवे से कूटकर पैर को आगे ओर पीछे करके रखा जाय, ओर पश्चात् उँगलियों के पृष्ठभाग से एक पैर को अपने स्थान पर कूटा जाय। ऐसा करने से अर्थ के अनुरूप पुर पश्चात्सरा चारी बनती है।

२ पश्चात्पुर सरा

एषा पश्चात्पुरःक्षेपान्मता पश्चात्पुरःसरा ॥१०६०॥ 1109

यदि पैर को पीछे और आगे करके चलाया जाय, तो वह पश्चात्पुर सरा चारी कहलाती है।

३ मध्यचक्रा

कुट्टितः स्थापितो यत्र भ्रमितः कुट्टितः पुनः ।

स्थाने सा मध्यचक्रेति चारी प्रोक्ता विचक्षणैः ॥१०६१॥ 1110

जहाँ पैर कूटा जाय, रखा जाय, घुमाया जाय और फिर स्थान पर कूटा जाय, तो उसे विद्वानों ने मध्यचक्रा चारी कहा है।

४ एकपदकुट्टिता

स्वपाश्वर्केकुट्टितः पूर्वं स्थापितोऽङ्गुलिपृष्ठतः ।

कुट्टितश्चेत्पुनः स्थाने तदैकपदकुट्टिता ॥१०६२॥ 1111

पहले एक पैर अपने पार्श्व में कूटा जाय, उसके बाद उँगलियों के पृष्ठभाग से अवस्थित किया जाय, और पुनः स्थान में कूटा जाय, तो उसे एकपदकुट्टिता चारी कहते हैं।

५ पदद्वयनिकुट्टिता

पदद्वयनिकुट्टिता स्यात् सैवाङ्घ्रिद्वयनिर्मिता ॥१०६३॥

यदि दोनों पैरों से उक्त चारी बनायी जाय, तो उसे पदद्वयनिकुट्टिता चारी कहते हैं।

६ पादस्थितिनिकुट्टिता

यस्यां निकुट्टितः पादः स्थितोऽथाङ्गुलिपृष्ठतः । 1112

इतस्ततः कुट्टितः सा पादस्थितिनिकुट्टिता ॥१०६४॥

जिस चारी में कूटा हुआ एक पैर उँगलियों के पृष्ठभाग से अवस्थित होकर (पुनः) इधर-उधर कूटा जाय, उसे पादस्थितिनिकुट्टिता चारी कहते हैं।

७. क्रमपादनिकुट्टिका

एवं द्व्यङ्घ्रिकृता सेव क्रमपादनिकुट्टिका ॥१०६५॥ 1113

चारी प्रकरण

उक्त प्रकार से यदि दोनों पैरों को सम्पन्न किया जाय, तो उसे क्रमपादनिकुट्टिका चारी कहते हैं ।

८ समपादनिकुट्टिता

निकुट्टितौ समौ पादौ स्थितावङ्गुलिपृष्ठयो ।

यदा तदा मताऽवर्था समपादनिकुट्टिता ॥१०६६॥ 1114

जब सम नामक दोनों पैर कूटे जाकर उँगलियों के पृष्ठभाग पर अवस्थित हों, तो उसे अर्थानुरूप समपादनिकुट्टिता चारी कहते हैं ।

९ डमरुकुट्टिता

पादश्चेत्कुट्टितः पूर्वं लुठितोङ्गुलिपृष्ठतः ।

पश्चान्निकुट्टितः स्थाने तदा डमरुकुट्टिता ॥१०६७॥ 1115

यदि एक पैर पहले कूटा जाकर उँगलियों के पृष्ठ भाग पर लोट जाय और पश्चात् स्थान पर कूटा जाय, तो उसे डमरुकुट्टिता चारी कहते हैं ।

१०. डमरुद्वयकुट्टिता

पादयुग्मकृता सैव डमरुद्वयकुट्टिता ॥१०६८॥

यदि उक्त चारी में दोनों पैर उक्त प्रकार की क्रिया से सम्पन्न हों, तो उसे डमरुद्वयकुट्टिता चारी कहते हैं ।

११ पुरक्षेपनिकुट्टिता

[चरणः] कुट्टितः पूर्वं पुरतोङ्गुलिपृष्ठतः । 1116

स्थापितः कुट्टितः स्थाने पुरःक्षेपनिकुट्टिता ॥१०६९॥

यदि पहले चरण को कूटकर आगे की ओर उँगलियों के पृष्ठभाग से स्थापित किया जाय और फिर स्थान पर कूटा जाय तो, उसे पुरक्षेपनिकुट्टिता चारी कहते हैं ।

१२ पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता

पश्चात्क्षेपाद्भूवेदेषा पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता ॥११००॥ 1117

उक्त चारी में पैर को पीछे की ओर चलाने से पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता चारी बनती है ।

१३ पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता

पार्श्वतः क्षेपणादेवं पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता ॥११०१॥

बगल की ओर उक्त प्रकार चलाने से पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता चारी बनती है ।

१४ चक्रकुट्टनिका

यदाङ्घ्रि कुट्टितं पाश्वाद्भ्रामयित्वा निवेशयेत् । 1118

ततः स्थाने कुट्टयेच्च चक्रकुट्टनिका तदा ॥११०२॥

जब कूटे हुए पैर को बगल में घुमाकर रखा जाय और उसे फिर स्थान पर कूटा जाय, तो उसे चक्रकुट्टनिका चारी कहते हैं ।

१५ मध्यस्थापनकुट्टा

पादश्चेत्कुट्टितः पूर्वं पुरः पश्चान्निवेशितः । 1119

मध्ये निवेशितश्चाथ पुनस्तत्रैव कुट्टितः ।

मध्यस्थापनकुट्टेति तदान्वर्था प्रकीर्तिता ॥११०३॥ 1120

यदि पहले पैर को कूटकर आगे-पीछे स्थापित किया जाय और फिर मध्य में स्थापित कर पुन वही पर कूटा जाय, तो उसे अर्थ के अनुरूप मध्यस्थापनकुट्टा चारी कहते हैं ।

१६ चतुष्कोणनिकुट्टिता

यत्राङ्घ्रिः कुट्टितः पूर्वं पुरः पश्चान्निवेशितः ।

त्र्यस्रभावात्पुनश्चापि पुरः पश्चात्तदान्यथा । 1121

स्थाने च कुट्टितः सा स्याच्चतुष्कोणनिकुट्टिता ॥११०४॥

जहाँ एक पैर को पहले कूटकर आगे-पीछे स्थापित किया जाय, फिर त्रिकोणभाव से आगे-पीछे रखा जाय, पुन विपरीत भाव से स्थान पर कूटा जाय, ऐसी क्रिया को चतुष्कोणनिकुट्टिता चारी कहते हैं ।

१७ त्रिकोणचारी

अङ्घ्रिनिवेशितो यत्र स्थापितोऽङ्गुलिपृष्ठतः । 1122

निकुट्टितः पुरः पार्श्वे पृष्ठे वाथ निवेशितः ॥११०५॥

अङ्घ्रिरङ्गुलिपृष्ठेन पुनः स्थाने च कुट्टितः । 1123

सोक्ता त्रिकोणचारीति सद्भिरन्वर्थनामभाक् ॥११०६॥

जहाँ पैर को प्रविष्ट करके उँगुलियों के पृष्ठभाग से स्थापित किया जाय, फिर कूटकर आगे या बगल में या पीछे प्रविष्ट किया जाय, अनन्तर उँगुलियों के पृष्ठभाग से पुन उसे स्थान पर कूटा जाय, ऐसी क्रिया को अर्थ के अनुरूप त्रिकोणचारी चारी कहते हैं ।

चारी प्रकरण

१८ तिरश्चीनकुट्टिता

- अङ्घ्रिर्निऋट्टितः पूर्वं स्वपार्श्वपरपार्श्वयोः । 1124
मध्ये निवेशितः पश्चात्तिर्यक् तत्रैव कुट्टितः ॥११०७॥
यत्र सा स्यात्तिरश्चीनकुट्टितान्वर्थनामभाक् । 1125

पहले पैर को अग्ने पार्श्व तथा दूसरे (पैर) के पार्श्व में कटकर मध्य में स्थापित किया जाय, पश्चात् वही पर उसे तिरछा करके कटा जाय, ऐसी क्रिया को अर्थ के अनुरूप तिरश्चीनकुट्टिता चारी कहते हैं ।

१९ अनुलोमविलोमका

- चारी त्रिकोणचारी चेदनुलोमविलोमगा ।
स्वस्थाने स्थापितपदा ततस्तत्रापि कुट्टिता । 1126
तदा निगदिता सद्भिरनुलोमविलोमका ॥११०८॥

यदि त्रिकोणचारी नामक चारी अनुलोम (यथाक्रम) और विलोम (विपरीतक्रम) को प्राप्त कर अपन स्थान में स्थापित चरण वाली बनती है, तथा वहाँ कूटी भी जाती है तो उसे सज्जन लोग अनुलोमविलोमका चारी कहते हैं ।

२० प्रतिलोमानुलोमका

- व्यत्यासाद्रचिता सैव प्रतिलोमानुलोमका ॥११०९॥ 1127

उक्त चारी को व्यतिक्रम करके बनाने से प्रतिलोमानुलोमका चारी होती है ।

२१ पुरस्ताल्लुठिता

- पुरस्ताल्लुठिता सा स्याद्यत्राङ्घ्रिर्लुठितः पुरः ॥१११०॥

जहाँ पैर आगे लोटता है वहाँ पुरस्ताल्लुठिता चारी होती है ।

२२ पृष्ठलुठिता

- पादश्चेत्कुञ्चितः पृष्ठे लुठितोऽङ्गुलिपृष्ठतः । 1128
पुनश्च लुठितः स्थाने स्यात्पृष्ठलुठिता तदा ॥११११॥

यदि पैर पृष्ठभाग में सिकुड़ा हुआ हो, उँगलियों के पृष्ठभाग से लोटा हुआ हो, और स्थान पर पुन लोट जाय, तो उसे पृष्ठलुठिता चारी कहते हैं ।

२३ चक्रकुट्टिता

कुट्टयित्वा तु विन्यस्य भ्रामितो लुठितो यदि । 1129
कुट्टितोऽङ्घ्रिःपुनःस्थाने तदोक्ता चक्र(?)वक्र)कुट्टिता ॥१११२॥

यदि पैर को कटकर स्थापित करके घुमाया तथा लोटाया जाय और पुनः स्थान पर कूटा जाय, तो उसे चक्रकुट्टिता चारी कहते हैं ।

२४ पार्श्वद्वयचरी

कुट्टितोऽङ्गुलिपृष्ठे च स्थितोऽङ्घ्रिरितरस्ततः । 1130
स्वस्तिकाद्विच्युतः पूर्वः स्वपार्श्वे च निकुट्टितः ।
एवमङ्घ्रन्तरेणापि पार्श्वद्वयचरी तदा ॥१११३॥ 1131

यदि कूटा हुआ पैर उगुलियो के पृष्ठभाग में स्थित हो, दूसरा पैर स्वस्तिकमूद्रा से अलग हो, पहला अपने पार्श्व में कूटा जाय, इस प्रकार दूसरे पैर से भी किया जाय, ऐसी क्रिया को पार्श्वद्वयचारी कहते हैं ।

२५ मध्यलुठिना

कुट्टितः स्थापितोऽङ्घ्रिश्चेत्लुठितश्च निकुट्टितः ।
समादिष्टा तदा मध्यलुठिता नृत्तवेदिभिः ॥१११४॥ 1132

यदि एक पैर कूटा जाय, रखा जाय, लोटाया जाय और फिर कूटा जाय तो नृत्त के ज्ञाताओं ने उसे मध्यलुठिता चारी कहा है ।

प्रायशोऽसूः प्रयुज्यन्ते तालनृत्यविचक्षणैः ।

एताः समासतः प्रोक्ता ज्ञेया एवं परा अपि ॥१११५॥ 1133

ताल आर नृत्य के विद्वान् इन चारियों का प्रयोग बहुलता से करते हैं । इनको संक्षेप में बताया गया है । इस प्रकार अन्य चारियों को भी जान लेना चाहिए ।

समवेत रूप में एक सौ ग्यारह मार्गदेशीस्थित चारियों का निरूपण समाप्त



नृतकरण प्रकरण / ग्यारह

नृत्तकरणो का निरूपण

करण (हस्त-पाद-सयुक्त अभिनय)

योऽङ्गोपाङ्गकरप्रचारकरणैः सन्तोषितः स्थानकैः ।
 चारीभिश्च मनोहरो मुररिपुर्गोपाङ्गनाभिर्विभुः । 1134
 नत्वाहं तमकिञ्चन परिलसत्पीताम्बरालङ्कृतम् ।
 संचक्षे करणं तु सम्प्रति मुदे नृत्तार्थिनां नृत्तवित् ॥१११६॥ 1135

जो मनमोहन श्रीकृष्ण अगो तथा उपांगो सहित हस्त-संचालन-रूप करणो, स्थानको ओर चारियो के प्रयोग से गोपांगनाओ द्वारा सन्तुष्ट (प्रसन्न) किये गये, उन अकिञ्चन तथा पीताम्बर से अलङ्कृत भगवान् को नमस्कार करके अब मैं नृत्तवित्, नृत्तार्थियो के मनोरजन के लिए करण का निरूपण करता हूँ।

अविच्छिन्नरसा पाणिपादादेर्या निरन्तरा ।
 क्रिया तन्नृत्तकरणं कीर्तितं नृत्तवेदिभिः ॥१११७॥ 1136

हाथ-पैर आदि (के संचालन) से निरन्तर एव अविच्छिन्न रूप से रस का अभिभावन करने वाली जो क्रिया है, नाट्याचार्यों ने उसे अभिनय का करण कहा है।

करण के भेद

भेदान् कतिपयानस्य व्याहरे मुनिसम्मतान् ॥१११८॥

भरत मुनि द्वारा कथित या अभीष्ट उसके (करण के) कतिपय भेदों का मैं यहाँ निरूपण कर रहा हूँ।

तलपुष्पपुटं वक्ष.स्वस्तिकं वर्तितं तथा । 1137
 मण्डलस्वस्तिकं लीनमुन्मत्तं वलितोरु च ॥१११९॥
 स्वस्तिकं स्वस्तिकान्यर्धदिवपृष्ठोपपदानि च । 1138
 आक्षिप्तरेचितालातभुजङ्गत्रासितानि च ॥११२०॥

कटीसमं कटीच्छन्नं घूर्णितं च निकुञ्चितम् ।	1139
निकुट्टार्धनिकुट्टे च विक्षिप्ताक्षिप्तकं तथा ॥११२१॥	
अपविद्धं सधनखं तथा स्वस्तिकरेचितम् ।	1140
मत्तल्लि चार्धमत्तल्लि वलितं चार्धरेचितम् ॥११२२॥	
ऊर्ध्वजनुकठिभ्रान्तं छिन्नं पादापविद्धकम् ।	1141
भ्रमरं द[ण्ड] पक्षं च नूपुरं ललितं तत. ॥११२३॥	
व्यंसितं चतुरं क्रान्तं भुजङ्गत्रस्तरेचितम् ।	1142
भुजङ्गाञ्चितमाक्षिप्तोद्धटिते दण्डरेचितम् ॥११२४॥	
वृश्चिक वृश्चिकाद्ये च स्यातां रेचितकुट्टिते ॥११२५॥	1143
लतावृश्चिकवैशाखरेचिते चक्रमण्डलम् ।	
आवर्तकुञ्चिते दोलापादं तलविलासितम् ॥११२६॥	1144
विवृत्तविनिवृत्ते च ललाटतिलक तत. ।	
विवर्तितमतिक्रान्तं विद्युद्भ्रान्तं निशुम्भितम् ॥११२७॥	1145
उरोमण्डलविक्षिप्ते ततः पार्श्वनिकुट्टकम् ।	
तलसस्फोटितं गण्डसूचि सूच्यर्धसूचिनी ॥११२८॥	1146
गजक्रीडितकं पार्श्वजानु स्याद् गरुडण्डुतम् ।	
गृध्रावलीनकं दण्डपादं सन्नतसर्पिते ॥११२९॥	1147
मयूरललितं सूचीविद्धं प्रेङ्खोलितं तथा ।	
स्खलितं परिवृत्तं च करिहस्तं प्रसर्पितम् ॥११३०॥	1148
पार्श्वक्रान्तं निवेशं च नितम्बं हरिणप्लुतम् ।	
सिंहविक्रीडितं सिंहाकर्षितं जनितं तथा ॥११३१॥	1149
[अवहित्थमथोद्धृतं तलसंघट्टितं तथा] ।	
लोलितं शकटास्यं च वृषभक्रीडितं तथा ॥११३२॥	1150

नूतकरण प्रकरण

एलकाक्रीडितं

६६ द्विज्जन्त - ६५, ५० ।

विष्णुक्रान्तमपक्रान्तमूरुद्वृत्ताञ्चिते ततः ॥११३३॥ 1151

सम्भ्रान्ताभिधमप्यन्यन्मदस्खलिमतर्गलम् ।

स्याद्रेचकनिकुट्टाख्यं ततो नागापसर्पितम् ॥११३४॥ 1152

गङ्गावतरणं चेति शतमष्टोत्तरं मया ।

करणानां समुद्दिष्टं लक्ष्यलक्षणवेदिना ॥११३५॥ 1153

उनके नाम हे १ तलपुष्पुट, २ वक्ष स्वस्तिक, ३ वर्तित, ४ मण्डलस्वस्तिक, ५ लीन, ६ उन्मत्त, ७ वलितोरु, ८ स्वस्तिक, ९ अर्धस्वस्तिक, १० दिक्स्वस्तिक, ११ पृष्ठस्वस्तिक, १२ आक्षिप्तरेचित, १३ अलात, १४ भुजगत्रासित, १५ कटीसम, १६ कटीच्छिन्न, १७ घूर्णित, १८ निकुञ्चित, १९ निकुट्टक, २० अर्धनिकुट्टक, २१ विक्षिप्तक, २२ अपविद्ध, २३ समनख, २४ स्वस्तिकरेचित, २५ मत्तल्लि, २६ अर्धमत्तल्लि, २७ वलित, २८ अर्धरेचित, २९ ऊर्ध्वजानु ३० कटिभ्रान्त, ३१ छिन्न, ३२ पादापविद्धक, ३३ भ्रमर, ३४ दण्डपक्ष, ३५ नूपुर, ३६ ललित, ३७ व्यसित ३८ चतुर, ३९ क्रान्त, ४० भुजगत्रस्तरैचित, ४१ भुजगाञ्चित, ४२ आक्षिप्त, ४३ उद्घट्टित ४४ दण्डरेचित, ४५ वृश्चिक, ४६ वृश्चिकरेचित, ४७ वृश्चिककुट्टित, ४८ लतावृश्चिक, ४९ वंशाख-रेचित, ५० चक्रमण्डल, ५१ आवर्त, ५२ कुञ्चित, ५३ दीलापाद, ५४ तलविलासित, ५५ विवृत्त, ५६ विनिवृत्त, ५७ ललाटतिलक, ५८ विवर्तित, ५९ अतिक्रान्त, ६० विद्युद्भ्रान्त, ६१ निशुन्भित, ६२ उरीदण्डल, ६३ विक्षिप्त, ६४ पार्श्वनिकुट्टक, ६५ तलसस्फोटित, ६६ गण्डसूचि ६७ सूचि ६८ अर्धसूचि, ६९ गजक्रीडितक, ७० पार्श्वजानु, ७१ गरुडप्लुत, ७२ मृधावलीनक, ७३ दण्डपाद, ७४ सन्नत, ७५ सर्पित, ७६ मयूरललित, ७७ सूचीविद्ध, ७८ प्रेङ्खोलित, ७९ स्खलित, ८० परिवृत्त, ८१ करिहस्त, ८२ प्रसर्पित, ८३ पार्श्वक्रान्त, ८४ निवेश, ८५ नितम्ब, ८६ हरिणप्लुत ८७ सिंहविक्रीडित, ८८ सिंहाकर्षित, ८९ जनित, ९० अवहित्य, ९१ उद्वृत्त, ९२ तलसघट्टित, ९३ लोलित, ९४ शकटाख्य, ९५ वृषभक्रीडित, ९६ एलकाक्रीडित, ९७ विटकम्भ, ९८ उपसूत, ९९ विष्णुक्रान्त, १०० अपक्रान्त, १०१ ऊरुद्वृत्त, १०२ अञ्चित, १०३ सम्भ्रान्त, १०४ मदस्खलितक, १०५ अर्गल, १०६ रेचकनिकुट्टक, १०७ नागापसर्पित और १०८ गगावतरण । इन एक सौ आठ करणों को लक्ष्य एव लक्षण के ज्ञाता मैने वता दिया । अन्य भेदोपभेद

आनन्त्यात् स्थानचारीणाममीषामप्यनन्ततः ।

अतस्तानि न शक्यन्ते वक्तुं साकल्यतो बुधैः ॥११३६॥ 1154

नृत्याध्यायः

स्थानको, चारियो और करणो के भी अनन्त भेदोपभेद है। अतः विद्वज्जन भी उन सबका वर्णन करने में असमर्थ है।

अङ्गहारोपयोगीनि करणानि कियन्त्यपि ।

लक्ष्यन्ते लक्ष्मविद्रुषामधुना साधुना मया ॥११३७॥ 1155

अब मैं नाट्य-लक्षणों के वेत्ता विद्वानों के लिए नृत्योपयोगी कुछ करणों का लक्षण-विनियोग बता रहा हूँ।

बाहुल्यान्नर्तनारम्भे समावङ्घ्री लताकरौ ।

अङ्गं तु चतुरस्रं स्याद्विशेषस्त्वधुनोच्यते ॥११३८॥ 1156

नृत्य के आरम्भ में बहुधा सम स्थिति पैरो, लताकर हाथों और चतुरस्र अङ्ग का उपयोग किया जाता है। अब उनके सम्बन्ध में विशेष निर्देश किया जा रहा है।

१ तलपुष्पपुट और उसका विनियोग

विनिःसरति सव्येऽङ्घ्रौ चार्याध्यर्धिकया समम् ।

व्यावृत्तितः करद्वन्द्वे सव्यं पार्श्व समाश्रिते ॥११३९॥ 1157

परिवृत्त ततस्तस्मिन् सन्नतं पार्श्वमागते ।

यत्र तत्कुचदेशस्थो हस्तः पुष्पपुटाभिधः ॥११४०॥ 1158

तलपुष्पपुटं त्वेतत् पादेऽग्रतलसञ्चरे ।

अर्ध्याङ्गिका नामक चारी के साथ बाँये पैर के बाहर की ओर निकल जाने पर, दोनों हाथों को घुमाकर बाये पार्श्व में अवस्थित कर देने पर, फिर उनको परिवृत्त कर सन्नत नामक पार्श्व के निकट पहुँच जाने पर, पुष्पपुट हस्त मुद्रा को कुचो के पास अवस्थित कर देना चाहिए, ऐसी क्रिया को तलपुष्पपुट करण कहते हैं। इस करण में अग्रतलसञ्चर नामक पैर का प्रयोग करना चाहिए।

रङ्गे पुष्पाञ्जलिक्षेपे लज्जायामपि सुभ्रुवाम् ॥११४१॥ 1159

(सूत्रधार द्वारा) रगमच पर पुष्पाञ्जलि-समर्पण और सुन्दरियों के लज्जा के भाव-प्रदर्शन में तलपुष्पपुट करण का विनियोग करना चाहिए।

२ वक्ष स्वस्तिक और उसका विनियोग

चतुरस्रकरौ वक्षःस्थले कृत्वाथ रेचितौ ।

व्यावृत्त्या च समानीयाभुग्ने वक्षसि चेदिमौ ॥११४२॥ 1160

नूतनकरण प्रकरण

क्रियेते स्वस्तिकौ यत्र स्वस्तिकौ चरणावपि ।

वक्षःस्वस्तिकमुक्तं तदनाभुगनांसकं तदा । 1161

जब चतुरस्र मुद्रा में दोनों हाथों को वक्षम्यल पर करके रेचितावस्था में आर-पार घुमाकर ओर उन्हें आभुग्न (झुकाकर) वक्ष पर रख दिया जाय, तदनन्तर दोनों हाथों और दोनों पैरों को स्वस्तिकाकार बना दिया जाय, तो इस क्रिया को वक्ष स्वस्तिक करण कहते हैं। इसमें कन्धा झुका हुआ नहीं होना चाहिए।

लज्जानुतापयोरस्य प्रयोगः परिकीर्तितः ॥११४३॥

लज्जा आर पश्चात्ताप के अभिनय में वक्ष स्वस्तिक करण का विनियोग करना चाहिए।

३ वर्तित और उसका विनियोग

वक्षस्यभिमुखौ हस्तावालग्नमणिबन्धकौ । 1162

स्वस्तिकौ युगपद्यत्र व्यावृत्तपरिवर्तितौ ॥११४४॥

कृत्वोत्तानाब्रूह्युगे पातयेद्वर्तितं त्वदः । 1163

यदि दोनों हाथों को सम्मुखावस्था में रखकर कलाइयों को किञ्चित् वक्ष पर सटा दिया जाय, और तदनन्तर स्वस्तिकाकार मुद्रा में दोनों को एक साथ आवृत्त-परिवृत्त कर घुमा दिया जाय, तदनन्तर दोनों हाथों की हथेलियों को उत्तान करके दोनों जाँघों पर गिरा दिया जाय, तो उसे वर्तित करण कहते हैं।

पातयेच्चेत्पताकौ द्वावसूयायां मतं तदा ॥११४४॥

अधोमुखौ निघृष्टौ तौ क्रोधाभिनयने मतौ । 1164

अभिनेयवशादेवं शुकतुण्डादयः कराः ॥११४६॥

दोनों हाथों की पताक मुद्रा में इस वर्तित करण का विनियोग असूया के अभिनय में करना चाहिए। यदि उन्हें अधोमुख करके गिरा दिया जाय तो मतान्तर से उनका विनियोग क्रोध के अभिनय में किया जाता है। कुछ आचार्यों के मत से अभिनय वस्तु के अनुसार वर्तित करण में शुकतुण्ड आदि हस्तों का प्रयोग किया जाता है।

केचिदत्रावदन् पादं तलपुष्पपुटोदितम् । 1165

परे करानुगं प्राहुः पादं करणपण्डिताः ॥११४७॥

कुछ आचार्यों का मत है कि उक्त विनियोगों में तलपुष्पपुट करण की पादमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए, किन्तु दूसरे करण-विशेषज्ञ नाट्याचार्यों का कहना है कि हस्तमुद्रा के अनुरूप पादमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए।

४ मण्डलस्वस्तिक और उसका विनियोग

सार्ध [तु] विच्यवां कृत्वा चतुरस्रौ करौ ततः । 1166

उद्वेष्टितक्रियापूर्वमूर्ध्वमण्डलिहस्तकौ ॥११४८॥

प्रयुज्य स्वस्तिकौ यत्र कुर्यात् स्थाने तु मण्डलम् । 1167

मण्डलस्वस्तिकमिदम्—

यदि विच्यवा नामक चारी तथा चतुरस्र दोनों हस्तों की रचना करके चारों ओर घेरने की प्रक्रिया के साथ ऊर्ध्व-मण्डल स्थिति में हाथों को प्रयुक्त किया जाय, और तदनन्तर दोनों हाथों को स्वस्तिक मुद्रा में आर मण्डल नामक स्थान की रचना की जाय, तो उसे मण्डलस्वस्तिक करण कहते हैं ।

—प्रसिद्धार्थनिरीक्षणे ॥११४९॥

किसी प्रसिद्ध वस्तु के निरीक्षणके अभिनय में मण्डलस्वस्तिक करण का विनियोग होता है ।

५ लीन और उसका विनियोग

ऊर्ध्वमण्डलिनौ पाणी विधायोरस्थितोऽञ्जलिः । 1168

यदा निकुञ्चितं स्कन्धयुगं ग्रीवा नता भवेत् ।

तदा लीनम्—

यदि ऊर्ध्वमण्डलिन् नामक दोनों हाथों की रचना करके ह्येलियों से अञ्जलि बनाकर, दोनों कन्वों को निकुञ्चित और नता ग्रीवा का निर्माण किया जाय, तो वह लीन करण होता है ।

—वल्लभायाः प्रार्थनायां नियुज्यते ॥११५०॥ 1169

प्रेयसी से अनुनय-विनय करने के अभिनय में लीन करण का विनियोग होता है ।

६ उन्मत्त और उसका विनियोग

यत्र विद्धाभिधा चारी चरणस्त्वञ्चिताभिधः ।

क्रमेण रेचितो हस्तस्तदुन्मत्तमुदीरितम् । 1170

जहाँ विद्धा नामक चारी, अचित नामक चरण और रेचित नामक हस्त की क्रमशः रचना की जाय, वहाँ उन्मत्त करण होता है ।

सौभाग्यादिसमुद्भूते गर्वे स्त्रीणामिदं मतम् ॥११५१॥

स्त्रियों के सौभाग्य आदि से उत्पन्न गर्व के अभिनय में उन्मत्त करण का विनियोग किया जाता है ।

नृतकरण प्रकरण

७ वलितोर और उसका विनियोग

कृत्वोरसि समं पाणी व्यावृत्तपरिवर्तितौ । 1171
सहाक्षिप्ताख्यया चार्या यत्रोरौ परिवृत्तितः ॥११५२॥
श्रानीय शुकतुण्डाख्यौ क्रियेतेऽधोमुखौ करौ । 1172
बद्धया स्थितिरेवं चेत् स्यात्तदा वलितोर तत् ।

यदि वक्षस्थल पर दोनो हाथो को एक साथ व्यावृत्त तथा परिवृत्त बनाया जाय ओर आक्षिप्ता नामक चारी के साथ परिवर्तन द्वारा ऊरु पर लाकर शुकतुण्ड मुद्रा मे दोनो हाथो को अधोमुख करके रखा जाय, तदनन्तर बद्धा नामक चारी द्वारा स्थिति की जाय, तो उसे वलितोर करण कहते है ।

एतन्नियुज्यते धीरैर्लज्जायां मुग्धयोषिताम् ॥११५३॥ 1173

मुग्धा नामक नायिका की लज्जा के अभिनय मे धीर पुरुष वलितोर करण का विनियोग कहते है ।

८ स्वस्तिक और उसका विनियोग

उद्वेष्ट्य निर्गतौ यत्र करौ व्यावर्तितौ समम् ।
उत्प्लुत्य पाणिचरणरचितः स्वस्तिको भवेत् । 1174

यदि दोनो हाथो को चारो ओर से घुमा कर एक साथ ही व्यावर्तितवस्था मे किया जाय और उछलकर हाथो की भाँति पैरो की भी स्वस्तिक मुद्रा मे रचना की जाय, तो उसे स्वस्तिक करण कहते है ।

तत्स्वस्तिकं सराभस्य निषेधान्वेषणादिषु ॥११५४॥

सब प्रकार की दुर्भावनाओ को दूर करने तथा अन्वेषण आदि के अभिनय मे स्वस्तिक करण का विनियोग होता है ।

९ अर्धस्वस्तिक और उसका विनियोग

चरणः स्वस्तिकः सव्यः करः करिकराभिधः । 1175
खटको हृदि वामश्चेत्तदार्षस्वस्तिकं मतम् ॥११५५॥

यदि एक पैर को स्वस्तिक मुद्रा मे अवस्थित किया जाय ओर दाहिना हाथ करिहस्त मुद्रा मे तथा बायाँ हाथ खटक हस्त मुद्रा मे हृदय पर रखा जाय, तो उसे अर्धस्वस्तिक करण कहते है ।

करं करिकरं केचिदत्र प्रोचुः कटिस्थितम् । 1176
 अर्धचन्द्रकरं सव्यं कुर्याद्वा पक्षवञ्चितम् ।
 पक्षप्रद्योतमथवा कटिदेशगत त्विह ॥११५६॥ 1177

कुछ नाट्याचार्यों का अभिमत है कि करिहस्त मुद्रा को कटि पर रखना चाहिए । दाहिने हाथ को अर्धचन्द्र मुद्रा में अथवा पक्षवञ्चित मुद्रा में अथवा पक्षप्रद्योत मुद्रा में बनाकर कटि पर अवस्थित करना चाहिए । (अर्धस्वस्तिक इसे इसलिए कहा गया है कि इसमें केवल पैर को ही स्वस्तिक मुद्रा में रखा जाता है) ।

१० दिक्स्वस्तिक और उसका विनियोग

क्रियते स्वस्तिको यत्र पाणिपादविनिर्मितः ।
 ललिताङ्गश्चतुर्दिक्षु तद् दिक्स्वास्तिकमुच्यते । 1178

यदि हाथ-पैर दोनों को स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित किया जाय और चारो दिशाओ में ललित नामक अंग का निर्माण किया जाय, तो उसे दिक्स्वस्तिक करण कहते हैं ।

नियुज्यते बुधरेतद् गीतस्य परिवर्तने ॥११५७॥

विद्वानो के मत से गाने के समय शरीर की गति दिखाने में दिक्स्वस्तिक करण का विनियोग होता है ।

११ पृष्ठस्वस्तिक और उसका विनियोग

चारी कुर्वन्नपक्रान्तां विक्षिप्योद्वेष्टितौ भुजौ । 1179
 ततोऽपवेष्टच्च चाक्षिप्याऽन्याङ्घ्रिं सूचीं विधाय च ॥११५८॥
 पादाभ्यां यत्र पाणिभ्यां पृष्ठे स्वस्तिकमाचरेत् । 1180
 तत् पृष्ठस्वस्तिक ज्ञेयम्—

यदि दोनों उद्वेष्टित भुजाओ को अपक्रान्ता चारी में व्यवस्थित करने के अनन्तर उन्हें अलग-अलग करके पीछे की ओर घुमा दिया जाय, पैर को सूची नामक मुद्रा में अवस्थित किया जाय, तत्पश्चात् दोनों पैरो और दोनों हाथों से पृष्ठ भाग में (पीठ पीछे) स्वस्तिक मुद्रा बनायी जाय, तो उसे पृष्ठस्वस्तिक करण (पीठ पर स्वस्तिक बनाना) कहते हैं ।

—सराभस्ये निषेधने ।

अन्यान्वेषणसम्भाषे युद्धस्य च परिक्रमे ॥११५९॥ 1181

नूतकरण प्रकरण

सब प्रकार की दुर्भावनाओं को दूर करने, निषेध करने, दूसरे को डटने, सभापण करने और युद्धस्थल के चारों ओर घूमने के अभिनय में पृष्ठस्वस्तिक करण का विनियोग होता है। (इस अभिनय में नर्तकी सभास्थल की ओर पीठ भी कर सकती है)।

१२ आक्षिप्त रेचित और उसका विनियोग

हृदि स्थितौ करावूर्ध्व व्यावृत्या प्राप्य चेततः ।

विक्षिप्य पार्श्वयोस्तत्र करमेकमधोमुखम् ॥११६०॥ 1182

द्रुतभ्रमं हसपक्षं वक्षस्याक्षिप्य चेतपरम् ।

करमेवंविधं यत्र रेचयेत्तदनन्तरम् ॥११६१॥ 1183

स्यातां सूच्यञ्चितावङ्घ्री तत् तदाक्षिप्तरचितम् ।

हृदय पर अवस्थित दोनों हाथों को ऊपर घुमाकर यदि पार्श्वों में डाल दिया जाय, तदनन्तर एक हाथ को अधोमुख करके दूसरे हसपक्ष हस्त को तेजी से घुमाने हुए वक्ष पर फेंक दिया जाय, दूसरे हाथ को भी इसी मुद्रा में अवस्थित किया जाय, तदनन्तर दोनों पैरों को सूची और अचित मुद्राओं में बना दिया जाय, तो उस मुद्रा को आक्षिप्त रेचित करण कहते हैं।

दर्शयेदमुना

त्यागपरिग्रहपरम्पराम् ॥११६२॥ 1184

त्याग और परिग्रह का भाव प्रकट करने अथवा परम्परानुसार आक्षिप्त रेचित करण का विनियोग होता है।

१३ अलात और उसका विनियोग

यत्रालाताभिधा चारी नितम्बश्चतुरस्रकः ।

पाणिः स्यादक्षिणे भागेऽथोर्ध्वजानुस्तु वामतः ॥११६३॥ 1185

यदैवमन्यदङ्गं स्यात् तत् तदालातमीरितम् ।

यदि (पैरों में) अलाता चारी, नितम्ब चतुरस्र स्थिति में, एक हाथ दक्षिण भाग में, बायाँ घुटना उठा हुआ और अन्य अंग भी यथास्थान हों, तो वहाँ अलात करण होता है।

नृत्ये सललिते वीरसिहजेन महीभुजा ॥११६४॥ 1186

ललित-भाव-सूचक नृत्य में अलात करण का विनियोग होता है, ऐसा अशोकमल्ल (वीरसिंह सुत) का अभिमत है।

१४. भुजगत्रासित

भुजङ्गत्रासितां चारी विधायार्द्धा तु कुञ्चितम् ।

उत्क्षिप्योरुकटीजानु यदि त्र्यस्रं विवर्त्तयेत् ॥११६५॥ 1187

व्यावृत्त्या परिवृत्त्या च यत्रैको दोलसंज्ञकः ।

करोऽन्यः खटकास्यस्तद्भुजङ्गत्रासितं तदा ॥११६६॥ 1188

यदि भुजगत्रासिता चारी में अवस्थित पैर को कुचित करके तथा कटि और जानु को उछाल कर त्रिकोण में घुमाया जाय, ओर एक हाथ को दोल मुद्रा तथा दूसरे को खटकामुख मुद्रा में अवस्थित करके व्यावृत्त-परिवृत्त (आर-पार) किया जाय, तो उसे भुजगत्रासित करण (सर्प से भयभीत) कहते हैं ।

१५ कटीसम और उसका विनियोग

कृत्वाक्षिप्तामपक्रान्तां चारीं चाथ करावुभौ ।

स्वस्तिकीकृत्य नाभौ तु दक्षिणं खटकामुखम् ॥११६७॥ 1189

अर्धचन्द्रं परं कट्यां कुर्यात् पार्श्वं तु सन्नतम् ।

एकमुद्राहितं त्वन्यदेवमङ्गान्तरैरपि ॥११६८॥ 1190

आवृत्तिवैष्णवं स्थानं यत्र तत्स्यात्कटीसमम् ।

पहले अपक्रान्ता नामक चारी की रचना करके दोनों हाथों को स्वस्तिकाकार बनाया जाय, तदनन्तर दाहिने हाथ को खटकामुख मुद्रा में नाभि पर और बाये हाथ को अर्धचन्द्र मुद्रा में कटि पर अवस्थित किया जाय, एक पार्श्व को सन्नत ओर दूसरे को उद्वाहित में रखा जाय, अन्य अंगों को भी यथास्थान व्यवस्थित किया जाय, फिर वैष्णव स्थानक की रचना की जाय । इस नृत्य-मुद्रा को कटीसम करण (समान कटी) कहा जाता है ।

सूत्रधारेण तद्योज्यं जर्जरस्याभिमन्त्रणे ॥११६९॥ 1191

सूत्रधार द्वारा जर्जर का आवाहन करने के अभिनय में कटीसम करण का विनियोग होता है ।

१६ कटीच्छिन्न और उसका विनियोग

पार्श्वतो भ्रमरी कृत्वा मण्डलस्थानमाश्रितः ।

विधायैकां कटीं छिन्नां पल्लवं भुजमूर्धानि ॥११७०॥ 1192

एवमङ्गान्तरेणापि द्विस्त्रिवावृत्तयः कृताः ।

यत्र तत्तु कटीछिन्नं करणं कीर्तितं बुधैः ॥११७१॥ 1193

नूतनकरण प्रकरण

पहले पार्श्व में भ्रमरी नामक चारी बना दी जाय और तदनन्तर मण्डल नामक स्थानक की रचना की जाय, फिर छिन्ना नामक कटि तथा भुजा के शीर्ष भाग में पल्लव नामक हस्त की रचना की जाय, इसी प्रकार अन्य अंगों की भी रचना करके फिर दो-तीन बार आवृत्तियों की जायें। इस अभिनय-मुद्रा को विद्वानों ने कटीच्छिन्न करण (टूटी कटि) कहा है।

१७ घूर्णित

यत्रोर्ध्वदेशगो हस्तो व्यावृत्त्या दक्षिणस्ततः ।
परिवृत्त्या त्वधः पार्श्वदेशाद्भ्रान्ति समाचरेत् ॥११७२॥ 1194
तद्विक्रोड्घ्रिः समाश्रित्य जङ्घास्वस्तिकतामनु ।
कुर्याच्चारीमपक्रान्तां दोलाख्यमपरं करम् । 1195
तद् घूर्णितं केचिदाहुरुत्प्लुत्य स्वस्तिकं त्विह ॥११७३॥

यदि आरम्भ में दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर घुमा दिया जाय और बाद में परिवर्तित कर नीचे पार्श्व भाग में कम्पित कर दिया जाय, फिर उस दिशा में अवस्थित पैर और जँघा में स्वस्तिक मुद्रा की रचना की जाय, तत्पश्चात् अपक्रान्ता नामक चारी का आश्रय ग्रहण किया जाय और दूसरे बाये हाथ में दोला मुद्रा धारण की जाय। अभिनय की इस स्थिति को घूर्णित करण कहते हैं। कुछ आचार्यों का मत है कि इस अभिनय में उछलकर बाये हाथ से स्वस्तिक मुद्रा बनानी चाहिए।

१८ निकुञ्चित और उसका विनियोग

विधाय वृश्चिकं पादं यत्र तद्विगतं करम् । 1196
शिरस्यरालमारच्य नासादेशार्जवेन चेत् ॥११७४॥
उरस्यरालमपरं तत् तदा स्यान्निकुञ्चितम् । 1197

एक पैर से वृश्चिक स्थानक की रचना करके उसी दिशा में हाथ को भी ले जाया जाय, फिर शिर पर (दाये) अराल हस्त को बना कर नासिका की सीध पर रखा जाय, तदनन्तर छाती पर दूसरे (बाये) अराल हस्त की रचना की जाय। इस अभिनय-स्थिति को निकुञ्चित करण कहते हैं।

तदौत्सुक्ये वितर्कं च गगनोत्पतनादिषु ।

उत्सुकता, वितर्क और आकाश से गिर जाने आदि के अभिनय में निकुञ्चित करण का विनियोग होता है।

केचित्पताकसूच्यास्यावत्र नासाग्रगौ जगुः ॥११७५॥ 1198

कुछ विद्वानों का मत है कि निकुञ्चित करण-मुद्रा में पताक तथा सूच्यास्य हस्तों को नासिका के अग्रभाग में अवस्थित करना चाहिए ।

१९ निकुट्टक

कृत्वादौ मण्डलस्थानं चतुरस्रतया करम् ।	
सव्यमुद्वेष्टितेनांसशीर्षमानीय यत्र तत् ॥११७६॥	1199
पतनोत्पतनोपेतकनिष्ठाद्यङ्गुलीद्वयम् ।	
विदध्यादलपद्मं तमङ्घ्रिमुद्घट्टयेत्करम् ॥११७७॥	1200
सव्यमाविद्धवक्रत्वं नीत्वाथ चतुरस्रकम् ।	
कुर्यादेवं वामपाणिपादं तत् स्यान्निकुट्टकम् ।	1201

आरम्भ में मण्डल नामक स्थानक की रचना करके बाँये हाथ को चतुरस्र मुद्रा में अवस्थित किया जाय, फिर उसे चारों ओर से घुमावदार बना कर कन्धे के ऊपर लाकर कनिष्ठा तथा अनामिका उँगलियों को क्रमशः गिरने तथा उठने की स्थिति में किया जाय, तत्पश्चात् अलपद्म हस्त की रचना करके एक पैर को अलग किया जाय, फिर दाये हाथ को अविद्धवक्र बनाकर चतुरस्र स्थिति में लाया जाय, यही प्रक्रिया पैर से भी की जाय । अभिनय की इस स्थिति को निकुट्टक करण कहते हैं ।

२० अर्धनिकुट्टक

अङ्गनैकेन रचितमिदमर्धनिकुट्टकम् ॥११७८॥

यदि निकुट्टक करण की एक ही अंग से रचना की जाय, तो वह अर्धनिकुट्टक करण कहलाता है ।

२१ विक्षिप्ताक्षिप्तक और उसका विनियोग

सव्यावृत्तौ करे सोऽङ्घ्रिर्बहिर्विक्षिप्यते यदि ।	1202
चतुरस्रस्तदान्योऽथ प्राक्तनः परिवृत्तियुक् ॥११७९॥	
पाणिपादः स आक्षिप्तो यत्राङ्गमपरं क्रमात् ।	1203
एवमेवं भवेदेतद्विक्षिप्ताक्षिप्तकं तदा ॥११८०॥	

यदि दाये हाथ को बायी ओर घुमा दिया जाय और पैर को बाहर की ओर प्रसारित किया जाय, इसी तरह दूसरे चतुरस्र हस्त को भी घुमाया जाय, फिर हाथ, पैर और तदनन्तर क्रमशः एक-एक अंग का संचालन किया जाय, तो उस अभिनय-स्थिति को विक्षिप्ताक्षिप्तक करण कहते हैं ।

३०२

गतागते वदन्त्यस्य नियोगं केऽपि सूरयः । 1204
स नेष्टो नाट्यविदुषा यतोऽभिनयपाणिभिः ॥११८१॥

नाट्याचार्यों की एक परम्परा जाने-आने के अभिनय में इस करण का विनियोग बताती है, किन्तु दूसरी परम्परा के नाट्याचार्यों को यह अभिमत मान्य नहीं है। उनका कथन है कि इस करण में हस्ताभिनय की प्रमुखता है, और गमनागमन में तो पादों का प्रयोग होता है, जो उचित नहीं है।

वाक्यार्थाभिनयः कार्यः प्राधान्येनाभिनेतृभिः । 1205
इदं तु सद्भिराख्यातं नृत्यमात्रपरं ततः ॥११८२॥

सज्जनो के निर्देश से इस करण में अभिनेताओं को मुख्य रूप से गीत और भाव (वाक्याथ) का अभिनय करना चाहिए, क्योंकि अभिनय ही उसका एकमात्र प्रयोजन है।

प्रयोज्यमेतन्नाट्याङ्गं विच्छेदे सन्धिगुप्तये । 1206
यदि ताललयादीनां गतीनां च परिक्रमे ॥११८३॥

तथा तालानुसन्धाने तथा युद्धनियुद्धयोः । 1207
चारीस्थानकसंयोगेऽप्येतत्करणमीरितम् ॥११८४॥

अलग होने, मन्वि के गोपन, ताल-लय आदि की गतियों, परिक्रमा, ताल के अनुसन्धान, युद्ध, कुस्ती और चारी-स्थानक-सयुक्त अभिनय में इस नाट्यागभूत करण का प्रयोग करना चाहिए।

२२ अपविद्ध और उसका विनियोग

चतुरस्रं समाश्रित्य सव्यं व्यावर्त्य हस्तकम् । 1208
निस्सार्याक्षिप्तया चार्या कृत्वा तद्दिग्भवं करम् ।

यदि बाये हाथ को चतुरस्र मुद्रा में अवस्थित करके (दाहिनी ओर) घुमाकर और उसी दिशा के दूसरे दाये हाथ को आक्षिप्ता चारी धारण कर उसे बाहर की ओर नि सारित कर दिया जाय, तो उसे अपविद्ध करण कहते हैं।

[शु^१कतुण्डं करं तस्यैवोरौ तु परिपातयेत् । 1209
यत्रापविद्धं तद्वामे वक्षःस्थे खटकामुखे ।]

अथवा—यदि बाये हाथ को शुकतुण्ड मुद्रा में बनाकर उसे बाये ही ऊरु पर गिरा दिया जाय और दूसरे दाये हाथ को खटकामुख मुद्रा में अवस्थित कर बाये वक्ष पर रख दिया जाय, तो उसे अपविद्ध करण कहते हैं।

१ देखिए सगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ६०२, ३।

असूयायां तथा कोपे विनियोगोऽस्य दर्शितः ॥११८५॥ 1210

असूया तथा क्रोध के अभिनय में अपविद्ध करण का विनियोग होता है ।

२३ समनख और उसका विनियोग

यत्र गात्रं स्वभावस्थमङ्ग्री समनखौ युतौ ।
लताकरो समनखम्—

जहाँ शरीर स्वाभाविक स्थिति में वर्तमान हो, दोनों पैर समान नखयुक्त हो, और दोनों हाथ लताहस्त मुद्रा में हो, वहाँ समनख करण होता है ।

—एतदाद्यप्रवेशने ॥११८६॥ 1211

आद्य वस्तु के प्रवेश करने के अभिनय में समनख करण का विनियोग होता है ।

२४ स्वस्तिकरेचित और उसका विनियोग

चतुरस्रः स्थितो यत्र विधाय त्वरितभ्रमौ ।
हंपक्षाभिधौ हस्तौ व्यावृत्त्योर्ध्वं शिरःस्थलात् ॥११८७॥ 1212
सम्प्राप्य परिवृत्त्याधः प्राप्तावाविद्धवक्रकौ ।
स्वस्तिकौ हृदयक्षेत्रे क्रियेते तदनन्तरम् ॥११८८॥ 1213
विप्रकीर्णौ ततः कथ्यां पक्षवञ्चितकौ ततः ।
पक्षप्रद्योतकौ हस्तौ चारी तदनुगा ततः ॥११८९॥ 1214
अवहित्थाभिधं स्थानमेतत्स्वस्तिकरेचितम् ।

पहले चतुरस्र मुद्रा में एक हाथ को अवस्थित किया जाय, फिर हमपक्ष दोनों हाथों को शीघ्रता से घुमा दिया जाय, तदनन्तर उन्हें ऊपर मस्तक प्रदेश से घुमाते हुए नीचे लाकर आविद्धवक्र हाथों में परिवर्तित कर दिया जाय, तत्पश्चात् दोनों हाथों में स्वस्तिक मुद्रा धारण कर उन्हें हृदय पर रख दिया जाय, पुनः उन्हें विप्रकीर्ण मुद्रा में रच कर कटि में रख दिया जाय, फिर उन्हें क्रमशः पक्षवञ्चितक और पक्षप्रद्योतक मुद्राओं में अवस्थित किया जाय, और तदनन्तर चारी और तदनुरूप अवहित्थ स्थानक की रचना की जाय । इस अभिनय-भेद को स्वस्तिकरेचित करण कहते हैं ।

निरूपितमिदं धीरैः हर्षस्थादिनिरूपणे ॥११९०॥ 1215

नृतकरण प्रकरण

आनन्दित व्यक्ति आदि के भावाभिव्यजन मे, धीरे धीरे के मन से, स्वस्तिररेचित करण का विनियोग करना चाहिए ।

२५ मत्तल्लि और उसका विनियोग

स्वस्तिकं गुल्फयोर्बद्ध्वा यत्राङ्घ्र्योरपसर्पणम् ।
सममुद्ग्रेष्ठितौ पाणी तथा तावपवेष्ठितौ । 1216
विदध्यादसकृत् तत् स्यान्मत्तल्लि-

यदि दोनो टखनो को स्वस्तिकाकार मे बाँधकर पैरो से लुढकते हुए चला जाय और साथ ही दोनो हाथो को मोडकर फिर खोल दिया जाय, इस प्रकार बार-बार करते रहने से जो अभिनय-मुद्रा बनती है, उसे मत्तल्लि करण कहते है ।

-मदसूचकम् ॥११६१॥

मद के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

२६ अर्धमत्तल्लि और उसका विनियोग

स्खलितापसृतावङ्घ्री चेद्दामो रेचितः करः । 1217
परः कटौ तदा चार्धमत्तल्लि-

यदि दोनो पैर फिसलते तथा लुढकते हो और बायाँ हाथ रेचित मुद्रा मे तथा दाहिना हाथ कटि पर अवस्थित हो, तो उसे अर्धमत्तल्लि करण कहते है ।

-तरुणे मदे ॥११६२॥

अत्यन्त मदमत्तता के अभिनय मे अर्धमत्तल्लि करण का विनियोग होता है ।

२७ वलित

अपसर्पति सूच्याख्ये देहदेशात्करे यदा । 1218
अपेतश्चरणः सूची चारी तु भ्रमरी क्रमात् ।
एवमङ्गान्तरेणापि यत्र तद्वलितं तदा ॥११६३॥ 1219

जब शरीर से सूचास्य हस्त अपसर्पित हो और पैर से क्रमशः सूची, चारी तथा भ्रमरी मुद्रा धारण कर गमन किया जाय, और दूसरे अंगो से भी इसी प्रकार की क्रिया की जाय, तब उसे वलित करण कहते है ।

३०५-

२८. अर्धरेचित

मण्डलस्थानमाश्रित्य खटकास्यं यदा हृदि ।

कृत्वा कुर्यात्करं सूची [मुख चैव] तदन्तिके ॥११६४॥ 1220

तद्विक्कं पादमुद्घाट्य सन्नतं पार्श्वमाचरेत् ।

तदापसरणे प्रोक्तं नृत्तज्ञैरर्धरेचितम् ॥११६५॥ 1221

जब मण्डल स्थानक में जवस्थित होकर खटकामुख हस्त को हृदय पर रख दिया जाय, फिर उसे सूचीमुख हस्त बना दिया जाय । जिस दिशा में हाथ हो उसी दिशा में एक पैर को बढ़ाया जाय, पार्श्व को सन्नत मुद्रा में अवस्थित किया जाय, उसके बाद पीछे हटा जाय, तब उस क्रिया को अर्धरेचित करण कहते हैं ।

२९ ऊर्ध्वजानु

ऊर्ध्वजानौ यदा चार्या कुञ्चितेऽङ्घ्रावसो करः ।

अलपद्मोऽथवारालः पक्षवञ्चितकोऽथवा ॥११६६॥ 1222

ऊर्ध्वास्यः कुचसाम्यस्थजानुनः खटकोऽपरः ।

वक्षःस्थः स्यात्तदा धीरैरूर्ध्वजानु प्रकीर्तितम् ॥११६७॥ 1223

जब ऊर्ध्वजानु नामक चारी तथा कुञ्चित नामक पैरों की स्थिति में अलपद्म या अराल अथवा पक्षवचितक नामक हाथ ऊर्ध्वमुख रहे और दूसरा खटकामुख हाथ कुच की समानता में अवस्थित, घुटने पर से होते हुए वक्ष पर रख दिया जाय, तो धीर पुरुषों ने उसे ऊर्ध्वजानु करण कहा है ।

३० कटिभ्रान्त और उसका विनियोग

अपसर्पे द्रुतं वामं चरणं यत्र तस्य तु ।

पार्श्वे न्यस्येत्परं सूची ततश्चेद्भ्रामयेत्कटिम् ॥११६८॥ 1224

कुर्याद्वा भ्रमरी पाणी व्यावृत्तपरिवर्तितौ ।

वैष्णवस्थानमन्ते तत् कटिभ्रान्तं तदा मतम् ॥११६९॥ 1225

पीछे हटने की शीघ्रता की स्थिति में बायें चरण को पार्श्व भाग में रख दिया जाय, फिर दूसरे दायें पैर को सूची मुद्रा में कर दिया जाय आर तत्पश्चात् कटि को घुमाया जाय, अथवा भ्रमरी चारी की रचना कर दोनों हाथों को व्यावृत्त-परिवृत्त किया जाय, अन्त में वैष्णव नामक स्थानक का निर्माण किया जाय, इस क्रिया को कटिभ्रान्त करण कहते हैं ।

नृत्यकरण प्रकरण

तालानामन्तरालेषु गतीना च परिक्रमे ।

यतीना परिपूर्ता च सद्भूरेतन्नियुज्यते ॥१२००॥ 1226

सज्जनों के मतानुसार तालों के मध्य भाग, गतियों के ध्रुमाव आर यतियों (मन्यासियों) की पूर्ति के अभिनय में कटिभ्रान्त करण का विनियोग होता है ।

३१ छिन्न और उसका विनियोग

क्रमात् करौ कटीपाश्वदेशे चेदलपल्लवौ ।

छिन्ना कटी च वैशाखस्थानं छिन्न तदोदितम् । 1227

यदि अलपल्लव मुद्रा में दोनों हाथों को क्रमशः कटिपार्श्व में रख दिया जाय, कटि छिन्ना मुद्रा में हो, और अन्त में वैशाख स्थानक की रचना की जाय, तो उसे छिन्न करण कहने है ।

तदङ्गप्रतिसारे स्यात् तथा तालप्रभञ्जने ॥१२०१॥

अगो को फैलाने और ताल ठोकने के अभिनय में छिन्न करण का विनियोग होता है ।

३२ पादापविद्धक

खटकास्यौ यदा पाणी नाभिक्षेत्रे पराङ्मुखौ । 1228

सूच्याङ्घ्रिः परपादेन युक्तोऽपक्रान्तया युतः ।

अपरश्चरणोऽथैव तदा पादापविद्धकम् ॥१२०२॥ 1229

जब खटकास्य नामक दोनों हाथ नाभिक्षेत्र में पराङ्मुख होकर रहे, सूची नामक पैर दूसरे पैर से जुड़ा हो, और दूसरा पैर अपक्रान्ता नामक चारी में हो, तब वह पादापविद्धक करण होता है ।

३३ भ्रमर और उसका विनियोग

कुर्वन्नाक्षिप्तचार्याङ्घ्रि पाणिमुद्वेष्ट्य चेततः ।

वलितं तु त्रिकं कुर्यात् स्वस्तिकं पादसम्भवम् ॥१२०३॥ 1230

यत्रापराङ्गमेवं स्यादुल्लवणावेकदा करौ ।

तत् तदा भ्रमरं ज्ञेयम्—

जब पहले हाथ-पैर में आक्षिप्ता नामक चारी को धारण करके त्रिक का वलय किया जाय (कटि भाग को झुका दिया जाय), फिर पैरों की स्वस्तिक मुद्रा बना ली जाय, इसी प्रकार अन्य अगो की भी रचना की जाय, अन्त में एक बार उल्लवण हाथों की रचना की जाय, तब उसे भ्रमर करण कहते हैं ।

नृत्याध्याय.

—उद्धृतस्य परिक्रमे ॥१२०४॥ 1231

वेग से चक्कर काटने के अभिनय में भ्रमर करण का विनियोग होता है ।

३४ दण्डपक्ष

चारी यत्रोर्ध्वजानुः स्यात् करौ स्यातां लताकरौ ।
तत्रैकं निक्षिपेदूर्ध्वजानूपरि यदा पुनः । 1232
एवमङ्गन्तरेणापि दण्डपक्षमिदं तदा ॥१२०५॥

जहाँ ऊर्ध्वजानु चारी तथा दोनों लताहस्त हो और फिर एक हाथ को ऊर्ध्वजानु के ऊपर रख दिया जाय, इसी प्रकार अन्य अंगों को भी संचालित किया जाय, वहाँ दण्डपक्ष करण होता है ।

३५ नूपुर

विरच्य भ्रमरीं चारीमथ नूपुरपादिकाम् । 1233
अङ्घ्रिणैकेन तत्पाणि विदध्याद्रेचितं यदि ।
परं लताकरं हस्तं तदोक्तं नूपुरं बुधैः ॥१२०६॥ 1234

यदि एक पैर से भ्रमरी नामक चारी की रचना करने के पश्चात् नूपुरपादिका नामक चारी को बनाया जाय, फिर एक हाथ को रेचित और दूसरे को लता मुद्रा में अवस्थित किया जाय, तो बुधजनों के मतानुसार उसे नूपुर करण कहते हैं ।

३६ ललित और उसका विनियोग

सव्यः करः केशबन्धनितम्बादिकवर्तनाः ।
यत्राऽथ हस्तको वामो भवेत् करिकरस्ततः ॥१२०७॥ 1235
उद्घट्टितोऽङ्घ्रिरन्याङ्गमप्येवं ललितं तु तत् ।

जहाँ दायीं हाथ केशबन्ध तथा नितम्ब आदि वर्तना में हो और बायीं हाथ कटिहस्त मुद्रा में हो, एक पैर उद्घट्टित और अन्य अंग भी इसी प्रकार संचालित होते हों, वहाँ ललित करण होता है ।

विलासिनि सुधीधुर्याशोकमल्लेन कीर्तितम् ॥१२०८॥ 1236

नाट्याचार्य अशोकमल्ल के मत से विलासी के अभिनय में ललित करण का विनियोग होता है ।

३०८

नृत्तकरण प्रकरण

३७ व्यसित और उसका विनियोग

पाणिमुद्वेष्ट्य यत्रैकोऽधोगतो विप्रकीर्णितः ।
 परावृत्त्य परस्ताद्गूर्ध्व हृदयगस्ततः ॥१२०६॥ 1237
 उत्तानितो रेचितः स्यादेकोऽन्योऽधोमुखस्तथा ।
 स्थानमालीढसंज्ञं चेत् तत्तदा व्यंसितं मतम् । 1238

जहाँ एक हाथ को उद्वेष्टित करके दूसरे विप्रकीर्ण हस्त को उसके नीचे लाया जाय, फिर घुमाकर उसे ऊपर हृदय पर अवस्थित किया जाय, तत्पश्चात् एक रेचित हाथ को उत्तान और दूसरे को अधोमुख किया जाय, फिर आलीढ स्थानक धारण किया जाय, वहाँ व्यसित करण होता है ।

नियोज्यं वायुसून्वादिबृहत्कपिपरिक्रमे ॥१२१०॥

हनुमान तथा बालि, सुग्रीव (बृहत्कपि) आदि के अभिनय में व्यसित करण का विनियोग होता है ।

३८ चतुर और उसका विनियोग

यत्रालपल्लवो वामो हृदयक्षेत्रसंस्थयोः । 1239
 करयोश्चतुरोऽन्योऽथ पादस्तूद्घट्टितो यदि ॥१२११॥
 -चतुरमीरितम् ।

जहाँ दोनो हाथ हृदय में अवस्थित हों, बायाँ अलपल्लव और दायीँ चतुर मुद्रा में हों, और एक पैर उद्घट्टित हो, वहाँ चतुर करण होता है ।

तदा विस्मयसूचायामिदम्- 1240
 वैदूषिक्यां नृपाग्रण्याशोकमल्लेन धीमता ॥१२१२॥

विद्वान् राजा अशोकमल्ल के मत से विस्मय, असूया तथा विद्वता के अभिनय में चतुर हस्त का विनियोग होता है ।

३९ क्रान्त

यत्रातिक्रान्तचार्याङ्घ्रि पात्यमानं निकुञ्च्य चेत् । 1241
 पृष्ठतः स्थापयित्वा तु पुरोदेशे प्रसारयेत् ॥१२१३॥
 व्यावर्त्य तत्करं न्यस्योरस्यतः परिवृत्तितः । 1242

तृत्याध्यायः

निष्क्रम्य तद्वदाक्षिप्य हृदि तं खटकामुखम् ।

कुर्यादेव पराङ्गं च तत् तदाक्रान्तमीरितम् ॥१२१४॥ 1243

जहाँ अतित्रान्ता चारी के द्वारा एक पैर को पतित करते हुए सिकोड कर पीठ की ओर स्थापित करके आगे की ओर प्रसारित किया जाय, फिर उसे घुमाकर वक्ष की ओर ले जाया जाय, ओर तत्पश्चात् वहाँ से हटाकर उसे खटकामुख मुद्रा में हृदय पर अवस्थित किया जाय, इसी प्रकार दूसरे पैर को भी किया जाय, वहाँ क्रान्त करण होता है ।

४० भुजगत्रस्तरेचित

भुजङ्गत्रासिता यत्र चारी स्याद् रेचितौ करौ ।

वामपार्श्वे तदाख्यातं भुजङ्गत्रस्तरेचितम् ॥१२१५॥ 1244

जहाँ पैरो में भुजगत्रासिता चारी हो और दोनों रेचित हाथ वाम पार्श्व में अवस्थित हों, वहाँ भुजगत्रस्त रेचित करण होता है ।

४१ भुजगाञ्चित

सव्याङ्घ्रिणा यदा चारी भुजङ्गत्रासिताभिधा ।

रेचितः स्यात् करः सव्यो वामपाणिर्लताकरः । 1245

यत्र धीरैस्तदाख्यातं भुजङ्गाञ्चितकं त्वदः ॥१२१६॥

जहाँ दाहिने पैर से भुजगत्रासिता चारी बनायी जाय, दाहिना हाथ रेचित मुद्रा आर बायाँ हाथ लताहस्त मुद्रा में हो, धीर पुरुषों के मत से, वहाँ भुजगाञ्चित करण होता है ।

४२ आक्षिप्त और उसका विनियोग

चार्याक्षिप्ता यदा क्षिप्तः खटकश्चतुरोऽथवा ।

1246

तदाक्षिप्तमिदं धीरै-

जब पैर आक्षिप्ता चारी में और हाथ खटक या चतुर मुद्रा में हो, धीर पुरुषों के मत से उसे आक्षिप्त करण कहते हैं ।

-विदूषकगतौ स्मृतम् ॥१२१७॥

विदूषक की चाल के अभिनय में आक्षिप्त करण का विनियोग होता है ।

नृत्यकरण प्रकरण

४३ उद्घट्टित

यदोद्घट्टितपादः स्यात्तत्पार्श्वं सन्नतं करौ । 1247
तालिकाकरणोद्युक्तौ तत्तदोद्घट्टितं मतम् ॥१२१८॥

जब पैर उद्घट्टित , पार्श्व सन्नत आर दोनो हाथ तालिका बनाने मे तत्पर हो, तो उसे उद्घट्टित करण कहते है ।

४४ दण्डरेचित और उसका विनियोग

दण्डपादा यदा चारी दण्डपक्षाभिधौ करौ । 1248
तदा प्रमोदनृत्ते स्यात्करणं दण्डरेचितम् ।
प्रयोगं केचिदिच्छन्ति तस्योद्धतपरिक्रमे ॥१२१९॥ 1249

जब पैर दण्डपादा चारी ओर दोनो हाथ दण्डपक्ष मुद्रा मे हो, तब उसे दण्डरेचित करण कहते है । प्रमोदनृत्त के अभिनय मे उसका विनियोग होता है । उद्धत व्यक्ति के घूमने के अभिनय मे भी कोई आचार्य उसका विनियोग बताते है ।

४५ वृश्चिक और उसका विनियोग

करौ करिकरौ पश्चाद् दूरे वृश्चिकपुच्छवत् ।
अङ्घ्रिश्चेत् सन्नतं पृष्ठ तदा वृश्चिकमीरितम् । 1250

यदि दोनो हाथ पीठ पीछे (कन्धे के समतर) कटिहस्त मुद्रा और एक पैर (उनके कुछ) दूर पर विच्छू की पृष्ठ (डक) की तरह अवस्थित हो, पृष्ठ भाग सन्नत हो, तो वहाँ वृश्चिक करण होता है ।

इदमैरावणादीनामाकाशगमने मतम् ॥१२२०॥ -

इन्द्र के हाथी (ऐरावत) और आकाश मे उडने के अभिनय मे वृश्चिक करण का विनियोग होता है ।

४६ वृश्चिकरेचित और उसका विनियोग

वृश्चिकेऽङ्घ्रौ यदा पाणी स्वस्तिकीभूय रेचितौ । 1251
विश्लिष्यापि तदाकाशगतौ वृश्चिकरेचितम् ॥१२२१॥

जब दोनो पैर वृश्चिक आर दोनो हाथ स्वस्तिक होकर फिर उन्हे खोलकर रेचित मे किया जाय, तब उसे वृश्चिकरेचित करण कहते है । आकाश मे उडने के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

४७. वृश्चिक कुट्टित और उसका विनियोग

वृश्चिकं चेद्विधायार्द्धाभ्र भुजशीर्षे करौ क्रमात् । 1252
अल्पघ्नौ निकुट्टे तदा वृश्चिककुट्टितम् ।

यदि एक पैर वृश्चिक मुद्रा ओर दोनो हाथो को क्रमश अल्पघ्न तथा निकुट्ट मे धारण किया जाय, तो उसे वृश्चिक कुट्टित करण कहते है ।

साश्चर्याकाशगमनवाञ्छादौ तत्प्रयुज्यते ॥१२२२॥ 1253

आश्चर्य के साथ आकाश गमन और इच्छा आदि के अभिनय मे वृश्चिककुट्टित करण का विनियोग होता है ।

४८ लतावृश्चिक और उसका विनियोग

वृश्चिकेऽर्द्धिर्ग्रन्था वामः करश्चेत्स्याल्लताकरः ।
तदा लतावृश्चिकम्-

जब एक (दाहिना) पैर वृश्चिक मुद्रा मे और बायाँ हाथ लताहस्त मुद्रा मे हो, तब उसे लतावृश्चिक करण कहते है ।

-तदाकाशोत्पतने मतम् ॥१२२३॥ 1254

आकाश मे उडने के आशय मे लतावृश्चिक करण का विनियोग होता है ।

४९ वैशाखरेचित

रेचितं यत्र पाण्यङ्घ्रिकटिग्रीवं यदा भवेत् ।

वैशाखस्थानके तत् स्यात् तदा वैशाखरेचितम् ॥१२२४॥ 1255

जहाँ दोनो हाथ, पैर, कमर तथा ग्रीवा रेचित मे रखे जाँय और वैशाख स्थानक की रचना की जाय, तब उसे वैशाखरेचित करण कहते है ।

५० चक्रमण्डल और उसका विनियोग

चरयित्वाङ्घ्रितां चारी चक्राकारं भ्रमेद्यदि ।

यत्र दोलाख्यहस्ताभ्यां देहेनान्तर्नतेन चेत् ॥१२२५॥ 1256

तत्तदा सिद्धिराख्यातं करणं चक्रमण्डलम् ।

नृतकरण प्रकरण

यदि अङ्कित चारी बनाकर ओर दोनों हाथों को दोलाहस्त में प्रयुक्त कर पूरा शरीर अन्दर की ओर झुका दिया जाय तथा दोनों हाथों को जमीन में टोक दिया जाय और तब उसे चक्राकार में घुमाया जाय, तो उसे चक्रमण्डल करण कहते हैं ।

[भवेत्] तद् वरिवस्याया तथोद्धतपरिक्रमे ॥१२२६॥ 1257

पूजा और शीघ्रतापूर्वक परित्रमा के अभिनय में चक्रमण्डल करण का विनियोग होता है ।

५१ आवर्त और उसका विनियोग

चाषगत्या समं चार्या हस्तौ दोलाभिधौ यदि ।
विधायोद्वेष्टितौ यत्र कुर्यात्तावपवेष्टितौ । 1258
तदावर्तमिदं प्रोक्त धीरैः—

यदि चापगति त्रागी के समान ही दोनों दोला हस्तों की रचना करके उन्हें उद्वेष्टित (लोला) तथा अपवेष्टित (बन्द) कर दिया जाय, तो विद्वान् उसे आवर्त करण कहते हैं ।

—भीत्यपसर्पणे ॥१२२७॥

भयपूर्वक पीछे हटने के अभिनय में आवर्त करण का विनियोग हाता है ।

५२ कुञ्चित और उसका विनियोग

वामपार्श्वे यदोत्तानोऽलपद्माकारतां दधत् । 1259
करः सव्योऽथ वामोऽग्रतलसञ्चरसन्नकः ।
आङ्घ्रिस्तदा कुञ्चितं स्यात्—

जब अलपद्म दाहिना हस्त बायें पार्श्व में उत्तान करके रख दिया जाय और बायें पर अग्रतलसञ्चर मुद्रा में (पीठ की ओर घूमा हुआ नत रूप में) अवस्थित किया जाय, तब उसे कुञ्चित करण कहते हैं ।

—सानन्दमुरगोचरम् ॥१२२८॥ 1260

आनन्दपूर्वक देवताओं के प्रत्यक्ष (पूजन, आवाहन) करने में कुञ्चित हस्त का विनियोग होता है ।

५३ दोलापाद

यत्रोर्ध्वजानुश्चारी स्याद्दोलापादाभिधापि च ।
करो दोलाभिधश्चैत्तद्दोलापादमुदीरितम् ॥१२२९॥ 1261

नृत्याध्याय

जहाँ पैरो को ऊर्ध्वजानु तथा दोलापाद (पैर झुलाना) चारियों में अवस्थित किया जाय और हाथ भी उसी (दोल) का अनुसरण करे, वहाँ दोलापाद करण होता है ।

५४ तलविलासित और उसका विनियोग

अङ्घ्रिस्तूर्ध्वाङ्गुलितलः पार्श्वे तूर्ध्वं प्रसारितः ।

तदग्रगः पताकश्चेदेमङ्गान्तरे क्रमात् । 1262

सूत्रधारादिविषयं तदा तलविलासितम् ॥१२३०॥

जब एक पैर की उँगलियों का तल भाग ऊपर उठा हो और पैर पार्श्व में ऊपर की ओर प्रसारित किया गया हो, तदनन्तर उसके आगे पताक हस्त हो, और इसी प्रकार अन्य अंगों की भी रचना की जाय, तो उसे तलविलासित करण कहते हैं । सूत्रधार आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

५५ विवृत्त और उसका विनियोग

चार्या चरणमाक्षिप्यासकृदाक्षिप्तया यदा । 1263

विधाय हस्तौ व्यावृत्तिपरिवर्त्तनसयुतौ ॥१२३१॥

विदध्याद्भ्रमरी यत्र ततस्तौ रेचयेन्नटः । 1264

तद्विवृत्त समाख्यातम्—

जब नर्तक या अभिनेता आक्षिप्ता नामक चारी के द्वारा पैर को बार-बार फेक कर दोनों हाथों को व्यावृत्तित तथा परिवर्तित करता है, और पुन भ्रमरी की रचना करने के उपरान्त दोनों हाथों को रेचित में कर दिया जाता है, तब इसे विवृत्त करण कहते हैं ।

—उद्धतस्य परिक्रमे ॥१२३२॥

उद्धत गति के अभिनय में विवृत्त करण का विनियोग होता है ।

५६ विनिवृत्त और उसका विनियोग

यत्र सूच्यङ्घ्रिणान्योऽङ्घ्रिः पाष्णौ स्वस्तिकमाचरेत् । 1265

ततस्त्रिकस्य चलनं व्यावृत्तिपरिवृत्तितः ॥१२३३॥

एकपार्श्वे विधायथ चारी बद्धाभिधां करौ । 1266

रेचितौ तौ चरेत् तत् स्याद्विनिवृत्तम्—

नूत्तकरण प्रकरण

जहाँ मूची नामक एक पैर के साथ दूसरा पैर एडी में स्वम्निक मुद्रा धारण किये हो, कटि प्रदेश को व्यावृत्त तथा परिवृत्त किया जाय, फिर एक पाञ्च में बद्धा चारी को वाग्ण किया जाय, ओर अन्त में दोनों हाथों की रेचित में रचना की जाय, तो उसे विनिवृत्त करण कहत ह ।

—परिक्रमे ॥१२३४॥

परिक्रमा करने के अभिनय में विनिवृत्त करण का विनियोग होना ह ।

५७ ललाटतिलक और उसका विनियोग

वृश्चिकाङ्घ्र्येर्दङ्गुष्ठ पादस्य तिलकं लिखेत् । 1267
ललाटेऽथ तदा ज्ञेय ललाटतिलकं बुधैः ।

यदि वृश्चिक पैर का अँगूठा ललाट पर पैर का तिलक लिखे, तब विद्वान् लोग उसे ललाटतिलक करण समझे ।

विद्याधरगतावेतन्नियोज्यं —नृत्तवेदिभिः ॥१२३५॥ 1268

नृत्तवेत्ताओं को चाहिए कि विद्याधर की गति के अभिनय में वे ललाटतिलक करण का विनियोग करे ।

५८ विवर्तित

पाणिपादं समाक्षिप्य कुर्यात्त्रिकविवर्तनम् ।
रेचितं च परं पाणि यत्रैतत्स्याद्विवर्तितम् ॥१२३६॥ 1269

यदि एक हाथ और एक पैर को चलाकर कटिदेश में घुमाया जाय, ओर फिर दूसरे हाथ को रेचित में परिणत किया जाय, तो उसे विवर्तित करण कहा जाता है ।

५९ अतिक्रान्त

अतिक्रान्तं विधायाङ्घ्रि पुरो यत्र प्रसारयेत् ।
करौ प्रयोगयोग्यौ च तदतिक्रान्तमुच्यते ॥१२३७॥ 1270

जहाँ पैर को अतिक्रान्त क्रम करके उसे आगे फैला दिया जाय ओर दोनों हाथों को भी उसी के अनुसार संचालित किया जाय, वहाँ अतिक्रान्त करण होता है ।

६० विद्युद्भ्रान्त और उसका विनियोग

विद्युद्भ्रान्ता यत्र चारी करौ तदनुगामिनौ ।
विद्युद्भ्रान्तमिदं प्रोक्तम्—

नृत्याध्यायः

जहाँ पैर विद्युद्भ्रान्ता चारी मे हो ओर दोनो हाथ भी उमी का अनुगमन करे । वहाँ विद्युद्भ्रान्त करण होता है ।

—उद्धृतस्य परिक्रमे । 1271

तीव्र वेग से घूमने के अभिनय मे विद्युद्भ्रान्त करण का विनियोग होता है ।

अत्रौचित्यात्पुरः केचिदुशन्तिचरणक्रियम् ॥१२३८॥

कुछ नाट्याचार्यों का मत है कि विद्युद्भ्रान्त करण मे पहले पैर का मचालन होना चाहिए ।

६१ निशुम्भित और उसका विनियोग

कुञ्चितोद्भिः पार्श्वदेशे द्वितीयचरणस्य चेत् । 1272

वक्षः समुन्नत यत्र खटकास्य करस्य तु ॥१२३९॥

अङ्गुलिर्मध्यमा भाले करोति तिलक तदा । 1273

तन्निशुम्भितमाख्यातम्—

यदि एक निकुञ्चित पैर को दूसरे पैर की एडी पर रख दिया जाय, छाती उठा ली जाय ओर खटकास्य मुद्रा को हाथ की मध्यमा उँगली से ललाट पर तिलक रचना की जाय, तो उसे निशुम्भित करण कहते है ।

—ईशाभिनयगोचरम् ॥१२४०॥

भगवान् शकर के अभिनय मे निशुम्भित करण का विनियोग होता है ।

खटकास्यकरस्थाने त्रिपताकोऽथवात्र हि । 1274

प्राहात्राधोमुखं सूचीकरं कीर्त्तिधरः सुधीः ।

उशन्ति चरणं केचित् सूची नृत्तविचक्षणाः ॥१२४१॥ 1275

पण्डित कीर्त्तिधर इस करण मे खटकास्य के स्थान पर त्रिपताक या अधोमुख सूची हस्त का विनियोग बताते है । कुछ नाट्याचार्यों का मत है कि उसमे सूचीपाद का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

६२ उरोमण्डल

बद्धां चारी स्थितावर्ता रचयन् रचयेत्करो ।

उरोमण्डलिनौ यत्र तदुरोमण्डलं भवेत् ॥१२४२॥ 1276

नृत्तकरण प्रकरण

जहाँ स्थितावर्ता नामक चारी आर उरोमण्डलिन् नामक दोनो हाथो की रचना की जाय, वहाँ उरोमण्डल करण होता है ।

६३ विक्षिप्त और उसका विनियोग

विद्युद्भ्रान्तां दण्डपादा चारी च क्रमतो यदि ।
विधायोद्वेष्टनेनापवेष्टनेनापि हस्तकौ ॥१२४३॥ 1277
एकाध्वयानिौ यत्र रेचयन्पुरतोऽनु च ।
पार्श्व[योर्वि]क्षिपेत् तत् स्याद्विक्षिप्तकरण तदा । 1278

यदि क्रमशः समुद्भ्रान्ता आर दण्डपादा चारियो को बनाकर दोनो हाथो को उद्वेष्टित तथा अपवेष्टित के द्वारा समस्थिति मे लाया जाय, पुन उन्हे रेचित कर आगे-पीछे तथा जगल-बगल मे चलाया तथा फेका जाय, तो उसे विक्षिप्त करण कहते है ।

विनियोगोऽस्य कथित उद्धतस्य परिक्रमे ॥१२४४॥

उद्धतपूर्ण गति मे विक्षिप्त करण का विनियोग होता है ।

६४ पार्श्वनिकुट्टक और उसका विनियोग

विधाय स्वस्तिकौ हस्तौ यत्रोर्ध्वस्यस्तयोः करः । 1279
एको निकुट्टितः पार्श्वे द्वितीयोऽधोमुखस्तथा ॥१२४५॥
तद्वन्निकुट्टितौ पादावेतत्पार्श्वनिकुट्टकम् । 1280

यदि दोनो हाथो को स्वस्तिक मुद्रा मे बनाकर उनमे से एक को ऊर्ध्वमुख करके पार्श्व मे कुट्टित किया जाय और दूसरे को अधोमुख करके दूसरे पार्श्व मे कुट्टित किया जाय, उसी प्रकार दोनो पैरो को भी कुट्टित किया जाय तो उसे पार्श्वनिकुट्टक करण कहते है ।

सद्भिः सञ्चरणाभ्यासे प्रकाशेन समीरितम् ॥१२४६॥

चलने या घूमने के अभ्यास के अभिनय मे सज्जनो ने पार्श्वनिकुट्टक करण का विनियोग बताया है ।

६५ तलसरफोरित

अतिक्रान्ताख्यया चार्या दण्डपादाख्ययाथवा । 1281
क्षिप्रमुत्क्षिप्य पादेऽग्रे पात्यमाने यदा करौ ।

सशब्दां कुसुतस्ताली तलसंस्फोटितं तदा ॥१२४७॥ 1282

यदि अतिक्रान्ता या दण्डपादा चारी के द्वारा एक पैर को तेजी से ऊपर उठा कर आगे फेंक दिया जाय और दोनो हाथो से ताली बजायी जाय, तो उसे तलसंस्फोटित करण कहते है ।

६६ गण्डसूचि और उसका विनियोग

अङ्घ्रिः सूचीनत पार्श्व खटकास्यो हृदि स्थितः ।

यत्र गण्डे [भ] वेद्वामोऽलपद्मौ गण्डसूच्यदः ॥१२४८॥ 1283

अलपद्मकरस्थाने सूचीपादं परे जगुः ।

केचित्सूची नृत्तपाणि परेऽभिनयहस्तकम् । 1284

जहाँ पैर मूची मुद्रा मे पार्श्व नत तथा दायीं खटकामुख हस्त हृदय पर ओर बायीं अलपद्म हस्त कपोल पर अवस्थित हो, वहाँ गण्डसूचि करण होता है । अन्य आचार्य अलपद्म हस्त के स्थान पर सूचीपाद का निर्देश करते है । कुछ आचार्यों के मत से सूची नामक नृत्तहस्त का और कुछ के मत से केवल अभिनय-हस्त का ही विनियोग करना चाहिए ।

अनेनाभिनयेद्धीरः कपोलाभरणादिकम् ॥१२४९॥

धीर पुरुष को कपोल और आभरण आदि के अभिनय मे गण्डसूचि करण का विनियोग करना चाहिए ।

६७ सूचि और उसका विनियोग

कुञ्चितोङ्घ्रिः समुत्क्षिप्य स्थाप्यते [भूमिमस्पृश]न् । 1285

अथोरःस्थो भवेदेकः खटकास्याभिधः करः ॥१२५०॥

परोऽलपद्मः शीर्षस्थोऽन्याङ्गमेवं क्रमाद्यदा । 1286

तदैतत्करणं सूचि—

यदि कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर भूमि का स्पर्श किये बिना ही स्थापित किया जाय, खटकास्य एक हाथ को वक्ष पर और अलपद्म दूसरे हाथ को शिर पर रख दिया जाय, अन्य अंग भी इसी क्रम से सञ्चालित हो, तो उसे सूचि करण कहते है ।

—विस्मयाभिनये मतम् ॥१२५१॥

विस्मय के अभिनय मे सूचि करण का विनियोग होता है ।

६८ अर्धसूचि

एकाङ्गनिर्मितं त्वेतदर्धसूचि मतं बुधैः ॥१२५२॥ 1287

नृत्तकरण प्रकरण

उक्त सूचि करण यदि एक जग मे बनाया जाय तो उमे विद्वान अर्धसूचि करण कहते है ।

६९ गजक्रीडितक

दोलापादा यदा चारी करः करिकराभिध ।

व्यापारवान् कर्णदेशे गजक्रीडितक तदा ॥१२५३॥ 1288

यदि पैर दोलापाद चारी मे आर हाथ कटिहस्त मे वतमान रहकर वे कान के पाम क्रियाशील रहे, तो उसे गजक्रीडितक करण कहते ह ।

७० पार्श्वजानु और उसका विनियोग

ऊरुपृष्ठे समस्याङ्घ्रेः पादश्चेत्स्थापितः परः ।

अर्धचन्द्रः करः कर्त्र्यां मुष्टिस्तूरसि हस्तकः । 1289

यत्रैतत्पार्श्वजानुक्तम्—

यदि एक पर सम (साधारण) स्थिति मे हो आर दूसरा पैर जाँघ पर रख दिया जाय, एक हाथ अधचन्द्र मे कटि पर तथा दूसरा मुष्टि मुद्रा मे छाती पर रख दिया जाय, तो उसे पार्श्वजानु करण कहते है ।

—सद्भिर्युद्धनियुद्धयोः ॥१२५४॥

सज्जनो के मत से युद्ध तथा कुस्ती के अभिनय मे पार्श्वजानु करण का विनियोग होता है ।

७१ गरुडप्लुत

लतारेचितकौ यत्र करौ पादस्तु वृश्चिकः । 1290

वक्षः समुन्नतं चेत् स्यात् तत् तदा गरुडप्लुतम् ॥१२५५॥

यदि दोनो हाथो को लता रेचितक मे रख दिया जाय, पैर वृश्चिक मे कर दिया जाय, ओर छाती समुन्नत (भली भाँति उठी हुई) हो, तो वहाँ गरुडप्लुत करण होता है ।

७२ गृध्रावलीनक और उसका विनियोग

पृष्ठप्रसारितस्याङ्घ्रेरङ्गुष्ठो भुवमाश्रितः । 1291

लताकरौ करौ चेत्स्यात्तदा गृध्रावलीनकम् ।

यदि पैर को पीछे की ओर फैलाकर घुटने को कुछ मोड दिया जाय और अँगूठा भूमि को स्पर्श करता हो, दोनो हाथ लता हस्त मुद्रा मे हो, तो वहाँ गृध्रावलीनक करण होता है ।

तदवाचि महापक्षियुद्धाभिनयने बुधैः ॥१२५६॥ 1292

नृत्याध्याय

विद्वानो के मत से गरुड जादि बडे पक्षियो के युद्ध के अभिनय मे गृध्रावलीनक करण का विनियोग होता हे ।

७३ दण्डपाद और उसका विनियोग

यत्र नूपुरपादाख्या दण्डपादाभिधा तथा ।

चारो स्यादथ चेत् क्षिप्रं पाणिः स्थाप्येत दण्डवत् ।

1293

तत्तदा दण्डपाद स्यात्—

यदि पैरो से नूपुरपादा ओर दण्डपादा नामक चारियाँ बना ली जायँ, हाथ को वेग से दण्डवत् रखा जाय, तो उसे दण्डपाद करण कहते हे ।

—साटोपे तु परिक्रमे ॥१२५७॥

आडम्बर सहित (या जभिमानपूर्ण) गति के अभिनय मे दण्डपाद करण का विनियोग होता है ।

७४ सन्नत और उसका विनियोग

मृगप्लुतां विधायाद्घ्निः स्वस्तिकः पुरतः करो ।

1294

दोलौ यदा सन्नतं स्यात्—

यदि मृगप्लुता की रचना करके पैरो को स्वस्तिक मे आगे रख दिया जाय और दोना हाथो को दोला मुद्रा मे किया जाय, तो उसे सन्नत करण कहते हे ।

—नीचापसरणे तदा ॥१२५८॥

नीचो को हटाने के अभिनय मे सन्नत करण का विनियोग होता है ।

७५ सर्पित और उसका विनियोग

पराङ्घ्रेरञ्चिते पादे त्वपसर्पति मस्तकम् ।

1295

नामितं रेचितः पाणिरसौ तत्पाश्वके यदि ॥१२५९॥

एवं पराङ्गं यत्रेदं सर्पितं करणं तदा ।

1296

यदि दोनो पैर अञ्चित मे, मस्तक अपसर्प मे हो, एक हाथ नमित ओर दूसरा रेचित होकर उसके पार्श्व मे अवस्थित रहे, ओर अन्य अंग भी उसी का अनुसरण करे, तो वहाँ सर्पित करण होता है ।

उपसृत्यापसरणे सत्तस्य परिकीर्तितम् ॥१२६०॥

नृत्यकरण प्रकरण

मदमत्तता या भाववेग मे लडपडाकर जपमारित करके चलने के अभिनय मे सर्पित करण का विनियोग होता है ।

७६ मयूरललित

आचरेद् रेचितौ हस्तावूरावाकुञ्च्य वृश्चिकम् । 1297

अर्द्धि यत्र भ्रमरिकां विदध्यान्नर्तको यदि ।

तत्तदा करणं प्रोक्तं मयूरललिताभिधम् ॥१२६१॥ 1298

यदि अभिनेता दोनो हाथो मे रेचित की रचना कर फिर पैर को जाँघ पर सिकोड कर वृश्चिक बनाये, अन्त मे भ्रमरिका चारी धारण करे, तो उसे मयूरललित करण कहते हे ।

७७ सूचीविद्ध और उसका विनियोग

पक्षवञ्चितकः कस्यां यद्वा स्यादर्धचन्द्रकः ।

वक्षःस्थः खटकास्योऽन्यः सूच्यद्भिः परपार्णिगः । 1299

यत्रैतत्करण सूचीविद्धम्—

यदि पक्षवचितक या अर्धचन्द्र एक हस्त कटि पर और खटकास्य दूसरा हस्त वक्ष पर अवस्थित हो, एक सूचीपाद दूसरे सूचीपाद के समान एडी पर रहे, तो उसे सूचीविद्ध करण कहते है ।

—चिन्तादिषु स्मृतम् ॥१२६२॥

चिन्ता आदि के अभिनय मे सूचीविद्ध करण का विनियोग होता है ।

७८ प्रेङ्खोलित और उसका विनियोग

दोलापादं विधायैकपादेनाथ पराङ्घ्रिणा । 1300

उत्प्लुत्य भ्रमरी यत्र विदध्यान्नर्तको यदि ।

प्रेङ्खोलितं तदा—

यदि अभिनेता एक पैर से दोलापाद की रचना कर दूसरे पैर से उछलकर भ्रमरी का अवलम्बन करे, तो उसे प्रेङ्खोलित करण कहते है ।

—योज्यमेतल्लीलापरिक्रमे ॥१२६३॥ 1301

ल्लीला की गति प्रदर्शित करने मे प्रेङ्खोलित करण का विनियोग होता है ।

७९ स्वलित

गत्यागतौ यदा दोलापादाङ्घ्रिर्हसपक्षकः ।

अनुगच्छेद्देवमङ्गमपरं स्वलितं तदा ॥१२६४॥ 1302

यदि एक पैर से दोलापाद बनाकर दूसरे पैर से हसपक्षक धारण किया जाय, और हाथ भी तदनुसार चलाये जाय, तो उसे स्वलित करण कहते हैं ।

८० परिवृत्त

उर्ध्वमण्डलिनौ पाणी चार्या बद्धाख्यया यदि ।

सूचीपादो विवृत्तः स्याद्यत्राथ भ्रमरी भवेत् । 1303

तदेदं परिवृत्ताख्य करणं समुदीरितम् ॥१२६५॥

यदि दोनो हाथ ऊर्ध्वमण्डल मुद्रा मे हो, पैर बड़ा चागी मे होकर सूची चागी मे घुमाया जाय आर तदनन्तर त्रिक भी भ्रमरी मे हो, तो उसे परिवृत्त करण कहते हैं ।

८१ करिहस्त

खटकास्यः करो वामो हृद्यन्योद्वेष्टनेन चेत् ।

1304

कर्णेऽन्यस्त्रिपताकोऽथ सपादः पुरतोऽञ्चितः ।

निर्गच्छति तदैतत्स्यात्करणं करिहस्तकम् ॥१२६६॥ 1305

यदि खटकास्य नामक बाँया हाथ दूसरे हाथ से उद्वेष्टित होकर हृदय पर रहे, फिर दूसरा बाँया त्रिपताक हाथ कान पर रहे, और अञ्चित नामक पैर आगे निकल कर संचलित हो, तो उसे करिहस्त करण कहते हैं ।

८२ प्रसर्पित और उसका विनियोग

रेचितो यः करः सोऽङ्घ्रियत्र घर्षन् भुव व्रजेत् ।

शनैः शनैरन्यपादादपरश्चेत्लताकरः ।

1306

प्रसर्पितमिदं धीरैस्तदा—

यदि एक हाथ रेचित मे और दूसरा लता मे रखा जाय, दोनो पैर प्रसर्प मे धीरे-धीरे भूमि पर संचालित किये जाय, तो धीर पुरुषो के मत मे उसे प्रसर्पित करण कहते हैं ।

—खगगतौ मतम् ॥१२६७॥

आकाशचारी जीवो की गति के अभिनय मे प्रसर्पित करण का विनियोग होता है ।

नृत्यकरण प्रकरण

८३ पार्श्वक्रान्त और उसका विनियोग

पार्श्वक्रान्ता यदा चारी पाणी पादानुगामिनौ । 1307
पार्श्वक्रान्तं तदा—

यदि पैर पार्श्वक्रान्ता चारी में हो जाए दोनों हाथों को भी उभी मुद्रा में मंचालित किया जाय, तो उसे पार्श्वक्रान्त करण कहते हैं ।

—रौद्रभीमादीनां परिक्रमे ॥१२६८॥

रौद्र रस आर भीम आदि वीर पुम्पो के अभिनय में पार्श्वक्रान्त करण का विनियोग होता है ।

८४ निवेश

हस्तौ वक्षस्थितौ यत्र वक्षो निर्भुगसंज्ञितम् । 1308
स्थानक मण्डल सद्भिर्निवेश तदुदीरितम् ॥१२६९॥

यदि दोनों हाथ छाती पर रख दिये जाँय, वक्ष निर्भुग (सीधा तना हुआ) हो, और मण्डल स्थानक बना लिया जाय, तो गज्जनो के अनुसार उसे निवेश करण कहते हैं ।

८५ नितम्ब

अधोमुखाङ्गुली पाणी पताकौ प्राप्य मूर्धनि । 1309
निष्क्रम्य परिवृत्त्योर्ध्व स्कन्धयोः स्वीययोस्ततः ॥१२७०॥
न्यस्यान्यौन्यमुखौ यत्र स्वगात्राभिमुखाङ्गुली । 1310
कुर्यात् नितम्बहस्तौ तन्नितम्बकरणं मतम् ॥१२७१॥

यदि दोनों पताक हस्तों को अधोमुख करके शिर पर रख दिया जाय, तदुपरान्त उन दोनों हस्तों को अपने दोनों कन्धों के ऊपर निकाल कर घुमा दिया जाय, फिर दोनों को आमने-सामने करके उनकी उँगलियों को अपने शरीर के सम्मुख रख दिया जाय, और उन्हें नितम्बाकार बना दिया जाय, तो उस मुद्रा को नितम्ब करण कहते हैं ।

८६ हरिणप्लुत और उसका विनियोग

हरिणप्लुतया चार्या भवेता यदि हस्तकौ । 1311
खटकामुखदोलाख्यौ तदैतद्धरिणप्लुतम् ।

उक्तं श्रीमदशोकेन—

यदि पैर हरिणप्लुत चारी मे ओर दोनो हाथ खटकामुख तथा दोला मे अवस्थित किये जाय, तो नृपति अशोकमल्ल ने उसे हरिणप्लुत करण कहा है ।

—हरिणप्लुतिगोचरम् ॥१२७२॥ 1312

हरिणो की छलॉंग के अभिनय मे हरिणप्लुत करण का विनियोग होता है ।

८७ सिंहविक्रीडित और उसका विनियोग

पुरः कृत्वालातपादं यत्र हन्तुमिवोद्यतः ।

पाणिस्तथापराङ्गं स्यात्सिंहविक्रीडितं तदा । 1313

यदि पैर मे अलात बनाकर उसे आगे करके और हाथ को मारने की स्थिति मे किया जाय, तथा दूसरे हाथ-पैरो को भी तदनुसार संचालित किया जाय, तो वहाँ सिंहविक्रीडित करण होता है ।

रौद्रगत्यामिदं प्रोक्तं नृत्तविद्याविशारदैः ॥१२७३॥

नाट्याचार्यो ने रौद्र गति के अभिनय मे सिंहविक्रीडित करण का विनियोग कहा है ।

८८ सिंहाकर्षित और उसका विनियोग

वामोऽङ्घ्रिवृश्चिकः पद्मकोशौ यदूर्णनाभकौ । 1314

पराङ्घ्रौ वृश्चिकीकृतो भङ्क्त्वा चेत्प्राक्तनौ करौ ।

पुनस्तथा कृतौ सिंहे सिंहाकर्षितकं तदा ॥१२७४॥ 1315

यदि बाँया पैर वृश्चिक मे, दोनो हाथ पद्मकोश या ऊर्णनाभ मे किये जायँ, फिर दूसरे पैर पर, वृश्चिकाकार दोनो हाथो को भग करके फिर उन्हे वृश्चिकाकार बना दिया जाय (अर्थात् इस क्रिया को बार-बार दुहराया जाय), तो उसे सिंहाकर्षित करण कहते हे । सिंह के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

८९ जनित और उसका विनियोग

जनिता यत्र चारी स्यान्मुष्टिर्वक्षःस्थलेऽपरः ।

करौ लताकरस्तत् स्यादारम्भे जनितं कृते ॥१२७५॥ 1316

यदि पैरो मे जनिता चारी, हाथ वक्षस्थ पर और दूसरा हाथ लता मुद्रा मे हो, तो उसे जनित करण कहते है । (सब प्रकार के) अभिनयो के आरम्भ करने मे इस करण का विनियोग होता है ।

नूतनकरण प्रकरण

९० अवहित्य और उसका विनियोग

चारीमारच्य जनिता चेदरालालपल्लवौ ।
भालवक्षःस्थितौ हस्तौ क्रमादभिमुखाङ्गुली ॥१२७६॥ 1317
विधायोद्वेष्टितेनाथ पार्श्वगौ परिवृत्तितः ।
ततोपवेष्टच वक्षोगौ परिवृत्त्या पुनस्तथा ॥१२७७॥ 1318
न्यस्येते सम्मुखौ यत्र मिथस्तदवहित्यकम् ।

पैरो मे जनिता चारी की रचना करके यदि अराल और पल्लव दोनों हाथों को क्रमशः ललाट तथा वक्ष पर रख दिया जाय, उनकी उँगलियाँ एक-दूसरे के आमने-सामने कर दी जाँय, फिर उन्हें उद्वेष्टित करके पार्श्व में घुमा कर अलग कर दिया जाय और छाती पर रख दिया जाय, तत्पश्चात् पुनः घुमाकर दोनों को पूर्ववत् आमने-सामने रख दिया जाय, तो उस मुद्रा को अवहित्य करण कहते हैं ।

गोपनाप्रायवाक्यार्थगोचरं परिकीर्त्तितम् ॥१२७८॥ 1319
इदं परेऽवहित्याख्यं करयोगाद्भाषिरे ।
चिन्तादौर्बल्यविषयं नूतविद्याविशारदाः ॥१२७९॥ 1320

अगोचर अर्थयुक्त वाक्यों के अभिनय में बहुधा अवहित्य करण का विनियोग होता है । कुछ नूताचार्यों का कहना है कि इस अवहित्य करण को, हाथ के योग से, चिन्ता तथा दुर्बलता का भाव प्रकट करने के अभिनय में प्रयुक्त किया जाता है ।

९१ उद्वृत्त

प्रसार्याक्षिप्यते क्षिप्रं पाणिपादं यदैकदा ।
अङ्गमुद्वृत्तचारीकमुद्वृत्तं तदुदीरितम् ॥१२८०॥ 1321

यदि एक हाथ-पैर को एक ही बार में शीघ्रतापूर्वक फेंकाकर आक्षिप्त कर दिया जाय, दूसरे पैर और हाथ में उद्वृत्ता चारी और धड भी उद्वृत्त कर दिया जाय, अर्थात् उठा दिया जाय, तो उसे उद्वृत्त करण कहते हैं ।

९२ तलसघट्टित

दोलापादाभिधां चारीमाचरन् यदि हस्तकौ ।
सङ्घट्टिततलौ कृत्वा पताकौ वैष्णवे स्थितः ॥१२८१॥ 1322

स्थानकेऽथ करं सव्यं कथ्यां न्यस्येत् ततः पराम् ।

विदध्याद्रेचितं पाणि तलसङ्घट्टितं तदा ॥१२८२॥ 1323

यदि दोलापाद नामक चारी की रचना करके दोनों पताक हस्तों की हथेलियों को मिला दिया जाय, फिर वैष्णव स्थानक धारण किया जाय, तत्पश्चात् दाहिने हाथ को कटि पर रख कर हमारे बाये हाथ को रेचित में कर दिया जाय, तो उस मुद्रा को तल सङ्घट्टित करण कहते हैं ।

९३ लोलित

यदैको रेचितो हस्तोऽन्योऽलपद्मो हृदि स्थितः ।

शिरस्तु लोलितं पार्श्वद्वये विश्रान्तिमत् ततः । 1324

वैष्णवं स्थानकं यत्र तदा तल्लोलितं मतम् ॥१२८३॥

यदि एक हाथ रेचित और दूसरा अलपद्म बना कर हृदय पर रख दिया जाय, फिर शिर को भी लोलित करके उसे (क्रमशः) दोनों पार्श्वों में अवस्थित किया जाय, तदनन्तर वैष्णव स्थानक की रचना की जाय, तो उसे लोलित करण कहते हैं ।

९४ शकटास्य और उसका विनियोग

शकटास्याभिधा चारी पाणिरेकोऽङ्घ्रिणा समम् । 1325

प्रसृतोऽथ परो हस्तः खटकास्यो हृदि स्थितः ।

यत्रेदं शकटास्यं स्याद्—

यदि शकटास्य चारी की रचना करके एक हाथ एक पैर के समान फैला हो ओर दूसरा खटकास्य मुद्रा में हृदय पर अवस्थित हो, तो वहाँ शकटास्य करण होता है ।

—बालखेलनगोचरम् ॥१२८४॥ 1326

बालक्रीडा के अभिनय में शकटास्य करण का विनियोग होता है ।

९५ वृषभक्रीडित

चारिं कुर्वन्नलातां चेदाचरेद्रेचितौ करौ ।

व्यावर्त्तनेन चाकुञ्च्य स्थापयेद् भुजशीर्षयोः । 1327

अलपद्माकृती कृत्वा वृषभक्रीडितं तदा ॥१२८५॥

नृत्तकरण प्रकरण

यदि अग्रान चारी की रचना करके दोनों हाथों को रेचिन में कर दिया जाय फिर उन्हें अल्पद्य में परिणन करके मुदाव के माथ भीतर की ओर भिकोड कर भुजा जाग मिर पर रग दिया जाय, तो उसे वृषभक्रीडित करण कहते हैं ।

९६ एलकाक्रीडित और उसका विनियोग

एलकाक्रीडिता चारी चेदोलखटकामुखौ । 1328
सन्नतं वलित चाङ्गमेलकाक्रीडितं तदा ।

यदि एलकाक्रीडिता चारी की रचना करके दोनों हाथों को दोल तथा खटकामुख में कर दिया जाय, शरीर झुका तथा वलित हो, तो उसे एलकाक्रीडित करण कहते हैं ।

गमने त्वधमानां तन्नियोज्यं नृत्तवेदिभिः ॥१२८६॥ 1329

नाट्याचार्यों के मत से तुच्छ व्यक्तियों की गति के अभिनय में एलकाक्रीडित करण का विनियोग होता है ।

९७ विष्कम्भ

अपसृत्य यदा वामं सव्यः सूचीमुख. कर. ।
उपगच्छेन्निकुट्टयेत सपादोऽन्यः करो हृदि ॥१२८७॥ 1330
विधायैवं पराङ्गं च सूचीपादस्तु दक्षिणः ।
एषोऽलपल्लव पाणिरपरः पूर्ववद्भवेत् । 1331
पौनः पुन्येन यत्रैवं विष्कम्भं तदोदितम् ॥१२८८॥

यदि बाँये हाथ को हटाकर उसे दाहिने सूचीमुख हाथ के समीप लाया जाय और पैर सहित कुट्टित किया जाय, फिर दूसरे दाहिने हाथ को हृदय पर अवस्थित किया जाय, शरीर को भी तद्वत् मचालित किया जाय, तत्पश्चात् दाँये सूचीपाद और बाँये अलपल्लव हस्त को बार-बार इसी प्रकार किया जाय, तो उसे विष्कम्भ करण कहते हैं ।

९८ उपसृत और उसका विनियोग

कृत्वा क्षिप्ताभिधा वामभागे चारी तत. करम् । 1332
व्यावृत्तं परिवृत्तं च सव्ये पार्श्वे नते यदि ॥१२८९॥
अरालतां नयेदेनं तदोपसृतमीरितम् । 1333

नृत्याध्याय

यदि बाँये पैर से आक्षिप्ता चारी का निर्माण कर हाथ को व्यावृत्त तथा परिवृत्त किया जाय, दाहिने पार्श्व को नत किया जाय, फिर उसे अराल मुद्रा में परिणत कर दिया जाय, तो उसे उपसृत करण कहते हैं।

श्रीमदशोकमल्लेन

विनयेनोपसर्पणे ॥१२६०॥

नृपति अशोकमल्ल के अनुसार विनयपूर्वक समीप आने के अभिनय में उपसृत करण का विनियोग होता है।

९९. विष्णुक्रान्त और उसका विनियोग

यत्रोर्ध्वं प्रसरत्यग्रे चरणञ्चलनोन्मुखः ।

1334

कुञ्चितोऽथ यदा स्यातां हस्तकौ रेचितौ तदा ।

विष्णुक्रान्तमिदं प्रोक्तम्—

आगे चलने के लिए उन्मुख ऊपर की ओर प्रसारित पैर यदि मोड़ दिया जाय और दोनों हाथों को रेचित कर दिया जाय, तो उसे विष्णुक्रान्त करण कहते हैं।

—विष्णुक्रमणगोचरम् ॥१२६१॥ 1335

भगवान् विष्णु की गति के अभिनय में विष्णुक्रान्त करण का विनियोग होता है।

१०० अपक्रान्त

बद्धां चारीमपक्रान्तां चाचरन् रचयेत्करौ ।

प्रयोगानुगतौ यत्र तदपक्रान्तमीरितम् ॥१२६२॥ 1336

यदि बद्धा और अपक्रान्ता चारियों की रचना करते हुए (अर्थात् दोनों जाँघों से वलित करके टाँगें अपक्रान्त क्रम में चलायी जाँय), दोनों हाथों को भी तदनुसार संचालित किया जाय, तो उसे अपक्रान्त करण कहते हैं।

१०१ ऊरुद्वृत्त और उसका विनियोग

चार्योऽरुद्वृत्तया सार्धमरालखटकामुखौ ।

यत्रोरुपृष्ठयोर्न्यस्येद्वर्तनापूर्वकौ करौ ॥१२६३॥ 1337

ऊरुद्वृत्तमिदं प्रोक्तम्—

यदि ऊरुद्वृत्ता चारी के साथ अराल और खटकामुख हस्तों को वर्तना क्रिया के उपरान्त, ऊरु के पृष्ठभाग पर रख दिया जाय, तो उसे ऊरुद्वृत्त करण कहते हैं।

—ईष्यप्रिणयकोपयोः ।

प्रार्थनायामपि नृपाशोकमल्लेन धीमता ॥१२६४॥ 1338

नृपति अशोकमल्ल के मत मे ईष्या, प्रणय-कोप और प्रार्थना के अभिनय मे ऊरुद्वृत्त करण का विनियोग होता है ।

१०२ अञ्चित और उसका विनियोग

व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां नासिकाक्षेत्रसञ्चितः ।

करिहस्तो यदा धत्तोऽलपद्मत्व तदाञ्चितम् । 1339

यदि करिहस्त हाथ व्यावृत्त-परिवृत्त द्वारा (अर्थान् घुमाकर तथा मोड़कर) नासिका स्थान पर पहुँच कर अलपद्म हस्त का स्वरूप धारण कर लेता है, तो उसे अञ्चित करण कहते हैं ।

आत्मनः कौतुकादेतत् सम्मुस्यावलोकने ॥१२६५॥

जब कोई नर्तकी अन्य नर्तकी के सामने अपने कौतुकवश ताकती है, तब उस अभिनय मे अञ्चित करण का विनियोग होता है । (अथवा अपने कौतुकवश सामने ताकने के आशय मे उसका विनियोग होता है)

१०३ सम्भ्रान्त और उसका विनियोग

विधायविद्धचारी चेद्व्यावर्त्य परिवृत्तितः । 1340

अलपद्माभिधं पाणि स्थापयेदूरुपृष्ठके ।

तदा सम्भ्रान्तमादिष्टम्—

यदि अविद्धा चारी की रचना करके अलपद्म हस्त को चारो ओर घुमाकर ऊरु के पृष्ठ भाग पर रख दिया जाय, तो उसे सम्भ्रान्त करण कहते हैं ।

—ससाध्वसपरिक्रमे ॥१२६६॥ 1341

भयपूर्ण या घबराहट युक्त की गति के अभिनय मे सम्भ्रान्त करण का विनियोग होता है ।

१०४ मदस्खलित और उसका विनियोग

स्वस्तिकीभूय यत्राङ्घ्री क्रमेणैवापसर्पतः ।

परिवाहितसंज्ञं च शिरो दोलाभिधौ करौ । 1342

इदं मदस्खलितकं कथितम्—

शदि दोनो पैर स्वस्तिक मुद्रा मे क्रमश पीछे की ओर हटते जाँय, शिर परिवाहित मे और दोनो हाथ डोला मे हो, उसे मदस्खलित करण कहते हैं ।

नृत्याध्यायः

—मध्यमे मदे ॥१२६७॥

मध्यम मदे के अभिनय मे मध्यस्थलित करण का विनियोग होता है ।

१०५. अर्गल और उसका विनियोग

वामस्याङ्घ्रिः कनिष्ठायाः भागेऽङ्घ्रिर्दक्षिणः स्थितः । 1343

अथान्यः स्तब्धजङ्घः सन् सार्धतालद्वयान्तरे ॥१२६८॥

प्रसारितोऽथ पाणिः सन् स्तब्धबाहुः स्वपार्श्वके । 1344

यदालपल्लवः किञ्चित्प्रसृताग्रोऽपरस्तदा ।

अर्गलं गदितं धीरैः—

यदि बाये पर की कनिष्ठा उगली के अग्रभाग मे दाहिना पैर अवस्थित किया जाय, दूसरे पैर की जंघा निश्चल रहे, एक पैर दूसरे पैर के ढाई ताल आगे रख दिया जाय, उसके बाद एक हाथ की बाँह निश्चल रहे और वह अपने पार्श्व मे अलपल्लव मुद्रा मे हो, दूसरा हाथ (पैरो की उक्त स्थिति के अनुरूप) अग्रभाग मे कुछ प्रसृत होकर अवस्थित रहे, तो विद्वानो के मत से उसे अर्गल करण कहा जाता है ।

—अङ्गदादि परिक्रमे ॥१२६९॥ 1345

अङ्ग आदि की गति के अभिनय मे अर्गल करण का विनियोग होता है ।

१०६ रेचकनिकुट्टक

सव्यः स्याद्रेचितः पाणिः सपादस्तु निकुट्टितः ।

वामो दोलाकरो यत्र तद्रेचकनिकुट्टकम् ॥१३००॥ 1346

यदि दाहिना रेचित हस्त, पैर सहित कूटा जाय और बाये हाथ दोलाकर मुद्रा मे हो, तो उसे रेचकनिकुट्टक करण कहते हैं ।

१०७ नागापसर्पित और उसका विनियोग

[हस्तौ चेद् रेचितौ स्यातां शिरस्तु परिवाहितम्] ।

स्वस्तिकीभूय चेदङ्घ्रि कुरुतोऽपसृति तदा । 1347

नागापसर्पितं प्रोक्तं नृत्तज्ञैः—

यदि दोनो हाथ रेचित मुद्रा मे हो, शिर परिवाहित हो और दोनो पैर स्वस्तिक होकर पीछे की ओर चले, तो नृत्तवेत्ताओ ने उसे नागापसर्पित करण कहा है ।

१. देखिए. सगीतएल्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ७४५ (अडियार सस्करण) ।

नृतकरण प्रकरण

—तरुणे मदे ॥१३०१॥

तरुण मद के अभिनय मे उसका विनियोग होता है ।

१०८ गगावतरण और उसका विनियोग

अङ्घ्रेस्तु क्षेपनिक्षेपौ भवेतां चेद्यथा यथा । 1348

तथा पाणी पताकाख्यावुभावुन्नतिसन्नती ॥१३०२॥

कुरुतः संनतं शीर्षं गङ्गावतणं तदा । 1349

पैर जैसे-जैसे चले, तदनुसार दोनो पताक हस्त उन्नति तथा अवनति को धारण करे और शिर सनत मुद्रा मे अवस्थित हो, तो ऐसी क्रिया को गगावतरण करण कहते है ।

गङ्गावतरणे योज्यमिदं नृत्ताविचक्षणैः ॥१३०३॥

नाट्याचार्यो ने गगा जी के पृथ्वी पर उतरने के अभिनय मे उसका विनियोग बताया है ।

करण प्रयोग के विशेष निर्देश

वामो बाहुल्यतः कार्यः करः करणकर्तृभिः । 1350

वक्षःस्थः करणेष्वन्यो ज्ञेयस्तत्करणानुगः ॥१३०४॥

अनुक्तनियमेषु परिभाषोदिता बुधैः । 1351

करणेषुऽनुक्तचारीके चारी तच्चरणानुगा ।

ज्ञेया ज्ञेयोऽथवा पादः करानुगतिसुन्दरः ॥१३०५॥ 1352

करणो के निर्माताओ या प्रयोक्ताओ को चाहिए कि वे बाये हाथ का प्रयोग अधिक करे । करणो मे दाहिने हाथ को छाती पर रखे ओर वह करणो का अनुगामी हो । किसी नियम विशेष का निर्देश न करते हुए भी विद्वानो ने यह परिभाषा (सामान्य नियम) बताया है । जहाँ करण मे चारी का उल्लेख न किया गया हो, वहाँ करण के पैर के अनुसार चारी को योजना कर लेनी चाहिए, अथवा हस्त-संचालन के अनुसार पैर की सुन्दर रचना करनी चाहिए ।

एक सौ आठ नृतकरणो का निरूपण समाप्त



उत्प्लुतिकरणो का निरूपण / बारह

उत्प्लुतिकरणो का निरूपण

अथोद्दिशति देशोविद् देशीस्थकरणानि च ।

उत्प्लुत्याद्यानि भूमीन्द्रो वैरिहा वीरसिंहज. ॥१३०६॥ 1353

देश-विशेष की गति-विधियों को जानने वाले शत्रुहन्ता महाराज वीरसिंह-पुत्र अशोकमल्ल ने देशविशेष में किये जाने वाले उत्प्लुति आदि करणों को (इस प्रकार) निरूपित किया है ।

उछल कर किये जाने वाले करणों (उत्प्लुतिकरण) के भेद

- अञ्चितं करणं पूर्वमेकपादाञ्चित परम् ।
समपादाञ्चितं तिर्यगञ्चितं भैरवाञ्चितम् । 1354
भ्रान्तपादाञ्चितं दण्डप्रणामाञ्चितकं तथा ॥१३०७॥
अञ्चितं कर्तरीपूर्वं लङ्कादाहाञ्चितं तथा । 1355
समकर्तर्यञ्चितं च बलिबन्धाञ्चितं तथा ॥१३०८॥
अथ क्षेत्राञ्चितं तद्वदन्यत् स्कन्धाञ्चिताभिधम् । 1356
करणं चालगं चोर्ध्वालगं स्यादन्तरालगम् ॥१३०९॥
कूर्मालगं लोहडी स्यादेकपादादिलोहडी । 1357
विचित्रलोहडी बाहुबन्धलोहड्यपीतरा ॥१३१०॥
कर्त्तर्याद्या लोहडी च समकर्त्तरिलोहडी । 1358
चतुर्मुखादिरन्यास्याल्लोहडी चालगाञ्चितम् ॥१३११॥
जलादिशयनं दर्पशरणं नागबन्धकम् । 1359
अथ स्यान्मत्स्यकरणं तिर्यक्करणमेव च ॥१३१२॥
कपालचूर्णनं तिर्यक्स्वस्तिकं नतपृष्ठकम् । 1360
कराद्यं स्पर्शनं स्कन्धभ्रान्तमेणप्लुतं तथा ॥१३१३॥
लोहड्यञ्चितकं तद्वत्सूच्यन्तमथ लक्षणम् । 1361

नृत्याध्याय

उत्प्लुतिकरणो के अडतीस भेद होते हैं १ अञ्चित, २ एकपादाञ्चित, ३ समपादाञ्चित, ४ तिर्यगञ्चित, ५ भ्रंवाञ्चित, ६ भ्रान्तपादाञ्चित, ७ दण्डप्रणामाञ्चित, ८ कर्त्तर्यञ्चित, ९ लकादाहाञ्चित, १० समर्त्तर्यञ्चित, ११ बालिबन्धाञ्चित, १२ क्षेत्राञ्चित, १३ स्कन्धाञ्चित, १४ अलग, १५ ऊर्ध्वालग, १६ अन्तरालग, १७ कूर्मालग, १८ लोहडी १९ एकपादलोहडी, २० विचित्रलोहडी, २१ बाहुबन्धलोहडी, २२ कर्त्तरीलोहडी, २३ समकर्त्तरीलोहडी, २४ चतुर्मुखलोहडी, २५ अलगाञ्चित, २६ जलशयन, २७ दर्पशरण, २८ नागबन्ध, २९ मत्स्यकरण ३० तिर्यक्करण, ३१ तिर्यक्स्वरितक, ३२ कपालचूर्णन, ३३ नतपृष्ठक, ३४ करस्पर्श, ३५ स्कन्धभ्रात, ३६ एणप्लुत, ३७ लोहड्याञ्चित और ३८ सूच्यन्त ।

उच्यते क्रमतोऽमीषां मया लक्ष्यानुसारतः ॥१३१४॥

अब लक्ष्य के अनुसार इन करणों का क्रमशः लक्षण निरूपित किया जा रहा है ।

१ अञ्चित

विधाय समपादाख्यं स्थानमुत्तानितो यदा । 1362

उत्पतेदञ्चितं प्रोक्तं तदा करणवेदिभिः ॥१३१५॥

जब समपाद नामक स्थानक को बनाकर उत्तान होकर उछला जाय, तब करण के ज्ञाताओं ने उसे अञ्चित करण बताया है ।

२ एकपादाञ्चित

एकपादाञ्चितं प्रोक्तमन्वर्थं करणं बुधैः ॥१३१६॥ 1363

विद्वानो ने एकपादाञ्चित करण को अर्थ के अनुरूप बताया है ।

३ समपादाञ्चित

कृत्वोर्ध्वास्यौ समौ पादौ स्कन्धेनाक्रम्य भूतलम् ।

पादाबुल्लालन्यत्र परिवर्तनमाचरेत् । 1364

तिर्यक्क्रमादिदं प्रोक्तं समपादाञ्चितं बुधैः ॥१३१७॥

यदि सम नामक दोनों चरणों को ऊर्ध्वमुख करके कर्ण से भूतल को छूकर दोनों चरणों को सहलाते हुए तिरछे क्रम से घुमाया जाय, तो उसे विद्वानों ने समपादाञ्चित करण कहा है ।

४ तिर्यगञ्चित

समपादात्कृते तिर्यगुत्प्लवे तिर्यगञ्चितम् ॥१३१८॥ 1365

समस्थित पैर से तिरछा कूदने पर तिर्यगञ्चित करण होता है ।

उत्प्लुतिकरणो का निरूपण

५ भैरवाञ्चित

ऊरुस्थितैकपादस्योत्प्लवने भैरवाञ्चितम् ॥१३१६॥

ऊरु पर एक पैर को रखकर उछलने से भैरवाञ्चित करण होता है ।

६. भ्रान्तपादाञ्चित

आक्रम्यांसद्वयेनोर्वी भ्रामयित्वा तु दक्षिणम् । 1366

अर्द्धा तदीयपृष्ठेन वामाङ्घ्रेस्तु निपीडयेत् ॥१३२०॥

जङ्घामध्य [मथा] रच्याञ्चितं कृतविवर्तनम् । 1367

पादावुल्लालयेद्यत्र भ्रान्तपादाञ्चितं त्विदम् ॥१३२१॥

यदि दोनो कन्धो मे पृथ्वी का स्पर्श करके दाहिने पैर को घुमाकर उसके पृष्ठभाग से बाये पैर को पीडित किया जाय, फिर घुमाये हुए अञ्चित पैर को जँघा के बीच में करके दोनो पैरो को सहलाया जाय, तो ऐसा करने से भ्रान्तपादाञ्चित करण बनता है ।

७ दण्डप्रणामाञ्चित

उत्प्लुत्याञ्चितवद्यत्र धराया दण्डवत्पतेत् । 1368

तदुक्तं करणं दण्डप्रणामाञ्चितसंज्ञकम् ॥१३२२॥

अञ्चित करण की तरह उछलकर पृथ्वी पर डंडे की भाँति गिरने से दण्डप्रणामाञ्चित करण होता है ।

८ कर्तर्यञ्चित

कर्तर्यञ्चितमेतत्स्याद्यत्राङ्घ्रिस्वस्तिकाञ्चितम् ॥१३२३॥ 1369

जहाँ पैरो को स्वस्तिकाकार करके अञ्चित करण बनाया जाता है वहाँ कर्तर्यञ्चित करण होता है ।

९ लकादाहाञ्चित

अञ्चितं रचयन्देहविवृत्योरुपराङ्मुखः ।

महीतले यदासीनो विदध्यादुत्कटासनम् । 1370

तदा करणमादिष्टं लङ्कादाहाञ्चिताभिधम् ॥१३२४॥

जब अञ्चित करण की रचना करते हुए शरीर को घुमाकर ऊरु की ओर से मुँह फेरकर पृथ्वी पर बैठकर उत्कटासन लगाया जाता है, तब लकादाहाञ्चित करण होता है ।

नृत्याध्यायः

१०. समकर्तयञ्चित

समपादं समाधाय यदा कृत्वाञ्चितं नटः । 1371

रचयेत्स्वस्तिकौ तत्सत्समकर्मरिकाञ्चितम् ॥१३२५॥

जब नट सम स्थित पैर की रचना करके अञ्चित करण करने के उपरान्त स्वस्तिक हाथों का निर्माण करता है, तब समकर्तयञ्चित करण होता है ।

११ बलिबन्धाञ्चित

कृत्वाग्रे गजदन्तं तु विदध्यादञ्चितं यदा । 1372

बलिबन्धाञ्चितं ज्ञेयं तदा करणकोविदैः ॥१३२६॥

जब पहले गजदन्त नामक हाथ की रचना करके अञ्चित करण किया जाता है तब उसे करणवेत्ता विद्वानों को बलिबन्धाञ्चित करण जानना चाहिए ।

१२ क्षेत्राञ्चित

आदौ प्रान्ते च यत्र स्यादञ्चितस्योत्कटासनम् । 1373

इदं क्षेत्राञ्चितं प्रोक्तमशोकेन महीभुजा ॥१३२७॥

जहाँ अञ्चित करण के आदि और प्रान्त में उत्कटासन किया जाता है, वहाँ राजा अशोकमल्ल ने क्षेत्राञ्चित करण बताया है ।

१३ स्कन्धाञ्चित

रचयित्वाञ्चितं यत्र स्कन्धालिङ्गितभूतलः । 1374

तिर्यगुल्लालयन्पादाववतिष्ठेत सत्वरम् ।

इदं स्कन्धाञ्चितं प्रोक्तं करणं प्राक्तनैर्बुधैः ॥१३२८॥ 1375

पुरातन आचार्यों का मत है कि जहाँ अञ्चित की रचना करके कन्धों से पृथ्वी का आलिगन किया जाय और तिरछे पैरों को सहलाते हुए शीघ्रता से उठा जाय, तो वहाँ स्कन्धाञ्चित करण होता है ।

१४ अलग

अधोमुखः समुत्प्लुत्य निपत्य पुरतो यदा ।

कुक्कुटासनमाबध्य स्थितश्चे [दलगं तदा] ॥१३२९॥ 1376

जब मुँह नीचे की ओर किये उछलकर तथा सामने गिरकर एव कुक्कुटासन बाँधकर स्थित हुआ जाय, तो वहाँ अलग करण होता है ।

उत्प्लुतिकरणो का निरूपण

१५ ऊर्ध्वालग

समाङ्घ्रेरुर्ध्वता स्थित्या निपत्योर्ध्वालगं मतम् ॥१३३०॥

गिरकर स्थित होने में यदि सम नामक पैर ऊपर की ओर रहे तो ऊर्ध्वालग करण होता है ।

१६ अन्तरालग

विधायालगमुत्तानोरःस्थलो भुवि चेत् पतेत् । 1377

शिरसा पृष्ठतः श्रोणेः संस्पर्शादन्तरालगम् ॥१३३१॥

अलग करण की रचना करके यदि छाती को उत्तान किये सिर के बल भूमि पर गिरा जाय ओर पीछे की ओर से कटि का स्पर्श किया जाय, तो वहाँ अन्तरालग करण होता है ।

१७ कूर्मालग

कूर्मासनं चेदलगे तदा कूर्मालगं मतम् ॥१३३२॥ 1378

यदि अलग करण में कूर्मालग लगा लिया जाय तो, वह कूर्मालग करण कहलाता है ।

१८ लोहडी

समावङ्घ्री विधायाथ विवर्त्य त्रिकमाचरेत् ।

तिर्यगुत्प्लवनं यत्र सद्भिः सा लोहडी मता । 1379

लोहडी लुठितं केचिदेतामेव प्रचक्षते ॥१३३३॥

सम स्थित दोनों पैरों की रचना करके तीन बार घुमाकर जहाँ तिरछा कूदा जाय, वहा लोहडी करण होता है । इसी लोहडी को कोई विद्वान् लुठित कहते हैं ।

१९ एकपादलोहडी

एकपादेन रचिता सैकपादादिलोहडी ॥१३३४॥ 1380

जो लोहडी एक पैर से रची जाती है उसे एकपादलोहडी करण कहते हैं ।

२० विचित्रलोहडी

गात्रस्य चक्रवद्भ्रान्तिस्तिर्यक्पाश्वोपलक्षिता ।

यत्र सोक्ता विचित्राद्या लोहडी नृत्तवेदिभिः ॥१३३५॥ 1381

नाट्याचार्यों को अभिमत है कि जहाँ शरीर को चक्र की तरह घुमाया जाय और पार्श्व तिरछा दिखाई पड़े, वहाँ विचित्रलोहडी करण होता है ।

२१ बाहुबन्धलोहडी

गजदन्तयुता त्वेषा बाहुबन्धादिलोहडी ॥१३३६॥

जिस लोहडी मे गजदन्त नामक हाथ का प्रयोग किया जाता है, वह बाहुबन्धलोहडी कहलाती है ।

२२ कर्तरीलोहडी

स्वस्तिकाङ्घ्रिकृता त्वेषा कर्तरीलोहडी मता ॥१३३७॥ 1382

जो लोहडी स्वस्तिकाकार पैरो से की जाती है, वह कर्तरीलोहडी कहलाती है ।

२३ समकर्तरीलोहडी

आदौ प्रान्ते च यस्याः स्तः समौ स्वस्तिकतां गतौ ।

पादौ सा लोहडी ज्ञेया समकर्तरिपूर्वका ॥१३३८॥ 1383

जिस लोहडी के आदि और प्रान्तभाग मे दोनो सम नामक पैर स्वस्तिक मुद्रा को धारण करे, वह समकर्तरीलोहडी कहलाती है ।

२४ चतुर्मुखलोहडी

लोहडी या चतुर्दिक्षु सा चतुर्मुखलोहडी ॥१३३९॥

जो लोहडी चारो दिशाओ मे की जाती है, वह चतुर्मुख लोहडी कहलाती है ।

२५ अलगाञ्चित

कृत्वालगं यदावेगादञ्चितं रचयेन्नटः । 1384

तदालगाञ्चितं ज्ञेयं सद्भिरन्वर्थनामकम् ॥१३४०॥

जब अलग करण की रचना करके नट वेग से अञ्चित पैर की रचना करता है, तब सज्जन लोग उसे अर्थ के अनुरूप नाम वाला अलगाञ्चित करण समझते है ।

२६ जलशयन

जलादिशयनं तत्स्याद्यत्रास्ते जलशायिवत् ॥१३४१॥ 1385

जिस करण मे, जल मे सोने वाले की तरह अवस्थित होना पडता है, उसे जलशयन करण कहते हैं ।

२७ दर्पशरण

वैष्णवस्थानभाधाय पतेत्पाश्वेन चेद् भुवि ।

तदाचष्ट नृपो दर्पशरणं वीरसिंहजः ॥१३४२॥ 1386

यदि वैष्णव स्थानक का आश्रय लेकर बगल से पृथ्वी पर गिरा जाय, तो राजा वीरसिंह के पुत्र अशोकमल्ल ने उसे दर्पशरण करण कहा है ।

उत्प्लुतिकरणो का निरूपण

२८ नागबन्ध

[स्या^१द्वर्षसरणस्यान्ते नागबन्धवदासनम् ।

यत्र तन्नागबन्धाख्यं करणं तद्विदो विदुः । 1387

जहाँ दर्पसरण के अन्त में नागबन्ध के समान आसन लगाया जाय, वहाँ करणों के ज्ञाताओं ने उसे नागबन्ध करण कहा है ।

२९ मत्स्यकरण

उत्प्लुतेर्मध्यमावृत्या कुरुते वामपार्श्वतः ।

परिवृत्ति तदा यत्र तन्मत्स्यकरणं भवेत् । 1388

जहाँ उछलने के मध्य बार-बार वाम पार्श्व की ओर से चक्कर लगाया जाय, वहाँ मत्स्यकरण होता है ।

यद्वा कस्यापि करणस्यान्ते तु क्षितिमण्डले ।

उत्तानशयतो मध्यं नितम्बोन्नतिपूर्वकम् । 1389

आवर्त्य वामपार्श्वेन मत्स्यवत्परिवर्त्य च ।

अन्ते समुत्प्लुति कृत्वा पादोल्लालनया क्षणात् । 1390

उत्तिष्ठेद्यत्र तदपि मत्स्याद्यं करणं भवेत् ।

अथवा किसी करण के अन्त में पृथ्वी पर उत्तान सोकर नितम्ब को उठाये हुए मध्यभाग को घुमाकर वामपार्श्व से मछली की तरह उलटकर तथा अन्त में उछलकर पैर को सहलाते हुए क्षण भर में उठा जाय, तो यह भी मत्स्यकरण कहलाता है ।

३० तिर्यक् करण

यत्रैकेनैव पादेन तिर्यगुत्प्लुत्य भूतले । 1391

निपत्यैकाङ्घ्रिणा तिष्ठेत्तिर्यक्करणं भवेत् ।

जहाँ एक ही पैर से तिरछा उछलकर पृथ्वी पर गिरकर एक पैर पर खड़ा हुआ जाय, वहाँ तिर्यक् करण होता है ।

३१ तिर्यक्स्वस्तिक

तिर्यक्स्वस्तिकमुत्प्लुत्य स्यात्तिर्यक्स्वस्तिके कृते । 1392

तिरछी स्वस्तिक मुद्रा में उछलने से तिर्यक्स्वस्तिक करण होता है ।

१ देखिए : भरतकोश ।

३२ कपालचूर्णन

लोहडीमलगं यद्वा विधाय धरणीतलम् ।
स्पृष्ट्वैव शिरसा यत्र परिवृत्तिं करोति चेत् ।
कपालचूर्णनं नाम करणं तत्प्रचक्षते ।

1393

लोहडी या अलग नामक करण को करके पृथ्वीतल को छूकर जहाँ सिर को घुमाया जाता है, वहाँ कपालचूर्णन करण होता है ।

३३ नतपृष्ठक

कपालचूर्णने जाते वक्षस्युत्तानिते नते ।
नतपृष्ठं परैरुक्तं वङ्गोलकरणं त्विदम् ।

1394

कपालचूर्णन करण के हो जाने पर तथा नत नामक वक्ष के उत्तान करने पर नतपृष्ठ करण होता है । दूसरे आचार्यों ने इसे वङ्गोलकरण कहा है ।

३४ करस्पर्श

अलगं विधाय करणं हस्तेनाश्रित्य तर्तकी भूमिम् ।
परिवर्तेन यदेदं स्पर्शनमुक्तं कराद्यं तत् ।

1395

यदि तर्तकी अलग करण की रचना करके हाथ से घूमते हुए भूमि का आश्रय ग्रहण करे, तो वह करस्पर्श करण कहलाता है ।

३५ स्कन्धभ्रान्त

पृथ्व्यां स्थित्वांसयुग्मेन कृत्वा चैवोत्कटासनम् ।
करणञ्चाञ्चितं कृत्वा धृत्वाङ्गान्तरसञ्चरे ।
बाहुभ्यां भुवमाक्रम्य भ्रामं भ्रामं च पूर्ववत् ।
तिष्ठेत्प्रतिदिशं यत्र तत्स्कन्धभ्रान्तमुच्यते ।

1396

1397

दोनों कन्धों से भूमि पर अवस्थित होकर उत्कटासन तथा अञ्चित करण करके दूसरे अंगों को चलायमान करते हुए भुजाओं से पृथ्वी को आक्रान्त किया जाय और पूर्ववत् प्रत्येक दिशा में घूम-घूम कर खड़ा हुआ जाय, तो वहाँ स्कन्धभ्रान्त करण होता है ।

३४२

उत्प्लुतिकरणो का निरूपण

३६ एणप्लुत

कृत्वोत्प्लवनं सूचीमन्यतमां स्वे विधाय चेद्भ्रजते । 1398
भूमावूर्ध्वस्थानं यदोत्कटासनं तदाप्लुतं चैणवम् ।

जब उड़ाने के पश्चात् सूची नामक चारी करके भूमि पर ऊर्ध्व स्थान वाले उत्कटासन को किया जाता है तब एणप्लुत करण होता है ।

३७ लोहड्यञ्चित

विधाय लोहडी पश्चादञ्चितं क्रियते द्रुतम् । 1399
यत्र तत्करणं प्रोक्तं लोहड्यञ्चितसङ्गिरम् ।

जहाँ लोहडी करण करने के पश्चात् शीघ्रता से अञ्चित करण किया जाता है वहाँ लोहड्यञ्चित करण होता है ।

३८ सूच्यन्त

करणे यत्र यत्रान्ते समसूच्यादि सूचिषु । 1400
एकं कुर्यात्तदा तत्तत्सूच्यन्तमिति कथ्यते ।

करण में जहाँ-जहाँ अन्त में समसूचि आदि सूचि-स्थानको में से किसी एक को सम्पन्न किया जाता है, वहाँ-वहाँ सूच्यन्त करण होता है ।

अडतीस उत्प्लुतिकरणों का निरूपण समाप्त



अगहार रेचक मण्डल प्रकरण / तेरह

अगहारो का निरूपण

अगहार (अग-विक्षेप)

^१पूर्वरङ्गे प्रयोक्तव्यान् दृष्टादृष्टफलानपि । 1401
अङ्गहारान्प्रवक्ष्यामि नामतो लक्षमतस्तथा ।

पूर्वग (नाटक आदि की आरम्भिक क्रिया) में प्रयोग करने योग्य तथा दृष्ट एव अदृष्ट फल वाले अगहारो (अग-विक्षेपो) के नाम तथा लक्षणो का निरूपण किया जा रहा है ।

अङ्गानामुचिते देशे प्रापण सविलासकम् । 1402
मातृकोत्करसम्पाद्यमङ्गहारोऽभिधीयते ।

मातृका-समूह के योग से सम्पन्न होने वाले अगो को हाव-भाव के साथ समुचित स्थान पर पहुँचाना अगहार कहलाता है ।

यद्वा हारो हरस्यायं प्रयोगोऽङ्गैरिति स्मृतः । 1403
करणाभ्यां मातृका स्यात् कलापः करणैस्त्रिभिः ।
चतुर्भिः खण्डको ज्ञेयः संघातः पञ्चभिर्मतः । 1404
इति सङ्घविशेषेण संज्ञाभेदान्तरे जगुः ।

अथवा, हरस्य अयम् इति हार इस व्युत्पत्ति के अनुसार हार का अर्थ है प्रयोग । अगो में प्रयोग - यह अगहार शब्द का अर्थ है । दो करणो के योग से मातृका बनती है, तीन करणो के योग से कलाप, चार करणो के योग से खण्डक, और पाँच करणो के योग से संघात का निर्माण होता है । इस प्रकार अगो के समूह-विशेष के कारण अन्यान्य आचार्यों ने अगहारो के अनेक भेद बताये हैं ।

करणन्यूनताधिक्यं तेषां मेने मुनिः स्वयम् । 1405
द्वाभ्या त्रिचतुराभिवेत्येतद्वा शब्दसूचितम् ।

उन अगहारो में करणो की न्यूनता तथा अधिकता को स्वयं भरत मुनि ने स्वीकार किया है । दो या तीन अथवा चार मातृकाओ के योग से अगहार का सम्पादन करना चाहिए, यह उन्होंने शब्द द्वारा सूचित किया है ।

१ देखिए सगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ७९५-८१४ ।

अगहार के भेद

स्थिरहस्तोऽथ पर्यस्तः सूचीविद्धोऽपराजितः ।	1406
वैशाखरेचितः पार्श्वस्वस्तिको भ्रमरोऽपरः ।	
आक्षिप्तकः परिच्छिन्नो मदाद्विलसितस्ततः ।	1407
आलीढाच्छुरितौ पार्श्वच्छेदसंज्ञोऽपसर्पितः ।	
मत्ताक्रीडस्तथा विद्युद्भ्रान्तोऽमी षोडशोदिताः ।	1408
चतुरस्रेण मानेनाङ्गहारा मुनिसत्तमैः ।	

१ स्थिरहस्त, २ पर्यस्त, ३ सूचीविद्ध, ४ अपराजित, ५ वैशाखरेचित, ६ पार्श्वस्वस्तिक, ७ भ्रमर, ८ आक्षिप्तक, ९ परिच्छिन्न, १० मदाद्विलसित, ११ आलीढ, १२ आच्छुरित, १३ पार्श्वच्छेद, १४ अपसर्पित, १५ मत्ताक्रीड तथा १६ विद्युद्भ्रान्त—इन सोलह अगहारो को मुनिवरो ने चतुरस्र मान के हिसाब से बताया है ।

विष्कम्भापसृतौ (तो)मत्तस्खलितो गतिमण्डलः ।	1409
अपविद्धश्च विष्कम्भोद्घट्टिताक्षिप्तरैचिताः ।	
रेचितोऽर्धनिकुट्टश्च वृश्चिकापसृतस्ततः ।	1410
अलातकः परावृत्तः परिवृत्तादिरैचितः ।	
उद्वृत्तकश्च सम्भ्रान्तसंज्ञः स्वस्तिकरैचितः ।	1411
षोडशेति त्र्यस्रमाना द्वात्रिंशदुभये मताः ।	

१ विष्कम्भापसृत, २ मत्तस्खलित, ३ गतिमण्डल, ४ अपविद्ध, ५ विष्कम्भ, ६ उद्वृत्त, ७ आक्षिप्तरैचित, ८ रेचित, ९ अर्धनिकुट्ट, १० वृश्चिकापसृत, ११ अलातक, १२ परावृत्त, १३ परिवृत्तरैचित, १४ उद्वृत्तक, १५ सम्भ्रान्त और १६ स्वस्तिकरैचित—ये सोलह अगहार त्र्यस्रमान के हिसाब से बताये गये हैं । दोनो मानो के अगहारो को मिलाकर कुल बत्तीस अगहार होते हैं ।

करणव्रातसन्दर्भानन्त्यात्तेषामनन्तता ।	1412
द्वात्रिंशत्ते तथाऽप्युक्ताः प्राधान्यविनियोगतः ।	

करण-समूह के सन्दर्भों के अनन्त होने से अगहार अनन्त होते हैं । तो भी प्रधानता के हिसाब से बत्तीस बताया गया है ।

अगहारो का निरूपण

एकैकं करणं कार्यं कलया गुरुरूपया । 1413
सर्वेषामङ्गहारणामित्याह करणाग्रणीः ।

गुरु रूप कला के क्रम से सभी अगहारो के एक-एक करण का निर्माण करना चाहिए, यह करणो के विशेषज्ञो का अभिमत है ।

१ स्थिरहस्त

चतुरम्न मान मे सोलह अगहार (१)

लीनं समनखं कृत्वा व्यंसित चात्र विच्युतौ । 1414

करो कृत्वौज्जितालीढः प्रत्यालीढं व्रजेत्ततः ।

निकुट्टोरुद्वृत्ताख्यस्वस्तिकाक्षिप्तकान्यथ । 1415

नितम्बं करिहस्तं च कटीच्छिन्नमिति क्रमात् ।

करणैः स्थिरहस्तः स्याद्दशभिः शिववत्लभः । 1416

अङ्गहारेषु सर्वेषु प्रत्यालीढान्तमादितः ।

प्रयोक्तव्यमिति प्राहुः केचिन्नाट्यविशारदाः । 1417

१ लीन, २ समनख, तथा ३ व्यंसित करणो को करके दोनो हायो को अलग-अलग करे, फिर आलीढ नामक स्थानक को छोडकर प्रत्यालीढ नामक स्थानक को प्राप्त करे, अनन्तर ४ निकुट्टक, ५ ऊरुद्वृत्त ६ स्वस्तिक, ७ आक्षिप्त, ८ नितम्ब, ९ करिहस्त और १० कटीच्छिन्न—कुल दस करणो को क्रमश करने से स्थिरहस्त अगहार बनता है, जो शिव को प्रिय है । कोई नाट्य-पण्डित कहते है कि सभी अगहारा मे आदि से प्रत्यालीढ तक सभी करणो का प्रयोग करना चाहिए ।

२ पर्यस्तक

तलपुष्पपुटं पूर्वमपविद्धं च वर्तितम् ।

निकुट्टोरुद्वृत्ताख्याक्षिप्तत्तोरुमण्डलान्यथ । 1418

नितम्बं करिहस्तं च कटीच्छिन्नमिति क्रमात् ।

दशभिः करणैरेभिः प्रोक्तः पर्यस्तको बुधैः । 1419

१ तलपुष्पपुट, २ अपविद्ध, ३ वर्तित, ४ निकुट्टक, ५ ऊरुद्वृत्त, ६ आक्षिप्त, ७ उरोमण्डल, ८ नितम्ब, ९ करिहस्त और १० कटीच्छिन्न—क्रमश इन दस करणो की रचना से पर्यस्तक अगहार का निर्माण करना चाहिए, ऐसा विद्वानो ने कहा है ।

३ सूचीविद्ध

अर्धसूच्यथ विक्षिप्तमावर्तं च निकुट्टकम् ।

ऊरुद्वृत्तमथाऽऽक्षिप्तपुरोमण्डलसंज्ञकम्] 1420

करिहस्तं कटीच्छिन्नं यत्रैतानि क्रमान्नव ।

सोऽङ्गहारोऽङ्गहारज्ञैः सूचीविद्धः प्रकीर्तितः ॥१३४३॥ 1421

१ अर्धसूची, २ विक्षिप्त, ३ आवर्त, ४ निकुट्टक, ५ ऊरुद्वृत्त, ६ आक्षिप्त, ७ उरोमण्डल, ८ करिहस्त और ९ कटीच्छिन्न—जिसमें ये नौ करण प्रयुक्त होते हैं, उस अगहार को, अगहारो के ज्ञानाओं ने सूचीविद्ध कहा है ।

४ अपराजित

करणं दण्डपादाख्यं व्यंसितं च प्रसर्पितम् ।

ततो निकुट्टकं चार्धनिकुट्टाक्षिप्तके ततः ॥१३४४॥ 1422

उरोमण्डलसंज्ञं च करणं करिहस्तकम् ।

कटिच्छिन्नं च नवभिरेभिः स्यादपराजितः ॥१३४५॥ 1423

१ दण्डपाद, २ व्यंसित, ३ असर्पित, ४ निकुट्टक, ५ अर्धनिकुट्ट, ६ आक्षिप्त, ७ उरोमण्डल, ८ करिहस्त और ९ कटिच्छिन्न—जिसमें इन नौ करणों की रचना से अपराजित अगहार का निर्माण होता है ।

५ मदविलसित

मदस्खलितमत्तल्लितलसंस्फोटितानि चेत् ।

रचयेत् त्रिंशत्तुः पञ्चकृत्वो वा चित्रितान्यथ ॥१३४६॥ 1424

निकुट्टोऽरुद्वृत्तके तु विदध्यात् करिहस्तकम् ।

कटिच्छिन्नं च सम्प्रोक्तो मदाद्विलसितस्तदा ॥१३४७॥ 1425

मदस्खलित, मत्तास्त्रि और तलसंस्फोटित—इन करणों की तीन, चार या पांच बार रचना करके निकुट्टक, ऊरुद्वृत्त, करिहस्त और कटिच्छिन्न करणों को करने से मदविलसित अगहार बनता है ।

६ मत्तक्रीड

भ्रमरं नूपुरं चैव भुजङ्गत्रासितं यदा ।

कृत्वा दक्षिणभागेन यत्र वैशाखरेचितम् ॥१३४८॥ 1426

आक्षिप्त च तथा छिन्नं वामतो भ्रमरं पुनः ।
 नितम्बं करिहस्तं च कटिच्छिन्नं समाचरेत् ॥१३४६॥ 1427
 तदाङ्गहारो दशभिरमीभिः करणैरसौ ।
 मत्तक्रीडोऽथ गणनाभ्यासेन भ्रमरस्य सः । 1428
 एकादशभिरादिष्टो बुधैः शङ्करशङ्करः ॥१३५०॥

जब दक्षिण भाग से १ भ्रमर, २ नूपुर, ३ भुजगत्रासित, ४ वैशाखरेचित, ५ आक्षिप्त तथा ६ छिन्न करणो की रचना करके वामभाग से पुन ७ भ्रमर, ८ नितम्ब, ९ करिहस्त तथा १० कटिच्छिन्न—इन दस करणो की रचना की जाती है, तब मत्तक्रीड अगहार बनता है । यहाँ विद्वानो का कहना है कि भ्रमर की एक बार आर गणना करने से ११ करणो मे मत्तक्रीड अगहार बनता है, जो शकर को प्रिय है ।

७ भ्रमर

नूपुराक्षिप्तके छिन्नसूचीनी च नितम्बकम् । 1429
 करिहस्त च करणमुरोमण्डलसंज्ञकम् ।
 कटिच्छिन्नं च करणैरमीभिर्भ्रमरो भवेत् ॥१३५१॥ 1430

१ नूपुर, २ आक्षिप्तक, ३ छिन्नसूचि, ४ नितम्ब, ५ करिहस्त, ६ उरोमण्डल और ७ कटिच्छिन्न—इन करणो की रचना से भ्रमर अगहार बनता है ।

८ विद्युद्भ्रान्त

वामतश्चेदर्धसूचि विद्युद्भ्रान्तं तु सव्यतः ।
 पुनरेतद् द्वयं चाङ्गविपर्यासाद् विधाय च ॥१३५२॥ 1431
 अथाच्छिन्नमतिक्रान्तं वामाङ्गेऽथ समा[च]रेत् ।
 तला(? लता)द्यं वृश्चिकं पश्चात् कटिच्छिन्नमिति क्रमात् ॥१३५३॥
 षड्भिस्तु करणैरेर्भिर्विद्युद्भ्रान्तो मतस्तदा । 1432
 आद्यद्विकरणाभ्यासगणने स मतोऽष्टभिः ॥१३५४॥ 1433

वामभाग से अर्धसूचि, दक्षिण भाग से विद्युद्भ्रान्त और पुन इन दोनों को अगपरिवर्तन द्वारा सम्पन्न करके वामभाग मे छिन्न तथा अतिक्रान्त करणो की रचना करे, पश्चात् लतावृश्चिक और कटिच्छिन्न को क्रमश

नृत्याध्याय

सम्पन्न करे, इन छह करणों से विद्युद्भ्रान्त अगहार बनता है। यहाँ प्रारम्भ के दो करणों को दुहरा देने से गणना में आठ करण होते हैं।

९ परिच्छिन्न

कृत्वा समनखं यत्र छिन्नं सम्भ्रान्तके ततः ।

वामाङ्गे अमरं चार्धसूचि चेद् रचयेत् ततः ॥१३५५॥ 1434

अतिक्रान्तं भुजङ्गाद्यं त्रासितं करिहस्तकम् ।

कटिच्छिन्नं च कुर्यात् स परिच्छिन्नस्तदा मतः ॥१३५६॥ 1435

जहाँ समनख करण को करके छिन्न तथा सम्भ्रान्तक की रचना की जाय, वाम अग में अमर तथा अर्धसूचि को बनावे और पश्चात् अतिक्रान्त, भुजङ्गासित, करिहस्त और कटिच्छिन्न का निर्माण किया जाय, तो परिच्छिन्न अगहार बनता है।

१० पार्श्वच्छेद

कुट्टितं वृश्चिकाद्यं चेदूर्ध्वजानु च नूपुरम् ।

आक्षिप्तस्वस्तिकं कृत्वा परिवृत्ति त्रिकस्य च ॥१३५७॥ 1436

उरोमण्डलकं पश्चात् नितम्बकरिहस्तके ।

कटिच्छिन्नं च रचयेत् पार्श्वच्छेदस्तदा मतः ॥१३५८॥ 1437

पहले कुट्टित, वृश्चिक, ऊर्ध्वजानु, नूपुर और आक्षिप्तस्वस्तिक करणों को करके कटिभाग को घुमाकर पश्चात् उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों की रचना की जाय, तो पार्श्वच्छेद अगहार बनता है।

११ अपसर्पित

अपक्रान्तं व्यंसितं च पाण्योरेवं यदा क्रिया ।

करिहस्तकमर्धाद्यं सूचि विक्षिप्तकं ततः ॥१३५९॥ 1438

कटिच्छिन्नं च करणमुरुद्वृत्तमतः परम् ।

आक्षिप्तं करि[ह]स्तं च कटिच्छिन्नं पुनस्तदा ॥१३६०॥ 1439

सप्तभिः करणैरेभिरपसर्पितको मतः ।

अन्त्यद्विकरणाभ्यासगणने नवभिर्मतः ॥१३६१॥ 1440

अगहारो का निरूपण

पहले अक्षान्त आर व्यसित हाथो की रचना की जाय, तत्पश्चात् करिहस्त, अर्धमूचि, विक्षिप्तक, कटिच्छिन्न, ऊरुद्वृत आर आक्षिप्त को किया जाय, पुन करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करण पारण किया जाय, तो अपसर्पितक अगहार होता है। करिहस्त ओर कटिच्छिन्न को दोहरा देने से यहाँ करणा की सरपा ना (?दम) हो जाती है।

१२ आक्षिप्त

नूपुर यत्र विक्षिप्तमलातक्षिप्तके ततः ।
उरोमण्डलक चाथ नितम्ब करिहस्तकम् । 1441
कटिच्छिन्नमपि ज्ञेयोऽमीभिराक्षिप्तको बुधैः ॥१३६२॥

जहाँ नूपुर, विक्षिप्त, अलात, क्षिप्तक, उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त आर कटिच्छिन्न करणो की क्रमश रचना की जाय, वहाँ विद्वानो ने आक्षिप्त अगहार बताया है।

१३ आच्छुरित

नूपुरं भ्रमरं चाथ व्यसित तदनन्तरम् । 1442
अलातक नितम्ब च सूच्यथो करिहस्तकम् ।
कटिच्छिन्न चाङ्गहारोऽमीभिराच्छुरितार्थाभिधः ॥१३६३॥ 1443

नूपुर, भ्रमर, व्यसित, अलात, नितम्ब, सूचि, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न नामक करणा की क्रमश रचना से आच्छुरित अगहार बनता है।

१४ आलीढ

विधाय व्यसित वामे निकुटं नूपुरं यदा ।
अन्यतोऽलातमाक्षिप्तमुरोमण्डलकं तथा । 1444
करिहस्तकटिच्छिन्ने कुर्यादालीढकस्तदा ॥१३६४॥

जब वाम भाग मे व्यसित, निकुट तथा नूपुर नामक करण किये जाने ह ओर दक्षिण भाग मे अलात, आक्षिप्त, उरोमण्डलक, करिहस्त ओर कटिच्छिन्न नामक करण रचे जाते ह, तब आलीढ अगहार बनता है।

१५ वैशाखरेचित

पार्श्वयुग्मेन वैशाखरेचित यत्र नूपुरम् । 1445
भुजङ्गत्रासितोन्मत्तो मण्डलस्वस्तिकं ततः ॥१३६५॥

निकुट्टोरुद्वृत्ताकेचिक्षिप्तोरोमण्डले ततः । 1446
 करिहस्त कटिच्छिन्नमित्येभिर्दशभिः क्रमात् ।
 वैशाखरेचितोऽसौ स्यादङ्गहारो हरप्रियः ॥१३६६॥ 1447

जहाँ दोनों पार्श्वों में क्रमशः वैशाखरेचित, नूपुर, भृङ्गनासित, उन्मत्त, मण्डलम्बुस्तिक, निकट्ट ऊरुद्वृत्त, उरोमण्डल, करिहस्त और कटिच्छिन्न—इन दश करणों की रचना की जाय, वहाँ वैशाखरेचित अगहार बनता है, जो शकर को प्रिय है ।

१६ पार्श्वस्वस्तिक

दिवस्वस्तिकमथैकेन गात्रेणार्धनिकुट्टकम् ।
 दिवस्वस्तिक पुनरथान्याङ्गेनार्धनिकुट्टकम् ॥१३६७॥ 1448
 तनोऽपविद्धोरुद्वृत्ताक्षिप्तकानि नितम्बकम् ।
 करिहस्तकटीच्छिन्नै करणैरष्टभिः क्रमात् । 1449
 एभिः स्यादङ्गहारोऽय पार्श्वस्वस्तिकसङ्गः ॥१३६८॥

एक अंग से दिवस्वस्तिक, अर्धनिकट्टक, पुन दिवस्वस्तिक, फिर अन्य अंग से अर्धनिकुट्टक, तदनन्तर अपविद्ध, ऊरुद्वृत्त, आक्षिप्त, नितम्ब, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न—क्रमशः इन आठ करणों की रचना की जाय, तो वहाँ पार्श्वस्वस्तिक अगहार सम्पन्न होता है ।

त्रयस्र मान में सोलह अगहार (२)

१ अपविद्ध

अपविद्धं ततः सूचीविद्धमुद्वेष्टिते करे । 1450
 चार्या बद्धाख्यया सार्धं आमयेत् चेत् त्रिक ततः ॥१३६९॥
 ऊरुद्वृत्तामुरः पूर्वं मण्डलं च ततः परम् । 1451
 पञ्चमं तु कटीच्छिन्नमपविद्धस्तदोदितः ॥१३७०॥

यदि उद्वेष्टित हाथ में अपविद्ध तथा सूचीविद्ध करणों को रचकर बद्धा नामक चारी के साथ कटिदेश को घुमाया जाय, उसके बाद ऊरुद्वृत्त, उरोमण्डल तथा पाँचवे कटीच्छिन्न करण की रचना की जाय, तो वहाँ अपविद्ध अगहार बनता है ।

२ परावृत्त

जनितं दक्षिणाङ्गेन शकटास्यमत. परम् ।	1452
अलातभ्रमरे कुर्यात् वाममङ्गे निकुटितम् ॥१३७१॥	
करिहस्त कटीच्छिन्न क्रमादेतानि यत्र षट् ।	1453
परावृत्तः सोऽङ्गहारः सदा शङ्करशङ्कर ।	
नमनोन्नमन प्रोक्त गात्रस्येह निकुटितम् ॥१३७२॥	1454

यदि दाहिने अग से जनित, ओर बाये अग से शकटास्य, अलात भ्रमर करणो की रचना की जाय, फिर निकुटित करके करिहस्त आर कटीच्छिन्न—त्रमण इत (मव मिलाकर) छह करणों के निर्माण से परावृत्त अगहार सम्पन्न होता है, जो सदा शंकर को सन्तुष्ट करता है । अग का अंकाना और उठाना यहाँ निकुटित कहलाता है ।

३ रेचित

आदौ स्वस्तिकपूर्वं स्याद् रेचित तदनन्तरम् ।	
अर्धाद्य रेचित वक्षः स्वस्तिकोन्मत्ताके तत. ॥१३७३॥	1455
आक्षिप्तरेचितं चार्धमत्तल्लिकरण ततः ।	
रेचकाद्यं निकुटं च भुजङ्गत्रस्तरेचितम् ॥१३७४॥	1456
नूपुरं च ततः कृत्वा कुर्याद् वैशाखरेचितम् ।	
भुजङ्गाञ्चितकं दण्डरेचितं करण ततः ॥१३७५॥	1457
चक्रमण्डलकं पश्चाद् वृश्चिकाद्यं तु रेचितम् ।	
व्यसित च विवृत्त च विनिवृत्तदिवर्तिते ॥१३७६॥	1458
गरुड] प्लुतसन्नं च करणं ललित तथा ।	
मयूराद्यं ततः पश्चात् सर्पित स्खलितं तथा ॥१३७७॥	1459
प्रसर्पितं तलाद्य तु संघट्टितमतः परम् ।	
वृषभक्रीडितं चाथ लोलित चेति विंशतिः ॥१३७८॥	1460
या षड्भिरधिकामीषां करणानामुदीरिता ।	
रचयित्वा चतुर्दिक्षु भागैस्त विषमैर्नटः ॥१३७९॥	1461

परिवृत्तिप्रकारेण ततः प्रान्ते समाश्रयेत् ।

उरोमण्डलक पश्चात् कटीच्छन्नं स रेचितः ॥१३८०॥ 1462

पहले स्वस्तिकरेचित, पश्चात् अर्धरेचित, तदनन्तर वक्ष स्वस्तिक, उन्मत्त, आक्षिप्तरेचित, अर्धमत्ततिल, रेचक-
निक्कटक, भुजगत्रस्तरेचित, नूपुर, वैशाखरेचित, भुजगाञ्चित, दण्डरेचित, चक्रमण्डल, वृष्णिकरेचित,
व्यसित, विवृत्त, विनिवृत्त, विवर्तित, गरुडलुप्त, मयूरललित, सर्पित, खलित, प्रसर्पित, तलस्रघटित, वृषभ-
क्रीडित आर लोलित—इन छद्मीस करणों को क्रमशः चारों दिशाओं में रचकर नर्तक इनके द्विपम भाग करके
घुमाते हुए चिनारे में ले आये । तदुपरान्त उरोमण्डल और कटीच्छन्न करणों की रचना करे, ऐसा करने से
रेचित नामक जगहारा बनता है ।

४ आक्षिप्तरेचित

रक्षयेच्चतुरी योगाद् यत्र स्वस्तिकरेचितम् ।

पृष्ठाद्य स्वस्तिक चाथ दिवरवस्तिकमतः परम् ॥१३८१॥ 1463

कटीच्छन्नं सम पश्चाद् घूर्णितं अमरं [त] तः ।

रेचितं वृश्चिकाद्यं च ततः पार्श्वनिकुट्टकम् । 1464

उरोमण्डलसंज्ञं च करणं सन्नतं ततः ।

सिंहार्कषितक नामापसर्पितमथात्र तु ॥१३८२॥ 1465

वक्षःस्वस्तिकमिच्छन्ति केचिन्नुत्तमनीषिणः ।

दण्डपक्षं ललाटाद्यं तिलकं करणं ततः ॥१३८३॥ 1466

विलासित तलाद्यं च निशुम्भितमतः परम् ।

विद्युद्भ्रान्तं च करणं गजक्रीडितकं ततः ॥१३८४॥ 1467

नितम्ब विष्णुक्रान्तेरुद्वृत्ताक्षिप्तमतः परम् ।

उरोमण्डलकं पश्चात् नितम्बं करिहस्तकम् ॥१३८५॥ 1468

कटीच्छन्नं भवेत् नो वा सा स्यादाक्षिप्तरेचितः ।

पञ्चविंशतिसंख्याकैः करणैः प्राक्तने मते ॥१३८६॥ 1469

अनावृत्त्या नितम्बस्य तथोरोमण्डलस्य च ।

आवृत्त्या त्वनयोरेव सप्तविंशतिभिर्भवेत् ॥१३८७॥ 1470

अगहारो का निरूपण

ये वक्षःस्वस्तिककटीच्छिन्ने नेच्छन्ति सूरयः ।

तस्मतेऽपि तदभ्यासात् पञ्चविंशतिभिर्भवेत् ॥१३८८॥ 1471

पहले चतुरता से स्वरितकरेचित की रचना की जाय, उमके बाद पृष्ठस्वरितक, दिक्स्वरितक, कटीच्छिन्न, घूर्णित, भ्रमर, वृश्चिकरेचित, पार्श्वनिकुट्टक, उरोमण्डल, सन्नत, सिंहाकषित, नागापसदित, वक्ष स्वस्तिक, दण्डपक्ष, ललाटतिलक, निशुम्भित, विद्युद्भ्रान्त, गजक्रीडित, नितम्ब, विष्णुकान्त, ऊरुद्वृत्त, आक्षिप्त, ऊरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त और कटीच्छिन्न अथवा उसके विना भी—इन पचीस करणों से आक्षिप्तरेचित अगहार बनता है । किन्तु यह पचीस सख्या तब होगी जब नितम्ब तथा ऊरोमण्डल को दोहराया नहीं जाएगा । इनको दोहरा देने से करणों की सख्या सत्ताईस हा जाती है । जो विद्वान् वक्ष स्वस्तिक तथा कटीच्छिन्न करणों को यहाँ नहीं चाहते हैं, उनके मत में भी उक्त दोनों करणों को दोहरा देने से पच्चीस सख्या हो जाती है ।

५ उद्वृत्त

विधाय नूपुरं यत्र भुजङ्गाञ्चितकं ततः ।

गृधावलीनकं पश्चाद्विक्षिप्तोद्वृत्तके तथा ॥१३८९॥ 1472

एकाङ्गेन ततः कुर्यादूरुद्वृत्त नितम्बकम् ।

लताद्यं वृश्चिकं चाथ कटीच्छिन्नमिति क्रमात् ॥१३९०॥ 1473

नवभिः करणैरेभिरुद्वृत्तोऽसौ मतो बुधैः ।

विक्षिप्तोद्वृत्तयोरेषोऽभ्यासेन द्व्यधिको भवेत् ॥१३९१॥ 1474

पहले नूपुर करण करके भुजगाञ्चित, गृधावलीनक, विक्षिप्त तथा उद्वृत्त करणों की रचना की जाय, फिर एक अग से ऊरुद्वृत्त, नितम्ब, लतावृश्चिक और कटीच्छिन्न—इन नौ करणों को क्रमश विद्या जाय, तो उद्वृत्त अगहार बनता है । यहाँ विक्षिप्त आर उद्वृत्त करणों को दोहरा देने से दो अधिक करण हो जाते हैं ।

६ उद्वृत्त

निकुट्टं करणं पश्चादुरोमण्डलसंज्ञकम् ।

नितम्बकरिहस्ते च कटीच्छिन्नमिति क्रमात् । 1475

पञ्चभिः करणैरेभिरुद्वृत्त उदीरितः ॥१३९२॥

नृत्याध्यायः।

निकुट्ट, उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त और कटीच्छिन्न—इन पाँच करणो को क्रमश करने से उद्धृष्टि अगहार बनता है ।

७ अलात

स्वस्तिकं करणं पूर्वमथ द्विव्यसितं ततः । 1476

अलात चोर्ध्वजानु स्यान्निकुञ्चितमतः परम् ॥१३६३॥

अर्धसूच्यथ विक्षिप्तोद्धृतकाक्षिप्तकानि च । 1477

करिहस्तं कटीच्छिन्नं भवन्त्येतान्यलातके ।

एकादश तथाभ्यासगणने व्यंसितेऽधिकम् ॥१३६४॥ 1478

पहले स्वस्तिक करण, पश्चात् दो व्यसित, अलात, ऊर्ध्वजानु, निकुञ्चित, अर्धसूचि, विक्षिप्त, उद्धृत, आक्षिप्त, करिहस्त और कटीच्छिन्न—ये ग्यारह करण क्रमश अलात अगहार में प्रयुक्त होते हैं । यहाँ व्यसित को दो बार दोहरा देने से करणो की संख्या एक अधिक अर्थात् बारह हो जाती है ।

८ सम्भ्रान्त

विक्षिप्ताञ्चितके दण्डपूर्व सूचि ततः परम् ।

गङ्गावतरणं चाथ सूच्यथो दण्डपादकम् ॥१३६५॥ 1479

वामाङ्गरचितं पश्चाच्चतुरं भ्रमरं ततः ।

नूपुराक्षिप्तके चार्धस्वस्तिकं च नितम्बकम् ॥१३६६॥ 1480

करिहस्तमुरः पूर्व मण्डलं कटिपूर्वकम् ।

छिन्नं चेति क्रमादेभिः पञ्चाद्यैर्दशभिर्मतः । 1481

सम्भ्रान्तनामको धीरैरङ्गहारो हरप्रियः ॥१३६७॥

विक्षिप्त, अञ्चित, दण्डसूचि, गंगावरण, सूचि, दण्डपाद, वाम अग में रचे जायें, तरपश्चात् चतुर, भ्रमर, नूपुर, आक्षिप्त, अर्धस्वस्तिक, नितम्ब, करिहस्त, उरोमण्डल और कटिच्छिन्न—इन पन्द्रह करणो को क्रमश प्रयुक्त किया जाय, तो सम्भ्रान्त अगहार बनता है, जो शकर को प्रिय है ।

९ अर्धनिकुट्ट

नूपुरं करणं पूर्व विवृतं तदनन्तरम् । 1482

निकुट्टार्धनिकुट्टार्धरेचितानि ततः परम् ॥१३६८॥

३५८

अगहारो का निरूपण

रेचकाद्यं निकुटं च करणं ललिताभिधम् ।	1483
वंशाखरेचितं [पश्चात् चतुरं दण्डरेचितम्] ॥१३६६॥	
वृश्चिकाद्यं कुट्टितं च ततः पार्श्वनिकुट्टकम् ।	1484
सम्भ्रान्तोद्घटिताख्योरोमण्डलानि ततः परम् ॥१४००॥	
करिहस्तकटिच्छिन्नं यत्रैतानि क्रमादसौ ।	1485
भवेदर्धनिकुट्टाख्यस्त्वङ्गहारः शिवप्रियः ॥१४०१॥	

पहले नूपुर करण, पश्चान् निकुट्ट, अर्धनिकुट्ट, अर्धरेचिन, रेचकनिकुट्ट, ललित, वंशाखरेचित, चतुर, दण्डरेचित, वृश्चिककुट्टित, पार्श्वनिकुट्टक, सम्भ्रान्त, उद्घटित, उरोमण्डल, करिहस्त आर कटिच्छिन्न—ये करण क्रमात्, शकर के प्रिय, अर्धनिकुट्ट नामक अगहार में प्रयुक्त होते हैं ।

१० परिवृत्तरेचित

नितम्बं स्वस्तिकाद्यं तु रेचितं तदनन्तरम् ।	1486
विक्षिप्ताक्षिप्तकं चाथ लतावृश्चिकसज्ञकम् ॥१४०२॥	
उन्मत्तकरिहस्ते च भुजङ्गत्रासितं ततः ।	1487
आक्षिप्तं करिहस्तं च नितम्बं च नवेत्यथ ॥१४०३॥	
भ्रमरेण सहेमानि परिवृत्त्याश्रयेत् ततः ।	1488
स्थित्वा दिगन्तरास्यस्तु व्यावर्त्येतरयोर्दिशोः ॥१४०४॥	
करिहस्तं कटिच्छिन्नं विदध्यात् पूर्वदिक् स्थितः ।	1489
यत्रासो परिवृत्ताद्यो रेचितः परिकीर्तितः ॥१४०५॥	
गङ्गावतरणं त्यक्त्वा तथा नागापसर्पितम् ।	1490
परिवृत्तविधिर्ज्ञेयः सर्वत्रैवाङ्गहारकैः ॥१४०६॥	

नितम्ब, स्वस्तिकरेचित, विक्षिप्त, आक्षिप्त, लतावृश्चिक, उन्मत्त, करिहस्त, भुजङ्गत्रासित, आक्षिप्त, करिहस्त और नितम्ब—इन करणों को भ्रमर के साथ घुमाकर अन्य दिशा में मुख करके अवस्थित हो, फिर अन्य दो दिशाओं में घुमाकर पूर्व दिशा में खड़ा होकर करिहस्त एवं कटिच्छिन्न करणों की रचना करे, ऐसा करने से परिवृत्तरेचित अगहार बनता है । गङ्गावतरण और नागापसर्पित नामक करणों को छोड़कर सर्वत्र अगहार करने वाले को परिवृत्त का प्रकार जान लेना चाहिए ।

नृत्याध्यायः

११ स्वस्तिकरेचित

- वैशाखरेचितं पूर्वं वृश्चिकं चाथ तद् द्वयम् । 1491
 सव्यसव्येतराङ्गभ्यां निकुट्टं सलताकरम् ॥१४०७॥
 तुर्यं यत्र कटीच्छिन्नमसौ स्वस्तिकरेचितः । 1492
 अभ्यासादाद्ययोरत्र करणानि भवन्ति षट् ।
 स्वस्तिकापसृत केचिदिममेव प्रचक्षते ॥१४०८॥ 1493

पहले वैशाखरेचित, पश्चात् वृश्चिक, अनन्तर दाहिने-बाये अगो से लताकर हाथ के साथ निकुट्ट आर चोये कटीच्छिन्न नामक करणो के करने से स्वस्तिकरेचित अगहार बनता हे । यहाँ वैशाखरेचित ओर वृश्चिक को दोहरा देने से छह करण हो जाते है । कोई आचार्य इसी अगहार को स्वस्तिकापसृत कहते है ।

१२ विष्कम्भापसृत

- निकुट्टार्धनिकुट्टे द्वे कृत्वा पार्श्वद्वयेन चेत् ।
 भुजङ्गत्रासितं कुर्याद् भुजङ्गत्रस्तरेचितम् ॥१४०९॥ 1494
 आक्षिप्तकमुरःपूर्वं मण्डलं च लताकरौ ।
 सप्तमं तु कटीच्छिन्नं विष्कम्भापसृतस्तदा ॥१४१०॥ 1495

दोनो पार्श्व से निकुट्ट तथा अर्धनिकुट्ट नामक करणो को करके भुजङ्गत्रासित, भुजङ्गत्रस्तरेचित, आक्षिप्त, उरोमण्डल, दानो लताकर नामक हाथ और सातवे कटीच्छिन्न नामक करण के करने से विष्कम्भापसृत अगहार बनता हे ।

१३ विष्कम्भक

- निकुट्टकं विधायथ निकुञ्चितमथाञ्चितम् ।
 ऊरुद्वृत्तकमप्यर्धनिकुट्टं तदनन्तरम् ॥१४११॥ 1496
 भुजङ्गत्रासितं पाणिमुद्वेष्ट्य अमरं ततः ।
 करिहस्तकटीच्छिन्ने कुर्याद् विष्कम्भकस्तु सः ॥१४१२॥ 1497

निकुट्टक करण को करने के पश्चात् अञ्चित, ऊरुद्वृत्त, अर्धनिकुट्ट और भुजङ्गत्रासित करणो की रचना की जाय, अनन्तर एक हाथ को उद्वेष्टित करके अमर, करिहस्त तथा कटीच्छिन्न करणो को बनाया जाय, तो विष्कम्भक अगहार होता है ।

अगहारो का निरूपण

१४ गतिमण्डल

मण्डलस्वस्तिकं त्वाद्यं नूपुरोन्मत्तेके तत ।
उद्घट्टित च मत्तल्ल्याक्षिप्तोरोमण्डलान्यथ । 1498
कटीच्छिन्नममीभि स्यादष्टभिर्गतिमण्डलः ॥१४१३॥

मण्डलस्वस्तिक, नूपुर, उन्मत्त, उद्घट्टित, मत्तल्लि, आक्षिप्त उरोमण्डल और कटीच्छिन्न—इन आठ करणों के क्रमशः प्रयोग से गतिमण्डल अगहार बनता है ।

१५ वृश्चिकापसृत

स्याल्लतावृश्चिकं पूर्वं यत्र पश्चान्निकुञ्चितम् । 1499
मत्तल्लि च नितम्बं च करिहस्तं ततः परम् ।
कटीच्छिन्नं षष्ठमसौ वृश्चिकापसृतो भवेत् ॥१४१४॥ 1500

लतावृश्चिक, निकुञ्चित, मत्तल्लि, नितम्ब, करिहस्त और छठा कटीच्छिन्न—इन करणों की क्रमशः रचना से वृश्चिकापसृत अगहार बनता है ।

१६ मत्तस्खलित

मत्तल्ल्यथो गण्डसूचि ततो लीनापविद्धके ।
तलसंस्फोटितं चाथ करिहस्तमतः परम् । 1501
कटीच्छिन्नं क्रमान्मत्तस्खलितः सप्तभिर्भवेत् ॥१४१५॥

मत्तल्लि, गण्डसूचि, लीन, अपविद्ध, तलसंस्फोटित, करिहस्त और कटीच्छिन्न—इन सातों करणों को क्रमशः करने से मत्तस्खलित अगहार बनता है ।

करणोत्करसन्दर्भान्त्यादेतदनन्तता । 1502
यद्यप्यस्ति तथाप्येते समासात् समुदीरिताः ॥१४१६॥

करण-समूह के सन्दर्भ से अगहारो की सख्या अनन्त हो जाती है, फिर भी यहाँ उनका संक्षेप में निरूपण किया गया है ।

दृष्टादृष्टफला दृष्टनियोगा मुख्यभावतः । 1503
सर्वत्रैवाङ्गहारेषु कलया गुरुरूपया ॥१४१७॥

योज्यं करणमेकैकमिति तज्ज्ञाः [प्रचक्ष] ते ।	1504
अङ्गेषु पूर्वरङ्गस्य तथा चोत्थापनादिषु ॥१४१८॥	
मृदङ्गप्रमुखैर्वाद्यैर्लयतालानुगामिभिः ।	1505
वर्धमानासारितेषु पाणिकागीतिकादिषु ॥१४१९॥	
पुरुषैरङ्गहारास्ते परं श्रेयोऽभिकाङ्क्षिभिः ।	1506
प्रयोक्तव्याः शिवस्याग्रे यथाविधि मनीषिभिः ॥१४२०॥	

अगहार मुख्य भाव से दृष्टफल (जिनके परिणाम देखे गये हों), अदृष्टफल (जिनके परिणाम देखे न गये हों) और दृष्टनियोग (जिनकी प्रवृत्ति देखी गई हो) होते हैं। सभी जगह अगहारों में गुरुरूप कला के द्वारा एक-एक करण की योजना करनी चाहिए, ऐसा उसके विशेषज्ञ कहते हैं। कल्याण चाहने वाले मनीषी पुष्प लय आर ताल का अनुगमन करने वाले मृदङ्ग आदि वाद्यों के द्वारा वर्धमान, आसारित और पाणिका गीत आदि के अवसर पर शकर के आगे उन अगहारों का विधिपूर्वक प्रयोग करें।

वत्तीस अगहारों का निरूपण समाप्त ।



चार प्रकार के रेचको का निरूपण

अथाहं रेचकान् वक्ष्ये चतुरान् मुनिसम्मतान् ।	1507
पाणिकण्ठकटीपादविशेषेणसमुद्भवान् ॥१४२१॥	

अब, भरत मुनि के अभीष्ट हस्त, कण्ठ, कटि और पाद विशेष से उत्पन्न चार प्रकार के रेचको का निरूपण किया जाता है ।

१ पाणिरेचक

त्वरया परितो भ्रान्ति यदा स्याद्धसपक्षयोः ।	1508
पर्यायेण तदा धीरैरादिष्टः पाणिरेचकः ॥१४२२॥	
स्रथवा स्यादसौ पाणेविरलप्रसृताङ्गुलेः ।	1509

रेचको का निरूपण

यदि हसपक्ष मुद्रा मे दोनो हाथो को बारी-बारी मे शीघ्रतापूर्वक चारो ओर घुमाया जाय, तो धीर पुम्पो ने उसे पाण्डुरेचक कहा है । अथवा, विरल (अलग-अलग) तथा फेरी हुई उगलियो वाले हाथ को तिरछा घुमाया जाय, तो वह (भी) पाण्डुरेचक कहलाता है ।

२ कण्ठरेचक

तिर्यग्भ्रान्तिरथो यः स्यात् कण्ठस्य विधुतभ्रमः ॥१४२३॥
स कण्ठरेचकः प्रोक्तः कण्ठरेचककोविदैः । 1510

यदि कण्ठ को तिर्यक् रूप मे कम्पित करके घुमा दिया जाय, तो कण्ठरेचकवेत्ताजो ने उमे कण्ठरेचक कहा है ।
३ कटिरेचक

सर्वतो भ्रमणात् कट्याः कथित कटिरेचकः ॥१४२४॥

यदि कटि को चारो ओर घुमाया जाय, तो उसे कटिरेचक कहा जाता है ।

४ पादरेचक

या त्वन्तर्बहिरङ्गुष्ठाग्रस्य पाष्णोर्निरन्तरा । 1511
नमनोन्नमनोपेता गतिः सा पादरेचकः ॥१४२५॥

यदि अँगूठे के अग्रभाग तथा एडी के बाहर-भीतर निरन्तर रूप से झुकने-उठने की गति की जाय, तो उसे पादरेचक कहते हैं ।

धीरधुर्योऽशोकमल्लश्चतुरश्रतुरोदितान् । 1512
रेचकांश्चतुरोऽवोचज्जितारातिर्महीपतिः ॥१४२६॥

धीराग्रणी, चतुर, शत्रुजयी महाराज अशोकमल्ल ने, बुद्धिमान् व्यक्तियों द्वारा कथित, (उक्त प्रकार से) चार रेचको का निरूपण किया है ।

चार प्रकार के रेचको का निरूपण समाप्त ।



मण्डलों का निरूपण

मण्डल (गति) के भेद

^१अतिक्रान्तं वामविद्धं क्रान्तं ललितसञ्चरम् । 1513

सूचीविद्धमलातं च [विचित्रं] विहृतं तथा ॥१४२७॥

ललितं दण्डपादं च दशोद्दिष्टानि सूरिभिः । 1514

मण्डलान्यानतरिक्षाणीति-

विद्वानो ने आकाशगत मण्डल के दस भेद बताये हैं १ अतिक्रान्त, २ वामविद्ध, ३ क्रान्त, ४ ललितसञ्चर, ५ सूचीविद्ध, ६ अलात, ७ विचित्र ८ विहृत ९ ललित और १० दण्डपाद ।

-अथ भौमान्यनुक्रमात् ॥१४२८॥ 1515

भ्रमरं शकटास्यं च पिष्ठकुट्टमथाङ्कितम् ।

समोत्सरितमावर्तमेलकाक्रीडित तदा ॥१४२९॥ 1516

आस्कन्दितं चाषगतमध्यर्धमिति सूरिभिः ।

दशोद्दिष्टान्यथामीषां लक्ष्माणि व्याहरे क्रमात् ॥१४३०॥ 1517

विद्वानो ने भूमिगत मण्डल के दस भेदों का क्रमशः इस प्रकार उल्लेख किया है १ भ्रमर, २ शकटास्य, ३ पिष्ठकुट्टक, ४ अङ्कित, ५ समोत्सरित, ६ आवर्त, ७ एलकाक्रीडित, ८ आस्कन्दित, ९ चाषगति और १० अर्ध । अब क्रमशः उनके लक्षण-विनियोग का निरूपण किया जा रहा है ।

दस आकाशगत मण्डल (१)

१ अतिक्रान्त

जनितो दक्षिणः पादः शकटास्यः स एव च ।

अथालातो भवेद् वामः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ॥१४३१॥ 1518

अथ वामो भवेत् सूची स एव भ्रमरस्तथा ।

अथ सव्योऽङ्घ्रिरुद्वृत्तो वामोऽलातोथ चेदुभौ ॥१४३२॥ 1519

चरणौ छिन्नकरणमाश्रितौ तदनन्तरम् ।

वामाङ्गनिर्मिता वाथ भ्रमरी यत्र जायते ॥१४३३॥ 1520

अथातिक्रान्तको वामो दण्डपादः परस्तदा ।

तन्मण्डलमतिक्रान्तं समवोचन् विचक्षणाः ॥१४३४॥ 1521

दाहिना पैर जनित तथा शकटास्य करणो मे अवस्थित हो आर बायाँ पैर अलात करण बना हो, फिर दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त तथा बायाँ पैर सूची ओर भ्रमर बना हो, पुन दाहिना पैर उद्वृत्त ओर बायाँ पैर अलात हो, दोनो चरण छिन्नकरण का सहारा लिये हो, तदनन्तर वाम अग मे भ्रमरी नामक चारी की रचना की जाय, फिर बायाँ पैर अतिक्रान्त करण ओर दाहिना पैर दण्डपाद बनाया जाय, तो ऐसी क्रिया को विद्वानो ने अतिक्रान्त आकाशमण्डल कहा है ।

[च^१मत्काराय चारीणामानुपूर्व्येण या क्रिया ।

तन्मण्डलमिति प्रोक्तमखण्डमतिशालिभिः । 1522

चमत्कार उत्पन्न करने के लिए चारियो को क्रमश क्रियान्वित करना ही मण्डल कहलाता है, ऐसा विद्वानो का मत है ।

भौममाकाशिकं चेति तत्पुनर्द्विविधं भवेत् ।

प्राचुर्याद्भौमचारीणां भौममण्डलमुच्यते । 1523

आकाशचारी बाहुल्यादाकाशिकमिति स्मृतम् ।

भौमाकाशिकभेदानामुद्देशोऽत्र विधीयते । 1524

फिर उस मण्डल के दो भेद है १ भौम और २ आकाशिक । अधिकता के कारण भौम चारियो को भौममण्डल ओर आकाशचारियो को आकाशिकमण्डल कहा गया है । यहा भौम ओर आकाशिक नाम-भेद से उद्देश्य का विधान किया गया है ।

भ्रमरं च तदावर्तमास्कन्दितमथाड्डितम् ।

समोत्सरितमत्यर्धमेलकाक्रीडितं तथा । 1525

शकटास्यं पिष्टकुष्टं ततश्चाषगताभिधम् ।

भौमानि मण्डलानीति दशोद्दिष्टान्यनुक्रमात् । 1526

भौम मण्डल के क्रमश दस नाम बताये गये हैं १ भ्रमर, २ आवर्त, ३ आस्कन्दित, ४ अड्डित, ५ समोत्सरित, ६ अत्यर्ध, ७ एलकाक्रीडित, ८ शकटास्य, ९ पिष्टकुष्ट ओर १० चाषगत ।

१ देखिए अशोक-भरतकोश, पृ० ४५४ ।

अतिक्रान्तं दण्डपादं क्रान्तं च विहृतं तथा ।
 सूचीविद्धं वामविद्धं तदा ललितसञ्चरम् । 1527
 विचित्रं ललितं चैव ततश्चालातमित्यपि ।
 एतान्याकाशिकानि स्युः मण्डलानि दश क्रमात्] । 1528

आकाशिक मण्डल के भी क्रमशः दस नाम हैं १ अतिक्रान्त, २ दण्डपाद, ३ क्रान्त, ४ विहृत, ५ सूचीविद्ध, ६ वामविद्ध, ७ ललितसञ्चर, ८ विचित्र, ९ ललित और १० अलात ।

२ वामविद्ध

सूची स्वाद् दक्षिणः पादो वामोऽतिक्रान्तता गतः ।
 दक्षिणो दण्डपादोऽन्य सूच्यङ्घ्रिभ्रमरः क्रमात् ॥१४३५॥ 1529
 पार्श्वक्रान्तस्तु सव्यः स्याद् वामस्त्वाक्षिप्ततां गतः ।
 दक्षिणो दण्डपादः स्याद्गुरुद्वृत्तोऽप्यथ क्रमात् ॥१४३६॥ 1530
 पादः सूची भवेद् वामस्ततोऽसौ भ्रमरो भवेत् ।
 आलातोऽप्यथ सव्यः स्यात् पार्श्वक्रान्तोऽथ वामकः । 1531
 अतिक्रान्तो यत्र वामविद्धमेतत् प्रकीर्तितम् ॥१४३७॥

दाहिना पैर सूची हो और बायाँ पैर अतिक्रान्त हो, फिर दाहिना पैर दण्डपाद और बायाँ पैर क्रमशः सूची तथा भ्रमर हो, पुनः दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त हो और बायाँ पैर आक्षिप्त, दाहिना पैर क्रमशः दण्डपाद तथा गुरुद्वृत्त हो और बायाँ पैर सूची तथा भ्रमर हों, फिर दाहिना पैर अलात तथा पार्श्वक्रान्त हो और बायाँ पैर अतिक्रान्त हो, तो ऐसी स्थिति में वामविद्ध आकाशमण्डल होता है ।

३ क्रान्त

सूच्यङ्घ्रिर्दक्षिणो वामोऽपक्रान्तो दक्षिणो भवेत् । 1532
 पार्श्वक्रान्तस्ततो वामः परितो मण्डलभ्रमः ॥१४३८॥
 अथ वामो भवेत् सूची परोपक्रान्ततां गतः । 1533
 यत्र तन् मुनिभिः क्रान्तं स्वभावगमने मतम् ॥१४३९॥

मण्डलो का निरूपण

दाहिना पैर सूची करण हो ओर बायाँ अपक्रान्त करण हो, फिर दाहिना पर पार्श्वक्रान्त हो ओर बायाँ पैर चारो ओर मण्डलाकार मे घुमाया जाय, फिर बायाँ पैर सूची हो ओर दाहिना पैर अपक्रान्त हो, तो इम क्रिया को भरत आदि मुनियो ने क्रान्त आकाशमण्डल कहा है। इसका विनियोग स्वाभाविक चाल के अभिनय मे किया जाता है।

४ ललितसञ्चर

- ऊर्ध्वजानुस्ततः सूची दक्षिणोऽङ्घ्रिः क्रमात् तत. । 1534
 अपक्रान्तोऽपरः पार्श्वक्रान्त. स्याद् दक्षिणस्ततः ॥१४४०॥
 सूची भ्रमरको वामः क्रमाद्ङ्घ्रिस्तु दक्षिण । 1535
 पार्श्वक्रान्तस्ततो वामोऽतिक्रान्तो दक्षिण. पुनः ॥१४४१॥
 सूची वामोऽप्यपक्रान्तः पार्श्वक्रान्तश्च दक्षिणः । 1536
 अतिक्रान्तस्तु वामोऽङ्घ्री द्वौ छिन्नकरणाश्रयौ ॥१४४२॥
 वामाङ्घ्रिर्निर्मिता बाह्यभ्रमर्यन्ते यदा तदा । 1537
 सञ्चरं ललिताद्यं स्यान्मण्डलं शिववल्लभम् ॥१४४३॥

दाहिना पैर क्रमशः ऊर्ध्वजानु तथा सूची करण बना हो ओर बायाँ पैर अपक्रान्त बना हो, तदनन्तर दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त ओर बायाँ पैर क्रमशः सूची तथा भ्रमर बना हो, फिर दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त ओर बायाँ अतिक्रान्त हो, पुनः दाहिना पैर सूची तथा बायाँ पैर अपक्रान्त हो, फिर दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त ओर बायाँ पैर अतिक्रान्त हो, दोनो पैर छिन्न करण का आश्रय लिये हुए हो, अन्त मे बाये पैर से बाहर भ्रमरी नामक चारी बनायी जाय, तो ललितसञ्चर आकाशमण्डल बनता है, जो शकर को प्रिय है।

५ सूचीविद्ध

- दक्षिणे यत्र सूची स्याद् भ्रमरोऽप्यथ जायते । 1538
 पार्श्वक्रान्तस्ततो वामोऽतिक्रान्तश्चरणः परः ॥१४४४॥
 सूची स्यादथ वामोऽङ्घ्रिरपक्रान्तः स्वरूपधृक् । 1539
 पार्श्वक्रान्तोऽपरस्तद्धि सूचीविद्धं प्रकीर्तितम् ॥१४४५॥

जहाँ दाहिना पैर सूची तथा भ्रमर मुद्रा मे हो ओर बायाँ पैर पार्श्वक्रान्त हो, फिर दाहिना पैर अतिक्रान्त तथा सूची मे हो और बायाँ पैर अपक्रान्त का स्वरूप धारण किये हुए हो, पुनः दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त हो, तो सूचीविद्ध आकाशमण्डल बनता है।

६ अलात

कुर्याद् वामाङ्घ्रिणा सूची भ्रमरी दक्षिणाङ्घ्रिणा ।	1540
भुजङ्गत्रासिता चारीमलातामपराङ्घ्रिणा ॥१४४६॥	
षड्वारमथवा सप्तकृत्वः कृत्वा क्रमादिमाः ।	1541
क्षिप्रं भ्रान्त्वा चतुर्दिक्षु समन्तान्मण्डलाकृतिः ॥१४४७॥	
अपक्रान्तां दक्षिणेन वामेन त्वङ्घ्रिणा यदा ।	1542
अतिक्रान्ताभ्रमरिके विधत्ते ललितैः क्रमैः ।	
तदालातं मण्डलं स्यात्सदा शङ्करशङ्करम् ॥१४४८॥	1543

बाये पैर से सूची तथा भ्रमरी नामक चारियो को तथा दाहिने पैर से भुजङ्गत्रासिता नामक चागी को और फिर बाये पैर से अलाता नामक चारी को छह बार या सात बार क्रमशः करके चारो दिशाओ मे मण्डलाकार मे शीघ्रतापूर्वक घुमाकर दाहिने पैर से अपक्रान्ता नामक चारी को आर बाये पैर से अतिक्रान्ता एव भ्रमरिका नामक चारियो को सुन्दर ढग से करने पर अलात नामक आकाशमण्डल बनता है, जो सदा शंकर को प्रिय है ।

७ विचित्र

जनितो दक्षिणोऽङ्घ्रिः स्यादूरुद्वृत्तोऽपि विच्यवः ।	
अथ सप्तस्थितावर्तोद्व्यावर्तोदितभेदवान् ॥१४४९॥	1544
वामोऽङ्घ्रिः स्पन्दितोऽथ स्यात् पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ।	
भुजङ्गत्रासितोऽन्यः स्यादतिक्रान्तस्तु दक्षिणः ॥१४५०॥	1545
उद्वृत्तकोऽप्यसौ वामस्त्वलातो दक्षिणः पुनः ।	
पार्श्वक्रान्तोऽथ सूच्यङ्घ्रिर्वामो विक्षिप्य दक्षिणम् ।	1546
अपक्रान्तो भवेद् वामो यत्र तत् स्याद् विचित्रकम् ॥१४५१॥	

दाहिना पैर जनिता, ऊरुद्वृत्ता, विच्यवा, सात स्थितावर्ता और दो आवर्ता चारियो के भेद से युक्त हो, बायाँ पैर स्पन्दिता चारी से युक्त हो, दाहिना पैर पार्श्वक्रान्ता चारी से युक्त हो, फिर बायाँ पैर भुजङ्गत्रासिता से युक्त हो, दाहिना पैर अतिक्रान्ता से युक्त हो, बायाँ पैर उद्वृत्ता से युक्त हो, पुन दाहिना पैर अलाता से युक्त हो, फिर बायाँ पैर पार्श्वक्रान्ता से युक्त हो, तो विचित्र आकाशमण्डल होता है ।

३६८

८ विहृत

दक्षिणो विच्यवीभूपः क्रमादुत्स्वन्दितस्ततः ।	1547
पार्श्वक्रान्तोऽप्यथो वामः स्पन्दितस्तदनन्तरम् ॥१४५२॥	
भवेत् सव्योऽङ्घ्रिरुद्वृत्तो वामोऽलातत्वमागतः ।	1548
सूच्यङ्घ्रिर्दक्षिणो वामः पार्श्वक्रान्तत्वमाश्रितः ॥१४५३॥	
आक्षिप्तो दक्षिणो यत्र भ्रान्त्वा सव्यापसव्यतः ।	1549
आश्रितो दण्डपादत्वमथ वामः क्रमाद् यदि ॥१४५४॥	
सूच्यङ्घ्रिर्भ्रमरश्चाथ भुजङ्गत्रासितोऽपरः ।	1550
अतिक्रान्तस्तु वामः स्यात् तत् तदा विहृतं मतम् ॥१४५५॥	

दाहिना पैर विच्यवा चारी से युक्त होकर क्रमशः स्पन्दिता तथा पार्श्वक्रान्ता से युक्त हो, तदनन्तर बायाँ पैर स्पन्दिता से युक्त हो, दाहिना पैर उद्वृत्ता से युक्त हो, बायाँ पैर अलाता से युक्त हो, दाहिना पैर सूची से युक्त हो, फिर बायाँ पैर पार्श्वक्रान्ता से युक्त हो, दाहिना पैर आक्षिप्ता से युक्त होकर दाये-बाये घूमकर दण्डपादा से युक्त हो जाय, फिर बायाँ पैर क्रमशः सूची तथा भ्रमरी से युक्त हो, दाहिना पैर भुजगत्रासिता से युक्त हो और बायाँ पैर अतिक्रान्ता से युक्त हो, तो विहृत आकाशमण्डल होता है ।

९ ललित

दक्षिणश्चरणः सूची वामोऽपक्रान्तां गतः ।	1551
पार्श्वक्रान्तो भवेत् सव्यो भुजङ्गत्रासितोऽप्यसौ ॥१४५६॥	
अतिक्रान्तः पुनर्वाप्तः स्यादाक्षिप्तस्तु दक्षिणः ।	1552
वामः क्रमादतिक्रान्त ऊरुद्वृत्तोऽप्यलातकः ॥१४५७॥	
पार्श्वक्रान्तो दक्षिणः स्यात् सूची वामोऽथ दक्षिणः ।	1553
अपक्रान्तोऽथ वामोऽङ्घ्रिरतिक्रान्तत्वमाश्रितः ।	
सञ्चरेल्ललितं यत्र तन्मतं ललितं बुधैः ॥१४५८॥	1554

दाहिना चरण सूची से युक्त हो, बायाँ चरण अपक्रान्ता से युक्त हो, दाहिना चरण पार्श्वक्रान्ता तथा भुजगत्रासिता से युक्त हो, बायाँ चरण अतिक्रान्ता से युक्त हो, पुनः दाहिना आक्षिप्ता से युक्त हो, बायाँ क्रमशः अतिक्रान्ता, ऊरुद्वृत्ता तथा अलाता से युक्त हो, फिर दाहिना पार्श्वक्रान्ता से आरंभ बायाँ सूची से युक्त हो, तदनन्तर

दाहिना अपक्रान्ता से युक्त हो और बायाँ अतिक्रान्ता से युक्त होकर सुन्दर ढंग से सचरण करे, तो उसे विद्वानो ने ललित आकाशमण्डल बताया है ।

१० दण्डपाद

जनितो दण्डपादश्च दक्षिणोऽङ्घ्रिः क्रमात् ततः ।

सूची स्याद् भ्रमरश्चान्योऽथोद्बृत्तो दक्षिणस्ततः ॥१४५६॥ 1555

वामोऽलातोऽथ चरणः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ।

भुजङ्गत्रासितोऽप्येष ततोऽतिक्रान्ततः गतः ॥१४६०॥ 1556

वामोऽथ दण्डपादस्तु सूची चान्यस्ततो यदा ।

वामः स्याद् भ्रमरो यत्र दण्डपादमिदं तदा ॥१४६१॥ 1557

दाहिना पैर क्रमग जनिता, दण्डपादा तथा सूची नामक चारियो से युक्त हो, बायाँ पैर भ्रमरी से युक्त हो, फिर दाहिना पैर उद्बृत्ता से युक्त आर बायाँ पर अलाता से युक्त हो, पुन दाहिना पैर पार्श्वक्रान्ता, भुजगत्रासिता तथा अतिक्रान्ता से युक्त हो, आर बायाँ पैर दण्डपादा से युक्त हो, पुन दाहिना पैर सूची से युक्त हो, और बायाँ पैर भ्रमरी से युक्त हो, तो दण्डपाद आकाशमण्डल होता है ।

दस भूमिगत मण्डल (२)

१. भ्रमर

दक्षिणो जनितोऽथाङ्घ्रिर्वामः स्यात् स्पन्दितस्ततः ।

दक्षिण. शकटास्योऽथ वामोऽपि स्पन्दितोऽथवा ॥१४६२॥ 1558

दक्षिणो भ्रमरः पादः स्याद् वामः स्पन्दितस्ततः ।

दक्षिण. शकटास्यः स्याद् वामश्चाषगतो भवेत् ॥१४६३॥ 1559

परस्तु भ्रमरोऽथाङ्घ्रिर्वामः स्यात् स्पन्दितो यदि ।

तदोक्तं भ्रमर धीरैर्मण्डलं शिववल्लभम् ॥१४६४॥ 1560

दाहिना पैर जनिता नामक चारी से युक्त आर बायाँ पैर स्पन्दिता से युक्त हो, फिर दाहिना शकटास्या से तथा बायाँ स्पन्दिता से युक्त हो, पुन दाहिना भ्रमरी से युक्त हो, बाँया स्पन्दिता से युक्त हो, फिर दाहिना शकटास्या से युक्त आर बायाँ चाषगति से युक्त हो, तत्पश्चात् दाहिना भ्रमरी से युक्त आर बाँया स्पन्दिता से युक्त हो, तो धीर पुरुषो ने उमे भ्रमरी भूमिमण्डल कहा है, जो शकर को प्रिय है ।

२ शकटास्य

- दक्षिणो जनितोऽथ स्यात् स्थितावर्त स एव चेत् ।
 शकटास्यस्ततोऽसौ स्यादेलकाक्रीडितस्ततः ॥१४६५॥ 1561
 ऊरुद्वृत्तोऽद्भितोऽङ्घ्रि स्याज्जनितोऽणि ततो भवेत् ।
 शकटास्योऽथ वामोऽङ्घ्रि स्पन्दितस्तदनन्तरम् ॥१४६६॥ 1562
 शकटास्यस्तत पादो यादन्मण्डलपूरणम् ।
 क्रमतो यत्र जायन्ते शकटास्य तदीरितम् ॥१४६७॥ 1563

दाहिना पैर क्रमश जनिता, स्थितावर्ता, शकटास्या, एलकाक्रीडिता, ऊरुद्वृत्ता, अड्डिता, पुन जनिता तथा शकटास्या नामक चाग्रियो मे युक्त हो ओर बायाँ पैर क्रमश स्पन्दिता एव मण्डल के पूर्ण होकर शकटास्या से युक्त हो, तो शकटास्य भूमिमण्डल होता है ।

३ पिष्टकुट्टक

- दक्षिणोऽङ्घ्रिर्भवेत् सूची वामोऽपक्रान्तकस्ततः ।
 क्रमान्मुहुः सव्यवामौ भुजङ्गत्रासितौ ततः । 1564
 मण्डलभ्रमणं प्रान्ते यत्रेद पिष्टकुट्टकम् ॥१४६८॥

दाहिना पैर सूची से युक्त तथा बायाँ पर अपक्रान्ता से युक्त हो, फिर दोनों दाहिना ओर बायाँ क्रमश भुजङ्गत्रासिता से युक्त हो ओर उन्हे मण्डलाकार मे घुमाया जाय, ता पिष्टकुट्टक भूमिमण्डल होता है ।

४ अड्डित

- उद्घट्टितोऽथ बद्धः स्यात् समोत्सरितपूर्वकः । 1565
 मत्तल्लिरर्धमत्तल्लिरपक्रान्तश्च दक्षिणः ॥१४६९॥
 उद्वृत्तश्च ततो विद्युद्भ्रान्तश्च भ्रमरस्ततः । 1566
 स्पन्दितोऽप्यथ वामः स्याच्छकटास्योऽथ दक्षिणः ॥१४७०॥
 भवेद् द्विश्चरणश्चाषगतिश्च तदनन्तरम् । 1567
 वामोऽद्भितोऽध्याधिकश्च क्रमाच्चाषगतिः परः ॥१४७१॥
 समोत्सरितमत्तल्लिर्मत्तल्लिर्भ्रमरः पुनः । 1568

वामोऽथ स्पन्दितीभूय विधत्ते स्फोटन भुवः ।

दक्षिणो यदि पाद स्यादङ्घ्रित मण्डलं तदा ॥१४७२॥ 1569

दाहिना पैर क्रमश उद्धटिता बद्धा, समोत्सरितमत्तल्लि, अर्धरत्तलि तथा अपक्रान्ता नामक चारियो से युक्त हो और बायाँ पैर क्रमश उद्धत्ता, विद्युत्भ्रमन्ता, अर्धरी तथा स्पन्दिता से युक्त हो, फिर दाहिना पैर शकटास्था तथा चाक्षति से युक्त होकर दो बार प्रयुक्त हो आर बायाँ पैर क्रमश अङ्घ्रिता तथा अर्धधिका से युक्त हो, फिर दाहिना पैर चाक्षति से युक्त हो तथा बायाँ पैर क्रमश समोत्सरितमत्तल्लि, मत्तल्लि तथा भ्रमरी से युक्त हो आर दाहिना पैर स्पन्दिता से युक्त होकर पृथ्वी पर चोट करे, तो अङ्घ्रिता भूमिमण्डल होता है ।

५ समोत्सरित

समपाद समाश्रित्य सम्प्रसार्य करौ ततः ।

निरन्तरौ विधायोर्ध्वावावेष्ट्योद्वेष्ट्य च क्रमात् ॥१४७३॥ 1570

न्यस्येत् कटीतटेऽथाङ्घ्री भ्रामयेत् सव्यवामकौ ।

क्रमादथ पुरो वाममङ्घ्रि यत्र प्रसारयेत् ॥१४७४॥ 1571

एवं भ्रान्त्वा चतुर्दिक्षु मण्डलभ्रमणं क्रमात् ।

समोत्सरितमेतत् स्यात् मण्डलं शिवशङ्करम् ॥१४७५॥ 1572

सम स्थिति पैर का आश्रय लेकर दोनों हाथों को फैलाकर तथा मटाकर ऊपर करके क्रमश आवेष्टित तथा उद्वेष्टित करके कटि पर रख दिया जाय, अनन्तर दाहिने ओर बायें पैरों को क्रमश घुमाकर बायें पैरों को आगे फैला दिया जाय, इस प्रकार चारों दिशाओं में मण्डलाकार घुमाने से समोत्सरित भूमिमण्डल बनता है, जो शकर को प्रिय है ।

६ आवर्त

[दक्षिणो जनितो वामः स्थितावर्तस्ततः परम् ।

शकटास्यो भवेत् पश्चादेडकाक्रीडिताङ्घ्रयः] । 1573

ऊरुद्ध्वत्तोऽङ्घ्रितः पश्चाच्चारी स्याज्जनिताभिधा ।

समोत्सरितमत्तल्लिः क्रमात् पादस्तु दक्षिण. ॥१४७६॥ 1574

१ देखिए सर्गांतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ११५४, (आडियार सस्करण) ।

शकटास्यस्ततोऽनूरुद्वृत्तोऽङ्घ्रिः स्यादथापरः ।
 अङ्घ्रिश्चाषगतिद्विः स्यात् स्पन्दितो दक्षिणस्ततः ॥१४७७॥ 1575
 शकटास्यो भवेद्वामः पराङ्घ्रिर्भ्रमरोऽथ चेत् ।
 अङ्घ्रिश्चाषगतिर्वभ्रमरतदावर्तमुदीरितम् ॥१४७८॥ 1576

दाहिना पैर जनिता चारी मे युक्त हो तथा बायाँ रिथतःदत्ता से युक्त होकर शकटास्या, एडकाक्रीडिता, ऊरुद्वृत्ता, अङ्घ्रिता, पुन जनिता तथा रमोस्तिरुत्तरल से त्रमग युक्त हो, दाहिना पैर शकटास्या तथा ऊरुद्वृत्ता से युक्त हो और बायाँ पैर चाषगति मे दो बार युक्त हो, पुन दाहिना पैर स्पन्दिता से तथा बायाँ पैर शकटास्या से युक्त हो, फिर दाहिना भ्रमरी से युक्त हो आर बायाँ चाषगति से युक्त हो, तो आवर्त भूमिमण्डल होता है ।

७ एलकाक्रीडित

भूमिश्लिष्टैर्यदा पादैः सूचीविद्धं समाश्रितैः ।
 एलकाक्रीडितैः सूचीविद्धैरपि पुनः पुनः ॥१४७९॥ 1577
 सम्पूर्णभ्रमणैः प्राग्बत् सूचीविद्धैस्ततोऽङ्घ्रिभिः ।
 आक्षिप्तैर्मण्डलभ्रात्या चतुर्दिक्ष्वसानके । 1578
 तदेलकाक्रीडिताख्यमाख्यात मण्डलं बुधैः ॥१४८०॥

भूमि से सटे हुए पैर सूचीविद्ध नामक कण का आश्रय लेकर एलकाक्रीडित तथा पुन-पुन सूचीविद्ध करणो से युक्त होकर पूर्ण रूप घुमाये जाने हुए आक्षिप्त करणो मे अवस्थित किये जाँय, फिर अन्त मे चारो दिशाओ मे मण्डलाकर घुमाने से एलकाक्रीडित भूमिमण्डल बनता है, ऐसा विद्वानो का कहना है ।

८ आस्कन्दित

दक्षिणो भ्रमरः पादस्ततो वामोऽङ्घ्रितो भवेत् । 1579
 दक्षिणः शकटास्यत्वं प्राप्तोऽरुद्वृत्तता व्रजेत् ॥१४८१॥
 यदा वामोऽध्याधिकः स्याद् भ्रमरो दक्षिणः पुनः । 1580
 स्पन्दित शकटास्य स्याद् वामस्तेन महीतलम् ।
 आस्फोटित स्फुट यत्र तदास्कन्दितमीरितम् ॥१४८२॥ 1581

नृश्याध्याय

दाहिना पैर भ्रमरी चारी से युक्त तथा वायों पैर अड्डिता से युक्त हो, फिर दाहिना शकटास्या तथा ऊरूदवृत्ता से ओर वायों अर्ध्याधिका से युक्त हो, दाहिना पुन भ्रमरी से युक्त हो, और वायों स्पन्दिता तथा शकटास्या से युक्त हो, उससे पथ्वी पर स्पष्ट रूप से पटकने की आवाज हो, तो आस्कन्दित भूमि मण्डल बनता है।

९ चाषगत

सर्वे चाषगताः पादा यदान्ते मण्डलभ्रमः ।

तदा चाषगतं ज्ञेयं नियुद्धे मण्डलं बुधैः ॥१४८३॥ 1582

जब पैर चाषगति नामक चारी से युक्त हो और अन्त में मण्डलाकार घुमाया जाय, तो चाषगत भूमिमण्डल बनता है। विद्वानों ने इसका विनियोग कृत्ती के अभिनय में बताया है।

१० अर्धधर्म

क्रमादङ्घ्रिर्दक्षिणः स्याज्जनितः स्पन्दितस्ततः ।

अड्डितोक्तचतुर्भेदो वामः स्यादथ दक्षिणः ॥१४८४॥ 1583

शकटास्यश्चतुर्दक्षु मण्डलभ्रमण यदा ।

भवेदन्ते तदा धीरैरर्धधर्म परिकीर्तितम् ॥१४८५॥ 1584

दाहिना पैर क्रमशः जनिता तथा स्पन्दिता से युक्त और वायों पैर अड्डिता के चार भेदों से युक्त हो, फिर दाहिना पैर शकटास्या से युक्त होकर अन्त में चारों दिशाओं में मण्डलाकार घुमाया जाय, तो धीर पुरुष उसे अर्धधर्म भूमिमण्डल कहते हैं।

चारी नाम्ना प्रविज्ञेयश्चरणस्तु मनीषिभिः ।

चरणन्यूनताधिक्यं मन्वते नेह दोषकृत् । 1585

अतो न्यूनैऽधिके चाङ्घ्रौ न दुष्टं मण्डलं मतम् ॥१४८६॥

मनोपियो को यहाँ चारी के नाम से चरण को समझना चाहिए। यहाँ विद्वान् लोग चरण की न्यूनता या अधिकता को दोषकारक नहीं मानते हैं। इसलिए चरण के न्यून और अधिक होने पर भी मण्डल निर्दुष्ट है।

समवेत रूप में बीस मण्डलों का निरूपण समाप्त।



लास्यांग प्रकरण / चौदह

मार्गस्थित लास्यांगो का निरूपण (१)

मार्गस्थित लास्यांगो (आणिक अभिनयो) के भेद

स्थितपाठ्यमथासीन	सैन्धव	पुष्पमण्डिका ।	1586
प्रच्छेदक.	शेषपदं	द्विमूढं च त्रिमूढकम् ॥१४८७॥	
वैभाविकं	चित्रपदमुक्तप्रत्युक्तकं	तथा ।	1587
उत्तमोत्तमकं	चेति	द्व्यधिकानि दशाब्रुवन् ॥१४८८॥	
क्रमान्मार्गस्थितानीति	लास्याङ्गान्यथ	लक्षणम् ।	1588
प्रोच्यतेऽशोकमल्लेन	तेषा	लक्षमानुसारत. ॥१४८९॥	

अशोकमल्ल ने मार्गस्थित लास्यांगो के बारह भेद बताये हैं १ स्थितपाठ्य, २ आसीन, ३ सैन्धव, ४ पुष्प मण्डिका, ५ प्रच्छेदक, ६ शेषपद, ७ द्विमूढ, ८ त्रिमूढ, ९ वैभाविक, १० चित्रपद, ११ उदत्तप्रत्युदत्त आर १२ उत्तमोत्तम । अब उनकी गति-विधियों के अनुसार उनके लक्षण-विनियोगो का निरूपण किया जा रहा है ।

१ स्थितपाठ्य

[यदा] कन्दर्पतप्ताङ्गी तन्वी [वि] रहविह्वला ।	1589
स्थिता पठेत् प्राकृतं चेत् स्थितपाठ्यं तदोदितम् ॥१४९०॥	

जब कामभीडित तथा विरह से व्याकुल युवती लड़ी हाकर प्राकृत भाषा का पद्यपाठ करे, तब स्थितपाठ्य लास्यांग होता है ।

यथा—

मयणप्यहुकोवताविनाए मह सीदाइं कुरगलोअणाए ।	1590
सहि वल्लहसंगवचिदाए सरण पुम्मदलांइ जीवियस्स ^५ ॥१४९१॥	

जैसे, हे सखी ! कामदेव के क्रोध से जलायी हुई, (अतएव) डरी हुई और प्रियतम के महवाम से वचित की हुई मुझ मृगनयनी के प्राणो के रक्षक कमलदल ही हो सकते हैं ।

मदनप्रभुकोपतापिताया मम भीतायाः कुरङ्गलोचनायाः ।

सखि वल्लभसङ्घवञ्चितायाः शरणं पद्मदलानि जीवस्य ॥

(नृत्यरत्नकोश, वात्यूम २, पृष्ठ १९९, श्लोक ७) ।

२ आसीन

यत्राङ्गना खण्डितास्ते चिन्ताशोभिताः । 1591

वर्जिताभिनयैर्वाक्यैरतदासीनं मतं बुधैः ॥१४६२॥

जहाँ खण्डिता नायिका चिन्ता ओर शक से व्याकुल तथा अभिनय एवं वचनों से रहित होकर बठी रहती है, वहाँ बुधजन आसीन लास्याग बनाते हैं ।

यथा—

प्रसरति दिनमणितेजसि विगलित तमसि प्रकाशिते नभसि । 1592

अपनीताधररागं पश्य वयस्ये समागत रमणम् ॥१४६३॥

जैसे , हे सूर्य ! सूर्य की किरणों के फेंक जाने तथा अंधकार के नाट हो जाने पर आर आकाश के प्रकाशित हो जाने पर अंधर की लालिमा से रहित होकर आये हुए कान्त को देखो ।

भालेऽलक्तकमञ्जिताधरमुर कर्पूरमुद्रं वहन् । 1593

निःशुद्धः पतिरभ्युपैति वियति प्रत्यग्रसूर्योदये ॥

चिन्तासागरसन्निमग्नमनसा नीता मया यामिनी । 1594

किं कुर्वे सखि कैतवं कलयता मुग्धामुना वञ्चिता ॥१४६४॥

ललाट पर महावर, लालिमा रहित अंधर आर कर्पूर से अंकित वक्ष स्थल वाग्ण किये हुए (मेरे) पति आकाश म सद्य सूर्योदय हो जाने पर नि शक होकर (मेरे) पास आ रहे हैं । चिन्ता रूची सागर मे डूबे हुए मन वाली मैंने (सारी) रात बिता दी । सखी ! क्या करूँ ? इस छलिये ने भोली-भाली मुझको ठग लिया ।

३ सैन्धव

यत्र पात्रं कालहीनं नाट्यपाट्यविवर्जितम् । 1595

भाषासिन्धुभवाच्चैतत् सैन्धव समुदीरितम् ॥१४६५॥

जहाँ पात्र समय से रहित, नाट्य-पाठ्य से अनभिज्ञ हो ओर भाषा सिन्धु देश की हो, वहाँ सैन्धव लास्याग होता है ।

४ पुष्पमण्डिका

विचित्र यत्र कान्ताना गीतं वाद्यं च नर्तनम् । 1596

मनोवाक्कायचेष्टाभिर्हीनं सा पुष्पमण्डिका ॥१४६६॥

३७८

लास्याग प्रकरण

जहाँ कान्तो का गीत, वाद्य तथा नृत्य विचित्र हो आर कायिक (जागिक), वाचिक एव मानसिक (आहार्य) चेष्टाओं से शून्य हो, वहाँ पुष्पमण्डिका लास्याग होता है ।

५ प्रच्छेदक

यत्राङ्गना परित्यक्तलज्जाश्चन्द्रातितापिता । 1597
कृतापराधकान् यान्ति प्रियान् प्रच्छेदकस्तु सः ॥१४६७॥

जहाँ चन्द्रमा से अत्यन्त तप्त रमणियों लज्जा का परित्याग करके अपराधी प्रियतमों के पाम जाती हैं, वहाँ प्रच्छेदक लास्याग होता है ।

यथा—

सखि स्फुरति यामिनी अश्विनमृत्कयांशुभिर् 1598

ज्वलद्भिरिव मामर्थं स्पृशति मानमुन्मूलयन् ।

अतो विगतलज्जया सुरतसगरे सज्जया । 1599

मयापि विदितागस प्रियमुपासितु गम्यते ॥१४६८॥

जैसे, हे सखी ! रात्रि चन्द्रमा को उठाकर चमक रही है और यह चन्द्रमा मानो अपनी जाज्वल्यमान किरणों से मेरे मात का उन्मूलन करते हुए मुझे तू रहा है । इमलि० में निर्दग्ज होकर रनिमृद्व की तप्रागी करके अपराधी प्रियतम के पाम जा रही हैं ।

६ शेषपद

तताद्यनुगता गाननिष्णाता यत्र गायकाः । 1600

गायन्ति सुखसस्थानास्तच्छेषपदमीरितम् ॥१४६९॥

(वीणा, सारंगी आदि) वाद्यों का अनुगमन करने वाले गानविद्या में निष्णात गायक जहाँ सुख में बैठकर गाते हैं वहाँ शेषपद लास्याग होता है ।

७ द्विमूढ

चित्रार्थ श्लेषभावाढ्यं मुखप्रतिमुखान्वितम् । 1601

यद् वाक्यं तद् द्वि[मू]ढाख्यं लास्याङ्गं कथितं बुधैः ॥१५००॥

विचित्र अर्थों वाला, श्लेषपालकार से युक्त ओर मृग एव प्रतिमृग मन्त्रियों में युक्त जो वाक्य होता है, उसे बुधजन द्विमूढ लास्याग कहते हैं ।

यथा—

अङ्कुरिता मम हृदये प्रेमलतां रमणजलधरो मुदितः । 1602

सिञ्चति जीवनस्वनैरिह वचनैरुन्नति नेतुम् ॥१५०१॥

जैसे , मेरे हृदय मे अकुरिन हुई प्रेम रूपी लता को बढाने के लिए प्रियतम रूपी बादल वचन रूपी जलधारा से सींच रहा है ।

८ त्रिमूढ

रम्यवर्णनिबद्धं यद् बहुभावसमन्वितम् । 1603

अलङ्कृत तुल्यवृत्तं [वा] कथं तत् स्यात् त्रिमूढकम् ॥१५०२॥

जो रमणीय अक्षरो मे निबद्ध हो, अनेक भावो मे युक्त हो, अलकार मे पूर्ण हो, आर समान वृत्त वाला हो, उसे त्रिमूढ लास्याग कहते हे ।

यथा—

भयहर्षरोषरोदनवद [न]—सम्भेदनानि कुर्वाणौ । 1604

स्मरसङ्करसङ्गमितौ जितमिति नौ मन्मथो हसति ॥१५०३॥

भय, हर्ष, क्रोध, रुदन, कथन ओर सभेदन—ये सब करते हुए तथा रतियुद्ध मे लगे हुए हम दोनो को जीत लिया— यह कहकर कन्दर्प हँस रहा है ।

कुचोन्नमनचातुरीचलितकञ्चुकीबन्धया 1605

कपोलपुलकावलीकलितयाऽऽयतापाङ्गया ।

विमोहनविवर्तनैर्विदितसङ्गया संगमे 1606

त्वयाभिलषिते कथं सुमुखि मानमालम्बसे ॥१५०४॥

हे सुमुखी ! कुचो को उत्तुग बनाने की चतुरता मे चोली पहनने वाली कपोलो पर रोमाच से युक्त लम्बी तिरछी चितवन वाली ओर ज्ञात सहवास वाली तुम मोहक हाव-भावो द्वाग मेरे सहवास की इच्छा प्रकट करके मान का अवलम्बन क्यो कर रही हो ?

९ वैभाविक

प्रियं स्वप्ने समालोक्य पञ्चबाणनिपीडिता । 1607

विचित्रान् रचयेद् भावान् यदा वैभाविकं तदा ॥१५०५॥

जब नायिका स्वप्न मे प्रियतम को देखकर कामवाण से पीडित होती हुई अनेक प्रकार के भावो की रचना करे, तब वैभाविक लास्याग होता है ।

यथा—

अद्याकर्णय नैशिकं सखि मया कान्तश्चिरं प्रोषितो 1608

निद्रामुद्रितनेत्रयापि शयने साक्षादिवावेक्षितः ।

मायासङ्गमभङ्गभीहतरये वोन्मज्ज्य लज्जाजलात् 1609

कण्ठग्राहमनिन्दितः परिवृतः प्रोल्लासितो मोदितः ॥१५०६॥

जैसे, हे सखी ! अब रात का वृत्तान्त मुनो ! चिरकाल मे परदेश गये हुए प्रियतम को, निद्रा मे मुदी हुई आँखे होने पर भी, मैंने पलंग पर साक्षात् की तरह देखा । तब मानो ऐन्द्रजालिक मगम के नष्ट होने से अत्यन्त डरी हुई मैंने लज्जा रूपी जल से निकलकर प्रियतम के गने से लिपटकर घेर लिया आर खूब जामोद-प्रमोद किया ।

१० चित्रपद

यत्र चित्रकृतं कान्तं कान्ता कामकृतव्यथा । 1610

दृष्ट्वा खिद्यति चेदुक्तमिदं चित्रपदं तदा ॥१५०७॥

जहाँ चित्र मे नायक को देखकर नायिका कामपीडा से खिन्न हो जाती है, वहाँ चित्रपद लास्याग होता है ।

यथा—

कान्तं चित्रपटे विलिख्य विदधे यावत् तयालापनम् 1611

लब्धो जीवनवासरैः कतीपर्यैस्त्यक्ष्यामि न त्वामिति ।

तावन् मज्जदन्तल्पबाष्पसलिले सम्भिन्नभिन्नाक्षरम् 1612

खेदस्वेदकपाटकोटिघटितं कण्ठे विशीर्णं वचनः ॥१५०८॥

जैसे, चित्रपट पर प्रियतम को लिखकर जब तक नायिका यह कहने लगी कि मिलने पर तुम्हें जीवन के कति-पर्य दिनो तक नहीं छोडूंगी, तब तक अत्यधिक अश्रुजल मे डूब जाने से खिन्न-भिन्न अक्षरो वाला तथा खेद के कारण बहने वाले पसीने-रूपी किवाडा के सिरे से टकराया हुआ वचन कण्ठ मे ही विगलित हो गया ।

११ उक्तप्रत्युक्त

प्रसादकं सरोषस्य साधिक्षेपपदं यदा । 1613

नानार्थगीतसहितमुक्तप्रत्युक्तकं तदा ॥१५०९॥

जब क्रुद्ध व्यक्ति को प्रसन्न करने वाला आक्षेपयुक्त तथा अनेक अर्थों सहित वचन प्रयुक्त होता है, तब उक्त प्रत्युक्त लास्याग होता है ।

यथा—

प्राप्तो वसन्तसमय. समयानभिज्ञ 1614
रोष परित्यज भजस्वमयि प्रसादम् ।

उत्तुङ्गपीवरपयोधरभूरिभारा— 1615
माराधितोऽपि नहि रक्षितुमीहसे माम् ॥१५१०॥

हे समय से अनभिज्ञ कान्त ! वसन्तकाल आ गया है । (इसलिए) रोष का परित्याग करो । मुझ पर प्रसन्न हो जाओ । क्या, मनाये जाने पर भी, तुम उन्नत तथा स्थूल कुबो वाली मुझको (अपना) नहीं रखना चाहते हा ?

१२ उत्तमोत्तम

युक्तं चित्ररसैर्वाक्यं चित्रैर्भाविंश्च मञ्जुलम् । 1616
तथाभिनयनैर्युक्तमुत्तमोत्तमकं मतम् ॥१५११॥

विभिन्न प्रकार के रसों तथा भावों से युक्त, सुन्दर तथा अनेक प्रकार के अभिनयों से युक्त वाक्य उत्तमोत्तम लास्याग कहलाता है ।

यथा—

सहर्षमवलोकन विहितभीतमालिङ्गनम् 1617
सरोषमपि भाषण सजललोचन रोदनम् ।

इति प्रथमसंगमे चतुरचित्तचेतोहरो 1618
विचित्ररससङ्करो जयति कोऽपि वामञ्चुवः ॥१५१२॥

जैसे , हर्षपूर्वक देखना, भयपूर्वक आलिंगन करना, क्रोधपूर्वक बोलना और सजलनेपूर्वक रोना—यह ललना के प्रथम महवाम से चतुर व्यक्ति के चित्त को हरने वाला अनेक रसों का सम्मिश्रण विलक्षण होता है ।

देशी लास्यागों का निरूपण (२)

देशी लास्यागों के भेद

चालिश्चालिवटस्तुकं मनो लेढिरुरोङ्कणम् । 1619

ढिल्ललाई त्रिकलिः किन्तु देशीकार निजापनम् ॥१५१३॥

उल्लासस्थसको भावः सुकलासं लयस्तथा । 1620

ढालश्छेवाङ्गहारश्च लङ्घितं विहसी तथा ॥१५१४॥

नीकी नमनिका शङ्का वितडं गीतवाद्यता ।	1621
विवर्तनं रथ(?)थर)हर स्थापना सौष्ठव तत. ॥१५१५॥	
स्रुवा भसृणतोपारस्तथाङ्गानङ्गमित्यपि ।	1622
कोमलिका चाभिनयस्ततो मुखरसस्तथा ॥१५१६॥	
एवं सप्ताधिकास्त्रिशल्लास्याङ्गाना समासतः ।	1623
देश्याद्यानाम्—	

देशी लास्यागो के सक्षेप मे मंत्रीम भेद डम प्रकार हे १ चालि, २ चालिवट, ३ त्क, ४ मनस्, ५ लेटि, ६ उरोडकण ७ ढिल्लाई, ८ त्रिकलि, ९ किन्तु, १० देशीकार, ११ निजापन, १२ उल्लास, १३ थसक, १४ भाव, १५ सुकलास, १६ लय, १७ डाल, १८ छेव, १९ अणहार, २० लप्रित, २१ विहसी, २२ नीकी, २३ नमनिका, २४ शका, २५ वितड, २६ गीतवाद्यता, २७ विवर्तन, २८ थरहर, २९ स्थापना, ३० सौष्ठव, ३१ स्रुवा, ३२ मसृणता, ३३ उचार, ३४ आनग, ३५ अभिनय, ३६ कोमलिका आर ३७ मुखरस ।

—अथैतेषां लक्ष्यलक्षणवेदिना ।

लक्षमाण्यशोकमल्लेन कथ्यन्ते साधुनाधुना ॥१५१७॥ 1624

लक्ष-लक्षणो के ज्ञाता साधु अशोकमल्ल अव उनके लक्षणो का निरूपण कर रहे ह ।

१ चालि

बाहुकट्यूरुपादानामेकदा चालनं यदा ।

तालतौल्ययुतं नातिमन्दं नातिद्रुतं तथा ॥१५१८॥ 1625

मधुर सविलासं च कोमलं त्र्यस्रभावभाक् ।

तदा चालि समाचष्टाशोकमल्लो नृपाग्रणी. ॥१५१९॥ 1626

जब बाँह, कमर, जाँघ और पैर को एक ही समय ताल-मात्रा के साथ न बहुत मन्द और न बहुत शीघ्र गति से मधुरता, हावभाव, कोमलता तथा त्र्यस्रभाव पूर्वक चलाया जाय, तब महाराज अशोकमल्ल उसे चालि नामक लास्याग कहते है ।

२ चालिवट

शैड्र्यसांमुख्यबहुला सैव चालिवटो मतः ॥१५२०॥

नृत्याध्याय

जब चालि लास्याग मे शीघ्रता ओर मम्मम्बता का वाहुन्य होता हो, तब वही चालिवट लास्याग कहलाता है ।

३ तूक

द्रुतमन्दादिभावेन चालनं हावपूर्वकम् । 1627
लीलावतसयुतयोः कर्णयोस्तूकमीरितम् ॥१५२१॥

लीला के लिए वारण किये गये आभूषणा से युक्त दोनो कानो को शीघ्र तथा मन्द गति से हाव-भाव पूर्वक चलाया जाय, तो तूक लास्याग कहलाता है ।

४ मन

शृङ्गारससम्पन्नः कोऽप्यपूर्वो गुणो यदा । 1628
लक्ष्यते शिक्षिताद् योऽतिसूक्ष्मोऽभिनयभावभाक् ॥१५२२॥
अन्य एव तु नाट्याङ्गक्रियायोगाद्यदा लयै । 1629
तदा मनो नोहारि सुमनोभिरिदं मतम् ॥१५२३॥

जब शृङ्गार रस से सम्पन्न कोई अपूर्व गुण, जो अत्यन्त सूक्ष्म तथा अभिनय के भाव का द्योतक हो और नाट्याग-क्रिया के योग से दूसरा ही हो, शिक्षित व्यक्ति से लय के साथ दिखाई पड़े, तब मनम्बी गोगो ने उमे सुन्दर मन नामक लास्याग कहा है ।

५ लेडि

कोमल मधुरं तिर्यक् सविलासं च यद् भवेत् । 1630
एकदा चालनं बाहुकटीनां सा लेडिर्मता ॥१५२४॥
सौन्दर्यभरसंपन्नः संगीतप्राप्तिसम्भवः । 1631
आनन्दातिशयः कोऽपि लेडिरित्यपरे जगुः ॥१५२५॥

बाँह ओर कमर का एक साथ सचालन, जो कोमल, मधुर, तिरछा तथा हाव-भावपूर्वक हो, लेडि नामक लास्याग कहलाता है । दूसरे आचार्यों का मत है कि सोन्दर्य के भार से सम्पन्न आर सगीत के सयोग से व्युत्पन्न एव अतिशय आनन्द से युक्त लास्याग लेडि कहलाता है ।

६ उरोङ्कण

अंसयोः स्तनयोस्तालसम्मितं चालनं भवेत् । 1632
पर्यायादेकदा वा यद् द्रुतं यद् वा विलम्बितम् ॥१५२६॥

३८४

लास्यांग प्रकरण

क्रमादधः पुनः पश्चाद्बर्धमेतदुरोङ्कणम् ।	1633
इदमेव नटाः प्राहुस्त्रङ्गशब्देन कोविदाः ॥१५२७॥	
मनाक् सुललितं तिर्यक् चालनं यत् कुचासयो ।	1634
विलम्बेनाविलम्बेन तद्वच्चु केप्युरोङ्कणम् ॥१५२८॥	
यत्र पात्रं द्रुत गात्रं कम्पयेत् तालकालतः ।	1635
मनाङ् मनोहर केचिद्वचुरे तदुरोङ्कणम् ।	
इदमेव रचे नाम्नाचक्षन्ते साम्प्रदायिकाः ॥१५२९॥	1636

यदि कधो तथा स्तनो को ताल-मात्रा के प्रमाण से क्रमशः या एक समय गीघ्रता से या विलम्ब से क्रमशः नीचे और ऊपर की ओर चलाया जाय, तो उसे उरोकण लास्यांग कहने ह । डमी को विज्ञ नर्तक त्रग शब्द से अभिहित करते ह । कोई आचार्य कहते है कि कुचो तथा कधो को घोडा सुन्दर ढग से तिरछा करके विलम्ब से या गीघ्रता से जो चलाया जाता है, वह उरोकण कहलाना ह । अन्य विद्वानो का कहना है कि जहाँ अभिनेता ताल-मात्रा के प्रमाण से शरीर को कुठ सुन्दरतापूर्वक गीघ्रता से कम्पित करता है वहाँ उरोकण लास्यांग होता है । डमी को नाट्य-सम्प्रदाय के आचार्य रचे नाम से पुकारने हे ।

७ ढिल्लाई

नर्तकी तनुते नृते यदाङ्गं स्तोकसौष्ठवम् ।	
भावाद्द्र हृदयोपेता विलासमधुरान्वितम् ।	1637
हेलाभावालसं यत्र सा ढिल्लाई तदा मता ॥१५३०॥	

जब नृत्य मे भावो से सरस हृदयवाली नर्तकी विलास के माधुर्य से युक्त और शृंगार-सूचक हाव-भावो से अलसाये हुए अंग को किञ्चित् सुन्दरता के साथ फैलाती है, तब उसे ढिल्लाई लास्यांग कहते है ।

८ त्रिकलि

चार्या स्थानेऽथवा ताललयानुगतिभिर्यदा ।	1638
त्रिधुताकम्पिताधूतपरिवाहितकम्पितैः ॥१५३१॥	
पञ्चभिर्मूर्धभिर्यत्र पात्रं चित्तानि पश्यताम् ।	1639
आनन्दयत्यसौ सद्भिस्तदा त्रिकलिरीरितः ॥१५३२॥	

३८५

नृत्याध्याय

जब चारी में या स्थानक में ताल-लय का अनुगमन करने वाले, विद्युत्, आकम्पित, आघूत्, परिवाहित और कम्पित नामक पाँच मस्तक मुद्राओं द्वारा अभिनेता देखने वालों के चित्त को आनन्दित कर देना है, तब सज्जन लोग उसे त्रिकलि लास्याग कहते हैं ।

९ किन्तु

यत्राङ्गना गीततालतुलितं चालनं यदा । 1640

भ्रुवयोः स्तनयोः कट्याः कुर्यात् किन्तु तदा त्विदम् ॥१५३३॥

जहाँ रमणी गीत के ताल के अनुसार भौंहों, स्तनों तथा कटि का संचालन करती है, वहाँ किन्तु नामक लास्याग होता है ।

१० देशीकार

मनोहरं यदग्राम्यं तत्तद्देशानुसारतः । 1641

नानारीत्यन्वितं नृत्तं देशीकारमिदं जगुः ॥१५३४॥

मनोहर, ग्राम्य से भिन्न और तत्तद् देश के अनुसार अनेक प्रकार की गीतियों से युक्त नृत्य को देशीकार लास्याग कहते हैं ।

११ निजापन

पात्रे यत्राप्रत्नेन सौष्ठवं रेखयान्वितम् । 1642

नृत्तति प्रेष्यते दृष्टिः करे सुगतिमुन्दरी ।

सभ्यातिमोहनीभावसम्पन्ना तन्निजापनम् ॥१५३५॥ 1643

जहाँ आभानी से सुन्दरतापूर्वक रेखा (राग) से अन्वित होकर नृत्य करते हुए पात्र पर दृष्टिपात किया जाय और हाथ में सभासदों (दर्शकों) को मोहित करने वाली अच्छी गति रूपी सुन्दरी हो, तो वहाँ निजापन लास्याग होता है ।

१२ उल्लास

क्षिप्रं निरूपितास्तालान् दर्शयेद् भावसूचकैः ।

द्विगुणैस्त्रिगुणैर्यद्वा पात्रं गात्रसमुद्भवैः ॥१५३६॥ 1644

सूक्ष्मैरसकृदुल्लासैर्मनो हरति पश्यताम् ।

तदुल्लासं समाचष्टं वीरसिहसुनन्दनः ॥१५३७॥ 1645

१७ ढाल

यदा [त्व] मन्दमुल्लोलकमलोपरि बिन्दुवत् । 1651

नृत्ये यत्राङ्गसञ्चारः तदासौ ढाल उच्यते ।

इममेव बुधाः केचित्ताननाम्ना प्रचक्षते ॥१५४३॥ 1652

जब नृत्य मे अत्यन्त चंचल कमल पर जल-बिन्दु की तरह अंगो का संचार किया जाता है, तब वह ढाल नामक लास्याग कहलाता है । इसी को कोई विद्वान् तान नाम से अभिहित करते है ।

१८ छेवा

सुभ्रुवो यत्र नेत्रान्तौ भावगर्भौ स्वभावतः ।

तरलौ नर्तने स्यातामसौ छेवा मता बुधैः ॥१५४४॥ 1653

जहाँ नृत्य मे नर्तकी के नेत्रो के कोर स्वभावत भावगर्भित एव चंचल हो, वहाँ बुद्धजन छेवा नामक लास्याग मानते है ।

१९ अगहार

ललिता यत्र गात्रस्य नतिः पूर्वोत्तरार्धयोः ।

चापवत् तालसहिता सोऽङ्गहारोऽभिधीयते ॥१५४५॥ 1654

जहाँ पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध अनुप की तरह अंगो का चलन (झुकना) ताल सहित सुन्दर दिखाई दे, वहाँ अगहार लास्याग होता है ।

२० लघित

मुहुर्मुहुः समुल्लङ्घ्य वाद्यस्यावादनं यदा ।

पात्र विश्रम्य विश्रम्य नृत्येत् स्याल्लङ्घितं तदा ॥१५४६॥ 1655

जब पात्र वाद्य के गव्द का बार-बार उल्लघन करके रुक-रुक कर नृत्य करे, तब लघित लास्याग होता है ।

२१ विहसी

विहसी तु तदा ज्ञेया यदा स्यात् सुन्दरस्मितम् ॥१५४७॥

जब सुन्दर मुसकराहट के साथ नृत्य किया जाय, तब उसे विहसी लास्याग कहते है ।

२२ नीकी

नर्तकी नर्तने गीतवाद्यताल [ल] येष्वपि । 1656

अस्खलन्ती यदा नीकी तदा जनमनोहरा ॥१५४८॥

३८८

लास्याग प्रकरण

जब नृत्य मे नर्तकी गीत, वाद्य, ताल आर मे लय भी किमी प्रकार की त्रुटि न करती हुई जन-मन को जाहृष्ट कर ले, तब वह नौकी लास्याग होता है

२३ नमनिका

अङ्गानां यत्र पात्रस्य प्रयासव्यतिरेकत । 1657

नमनं स्यात् प्रयोगेषु दुष्करेष्वपि सा तदा ।

मता नमनिका धीरैः सभ्यानन्दविवर्धनी ॥१५४६॥ 1658

जहाँ अत्यन्त कठिन प्रयोगो मे बिना प्रयास के भी (स्वाभाविक रूप मे) पात्र के अंगो का नमन होना रहता है, धीर पुरुष उसे, सभामदो के आनन्द को बढ़ाने वाली, नमनिका नामक लास्याग कहते ह ।

२४ शका

अङ्गानि तावदौद्धत्याच्चालयित्वा सविभ्रमम् ।

पुनराहार्य तान्यग्रे पार्श्वयोरपि नर्त्तकी । 1659

वञ्चयन्तीव चेल्लोकं नृत्येच्छङ्का तदोदिता ॥१५५०॥

जहाँ अंगो को उद्धतता से विलामपूर्वक चलाकर नर्तकी पुन अंगो को जागे तथा वगलो मे भी सचालित करके लोको को ठगती हुई-सी नृत्य करे, तो वहाँ शका नामक लास्याग होता है ।

२५ वितड

स्वभावात्ललितं चारीकरणादिबलाद् यदा । 1660

कुरुते कठिन यत्र तदेदं वितडं मतम् ॥१५५१॥

जहाँ चारी, करण आदि के बल से कठिन नृत्य को भी स्वाभाविक रूप मे सुन्दर ढंग मे प्रस्तुत किया जाय, वहाँ वितड नामक लास्याग होता है ।

२६ गीतवाद्यता

नृत्येदनुगुणं यत्र नर्त्तकी गीतवाद्ययोः । 1661

अक्षराणां लयस्यापि समता गीतवाद्यता ॥१५५२॥

जहाँ नर्तकी गीत ओर वाद्य के अनुकूल नृत्य करे ओर अक्षरो तथा लय की भी सगति रहे, नहीं गीतवाद्यता नामक लास्याग होता है ।

२७ विवर्तन

वाद्यप्रबन्धवर्णानां यत्र साम्येन नर्त्तनम् । 1662

नृत्याध्याय

रचयेद् हस्तकैः पात्रं चारीभिः करणैरपि ।

भ्रमरीभिश्च सम्प्रोक्तं विवर्तनमिदं बुधै ॥१५५३॥ 1663

जहाँ पात्र वाद्य और गीत के वर्णों के साम्य से हाथों, चारियों, करणा और भ्रमरिया द्वारा नृत्य प्रस्तुत करे वहाँ उसे बुधजन विवर्तन नामक लास्याग कहते हैं ।

२८ थरहर

नर्तने तनुयात् क्षीप्रं कम्पनं कुचयोर्नटी ।

भुजावधि विलासेन यदा थरहरं तदा ॥१५५४॥ 1664

जब नर्तकी नृत्यकाल में कुचों के कम्पन को हाव-भाव के साथ शीघ्रतापूर्वक बाँहों तक फैलानी है, तब थरहर नामक लास्याग होता है ।

२९ स्थापना

या स्थितिर्ललिता भूमौ सरेखमुखरागभाक् ।

समार्धे नर्तनेऽङ्गानां प्राहुस्तां स्थापना बुधाः ॥१५५५॥ 1665

नृत्य के बराबर आधे भाग में भूमि पर अंगों को ऐसे सुन्दर ढंग से स्थापित किया जाय, जिसमें रेखा सतिन चेहरे का रंग स्पष्ट दिखायी दे, तो उसे बुधजन स्थापना नामक लास्याग कहते हैं ।

३० सौष्ठव

सौष्ठवस्य पुरोक्तस्य चतुर्भिर्बाह्वभिर्मिता ।

यद् वा द्वादशभिर्यत्राङ्गुलैर्वा खर्वता त्रिधा ॥१५५६॥ 1666

तत्तद्देशानुसारेण कटिकण्ठोरुजानुषु ।

वाञ्छया वा महीपस्य सद्भिस्तत् सौष्ठवं मतम् ॥१५५७॥ 1667

पहले बताये गये सौष्ठव को चार, आठ या बारह अंगुल के नाप से कटि, कण्ठ, जाँघ और घुटने में तीन बार देश-विशेष के अनुसार या राजाजा के अनुसार छोटा कर दिया जाय, तो मञ्जन लोगो ने उसे सौष्ठव नामक लास्याग कहा है ।

३१ स्रुवा

यथा मन्दानिलाघाताच्चलेद्दीपशिखा तथा ।

चलेयुर्यत्र गात्राणि सा स्रुवा परिकीर्तिता ॥१५५८॥ 1668

३९०

लास्याग प्रकरण

जैसे मद वायु के झाके से दीपक की ला चलायमान हो जाती है, उमी तरह जहा अग चलायमान हो, वहाँ श्रुवा नामक लास्याग होता है ।

३२ मसणता

मुग्धां स्निग्धा यदा दृष्टिं तनुते रसनिर्भराम् ।

नृत्यहस्तानुगां नृत्ये तदा मसृणता भवेत् ॥१५५६॥ 1669

जब नृत्य में नृत्य-हस्तों का अनुगमन करने वाली मुग्धा, स्निग्धा तथा रसभरी दृष्टि को फैलाया जाय, तब मसणता, नामक लास्याग होता है ।

३३ उषार

पूर्वं पूर्वमुपक्रान्ता नृत्यस्यावयवा यदा ।

भूषावलितसर्वाङ्गा वर्तेरन्नुत्तरोत्तरम् । 1670

तालप्रयोगनैपुण्यात् तदोपारो मतो बुधैः ॥१५६०॥

जब पहले-पहले आरंभ किये गये नृत्य के अवयव आभूषणों से सर्वांग युक्त होकर आगे-जागे ताल-प्रयोग निपुणता से विद्यमान रहे, तब उषार नामक लास्याग होता है ।

३४ अगानग

अङ्ग लास्याङ्गमादिष्टमनङ्गं ताण्डवं मतम् । 1671

यत्र नृत्येऽनयोर्योगस्तदङ्गानङ्गीरितम् ॥१५६१॥

अग को लास्याग आर अंग (काम) को ताण्डव (नृत्य) कहा गया है । जहाँ नृत्य में दोनों का योग होता है वहाँ अङ्गानङ्ग नामक लास्याग होता है ।

३५ अभिनय

भावप्रकाशकैरङ्गैर्यथावत् करणादिकम् । 1672

विदध्याद् यत्र पात्रं चेदसावभिनयस्तदा ॥१५६२॥

जहाँ पात्र भावसूचक अंगों से अच्छी तरह करण आदि की रचना करे वहाँ अभिनय नामक लास्याग होता है ।

६ कोमलिका

यदा नृत्येऽङ्गनाङ्गाना क्रियाभिर्वलनादिभिः । 1673

आर्द्रता प्रेक्ष्यते चित्तात् परा कोमलिका तदा ॥१५६३॥

नृत्याध्याय

जब नृत्य मे सुन्दरियो के अगो की बलन आदि क्रियाओ द्वारा चित्त से सरसता लक्षित होती है, तब कोमलिका नामक लास्याग होता है ।

३७ मुखर

यत्र पात्रं मुखे कुर्याद् वर्णानां तु विवर्तनम् । 1674
तत्तद्रसानुगुण्येन भवेन्मुखरसस्त्वसौ ॥१५६४॥

जहाँ पात्र अपने मुख मे तत्तत् रसो के अनुकूल अक्षरो को परिवर्तित करे, वहाँ मुखरस नामक लास्याग होता है ।

अन्य भेद

अन्येऽपि सन्ति ये भेदा देशीलास्याङ्गसश्रयाः । 1675
ग्रन्थविस्तरसंत्रासान्न तेऽस्माभिरूपिताः ॥१५६५॥

देशी लास्यागो के अन्य जो भेद है, उन्हे ग्रन्थ के विस्तार भय से नही बताया गया है ।

लास्यागो का निरूपण समाप्त



कलास करण प्रकरण / पन्द्रह

कलास करणो का निरूपण

कलास (ताल के अनुसार नृत्य) के भेद

विद्युत्कलासः खड्गाद्य. कलासो मृगपूर्वकः । 1676

बकाद्यः प्लवपूर्वश्च हंसाद्यश्चेति षण्मता. ॥१५६६॥

कलास के छह भेद होने हैं १ विद्युत्कलास, २ खड्गकलास, ३ मृगकलास, ४ बककलास, ५ प्लवकलास और ६ हसकलास ।

तत्राद्यौ प्लुतमानेन गुरुमानात् ततोऽग्रिमौ । 1677

पञ्चमो लघुमानेने षष्ठः स्याद् द्रुतमानतः ॥१५६७॥

उनमें विद्युत्कलास और खड्गकलास त्रिमात्रिक ताल के प्रमाण से, मृगकलास आर बककलास द्विमात्रिक ताल के प्रमाण से, प्लवकलास एकमात्रिक ताल के प्रमाण से, आर हसकलास अर्धमात्रिक ताल के प्रमाण में सम्पन्न होते हैं ।

तत्राद्यः षड्विधः खड्गकलासः स्याच्चतुर्विधः । 1678

तृतीयस्त्वैकधा तुर्यपञ्चमौ च चतुर्विधौ ॥१५६८॥

त्रिधान्तिमः कलासः स्यादेव द्वाविंशतिर्मताः । 1679

कलासाः क्रमशस्तेषा संचक्षे लक्षणान्यहम् ॥१५६९॥

विद्युत्कलास के छह भेद, खड्गकलास के चार भेद, मृगकलास का एक भेद, बककलास आर प्लवकलास के चार-चार भेद और हसकलास के तीन भेद होते हैं । इस प्रकार सब को मिलाकर कुल बाईस कलास होते हैं । अब क्रमश उनके लक्षणों का निरूपण किया जाता है ।

प्रथम

छह विद्युत्कलास (१)

मेघपन्तौ यथा विद्युच्चकास्ति सचमत्कृतिः । 1680

तथा यत्र पताकादीना प्लुतमानकृतान् करान् ॥१५७०॥

कलास एक वाद्ययंत्र का नाम है । उसके ताल-प्रमाण के अनुसार हस्तपादादि की विशेष चोष्टाओं की योजना को इस प्रकार के अन्तर्गत निरूपित किया गया है ।

- तिर्यग्धूर्ध्वमधोऽधश्चेदारादातन्वती नटी । 1681
 विभाति विद्युदाद्यस्तु कलासः स तदोदितः ॥१५७१॥
 वामं करं पताकाख्यं नीत्वा दक्षिणकर्णकम् । 1682
 तथा परं करं वामां कटि वामां च जङ्घिकाम् ॥१५७२॥
 एतद्व्यत्यासनेनापि कृत्वा पाणिद्वयं ततः । 1683
 सम्मुखं रचयेद् विद्युद्भेद आद्यो भवेदसौ ॥१५७३॥

जैसे मेघो की पक्ति में विजली चमत्कार के साथ चमकती है, उसी तरह जहाँ त्रिमात्रिक ताल के मान से बनाये हुए पताक आदि हस्तों को तिरछे, ऊपर, नीचे और दूर या समीप फैलाती हुई नर्तकी विराजमान होती है, वहाँ प्रथम विद्युत्कलास होता है। बाये हाथ को दाहिने कान बाये हाथ, बायी कटि और बायी जाँघ के पास ले जाकर सामने पताक हस्त की रचना करे। उसको बदलकर भी हाथ की रचना करे, अर्थात् बाये पताक हस्त के बदले दाहिने हाथ को पताक हस्त में परिणत करे। ऐसा करने से भी प्रथम विद्युत्कलास बनता है।

द्वितीय

- विधाय दक्षिणं पाणिमर्धचन्द्रं स्वसम्मुखम् । 1684
 विलोक्य च नटी कुर्याद् धनुराकृतिं जानु चेत् ।
 तदा भेदो द्वितीयः स्याद् विद्युदाद्यकलासजः ॥१५७४॥ 1685

अपने सम्मुख दाहिने हाथ को अर्धचन्द्र हस्त में परिणत करके नटी घुटने को धनुष के आकार में प्रस्तुत करे। ऐसा करने से द्वितीय विद्युत्कलास बनता है।

तृतीय

- समदृष्टिर्नटी हस्तमञ्जलिं प्रविधापयेत् ।
 अस्याङ्गुलीः प्रसार्याथ पुरतः शिखरं करम् । 1686
 कृत्वा प्रसारयेद् बाहू तदा भेदस्तृतीयकः ॥१५७५॥

सीधी दृष्टि वाली नर्तकी अञ्जलि हस्त की रचना करके उसकी उँगलियों को फैला दे, फिर सामने शिखर हस्त की रचना करके दोनों भुजाओं को फैला दे। ऐसा करने से तृतीय विद्युत्कलास बनता है।

चतुर्थ

- केशबन्धौ करौ [कृ] त्वा क्रमादलिकमूर्धनोः । 1687
 करौ दक्षिणवामौ चेन्निधाय द्वौ पताककौ ।

कुर्यात् तदा भवेद् भेदश्चतुर्थश्च पुरोदितः ॥१५७६॥ 1688

केशबन्ध मुद्रा में दोनों हाथों की रचना करके दाहिने ओर बाँये हाथों का क्रमशः ललाट और मस्तक पर रख कर दो पताक हस्तों की रचना करे। ऐसा करने से चतुर्थ विद्युत्कलास बनता है।

पचम

कृत्वा पुष्पपुटं पाणिमुच्चैस्तं द्विनिरीक्ष्य च ।

तदनूत्सङ्गमारच्य चरणै दक्षिणं द्रुतम् ॥१५७७॥ 1689

स्पृशेद् दक्षिणहस्तेन वामार्द्धं वामपाणिना ।

यत्रासौ पञ्चमो भेदः कलासज्ञैरुदीरित ॥१५७८॥ 1690

पुष्पपुट नामक हाथ को ऊँचा करके दो बार निरीक्षण करे, फिर उत्सग नामक हाथ की रचना करके दाहिने हाथ में दाहिने पैर का ओर बाँये हाथ से बाँये पैर का स्पर्श करे। ऐसा करने में पचम विद्युत्कलास बनता है।

षष्ठ

प्लुतमानकृताद्भ्रिश्चेदधो [ऽथ] मकरं करम् ।

कृत्वा नृत्यति पाणिभ्यां षष्ठो भेदस्तदोदितः ॥१५७९॥ 1691

त्रिमात्रिक ताल के प्रमाण से पैर और नीचे मकर नामक हाथ की रचना करके दोनों हाथों से नृत्य करे। ऐसा करने से षष्ठ विद्युत्कलास बनता है।

चार खड्गकलास (२)

प्रथम

सव्यापसव्यतो यत्र नर्तकी चकिता मुहुः ।

विलोक्य च पुरः पश्चाद् धृतखड्गलतेव सा ॥१५८०॥ 1692

आचरन्ती प्रचारं चेद् विचित्रमथ हस्तकान् ।

प्लुतमानकृतानर्धचन्द्रादीन् रचयेत् स्फुटान् । 1693

तदा खड्गकलासोऽसौ विद्वद्भिः परिभाषितः ॥१५८१॥

जहाँ खड्गलता (तलवार) धारण किये हुई-मी नर्तकी बाँये, दाँये, आगे और पीछे देखकर विचित्र चाल चलती हुई त्रिमात्रिक ताल के प्रमाण से अर्धचन्द्र आदि हाथों की सुस्पष्ट रचना करे, वहाँ विद्वानों ने उसे प्रथम खड्गकलास बताया है।

द्वितीय

वामं करं कटौ न्यस्य पर खड्गाकृतिं करम् । 1694

कृत्वा सकम्पं चेदध्वं चन्द्रमास्ते तदादिगः ॥१५८२॥

कृत्वा कपोतमूर्ध्वं चेदधोमुष्टिं करं ततः । 1695

यत्र तिर्यक् पताकाख्यं करं कुर्यात्तदाभिधा ।

द्वितीया खड्गपूर्वस्य कलासस्य निरूपिता ॥१५८३॥ 1696

बायें हाथ को कटि पर रखकर दूसरे हाथ को खड्गाकृति (खड्ग जैसा) बनावे, फिर कम्पन सहित अर्धचन्द्र हस्त की रचना करे, फिर कपोत हस्त को ऊपर, मुष्टि हस्त को नीचे तथा पताक हस्त को तिरछा करे। ऐसा करने पर द्वितीय खड्गकलास निष्पन्न होता है।

तृतीय

विधाय त्रिपताकौ द्वौ यस्य यश्चरणः पुरः ।

घातयन्निव तत्रैतं योजयेत्स तृतीयकः ॥१५८४॥ 1697

दोनों त्रिपताक हस्तों की रचना करके आगे चरण-प्रहार करने से तृतीय खड्गकलास बनता है।

चतुर्थ

स्वस्तिकं कर्कटं मुष्टिपताकपाणी चतुरः ।

धृतिमोहघातपातक्रियां कुर्याच्चतुर्थकः ॥१५८५॥ 1698

तत्र [वि] धाश्चतुर्थोर्ध्वमधः पार्श्वद्वयोऽपि च ।

चतुर जन स्वस्तिक, कर्कट, मुष्टि तथा पताक नामक हाथों की रचना करके धैर्य, मोह, घात और पतन क्रिया को करे। ऐसा करने से चतुर्थ खड्गकलास होता है। यदि उक्त हस्तों को ऊपर-नीचे तथा दोनों पार्श्वों में भी संचालित किया जाय तो चतुर्थ खड्गकलास निष्पन्न होता है।

एव खड्गकलासस्य भेदाश्चत्वार ईरितः ॥१५८६॥ 1699

इस प्रकार खड्गकलास के चारों भेदों का निरूपण कहा गया है।

मृगकलास (३)

पादाङ्गुलीभिराक्रम्य भुवमुत्थाय जानुनी ।

मुहुर्मुहुः सन्निपात्य गर्भखिलमृगीव चेत् ॥१५८७॥ 1700

सालस्यगमनोपेता मृगशीर्षकरान्विता ।
 नर्तकी गुरुमानेन हरिणप्लुतया प्लुतम् । 1701
 विदध्याद् विचित्र्यां यत्र कलासोऽसौ मृगादिगः ॥१५८८॥

यदि पैरो की उगलियो से पृथ्वी को आक्रान्त करके दो घुटनो को उठाकर तथा बार-बार गिराकर, गर्भभार से खिन्न हरिणी की तरह अलसायी हुई चाल वाली, नर्तकी मृगशीर्ष नामक हाथ की रचना करके हरिण की छलांग मारकर चले, तो वह मृगकलास होता है ।

चार बककलास (४)

प्रथम

यत्र पक्षौ समानीयौ बकीवाधून्यती करौ । 1702
 सव्यापसव्ययोरारात् सन्दंशमुकुलाभिधौ ॥१५८९॥
 नर्तकी लघुमानेन कृतासनसमुत्थितिः । 1703
 नृत्येत् ससौष्ठवं स स्यात् कलासो बकपूर्वकः ॥१५९०॥
 कामपि भ्रमरी कृत्वा संहतस्थानमाश्रिता । 1704
 करौ कृत्वाऽल्पद्वास्यावरालौ यत्र पादयोः ॥१५९१॥
 नीत्वा क्रमेणैकदा वा कम्पयेदच्युताविव । 1705
 जलुविलज्जाथवा सव्यं पाणि मुकुलसंज्ञकम् ॥१५९२॥
 मत्स्यग्रहासक्तचित्तबकवद्यदि संब्रजेत् । 1706
 पादाग्रेण नटी मन्दं मन्दं पश्चात्पुरोऽपि च ।
 तद्वैष भेद आद्यः स्याद् बकपूर्वकलासजः ॥१५९३॥ 1707

जैसे बगली अपने पखो को फडफडाती है, उसी तरह नर्तकी अपने हाथो की मुद्रा बनावे, तत्पश्चात् बाये-दाये क्रम से समीप ही सन्देश और मुकुल हस्तमुद्राओ की रचना करे, तदनन्तर एकमात्रिक ताल के प्रमाण से आसन से उठकर सुन्दर ढंग से नृत्य करे । इसी को बककलास कहते हैं । सहत नामक स्थानक के आश्रित किसी भ्रमरी नामक चारी को करके अल्पद्वा एव अराल नामक हाथो की रचना करे, उन्हे पैरो के समीप ले जाकर क्रमश या एक साथ बिना गिराये ही कम्पित करे, जल से भीगी अथवा यो ही बाये हाथ की मुकुल मुद्रा बनाकर मछली पकडने मे दत्तचित्त बगली की तरह यदि नर्तकी पैरो के अग्रभाग से धीरे-धीरे पीछे या आगे की ओर चले तो प्रथम बककलास निष्पन्न होता है ।

नृत्याध्याय

द्वितीय

त्रिपताकौ यदा पाणी विषमासनसंश्रितौ ।
 विधाय मण्डिकां पादौ यथास्वं च पदे पदे ॥१५६४॥ 1708
 नीत्वा तत्र करौ चित्रं सन्दंशमथ कुर्वती ।
 पश्यन्त्यग्रे पार्श्वयोश्च चकितेव नटी मुहुः । 1709
 तनोति यत्र नृत्तं स बकभेदो द्वितीयकः ॥१५६५॥

जब त्रिपताक दोनो हाथो को विषम आसन पर टिकाकर मण्डिका नामक मुद्रा (दे० श्लोक १५९६) रचकर दोनो पैरो को बगलो प्रत्येक पग मे ठीक ढग से रखकर चित्र तथा सन्देश नामक दोनो हाथो को बनाकर आगे और बगलो मे चकित होकर बार-बार देखती हुई नर्तकी नृत्य का विस्तार करती है, तब द्वितीय बककलास निष्पन्न होता है ।

तृतीय

सव्यापसव्यतो यत्र वामं दक्षिणतस्तथा । 1710
 जानु सत्वरमापात्य भुव्यङ्घ्री स्थापयेद् यदा ॥१५६६॥
 मण्डिका सा तदा प्रोक्ताशोकमल्लेन भूभुजा । 1711
 विधाय मुकुलं हस्तं क्षिप्रमग्रे शनैरनु ॥१५६७॥
 गच्छन्त्यनुपदं तद्वन्नटी स्खलति खिद्यति । 1712
 धृतमुक्ते यथा मीने बकोऽस्यानुपदं क्रमात् ॥१५६८॥
 अलपद्ममराल च मुकुलं यत्र कुर्वती । 1713
 नृत्त्ये चित्रमसौ भेदो बकस्य स्यात् तृतीयकः ॥१५६९॥

जब बाये-दाये क्रम से दाहिने तरफ से बाये घुटने को शीघ्रता से मोडकर दोनो पैरो को पृथ्वी पर स्थापित किया जाता है तब राजा अशोकमल्ल उसे मण्डिका कहते है । जहाँ मुकुल हस्त की रचना करके आगे शीघ्रता से और पीछे धीरे से चलती हुई नर्तकी, पकडी हुई मछ ली के छूट जाने पर बगुले की तरह, कदम-बकदम गिरती हे और खिन्न होती है तथा अलपद्म, अराल एव मुकुल हस्त की रचना करती हुई नाचती है, वहाँ तृतीय बककलास निष्पन्न होता है ।

चतुर्थ

उत्तानवञ्चितौ पाणी विधायाथार्धचन्द्रकम् ।	1714
कट्यां करं निवेश्याथ पादाग्राभ्यां नटी यदा ॥१६००॥	
रचयन्ती गतीर्नाना [बक] वत् पुरतोऽनु च ।	1715
पादाङ्गुष्ठकरस्पर्शान् नृत्ये वक्राकृतिस्तदा ।	
तुर्यो भेदो बकाद्यस्य कलासस्य बुधैर्मतः ॥१६०१॥	1716

उत्तानवञ्चित नामक दोनो हाथो की रचना करके अर्धचन्द्र हस्त को कटि पर रखकर जब नर्तकी पैरो के अग्रभाग से बगुले की तरह आगे-पीछे अनेक प्रकार की चालो को रचती हुई वक्राकृति होकर पैरो के अगूठो को हाथ से छूकर नृत्य करती है, तब विद्वानो ने उसे चतुर्थ बककलास कहा है ।

चार प्लवकलास (५)

प्रथम

विषमस्था समुत्प्लुत्य समौ पादौ यदा नटी ।	
बिभ्रती सर्वतश्चित्रं त्रिपता [क] करान्विता ॥१६०२॥	1717
नृत्येदसौ तदा प्रोक्तः कलासः प्लवपूर्वकः ।	
त्रिपताकौ पताकौ वा कृत्वा नाभिस्थितौ करौ ॥१६०३॥	1718
पद्भ्यां तालानुगं गच्छेत् पश्चाद्यत्र भवेदसौ ।	
आद्यो भेदः प्लवाद्यस्य कलासस्य बुधैर्मतः ॥१६०४॥	1719

विषमासन से उछलकर सम नामक पैरो को धारण करती हुई नर्तकी जब सब ओर आश्चय के साथ त्रिपताक नामक हाथ से युक्त होकर नृत्य करती है, तब प्लवकलास निष्पन्न होता है । जहाँ पश्चात त्रिपताक या पताक नामक दोनो हाथो को नाभि पर रखकर पैरो से ताल का अनुसरण करती हुई नर्तकी चले, वहाँ विद्वानो ने प्रथम प्लवकलास माना है ।

द्वितीय

विधाय त्रिपताकौ चेद् वाममङ्घ्रिं पुरोगतम् ।	
पाणिमेवं विधं वामं लघुमानेन नर्तकी ॥१६०५॥	1720
वामतो गम [न] कृत्वा बध्नीयादासनं समम् ।	

विषमं वा ततः स्थानात्समुत्प्लुत्य समाङ्घ्रिकम् । 1721

गच्छेत् तदा प्लवस्योक्तः सद्भिर्भेदो द्वितीयकः ॥१६०६॥

यदि त्रिपताक नामक दोनों हाथों की रचना करके बाये पैर और बाये हाथ को आगे किये हुए नतकी एकमात्रिक ताल के प्रमाण से बायी ओर जाकर सम या विषम नामक आसन को बाँवे, फिर उस स्थान से उछलकर सम पैर से चले । ऐसा करने पर सज्जनो ने द्वितीय प्लवकलास बताया है ।

तृतीय

त्रिपताकौ कटीक्षेत्रे विधाय सममासनम् । 1722

विषमं वा यदा स्थित्वा स्थित्वोत्प्लुत्य महीतले ॥१६०७॥

दधती चरणौ गच्छेत्प्लघुमानात् पुरोऽनु वा । 1723

पश्यन्तीमर्वाणि ज्ञेयः प्लवभेदस्तृतीयकः ॥१६०८॥

त्रिपताक नामक दोनों हाथों को कटीक्षेत्र में रखकर सम या विषम आसन पर स्थित होकर तथा उछलकर पृथ्वी पर पैरों को रखती हुई नर्तकी यदि एकमात्रिक ताल के प्रमाण से आगे या पीछे पृथ्वी को देखती हुई चले, तो वहाँ तृतीय प्लवकलास समझना चाहिए ।

चतुर्थ

यदाग्रे पृष्ठतश्चैव व्युत्क्रमात्क्रमतोऽथवा । 1724

सव्यापसव्ययोर्नृत्यं चतुर्धा सम्प्रजायते ।

तदा भेदः प्लवस्य स्याच्चतुर्थश्चतुरोदितः ॥१६०९॥ 1725

जब आगे और पीछे न्यतिक्रम या क्रम से बायी-दायी ओर चार प्रकार से नृत्य किया जाता है, तब चतुर्थ प्लवकलास निष्पन्न होता है ।

तीन हसकलास (६)

प्रथम

हस्तौ विधाय हसास्यौ यत्र हंसीवनर्तकी ।

अतिरम्याङ्घ्रिविन्ध्यासैर्नागागतिमनोहरम् ॥१६१०॥ 1726

यदा नृत्यति हंसाद्यः कलासः स तदोदितः ।

नर्तकी दक्षिणे पार्श्वे विधाय मकरं करम् ॥१६११॥ 1727

[^१मकर दक्षपार्श्वस्थं पताक वामहस्तकम् ।

पुरतो यत्र हंसीव यायाद्भेदः स आदिमः ।

1728

जहाँ हसास्य नामक दोनो हाथो की रचना करके नर्तकी हमी की तरह अति रमणीय चरण-विन्यासो से नाना प्रकार की सुन्दर चाले चलती हुई नृत्य करती है, वहाँ हसकलास कहा गया है । यदि नर्तकी दाहिने पार्श्व में मकर हस्त तथा बाये हाथ को पताकहस्त बनाकर आगे हमी की तरह चले, तो वह प्रथम हसकलास होता है ।

द्वितीय

मुकुल हस्तमारभ्या पादाम्या पृष्ठतो ब्रजेत् ।

विचित्रलास्यभेदज्ञा हसीवासौ द्वितीयकः ।

1729

यदि (नर्तकी) मुकुल नामक हाथ की रचना करके पैरो में पीछ की ओर हमी को तरह चले, तो लास्यो के भेदो के ज्ञाता उसे द्वितीय हसकलास मानते हैं ।

तृतीय

हस्तं हसास्यमाधाय पार्श्वयोर्ललिता गतिम् ।

आलापवर्णतालाना क्रमतो यत्र नृत्यति ।

1730

हंसीवासौ तृतीयोऽयं भेदः प्रोक्तः पुरातनैः ।]

जहाँ हसास्य नामक हाथ को बनाकर पाश्वर्षो में ललित चाल चलती हुई नर्तकी आलाप, अक्षर तथा ताल के क्रम में हमी की तरह नाचती है, वहाँ पूर्वाचार्यो ने तृतीय हसकलास माना है ।

समवेत रूप में बाईस कलास करणो का निरूपण समाप्त

श्रीसाम्बाशिवार्पणमस्तु



१ हसकलास के ये भेद मूलपाठ में अनुपलब्ध हैं । अतः मैंने उन्हें प्रा० रसिकलाल सी० पारिख और डॉ० प्रियबाला शाह द्वारा सम्पादित श्री कुम्भकर्ण विरचित नृत्यरत्नकोश में उद्धृत किया है—(सम्पादक) ।

चित्रसूची

[१०८ नृतकरणो की मुद्राएँ]

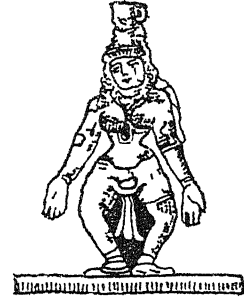
नृत्याध्याय



तलपुष्पपुट



दश पादिकरु



वर्तित



भण्डलस्वस्तिक



लीन



उन्मत्त



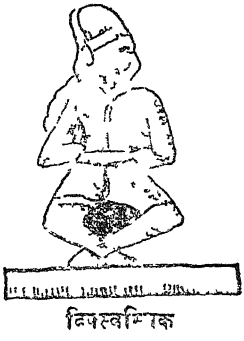
वलितोर



स्वस्तिक



अर्धस्वस्तिक



नृत्याध्याय



निकुट्टक



अभिनिकुट्टक



विक्षिप्ताक्षिप्तक



अपविद्ध



समनख



स्वास्तिकरेचित



मत्तल्लि



अर्हमतल्लि



वल्लित

नृत्याध्याय



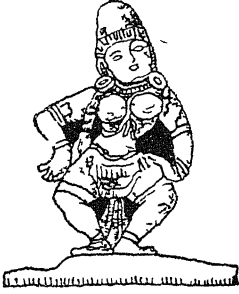
अर्धरेचित



ऊर्ध्वजानु



कटिभ्रान्त



छिन्न



पादापविद्धक



भ्रमर



दण्डपक्ष



नुपुर



ललित

नृत्याध्याय



व्यसित



चतुर



कान्त



भुजगत्रन्तरेचित



भुजगाञ्चित



आक्षिप्त



उर्ध्वादृष्ट



इण्डरेचित



वृश्चिक

नृत्याध्याय



वृश्चिकरेचित



वृश्चिककव्णित



लतावृश्चिक



वृश्चिकरेचित



चक्रमण्डल



आवर्त



कुञ्चित



दोलापाद



तलविलासित

नृत्याध्यायः



विवृत



विनिवृत



ललाट तिलक



चिर्वातित



अतिक्रान्त



विद्युदभ्रातङ्गिणी



निशुम्भित



उरोमण्डल



विक्षिप्त

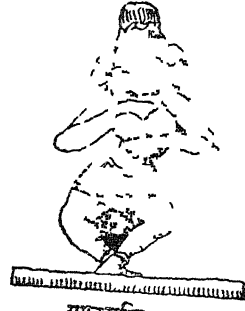
नृत्याध्यायः



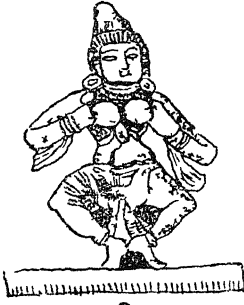
पार्श्वनिकुटक



तलमम्फोटित



गण्डसूचि



सूचि



अधसूचि



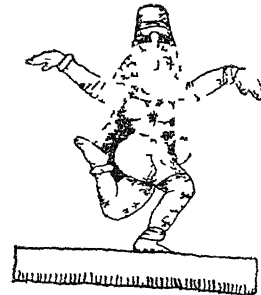
गजकीडितक



पार्श्वजानु



गण्डप्लुत



गृध्रावलोक

नृत्याभ्यस्य



दण्डपाद



सनत



सर्पित



मयूरललित



सूचीचिह्न



प्रेक्ष्योलित



स्वलित



परिवृत्त



करिहस्त

नत्याध्याय



प्रसपित



पादवक्रान्त



निचेग



नितम्ब



हरिणप्लुत



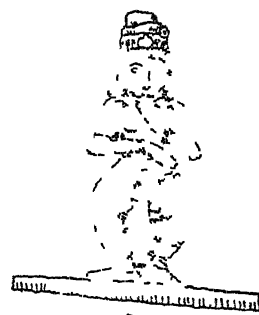
सहविश्रित



सिहाकवित



जनित



अवहित्य

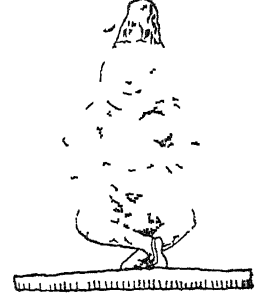
नृत्याध्यायः



उद्वृत्त



तलसघट्टित



लोलित



शकटारय



दृषभश्रीजित



एलकाश्रीजित



विष्कम्भ



उपस्त



विष्णुकान्त

नृत्याध्याय



अपक्रांत



उरुद्वृत्त



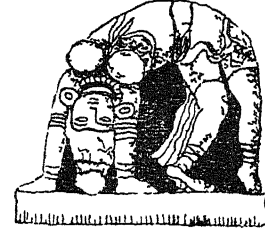
अञ्चित



सन्नान्त



मदस्खलितक



अगल



रञ्चकनिकुट्टक



नायापसपित



सगावतरण

परिशिष्ट

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध

अ

अशो निवाय शीर्षं चेत्
असप्रहे च सिहाद्यै
असयो कुचयोर्वापि
असयो स्ननपोस्ताल
असवर्तनिक प्रोक्तम्
असान्त लुठिनो स्वैरम्
असावधि स्ननक्षेत्रात्
अक्षराणा लयस्यापि
अक्षरेषु चलन् कार्ये
अक्षुब्धासमतरा या
अग्रत पृष्ठतस्तिर्यक्
अग्रत समपादस्य
अग्रगोऽस्तलश्चेति
अग्रयोगेन चेदेतम्
अग्रसकोचनादेष-
अग्रे पाश्वेऽथवोर्ध्वे वा
अग्रे लोकानुसारेण
अङ्कुरिता मम हृदये प्रेमलताम्
अङ्कुशाभिनये त्वेष
अखण्डिते महालाभे
अङ्ग तु चतुरस्र स्यात्

श्लोक संख्या श्लोकार्ध

१४८ अङ्ग लास्याङ्गयमादिष्टम्
२६५ अङ्गमिष्ट सोष्ठवेन
१९५ अङ्गहारान्प्रवक्ष्यामि
२९३ अङ्गहारेषु सर्वेषु
१५२६ अङ्गहारोपयोगीनि
७१२ अङ्गानामुचिते देशे
८२८ अङ्गाना यत्र पात्रस्य
८५८ अङ्गानि
१५५२ अङ्गीनिरन्तरो तुल्य-
३३ अङ्गुलिम्फोटनान्मानान्
८३६ अङ्गुलीपञ्चकेन स्यात्
१०५९ अङ्गुलीपृष्ठभाग हि
९३८ अङ्गुल्यग्रस्थित कायम्
६०१ अङ्गुल्याग्रा यदा गुप्ता
१०१८ अङ्गुल्यमामिकास्पर्शात्
३३ अङ्गुल्य सरला स्तत्त्वा
२२१ अङ्गुल्या पूर्वपूर्वस्या
८९७ अङ्गुल्याद्विना पार्ष्णि
९९९ अङ्गुष्ठसहिताङ्गुल्य
१५०१ अङ्गुष्ठस्यापि भेदा स्यु
१५३ अङ्गेषु पूर्वरङ्गस्य
१५५ अङ्गैर्गतिप्रकारैश्च
११३८ अङ्गैर्निर्भूषणैर्दु खै,

श्लोक संख्या

१५६१
८८७
३४३
१३४३
—
१३४३
१५८९
१५५०
९७०
६६०
१९०
१०८०
१६२
४५
९
५९४
१५०
—
१९१
५९९
१४१८
६६९
६८१
४३१

नृत्याध्याय

श्लोकार्ध

अङ्गैर्लीनैरिवाङ्गेषु
 अङ्गोपेतास्ततोऽन्वर्थो
 अङ्गिघ्न कुञ्चितमुन्न्यस्य
 अङ्गिघ्न तिर्यञ्चमाकुञ्च्य
 अङ्गिघ्नरङ्गुलिपृष्ठेन
 अङ्गिघ्नरेति नितम्बान्तम्
 अङ्गिघ्ननिक्कृष्टित पूर्वम्
 अङ्गिघ्ननिवेशितो यत्र
 अङ्गिघ्न्यत्रापय स्तघ्न
 अङ्गिघ्नश्चापगतिद्वि स्यात्
 अङ्गिघ्नश्चापगतिर्वाप्त
 अङ्गिघ्न स्वस्तिक विश्लिष्टम्
 अङ्गिघ्नो निरन्तरो तुल्य-
 अङ्गिघ्नो राकुञ्चितस्याग्रे
 अङ्गिघ्नो रेकस्य गुल्फे चेत्
 अङ्गिघ्नो कृत्वा यदोत्प्लुत्य
 अञ्चित चरण पश्चात्
 अञ्चितस्य परस्याङ्गिघ्नो
 अङ्गिघ्नोक्तश्चतुर्भेद
 अतस्तानि न शक्यन्ते
 अतिक्रान्त दण्डपादम्
 अतिक्रान्त भुजङ्गाद्यम्
 अतिक्रान्त वामविद्धम्
 अतिक्रान्त पुनर्वाम
 अतिक्रान्तस्तु वाम स्यात्
 अतिक्रान्तस्तु वामोऽङ्गिघ्नो
 अतिक्रान्ताङ्गिघ्नमारच्य
 अतिक्रान्ता तदा चारी
 अतिक्रान्ता स्वपक्रान्ता

श्लोक संख्या

६७८
 ९५१
 १००२
 १०४८
 १०८९
 १०६३
 ११०७
 ११०५
 १००५
 १४७७
 १४७८
 १०६१
 ९७०
 १०७८
 ९९८
 १०३५
 १०१७
 १००७
 १८८४
 ११३६
 १४२७
 १३५६
 १४२७
 १८५०
 १८५५
 १४४२
 १००१
 ९९९
 ९५७

श्लोकार्ध

अतिक्रान्ता भ्रमरिके
 अतिक्रान्तो यत्र वाम
 अतिरम्याङ्गिघ्नविन्यासै
 अतो न्यूनोऽधिके चाङ्गिघ्नो
 अतो विगतलज्जाया
 अत्यदर्थे समर्थे च
 अत्युत्फुल्लपुटा नासा
 अत्र प्राह समाधानम्
 अत्राधि देवता दुर्गा
 अत्रक कुञ्चित पाद
 अत्रैव केचिदिच्छन्ति
 अय ज्ञानेच्छयोस्तोषे
 अथ देशीप्रसिद्धा या
 अथ पक्षस्थितम्बसौ
 अथ पुमा तथा स्त्रीणाम्
 अथवा द्रुतमानेन
 अय वामो भवेत् सूची
 अय वामो भवेत् सूची
 अथवा स्यादसौ पाणे
 अथवा स्वस्तिकाकारौ
 अथवेद त्रिखण्डोक्त-
 अय सप्तस्थितावर्त
 अथ सक्तेऽङ्गिघ्नरुद्वृत्त
 अथ सव्योऽपसृत्याङ्गिघ्न
 अस्थानानि षट् पुसाम्
 अथाच्छिन्नमतिक्रान्तम्
 अथातिक्रान्तको वाम
 अथान्तरे तथा सत्ये
 अथान्यः परिवृत्त्याधो

श्लोक संख्या

१४४८
 १४३७
 १६१०
 १४८६
 १४९८
 ४
 ५११
 ४२४
 ९१०
 ९३२
 ८६८
 ३
 ९६०
 ८८२
 ६५५
 ८३१
 १८३९
 १४३२
 १८२३
 ३१४
 ७७४
 १४४९
 १४३२
 ९८५
 ८७७
 १३५३
 १४३
 १४
 ३५६

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध

अथापि चेति स्वग्रन्थे
अथाराल कर वामम्
अथालातो भवेत् वाम
अथाह रेचकान् वक्ष्ये
अथैतेषा क्रमालक्ष्म
अथैतो केशपर्यन्तम्
अथो तेषा लक्षणानि
अद्य क्षिप्ता मुहु पातात्
अद्याकर्णय नैशिक सखि
अद्य पार्श्वगता कार्या
अद्यमाना गतो प्रोक्त
अद्यमोऽभिनये च्छीतम्
अधरस्फुरणे त्वेष
अधरस्य प्रकर्तव्य
अधरे दशनैर्दश
अद्य शैलशिलोत्पाटे
अद्यस्तत्र ब्रजत्येक
अद्यस्तलत्वमप्याहु
अद्यस्तले वियोगे तु
अद्यस्ताद्दर्शनं यत् स्यात्
अद्यस्तात्प्रेक्षणेनापि
अद्यस्ताद्वदनं सुप्तम्
अद्यस्तात् सञ्चरन्ती या
अद्यस्तात् सञ्चरन्ती सा
अधिकोच्छ्वासनि श्वासै
अधो घर्षन् रताश्वासे
अधो मण्डलिता कार्या
अधोमुख कुञ्चिताग्र
अधोमुख पताकाभ्याम्

श्लोक संख्या श्लोकार्ध

८६८ अधोमुख प्रयोक्नव्य
३१३ अधोमुख मद्वर्णेषु
१८३१ अधोमुखी भवेद्दामा
१८०१ अधोमुखी ललाटस्था
८८८ अधोमुखेन शीर्षेण
७८६ अधोमुखो नियोज्योऽय
३८६ अधोमुखो नियोज्योऽय
५९५ अधोमुखो भालदेश
३८६ अधोमुखा निघृटां ता
९८ अधोमुखा पताका चेत्
३०५ अधोमुखा यथोचित्यम्
६३५ अधोमुखा विधायिव
२६ अधोमुखो स्वस्तिका ता
५७ अनगोद्दीपन चाथ
५५८ अनत्युच्च चलत्पादम्
२३० अनन्ता भ्रूपुटादीनाम्
८५९ अनयैव दिगा श्रेया
२४२ अनवस्थितसञ्चारा
८८ अनादरेऽवस्तल
५०४ अनामिका पताकस्य
६२७ अनावृत्त्या नितम्बस्य
९७७ अनुत्पन्नेऽनातुरे
४७२ अनुरागे प्रतिज्ञायाम्
४६२ अनुरूपे प्रसन्ने च
६६१ अनुलोमविलोमा च
२८ अनुसृत्य त्रिकोणत्वम्
९८ अनृतोक्ते यथोचित्यम्
१९३ अनेन मोक्षयेच्छस्त्रम्
६४१ अन्तपुरे वामभागे

श्लोक संख्या

२६
१८६
१०४
९५
६००
३३
३८
१६०
११६६
२८३
१०५
२४९
१२६
८५१
८८७
४७३
८६२
४७१
११८
१०७
१३८७
८
३
२०६
१०८६
८०२
१६८
९००
२२६
४३३

नृस्थाध्याय

श्लोकार्थ	श्लोक संख्या	श्लोकार्थ	श्लोक संख्या
अन्तर्जानु स्वस्तिकत्वम्	९९२	अन्वर्थो पिहितो प्राप्तौ	४८१७
अन्तर्निम्न समाख्यात	८१९	अन्वर्थो स्फुरिता ज्ञेयौ	८८८
अन्तर्बहि करावूर्ध्वम्	८८५	अपक्रान्त व्यसिन च	१३५९
अन्तर्वहिशचक्रचरो	८३०	अपक्रा ता दक्षिणेन	१८०८
अन्तर्भूत ततस्त्रित्वम्	६०२	अपक्रान्तोऽष्टवामोऽडिघ्न	१४५८
अन्तर्भ्रान्त्या बहिर्भ्रान्त्या	१०६७	अपक्रान्तोऽपर पार्श्व-	१४६०
अन्तर्यातो चेत गुल्फो	५९१	अपक्रान्तो भवेद् वाम	१८५१
अन्तश्च लीलयाग्यस्मिन्	७७७	अपक्रान्तोऽपगन्तेनाम्	९८४
अन्तस्तिर्यक् चक्रभावान्	७८१	अपतीताऽवररागम्	१४९३
अन्त्यद्विकरणाभ्यास	१३६१	अपर करमारच्य	८२२
अन्य एव तु नाट्याङ्ग	१५२३	अपर पार्श्वयोर्वत्र	७६७
अन्यकर्णस्थितौ यम-	२६९	अपरण करणाद्य	१४०
अन्यतोऽलातमाक्षिप्तम्	१३६८	अपविद्ध तत नूवी	१३६९
अन्याङ्गुलिसमीपस्थ	२८	अपविद्ध ततो ज्ञेयम्	७५५
अन्येऽपि सन्ति ये भेदा	१५६५	अपविद्ध समनखम्	११२२
अन्योऽन्याभिमुखी-	२६५	अपविद्धश्च विष्कम्भाद्	१३४३
अन्योन्याभिमुखी-	१३०	अपविद्धस्तथेत्युक्त	३७१
अन्योन्याभिमुखौ तौ तु	१२९	अपसृत तन्निगृह्या	३३४
अन्योन्याभिमुखौ भ्रान्तौ	८५९	अप्रत्यक्षा विनिर्देश्या	—
अन्योन्याभिमुखौ स्याताम्	१२८	अप्रदानेन नेत्रस्य	६१८
अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ	२३६	अभिनीता यथोचित्यम्	६९७
अन्यो बिडम्बना वत्ते	८१५	अभिनेयवशादवम्	११४७
अन्योर्ध्ववर्तना तद्वत्	७१०	अभिनेयवशाद् धीरै	७५३
अन्वक्षरेण हस्तेन	७७३	अभिनेयेपूतमेतु	३१९
अन्वर्थं कम्पित शीत-	५३७	अभिनीतास्वरा सप्त	५९५
अन्वर्थलक्षणा पञ्च	५६१	अभिनेयो त्रसन्तस्तु	६३८
अन्वर्थलक्षणोत्क्षिप्ता	४७७	अभ्यन्तरप्रवेशेन	८३६
अन्वर्था कुञ्चित्तास्त्रास	५९७	अभ्यन्तरेण तत् प्रोक्तम्	६१३
अन्वर्थौ कुञ्चितौ स्याताम्	४८६	अभ्यासात्कथितादेव	२८८

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकांश	श्लोक संख्या	श्लोकांश	श्लोक संख्या
अभ्यासादाद्ययोरत्र	१४०८	अलपत्त्वनामा चेत	७४०
अभ्यासाद् रचिता चेत्स्त	४	जलपत्त्वद्वन्द्वोऽत्र	७३९
अभी केचित् समाग्ने	८६१	अलसा सा तदा वीरै	१०३८
अभी नृत्तग्य तु प्राणा	८६०	अलान चार्ध्वजात्	१३९३
अमूराकाशिकास्ताश्च	९६८	जलानक नितम्ब च	१३६३
अय तु पार्दावग्यासे	१३८	अलातक परावृत्त	१३४३
अयम तपुरे तु स्यात्	११३	जलातचक्रकारय च	७६२
अयमेवालपद्म स्यात्	२०४	जलातचक्रमास्यात्	८१५
अयुवतनृततुच्छोवती	२०५	अलातभ्रमरे कूर्गात्	१३७१
अरालकपरावृत्ते	८१३	अलाना टमगी विद्धा	९६७
अरालवर्तनापूर्वम्	२९८	जलाता दण्डपादा च	९५८
अरालेन तथा वाम	८०	अलानोऽप्यथ सव्य स्यात्	१४३७
अरालो वर्तित पश्चात्	७१७	अलिरेणुपतङ्गानाम्	६५४
अरालो विततो स्वामि-	२४०	अल्पसञ्चारिणी दृष्टि	४५४
अर्धचन्द्रकरो नाट्ये	१०२५	अल्पे फले मिते ग्रासे	३५
अर्धचन्द्रसौ च यत्राङ्घ्री	९९६	अवज्ञाया वहि क्षिप्त	१६८
अर्धमण्डलपूर्वा च	७१३	अवश्य सर्वास्याने	८०
अर्धमण्डलतत्पूरु	९६२	अवष्टभ्य भूव पाण्या	३५३
अर्धसूच्यथ विक्षिप्त	१३९८	अवहित्यमथोद्वृत्तम्	११३२
अर्धाद्य रेचित वक्ष	१३७३	अविच्छिन्नरसा पाणि	१११७
अर्हादिवतयोश्च स्यात्	१५३	अव्यक्तालोकिनी वीरै	४६७
अलकृत तुल्यवृत्तम्	१५००	अज्ञान्ये तद्विवेत्यर्थे	१३४
अलकापनयने स स्यात्	११८	अशोकेन समादिष्टा	७०७
अलकोत्क्षेपणेऽप्ये	५४	अश्वेभोष्ट्रखरव्याघ्र	६६९
अलक्तकादिचरण	१३५	अष्टवक्रविहाराख्यम्	७६५
अलङ्कारानुपादाने	०४०	अष्टवक्रविहाराख्यम्	८३८
अलपद्मकरे यत्र	७१६	अष्टादशाङ्गुले यत्र	९२७
अलपद्मकराल च	१५९९	अस्युताविमावूर्ध्वा	१४९
अलपद्मावथे वाथ	३११	असकृद् यत्र तत् प्रोक्तम्	७७४

नृत्याध्याय.

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
असकृद्वा सकृद्वापि	३५२	आकुञ्चितपुटपक्षमाग्रा	४५०८
असमग्रे प्रयोक्तव्य	१०	आकुञ्च्य चरणवूर्ध्वम्	१०४०
असम्बद्ध बहि क्षिप्त	१६४	आकुञ्चिताङ्घ्रिमन्येन	१०७२
असान्तिक ततो गत्वा	३०४	आकुञ्चिताङ्घ्रिमुत्क्षिप्य	१०३९
असावधोमुख कार्य	१३६	आकूणितपुटा गूढा	४६०
असावुडुगणे कार्य	३०	आकूणितपुटापाङ्गा	४६४
असूयते तथा निष्टे	४५८	आकेशबन्धमुत्क्षिप्तौ	८४८
असूयावज्ञयोर्हास्य	५३५	आक्षिप्त करिहस्त च	१४०३
असूयोत्क्षेपयोश्चोभे	४७९	आक्षिप्त करि [ह] स्त च	१३६०
असौ च सत्त्वरे दाने	१८८	आक्षिप्त च तथा छिन्नम्	१३४९
असौ दरिद्रे मन्देश्चि	२३	आक्षिप्तक परिच्छिन्न	१३४३
असौ देवार्चने स्त्रीणाम्	१९२	आक्षिप्तरचित्त चार्ध-	१३७४
असौ पुरोगत कार्य	६८	आक्षिप्तरचित्तालत	११२०
असौ योज्य सहस्रादौ	४४	आक्षिप्तस्वस्तिक कृत्वा	१३५७
असौ शराकर्षणे स्यात्	७२	आक्षिप्ताख्येति सप्रोक्ता	९५९
असौ शिरसि तद्देशे	५८	आक्षिप्तर्मण्डलभ्रान्त्या	१४८०
अस्खलन्ती यदा नीकी	१५४८	आक्षिप्तो दक्षिणो यत्र	१४५४
अस्त्रीजातौ तत ङीपि	९४९	आगते दक्षिणे पार्श्वे	१८१
अस्पृशन्तौ करौ पाञ्चौ	२६३	आघूणितान्तरा क्षामा	४७०
अस्य क्रियान्तराण्येवम	--	आघ्राणे कुसुमादीनाम्	५३०
अस्याङ्गुली प्रसार्याथ	१५७५	आङ्गिकाभिनयोऽल्प	५८७
अस्या नामान्तर केचित्	--	आचरन्ती प्रचार चेत्	१५८१
अस्यान्येऽभिनया धीरे	२३०	आज्ञाप्रतिज्ञयोर्नाथे	२१७
अहमित्यादिनिर्देशे	११५	आदानेऽसौ फलादीनाम्	६७२
आ		आदिकूर्मावताराख्यम्	७५८
आकाशचारी बाहुल्यात्	१४२७	आदिकूर्मावताराख्यम्	७९४
आकाशवीक्षणात् पाद	६६६	आदिमध्यावसानेषु	८४४
आकाशाभिनये तूर्ध्वम्	१२२	आदिष्टेऽधोमुख स स्यात्	६
आकुञ्चित्कायमाविद्ध	९४५	आदौ स्वस्तिकपूर्वं स्यात्	१३७३

नृत्याध्यायः

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
इदमर्थे किमर्थे च	११	उत्क्षिप्तापारिष्णराकुञ्चन्	३४८
इदमर्थेऽवोमखी	१६	उत्क्षिप्तमास्यमुद्वाहि	५७५
इदमेव नटा प्राट्	१५२८	उत्क्षिप्ता पतितोत्क्षिप्ता	५९०
इदमेव रचे नाम्ना	१५२९	उत्क्षेप केचिदुभयो	४४१
इन्द्राभिनयने त्वेपा	९५	उत्क्षेपस्य तथा पृष्ठ	९६८
इदमेव बुधा केचित्	१५४३	उत्पन्नेऽप्येवमर्थे	७१
इमावन्योन्यसदिल्लटौ	१३२	उत्तमे निकटस्था स्यु	३२०
इमा मुहुषचार्योऽथ	१०८८	उत्तमोऽपि कदाप्येवम्	६३६
इमावुभावपि ज्ञेयो	८८९	उत्तमोत्तमक चेति	१८८८
इमो कीर्तिवर प्राह	७२९	उत्तानवञ्चितौ पाणी	१६००
इमो कीर्तिवर प्राह	२०३	उत्तानस्य स्रस्तमुक्त्-	९/३
इमो विच्छ्रतसन्दशो	७९	उत्तानाधोमुखौ शश्वत्	२६४
इमौ शिरस्थो कत्रव्यो	१८१	उत्तानिततल्य पादम्	—
इष्टोऽनिष्टस्तथा मव्य	६१६	उत्तानितोऽय विश्वासे	१२
वह्नैकवचने मानम्	२६९	उत्तानितोऽधोमुख स्यात्	६७
ई		उत्तानितो मुखस्थ स्यात्	११
ईषच्छ्वामोच्छ्वासमुत्ता	५१५	उत्तानितो केचिदिमो	२७९
ईपत्प्रकम्पितायान्ती	८८	उत्तानोऽधस्तल पार्श्व	६०२
ईपद्वक्रीकृतात्योन्या	२२८	उत्तानोऽधोमुख पार्श्व	६००
उ		उत्तानोऽग्रेमुखीभूय	२६२
उक्तै ससर्गहृषेण	८४७	उत्तानो नयनौपम्ये	१४
उग्रदर्शनविज्ञान	४६९	उत्तानितौ पताको द्वो	६३२
उग्रा भ्रुकुटिभीष्पा या	४३५	उत्तानौ वामभागस्थां	२४४
उच्चैर्यां मुहुश्चक्षिप्ता	५९६	उत्तापेऽभिघातेऽपि	४५९
उचितश्च्युत सन्दश	३०	उत्तुद्रगपीवरपयोवर	१५१०
उच्छ्वासे च्युतसन्दश	१८९	उत्प्लुत्य चरणो यस्याम्	१०६८
उच्छ्वासे सोरभेऽप्येसा	५१२	उत्प्लुत्य भ्रमरी दत्वा	१०१४
उत्क्षिप्त कुञ्चितश्चैव	९३९	उत्फुल्लपुटयुग्मा या	४६९
उत्क्षिप्तपारिष्ण प्रमृत	३५०	उत्फुल्लमध्यमा त्रस्ता	४६८

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
उत्सङ्ग हस्तमाचष्ट	२४१	उन्नत तदविपर्यामान्	३३७
उत्सार्योद्वेष्टितेन स्यान्		उन्नताग्र परोऽगल	३१६
उदये विवृतास्योऽथ	२९	उन्नीय निजपाश्वरेण	१००३
उद्गतो मण्डलाकारम्	८२६	उन्मत्त करिहस्त च	१४०३
उद्गिरन्तीव या धैर्यम्	४४५	उन्मादे च तथातौ च	४६७
उद्घाटित च मत्तल्लि-	१४१३	उन्मूलने त्वधो गत्वा	६९
उद्घट्टितस्तथा पाद	३४८	उन्मेषितावलग्नौ स्त	४८९
उद्घट्टितोऽथ बद्ध स्यात्	१४६९	उपकर्ण यदा तिर्यक्	८४६
उद्धृत्याधोमुखकार्यं	२०१	उपपाप्पर्यन्तर पाप्पर्या	१०१६
उद्विभन्ने विच्युत स स्यात्	१७८	उपधाय यदा बाहुम्	९४६
उद्वानितस्ताण्डवेऽसौ	३९७	उभयोऽप्यत्र सर्वास्ता	९६९
उद्वाहित तथा सुप्त-	८७६	उभौ भूत्वा तिरश्चीनौ	९३५
उद्वाहितविध्र चेति	३२७	उरस प्राप्य शीर्षं य	३७६
उद्वेगसम्भ्रमै शस्त्र	६६३	उर स्थवर्तना विद्यात	७२७
उद्वेगैरारय सकोचे	६४९	उरसो मण्डलाकार	३८१
उद्वेष्टित विवायाप-	२८४	उरुद्वृत्तकमत्यर्धं	१४११
उद्वेष्टितक्रियापूर्वम्	७४७	उरुद्वृत्तमुर पूर्वम्	१३७०
उद्वेष्टितक्रियापूर्वम्	८५७	उरुद्वृत्ता स्थितावर्ता	९५६
उद्वेष्टितक्रियापूर्वम्	११४८	उरुद्वृत्तोऽड्डित स्यात्	१७७६
उद्वेष्टितक्रिया पूर्वौ	७४४	उरुद्वृत्तोऽड्डितोऽड्डि	१४६६
उद्वेष्टितो दर्शने स्यात्	१२	उरोमण्डलक चाथ	१३६२
उद्वेष्टितौ भुजोऽसौ स्यात्	३७५	उरोमण्डलक पश्चात्	१३५७
उद्वेष्टितौ परावृत्तौ	६५३	उरोमण्डलक पश्चात्	१३८०
उद्वृत्तश्च ततो विद्युत्	१४७०	उरोमण्डलक पश्चात्	१३८५
उद्वृत्तकश्च सम्भ्रान्ते	१३४३	उरोमण्डलविक्षिप्ते	११२८
उद्वृत्तकोऽप्यसौ वाम	१४५१	उरोमण्डलसज्ञ च	१३४५
उद्वृत्तसज्ञकौ हस्तौ	२६१	उरोमण्डलसज्ञ च	१३८२
उद्वृत्ताग्र भूमिलग्नम्	५९९	उरोवर्तनिकात्वेन	२८६
उद्वृत्तो वदनोत्क्षेपात्	५४१	उर्या चेत् पातयेत् पाण्ड्या	१००३

मृत्याध्यायः

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
उल्लालन क्रमेणाडध्याय	—	ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो यदा मुष्टि	५३
उल्लासस्थसको भाव	१५१८	ऊर्ध्वाध पतिता कार्या	९७
उल्लवणौ वर्तितौ स्वोक्त-	—	ऊर्ध्वाध पतिता कार्या	१००
उष्ण च भूमिसन्तापम्	६४६	ऊर्ध्वाध गीघ्रमायान्ती	८५
उष्णात्तु च्छ्वासनि स्वासौ	५२०	ऊर्ध्वाध शिखरौ हस्तौ	६०
ऊ		ऊर्ध्वाधोमण्डलभ्रान्तौ	७९३
ऊरुजानुत्रिकमव	१००१	ऊर्ध्वा यस्मिन्नलङ्गनाग्रा	१९१
ऊरुद्वय च हस्तानाम्	६०५	ऊर्ध्वास्य गिरस पञ्चात्	—
ऊरुवेणी च विशिलप्य	९६५	ऊर्ध्वास्योऽसा कपोलादौ	१३५
ऊर्ध्व गतोद्वाहिता स्यात्	४०२	ऊर्ध्वोंगा तूत्रता ग्रीवा	३६३
ऊर्ध्व विलुटित पूर्वम्	७९९	ऊर्ध्वोत्तानोऽर्ध्चन्द्रेऽथ	१४३
ऊर्ध्वगाधोमुखावेतौ	७८	ऊर्ध्वोत्थितो नाभिदेशात्	२
ऊर्ध्वगोऽवोगतश्चाथ	६०३	ऊर्ध्वोत्थितौ रोमराजौ	६३
ऊर्ध्वजानुकटिभ्रान्तम्	११२३	ऋ	
ऊर्ध्वजानुस्तत मूची	१८८०	ऋज्वी लोला लेहिनी च	५४५
ऊर्ध्वप्रसारणाद बाह्वौ	६७८	ऋज्वी सा त्यात्तववत्रै या	५४६
ऊर्ध्वप्रसारितो चेत्स्यात्	८०	ऋजुरुर्ध्वमुखो योज्य	८६
ऊर्ध्वमण्डलिनौ पाणी	११५०	ऋजुरुर्ध्वौ तु संकत्वे	८३
ऊर्ध्वमण्डलिनौ प्रोक्त	२८१	ऋजु समो धारणे तु	४२२
ऊर्ध्वमण्डलिनो हस्तौ	७२६	ऋतूनिमानर्थवशात्	६४३
ऊर्ध्वमुखस्तथाचाव	६०८	ए	
ऊर्ध्वमुखो नियोज्योऽसौ	२५	एक पाद सम कृत्वा	९३८
ऊर्ध्वमुखो विचित्र स्यात्	२८	एक करश्चेदन्यस्य	७८५
ऊर्ध्वमुखौ क्रमात् कृत्वा	३१२	एक करो यदा कर्ण	७८४
ऊर्ध्वलोके तु सर्वेषाम्	९२	एकजानुनतास्य च	८७२
ऊर्ध्वविच्युतसन्दश	२७	एकजानुनते त्वेक	९३६
ऊर्ध्वविच्युतसन्दश	१८७	एकतालान्तरौ पादो	८९०
ऊर्ध्वग्रौ खटकास्यौ च	२९९	एकदा चालन बाहु-	१५२४
ऊर्ध्वाङ्गुष्ठावधोवक्त्रौ	२५१	एक पाद, समोऽन्यस्तु	९१७

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक मर्या	श्लोकार्ध	श्लोक मर्या
एक पश्चाद्वरादिल्लट-	९०८	एलकाक्रीडित तद्वन्	११३३
एक पार्श्वगताख्य च	८७२	एलकाक्रीडिताख्या च	९५५
एकस्य बलने पार्श्वे	७८३	एलकाक्रीडिते सूची	१८७९
एकस्याङ्गुष्ठको यत्र	९३५	एव कर्मान्तराण्यस्य	६०
एकस्याङ्गुष्ठे समस्यान्य	०१२	एव खन्यकलामस्य	१५८६
एकस्मिन्नाभिदेशस्थे	८७०	एव द्रुचङ्घ्रिकृता सैव	१०९५
एकाङ्गुलादध पाति	५६९	एव पञ्चविधो धीरे	४१७
एकाङ्घ्रिपादमुत्क्षिप्य	१०६५	एव भ्रान्त्वा चतुर्दिक्षु	१४७५
एकाङ्गणेन तत कुर्यात्	१३९०	एव यदा तदैवान्य	२८८
एकादश तथाभ्याम-	१३०८	एव पञ्चदश प्राहु	६०४
एकादशाभिरादिष्ट	१३५०	एव योग्येन हस्तेन	७०३
एकैक करण कार्यम्	१३४३	एव वासकसञ्जापि	६८८
एकैक चेत् तदोक्ता सोत्-	१०८०	एव विनिर्दिशेन पङ्जम्	६८८
एकैकमथवा नेत्र	८३२	एव विनिर्दिशेद्वीमान्	६९२
एकोच्छ्वासेन च प्राञ्ज	६२३	एव लोकाद् बुधरुह्या	५३२
एतच्चिकीर्षितासु स्यात्	९०५	एव सप्ताङ्घ्रिस्त्रिगन्	१५१७
एतदेव परे प्राहु	१०७६	एव सति पुनर्थत्र	७९८
एतदेवावहित्थाख्यम्	९०९	एवमङ्घ्रान्तरेणापि	१११३
एतद्वचन्यासनेनापि -	१५७३	एवमन्ये बुधेरुह्या	२११
एतद् द्विजाति दत्ताशी	८९१	एवमेकादश ज्ञेया	७४३
एतन्नियुज्यते धीरे	९२३	एवमेव विशेषज्ञै	५८५
एतन्नियुज्यते धीरै	११५३	एष वस्तुग्रहे चोर्यात्	२००
एतान्याकाशिकानि स्यु	१४२७ फु०	एष सुप्तोत्थजृम्भायाम	२२१
एतयोर्भ्रमण वक्ष	२८५	एषा पश्चात्पुर क्षपात्	१०९०
एताभ्यामेव हस्ताभ्याम्	६२७	एषा श्रमे श्वापदानाम्	५४६
एतावेव परावृत्तो	२७९	एषोऽन्नादातुपस्थाने	१५१
एतावेव परे प्राहु	२५९	त्रौ	
एता समासत प्रोक्ता	१११५	औत्सुक्यचिन्तानिर्वेद-	५७९
एभि स्यादङ्गहारोऽयम्	१३६८		

नृत्याध्यायः

श्लोकार्थ

क

कटाक्ष स्याद्विवर्तनम्
कटाक्षिणी सहर्षा सा
कटिक्षेत्र गतौ कार्यं
कटिच्छिन्नं च करणम्
कटिच्छिन्नं च करणम्
कटिच्छिन्नं च करणं
कटिच्छिन्नं च कुर्यात्स
कटिच्छिन्नं च रचयेत्
कटिच्छिन्नं च सम्प्रोवत्
कटिच्छिन्नं चाडगहार
कटिच्छिन्नमपि ज्ञेयं
कटिदेशगतस्त्वैक
कटिदेशगती हस्तौ
कटिस्थेनार्धचन्द्रेण
कटीच्छिन्नं क्रमान्त
कटीच्छिन्नममीभि स्यात्
कटीच्छिन्नं भवेन् नो वा
कटीच्छिन्नं षष्ठमसौ
कटीच्छिन्नं सम पश्चात्
कटीजानुसमौ तत्स्यात्
कटीदेशं कर्णौ न्यस्तौ
कटीसमं कटीच्छिन्नम्
कट्या करं निवेश्याथ
कपित्थौ हस्तकौ स्याताम्
कण्टकोद्वरणे सूक्ष्म
कथने स्कन्धदेशस्थ
कथाप्रयोगक्षोभं हि

श्लोक संख्या श्लोकार्थ

४९६	कन्यौ तत्सुतविद्यायाम्
४४१	कनिष्ठाद्यङ्गुलीनां चेत
७०	कनीयस्योर्वीमाशिलप्ये
१३४५	कपाटोद्घाटने त्वेष
१३६०	कपित्थस्योत्थिते वक्त्रे
१३५१	कपित्थावथवा मुष्टि
१३५६	कम्पितोद्वाहिता छिन्ना
१३५८	कपित्थो मुकुलो हस्तम्
१३४७	कवगीग्रहणं स्त्रीणाम्
१३६३	कपोलपुलकावली
१३६२	कम्पनं चलनं ज्ञेयम्
७८६	कम्पनेन शरीरस्य
८१६	कम्पमानाय कर्तव्या
६८९	कम्पिता कम्पनादुक्ता
१४१५	कम्पितौ रोमहर्षेषु
१४१३	करणं दण्डपादाख्यम्
१३८६	करणं न्यूनताधिक्यम्
१४१४	करणत्रातसन्दर्भात्
१३८२	करणानां समुद्दिष्टम्
८९५	करणाभ्यां मातृका स्यात्
३०२	करणोत्करसन्दर्भात्
११२१	करणौ स्थिरहस्तं स्यात्
१६००	करणोद्बोद्धताख्येन
७१	करप्रचारोऽङ्गोकेन
१७१	करयो रत्रियते यत्र
१५०६	करयो रत्रिलाङ्गुल्यो
४८	करयोजयते यत्र
१०२१	कररेचितरत्नं च
	कररेचितरत्नाख्यम्

श्लोक संख्या

१७७
६१४
९१६
२५४
७२
२९५
३३८
२३१
१९२
१५०४
४९५
६६६
९०
४०६
५६३
१३४४
१३४३
१३४३
११३५
१३४३
१४१६
१३४३
३०३
६००
७९६
२२०
—
७६४
८३४

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
करस्तद्दोलमादिष्टम्	७८०	कर्मणान्दोलनेनाथ	७७१
करस्य शिखरस्य स्यात्	६३	कर्मणा वेष्टिताख्येन	७१७
कराङ्गुल्यो ब्रुवैकृता	५९२	करो कृत्वाऽलपद्मा	१५११
कराणामेवमन्येषाम्	७५३	करा कृत्वोञ्जितालीढ	१३४३
कराभिनयशोभा या	७०८	करा दक्षिणवामौ चेत्	१५७६
करावेव यत्र तत् स्यात्	८५०	करौ निवृत्तौ वेगेन	८१७
करावेवमुभौ यत्र	७१९	करो पताकौ निर्गम्य	२६२
करिहस्त कटिच्छिन्नम्	१३६६	करो यत्र तदोक्त तत्	८४२
करिहस्त कटिच्छिन्नम्	१३४३	करौ विलुठितो भूत्वा	८०१
करिहस्त कटिच्छिन्नम्	१३७२	कलविडकविनोदाख्यम्	७९६
करिहस्त कटिच्छिन्नम्	१४०५	कलहे स्वस्तिकाकारे	८९
करिहस्त कटिच्छिन्ने	१३६८	कलासा क्रमशस्तेषाम्	१५६९
करिहस्तकटिच्छिन्ने	१४०१	कश्चिदन्तर्बहिश्चक्र	८१५
करिहस्तकटिच्छिन्ने	१४१२	काङ्गूल मञ्जितस्तस्य	३५
करिहस्तकटीच्छिन्नै	१३६८	काङ्गूल हस्तकौ कृत्वा	६९३
करिहस्तकमर्धाद्यम्	१३५९	कातरा करिहस्ता च	९६२
करिहस्त च करणम्	१३५१	कातरे स्यादथेयता	२१६
करिहस्तमुर पूर्वम्	१३९७	कान्त चित्रपटे विरलख्य	१५०८
करो मकरनामा चेत्	७२०	कान्ता हास्या च कर्णा	४२६
करो मुष्टिरशोकेन	४६	कामपि भ्रमरी कृत्वा	१५९१
करो यत्र तदुद्दिष्टम्	८५२	कामिनीभिर्यथाकामम्	२१३
कर्णदेशस्थ तर्जन्या	६२०	कामेन ग्रहपाशाभ्याम्	६७७
कर्णयुग्मप्रकीर्णख्यम्	८४६	कार्मुकाकर्षणे योज्य	६४
कर्णरन्ध्रगता कार्या	९३	कायसकोचनाद् वह्ने	६३४
कर्णस्थो धनुराकर्षो	७००	कात्स्न्यादिन्तश्चिरस्था या	५०३
कर्णान्तिवगतो कार्या	१४६	कालकाष्ठामुहूर्तेषु	४२
कर्तयस्याभिवा मुष्टि-	७४२	कि कुर्वे सखि कैववम्	१४९४
कर्तर्योऽस्य तत[?ते] पञ्च	६९७	किञ्चित्कुञ्चित पक्षमात्रा	४४०
कर्मान्तराप्येवमस्य	४०	किञ्चित्कुञ्चित्पुटा लक्ष्यात्	४५०
			४४३

नृत्याध्यायः

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
किञ्चित्पृष्ठागत पाद	१०६९	कुट्टयित्वा तु विन्यस्य	१११२
किञ्चित्सार्चिनत शीर्षम्	७९०	कुट्टित वृञ्चिकाद्य चेत्	१३५७
किञ्चिदुत्फुल्लपक्षमाग्रा	४६३	कुट्टितश्चेत्पुन स्थाने	१०९२
किञ्चिल्लक्ष्योर्ध्वदन्तो य	५४२	कुट्टित स्थापितो यत्र	१०९१
कियन्तोऽपि भया प्रोक्ता	३१८	कुट्टित स्थापितोऽङ्घ्रि	१११४
कुचदेशगतौ कार्यौ	४०	कुट्टितोऽङ्गुलिपृष्ठे च	१११३
कुचदेशस्थितौ कार्यौ	१९६	कुट्टितोऽङ्घ्रि पुन स्थाने	१११२
कुचदेशागत जानु	४११	कुन्तलङ्गग्रहेऽप्येव	४७
कुचयो समुखावेतौ	१९८	कुञ्जादिगमनप्रोक्ता	३३९
कुचोन्नमनचातुरी	१५०८	कुम्भाभिनयने स्याताम्	१४७
कुञ्चत्कूर्परकौ प्राह	२२८	कुस्तश्चेन तलाग्रेण	९७८
कुञ्चन्मध्ये तिरञ्चीनम्	५९९	कुस्ते कठिन यत्र	१५५१
कुञ्चित पादमुद्धृत्य	१०१३	कुर्यात् तथा भवेद्भेद	१५७६
कुञ्चित पादमुत्क्षिप्य	१०६२	कुर्यात् वामाङ्घ्रिणा सूचीम्	१४४६
कुञ्चित सरलो नम्र	६७१	कुर्यादाकुञ्चित यत्र	१०६६
कुञ्चिते बलितप्राप्ते	१०३५	कुर्यादेव तदा हस्तौ	३१४
कुञ्चिताङ्गुलि [? को] भ्रमन्	११९	कुले त्वय नियोवतव्य	११७
कुञ्चिताङ्गुलिरेष स्यात्	१२५	कुशाङ्कुशग्रहे चाप-	५३
कुञ्चिता चाभितप्ता च	४२९	कुष्टव्याधौ तथा शीर्ष-	२००
कुञ्चितावस्तली भूय	११४	कुम्पाण्डादिलतासूर्ध्वा	८५
कुञ्चिताङ्घ्रि समुत्क्षिप्य	१०११	कूर्परस्वस्तिकाकारौ	२९८
कुञ्चितेनाङ्घ्रिणाग्रेण	१०५०	कूर्परस्वस्तिकेन स्त	८३१
कुञ्चितो मुष्टिरेकोऽय	७२९	कृतापराधान् यान्ति	१४९७
कुञ्चितोऽसावतिक्रान्त-	३४८	कृति क्रियाविशेषस्य	६०८
कुञ्चितो मुष्टिरेकश्चेत्	२९६	कृते जडघा स्वस्तिके च	९९४
कुञ्चितौ सावसे स्पर्शे	५६४	कृते योज्यावर्तिताख्या	४०३
कुकुट्टार्धनिकुट्टे द्वे	१४०९	कृनोऽप्याभिनयस्तावत्	५८६
कुटिल भ्रुकुटी रूक्षा	४४४	कृत्वा कपोतमूर्ध्वं चेत्	१५८३
कुट्टन दन्तसर्धर्ष	५५७	कृत्वा कृत्वा स्वकर्तव्यम्	१०२४

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
कृत्वा दक्षिण भागेन	१३४८	कोमल मधुर तिर्यक्	१५२४
कृत्वा नृत्यति पाणिभ्याम्	१५७९	कोमलिका चाभिनय	१५१६
कृत्वान्तराद्ववतुर्यान्	१५४०	कोऽह कस्त्व मया सार्धम्	१६३
कृत्वा पाणिं स्वपार्श्वे च	१००८	क्तो बिम्बे शङ्कायाम्	३८
कृत्वा पुष्पपुट पाणिम्	१५७७	क्रमतो यत्र जायन्ते	१४६७
कृत्वा प्रसारयेद् बाह	१५७५	क्रमतो युगपद्वाथ	८८९
कृत्वालपल्लव शशवत्	२९४	क्रमपादनिकृट्टा च	१०८४
कृत्वालपल्लवौ हस्तौ	६९२	क्रमात्कुर्वन्नङ्गलिभ्याम्	१२०
कृत्वा व्यावर्तने स्याताम्	३०७	क्रमात् पाणेश्च वक्षस्तत्	६१२
कृत्वा सक्ल्प चेदध-	१५८२	त्रमादङ्घ्रिर्दक्षिण स्यात्	१४८४
कृत्वा समनख यत्र	१५५४	क्रमादथ पुरो वामम्	१४७५
कृत्वोत्तानावूरुयुगे	११४५	क्रमादथ पुन पश्चात्	१५२७
कृत्वोरसि सम पाणी	११५२	क्रमादध्मन्तिर्यगूर्ध्वम्	१२१
कृत्वोर्ध्वाधोमुखौ हस्तौ	८२०	क्रमाद्यो घट्टयत्यग्र-	३५४
कृत्वोर्ध्वोच्चलन जडघा	९७५	क्रमान् मार्गस्थितानीति	१४८९
केचित् पादौ क्षितिग्लिष्ट-	९३१	क्रमान् मुहु सव्यवामौ	१४६८
केचिदन्यान्य लग्नाग्रौ	—	क्रमेण रेचकस्यानु-	९८७
केचिदत्रावदन् पादम्	११४७	क्रमेण रेचितो हस्त	११५१
केचिन्नृतकर ह्यत्र	९८२	क्रमे स्थितौ च धेपे [च]	१३४
केचिद्विपश्चितोऽत्राहु	९०९	क्रव्यादे मकरे मीने	२५२
केचिदावेष्टिताख्येन	२८३	क्रियते जानुपर्यन्तम्	१०७८
केचिदेन कर प्राहु	२१५	क्रियते स्वस्तिकौ यत्र	—
केवले परितोषे च	२०७	क्रिया तन्नृतकरणम्	१११७
केशपर्णतृणादीनाम्	१७१	क्रियाभिरुदरोक्ताभि	३९३
केशपाशाकर्षणेऽपि	३६७	क्रीडायामपि पर्याप्ते	२०८
केशबन्धाभिधौ हस्तौ	७२५	क्रोध निरूपयेद् धीमान्	६५८
केशबन्धा करौ [कृ] त्वा	१५७६	क्रोशनेऽङ्गुलिसस्फोटे	६१
केशाना बन्धने स्त्रीणाम्	१५८	क्वचिदङ्घ्रे प्रधानत्वम्	१०२१
कोपे स्त्रीणा वितर्के च	४७७	क्षाम खल्ल तथा पूर्णम्	३८८

नृत्याध्याय

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
क्षितिघृष्टो बहि प्राप्तौ	१०३६	ग	
क्षितिलग्नाखिलतलौ	९९६	गगावतरण कृत्वा	१४०६
क्षितिश्लिष्ट बहि पार्श्वी	४०७	गगावतरण चात्र	१३९५
क्षितिश्लिष्टोरपाणिश्चेत्	९३२	गगावतरण चेति	११३५
क्षितौ सघट्टयेत् पादो	१०६०	गगने चेत् तदा चारी	१०६८
क्षिपेत् क्षितौ यदा चारी	१०६२	गजक्रीडितक पार्श्वे	११२९
क्षिपेदस्यामिति परे	१००४	गन्ध घ्राणस्य योगेन	७०३
क्षिप्र निरूपितास्तालान्	१५३६	गन्धघ्राणे प्रसूनानाम्	६३७
क्षिप्र विदिशि यात्वाथ	८०९	गन्धे स्पर्शे तथा प्रौक्तौ	४८६
क्षिप्रमन्तरमाक्षिप्य	७७१	गच्छन्त्यनुपठ तद्वद्	१५९८
क्षिप्त भ्रान्त्वा चतुर्दिक्षु-	१४४७	गच्छेत् तदा प्लवस्योवत	१६०६
क्षिप्त सकृत् मशब्दो य	५२४	गतस्थानासनेष्वेसा	४०१
क्षिप्ता नतोद्वाहिताख्या	३९९	गतागत च वलितम्	८६८
क्षिप्ताङ्गुलिरथासौ तु	१९४	गतागत पार्श्वयो स	७९७
क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिरसौ	१८९	गतागते दधत् दिक्षु-	८०४
क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिस्तद्वत्	४४	गतिमङ्घ्रे विदित्वेवम्	१०२३
क्षुद्रे विवर्तित किञ्चित्	१८०	गत्यर्थाच्चरतेर्धातो	९४९
ख		गत्वा गत्वा यथा चार्याम्	१०२४
खटकावर्धमानोऽसौ	२३७	गत्वान्यपादपार्श्वे चेत्	९९२
खटकास्य करस्थाने	७०१	गत्वा विदिशि तत्रैव	८०८
खटकास्यौ पताकौ वा	२४३	गम्भीरार्थानुदात्तार्थान्	६५०
खटकास्यौ यदा हस्तौ	२९५	गरु [ङ]प्लुत सज्ञ च	१३७७
खड्गवर्तनिका दण्ड-	७१२	गर्वोत्सेके भाषणे च	३२९
खड्गवर्तनिकेत्याहु	२९७	गर्वगाभीर्यर्घैर्यादि	२३३
खण्डैस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा	९५३	गायन्ति सुखसस्थाना-	१४९९
खड्गसूचि स्थित पाद	१०४७	गीत नृत्यानुग यत्र	१५३९
खुत्ता लङ्घितजङ्घा च	९६४	गीतवाद्यलयेष्वेतन्	१५४१
खेदनि श्वासचिन्ताभि	६८०	गीतार्दिमानताले च	४३
खेदस्वेदकपाटकोटि-	१५०९	गुल्फावपि मिथ श्लिष्टो	९२३

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाद्य	श्लोक संख्या	श्लोकाद्य	श्लोक संख्या
गेये गन्देर्जप कर्तव्या	१०५	चतुरन्वप्तयोरक	२७२
गृधावलीनक दण्ड-	११२९	चतुरश्रेण मानेन	१३४३
गृधावलीनक पश्चात्	१३८९	चतुरन्वा तदा हार-	२५६
ग्रथने च प्रसन्नानाम्	२३८	चतुरन्वा यदा हस्तो	७४४
ग्रन्थाविस्तरतो नाति	८३५	चतुरस्त्रा विधायादो	२५७
ग्रन्थविस्तरसत्रासात्	१५६५	चतुरा भृकुटी चेति	४७५
ग्रन्थविस्तरसत्रासात्	८६२	चतुरा सा भवेत्साम्य	४८०
ग्लाना तथा शक्तिता च	८२८	चतुर्वेद तदाख्यातम्	६१०
ग्लानिसन्नापयो शोके	१४३	चतुर्वादरमाख्यातम्	३८८
ग्लाने जरादिते सुप्ते	३२४	चतुर्भि खण्डको ज्ञेय	१३४३
ग्लान्याश्रुपात इत्येव	६८१	चतुर्मुखोऽपि ता वक्तुम्	४७४
ग्रहणे पार्श्वगामी स्यात्	९८	चतुस्ताग्रान्तरो पादो	८९६
ग्रीवा पार्श्वोन्मुखा या तु	३६५	चमत्काराय चार्गीणाम्	१४२७ फु०
ग्रीवाभगे तथा भर्तु	३६५	चमू समूहमम्भोगिम्	६७६
घ		चरणकुट्टित पूर्वम्	१०९९
घटोपकरणे चक्रे	८१	चरणन्यूनताधिक्यम्	१४८६
घट्टितो घट्टयन्पार्ष्णि	३५५	चरणोऽपि द्रुत गच्छन्	३५७
घातयन्निव तनैतम	१५८८	चरणौ छिन्नकरणम्	४३३
घातवर्तनिका गात्रे	७१४	चरणो महत्स्थो चेत्	१०८५
घृणयोद्द्वेगमापन्ना-	४३९	चरणौ समपादाया	९७८
च		चलस्तदा नियोगोऽसा	४२०
चक्रचापगदादीनाम्	६४	चलदङ्गुलिहस्तान	१११
चक्रमण्डलक पश्चात्	१३७६	चलसहृत्तमन्वर्थम्	५७०
चक्रवर्तनिकेत्यस्या	७२६	चला किमलये तु स्यात्	८६
चक्रवर्तनिकेत्याहु	२८१	चलाङ्गुलिस्थान्पेऽर्थे	११६
चञ्चला पसृता या सा	३६७	चलाङ्गुलिस्तु लेपे स्यात्	२७
चतुरस्र तदाचष्ट	८८९	चलिन श्लेषविश्लेष	५६७
चतुरस्रक्रियोपेतो	२७६	चलेयुर्थत्र गात्राणि	१५५८
चतुरस्रकरौ वक्ष	११४२	चापवत् तालसहिता	१५४५
			४४७

नृस्याध्याय

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
चारी उमस्कृष्टाख्या	१०८८	चेष्टाकृतिविशेष मा	९५०
चारी च करण खण्ड	९५२	च्युतमन्दग एव स्यात्	७५
चारी त्रिकोणचारान्या	१०८५	छ	
चारी त्रिकोणचारी चेत्	११०८	छिन्न चेति क्रमादेभि	१३९७
चारी नाम्ना प्रविज्ञेय	१४८६	छिन्न तु दृढमश्लेष	५५४
चारीभिश्च मनोहर	१११६	ज	
चारी सा कथिता वीरे	१०३०	जगुरेतावथान्ये तु	२७७
चायते तेन मडुप-	१०८०	जडघा मनाक् नना तु स्यात्	८८०
चाय पोडश भोम्य	९५७	जडघावर्तीभिधा सोक्ता	१०६७
चार्याप्यञ्चितया व्रीमान्	६९	जडघा म्वस्तिक विश्लेषात्	१०१६
चार्या वद्धाख्यया सावम्	१३६९	जडघव पञ्चधा प्राक्ता	३९९
चार्या स्थानेऽथवा ताल-	१५३१	जनतात्सारणे प्रोक्त	३८६
चार्यो भूमिलिता मार्य	०६०	जनमघे निज पार्वम्	८२
चालरुज्ञाम्तदा प्राह	८०२	जनित दक्षिणादग्न	१३७१
चाठनज्ञे समागयानम्	८९८	जनितो दक्षिण पाद	१४३१
चालिञ्चालिवटस्तुक्तम	१११३	जनितोत्सन्दिता चाप-	९५५
चित्रार्थ श्लेषभावाद्ध्यम्	१५००	जनितो दण्डपादश्च	१४५९
चिन्तानिवेदयो शोके	५१५	जनितो दक्षिणोऽङ्घ्रि	१४४९
चिन्तान्विते प्रमत्तेऽपि	३२५	जलविलम्नाथवा सव्यम्	१५९२
चिन्तालज्जावितवपु	९१०	जलाशयान वनान्ताश्च	६२६
चिन्तासागरभस्त्रिमग्न	१४९४	जलोदगाभिधे व्याधौ	३९१
चिबुक दूरनिष्क्रान्तम्	५६६	जानुदघ्न समुत्क्षिप्य	१०७०
चिबुक लक्षितप्रायम्	५६५	जानुद्वय वहिर्भूतम्	४१३
चिबुकस्थाविमा कार्यो	२००	जानुर्नोर्निकट प्राप्तो	२९२
चिबुकोत्प्रकम्पेन	६५९	जानुन्यन्तर्गतः य स्यात्	३९६
चिर निरव्य ये मुक्त	५२१	जानु यावत् स्तनसमम्	१००५
चिह्न यद्यच्च रूप च	६४२	जानुगीर्षो वहि पार्श्वे	९२६
चुचुकाभिनयेऽप्येष	३६	जानु सत्वरमापात्य	१५९६
चुम्बनेध्वनुकम्पायाम्	५४०	जानुमन्त्रिममत्वेन	९३७

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध

जायते या क्रिया तत् स्यात्
जिह्वादृष्ट्याऽगमकोचान्
जगुष्मया न चात्यन्तम्
जुगुप्सिता विम्बिनेति
जृम्भाया तु मृत्नाभ्यामे
जृम्भोच्चवीक्षणो दीर्घ
ज्योष्म-यमनीचेपु
ज्योद् [? प्रयोज्यो च]
ज्वलद्भिर्भिव मामयम
ढ
ढालरुढेवाङ्गहारश्च
टिल्लार्ड त्रिकलि किन्तु
त
त निर्दिशेत् पनाकेन
तत पृथङ्मया नाम्य
ततश्चेच्चलिन पाण्यो
तत महोत्तरोष्ठेन
तत स्थाने कुट्टयेच्च
तताद्यनुगता गान-
ततो निकुट्टक चार्ध-
ततोऽन्तर्मण्डलभ्रान्ता
ततोऽन्यदेगचलनम्
ततोऽन्यस्मिन् करे तिर्यक्
ततोऽन्याङ्गपरवृत्ता
ततोऽपविद्धोरुद्धवृत्त-
ततोपसत्य वामार्दिद्य
ततो मयेह लिख्यन्ते
ततोऽर्धकुञ्चित चेति
ततोऽर्धवतर्ना प्रोक्ता

श्लोक संख्या

श्लोकार्ध

८०२ ततो वक्ष्म्यल प्राप्त
६५३ ततो वक्ष्म्यठ प्राप्ता
६१० ततो वाम मपर्यन्तम्
६०७ नत्कालार्हत्रिप्रायोभ्या
९० तत स्वस्मिन्क्रिकोणाव्यम्
३३० तत्तदेशगता कार्या
७१६ ततदेगानुसारेण
१ तत्तद्रमानुगुण्येन
११९८ तत्तद्वर्षमागतो हस्तो
तत्र विवाश्चतुर्भक्तम्
१५१० तत्र मिद्राम्स्तयामिद्रा
१५१३ तत्र स्वामाविकोऽन्वर्ध
तत्राद्य पङ्क्तिव खडग-
६०० तत्राद्यो वैर्यमावुर्य-
३९३ तत्राद्यो प्ठुतमानेन
७९० तत्रेत्यर्थेऽप्यमावेव
५४४ तत्रैव लोडयित्वाय
११०० तन् मच्चि यत् निरश्चीनम्
१४९९ तथा गण्डमुखस्पर्शो
१३४४ तथातिशयशोभाभि
८१६ तथा पर कर वामाम्
७६८ तथा पुष्पपुटाख्यान्या
८१० तथाप्यमर्मन् काश्चित्
८८८ तथाप्यह सुबोधाय
१३६८ तथाभिनयनैर्युक्तम्
९२६ तथा यत्रपताकादीन
७०८ तथाविधे खेचरे च
४१० तथा समपुटा बाह्य-
७२२ तथा स्वपार्श्वतीता सा

श्लोक संख्या

७४८
८५८
७७०
८७०
८४३
९१
१५५७
१५६४
२८०
१५८६
८३४
५८०
१५६७
६६५
१५६७
५०
७८८
५०२
६२१
६८३
१५७२
७४२
१०८२
५६५
१५११
१५७०
१२१
४४९
९९२
४४९

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकावधि	श्लोक संख्या	श्लोकावधि	श्लोक संख्या
तन्मण्डलमिति कान्तम्	१/२४	तामत्राष्टाशोकमन्त्र	१०१८
तन्मण्डलमिति पोम्नम्	१/२७	तामत्रोऽमा प्रमिद्वे म्यात	२०९
तपम्बिदर्शने स्याताम्	१/२८	तामत्रो नमवम्यातम्	११३
तर्जनी नर्तने स्याताम्	१/५४	तामत्रपक्षविनोदारयम्	७६३
तर्ज्जुभुते पुटद्वद्वा	४६०	तामत्रान्तरेऽमा, णी	९८३
तर्जनी चापवद्वक्त्रा	६५०	तामत्रान्तरे नानि	१५१८
तर्ज्यग्र प्रसा यत्र	६३	तामत्रपत्र त्वमाकर्ण-	३०
तर्जन्यनाम्निके यत्र	१६५	तामत्रगोगनेपुण्यात्	१५६०
तर्जन्यम्य भ्रमन्सूर्व	८१	तामत्रपत्र ममाचष्टम्	८८५
तर्जन्याद्यट्गुडीना चेत	६१०	तामत्रान्तरे पुरो गत्वा	९८३
तर्जन्याद्यट्गट्को युक्त्वा	१७७	तामत्रान्तरे यदा वाम	९०१
तर्जन्याद्या यथाङ्गव्य	६१०	तामत्रान्तरे स्थिता ग्रानाम	३१७
तलपुम्पपुटे त्वेतत्	११८१	तामत्रे नीले च कर्त्तव्यं	३०
तलपुम्पपुट पूर्वम्	१३८३	तामत्रा द्वावर्षतालञ्च	८७९
तलपुम्पपुट वक्ष	१११९	तामत्रन् मञ्जदनल्पवाप्-	१५०८
तलमन्त्रमरालम्ब	—	निरञ्जनीना यथा गद्वा	४५५
तलमन्त्राः पाताला वेत्	२१०	निर्यक् कुञ्चितजानु स्यात्	९२६
तलममुखमावृ	६११	निर्यक्तलेन पृङ्गति	३५६
तलमस्फोटित चाम्	१/१५	निर्यक्ताण्डवचाराख्यम्	७६३
तलमस्फोटित गण्ड-	१/२८	निर्यक्प्रसारितो मर्-	३०८
तला [लता] द्व वृञ्चिक ए-चात्	१३५३	निर्यक् प्रसृतपादस्य	१०/३
तलेनादो निर्यक्त्या	१०८९	निर्यक् सञ्चितो य म्यात्	५३५
तले यन्य विकीर्णा-चेत्	२०३	निर्यक् सञ्चारयेदस्यम्	१०३९
तस्मान्नाट्यत्रयोगे तु	७०५	निर्यक् स्थितेनोपलाभम्	६९८
तस्य रङ्गप्रविष्टास्ताम्	६८६	निर्यगायत एष स्यात्	६५
तस्योक्तो मानसो भाव	६१६	निर्यगाम्योऽऽ भूर्यस्य	२३८
ता एव परिवर्तित्य	१०४	निर्यगर्वमदोऽश्चेत्	१५७१
ताण्डवेऽशोकमल्लेन	४०४	निर्यग्गत यत्तद्वक्त्रम्	५७३
ताड्येव भवेदेव	२५४	निर्यग्गतागते विभ्रत्	५६८
			८५१

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
दक्षिणस्तु ततो वाम	८००	दिवस्वस्मिन्कमथकेन	१३६७
दक्षिणा तु यदा जड्वाम्	९४२	दिशास्वष्टामु चेद्वस्तो	८३८
दक्षिणाडिघ्न ममो वाम	९४०	द्विग्वपरिप्रमनङ्गानाम्	८५१
दक्षिणेनालपदमेत	६८७	दीप्ता विकामिना दृष्टि	१३६
दक्षिणे यत्र मची म्यात्	१४४४	दीर्घ मान तथाच्चत्वम्	६२९
दक्षिणे वामत पादे	४०२	द्वे ते ऊर्ध्वमृग्या तु	९९
दक्षिणोऽङ्घ्रिर्भवेत् सूची	१४६८	द्वरे स्थितदन्तपङ्क्तयो	५५६
दक्षिणो जनितोऽथ स्यात्	१४६५	दन्त्यन्तेऽनर्वाहर्वा चेत्	२२०
दक्षिणो जनितोऽथाङ्घ्रि	१४६२	दृश्यान्पलायमानेव	४३८
दक्षिणो जनितो वाम	१४७६	दृश्याद् द्रवनिवृत्ता च	४५५
दक्षिणा दण्डपादोऽन्य	१४३८	दृशोऽनन्ताभिनयना	४४८
दक्षिणो भ्रमर पाद	१४८१	दृष्टया मिलिता सर्वा	४३१
दक्षिणो यदि पाद स्यात्	१४७२	दृष्टादृष्टफलादृष्ट-	१४६८
दक्षिणो विच्यवीभय	१४५२	दृष्टिदृष्टार्थिभात्साह	१४५
दण्डपक्ष ललाटाङ्घ्रि	१३८३	दृष्टिभ्रूमुखरागाद्यै	३१९
दण्डपादा पुरक्षेपा	९६६	दृष्ट्याद्योगतया वीरै	६७८
दधती चरणो गच्छेत	१६०८	दृष्ट्या निर्वर्णयन्त्यापि	६२२
दधल्लाद्यौ तु शिथिले	२३	दृष्ट्या मुबुलया किञ्चित्	६२८
दधाने चेतदा प्रोक्त	७२७	दृष्ट्यावबूतशिरसा	६२६
दन्तोऽष्टशिरस कम्पात	६३५	दृष्ट्या सहास्यया धीर	६९१
दष्टनिष्कर्षणे तदवत्	५५३	दृष्टयो मिलिता सर्वा	४३१
दर्शयेत् तीक्ष्णरूपाणि	६४९	दृष्ट्योर्ध्वयानेकरया	६४७
दशभि करणैरेभि	१३६३	दृष्ट्वा खिद्यति चतुक्तन्	१५०७
दशान्तराङ्घ्रि	५२८	देवताया द्विजातेश्च	२१२
दशायामन्तिमाया म	५२५	देवेप् दक्षिणो वाम	२१०
दशोद्विष्टान्ययामीषाम्	१४३०	देवोपहारक प्रोक्तम्	८१५
दक्षिणो दण्डपाद स्यात्	१४३६	दशाद्यानामथैतेषाम्	१५१८
दाने त्वभयदानेऽपि	४१८	देहस्वभावभावेप्	१५३
दिवस्वस्मिन्क पुनरथ-	१३६७	दोल नीराजिताख्य च	७५६

नस्याध्याय

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
दोलापादा तथोद्भृता	१५०	वृनिमोद्घातयात-	१५८१
दोलापादाभिवा त्वेपा	१०१३	वृतिस्थैर्बलोत्साह-	१५९
दोलोत्थितो लनाह्मन्	२६८	व्यानाभिनयने चित्र-	१७८
दोहने च गवादीनाम्	४७	व्याने योगे मद्भिरेप	५२१
द्रुन तत्र प्रदेशेषु	८३०	अजच्छत्रपताकादीन्	६५१
द्रुन विनिश्च लुठनात्	७८८	न	
द्रुनभ्रान्ता ह्रमपक्षा	२८०	न कराभिनय कां	२२५
द्रुनमन्दादिभावेन	१५२१	नकाणा वडनाग्नेञ्च	१३१
द्रुनशाखावलम्बे च	९१३	नख तते कामिनीनाम्	५२२
द्व्याद्विप्रप्रचार करणम्	९५३	न जानामीर्गत वाक्यथ	१३१
द्वापञ्चाशदिमान्तीति	८८	नटोत्पद्यदन्वये	८८२
द्वाम्या त्रिचतुराभिर्वा	१३४२	नत चोन्नतमनेति	३३२
द्विगुणस्त्रिगुणयदवा	१५३६	नत तु न्यञ्चितम्बन्ध	३३६
द्वितीययासहामूलोत्क्षिप्ता	४८१	ननजानुयत्र जदधा	९९१
द्वितीया खड्गपूर्वस्य	१५८३	ननव्वस्तनिमित्ताने	६३०
द्वित्रिंशत्ते तथाऽप्युक्ता	१३४३	ननाप्रावयवोच्चाप्रा	३०६
द्विवा नान्यात्मनिष्ठानि	४९१	नतोन्नताङ्गुलिरमा	१०९
द्विस्त्रिंवा मण्डलाकार	१५९	नतोन्नते सहेते च	४१०
द्विस्त्रिंवा मृध्नि सयोज्य	२२५	नतोन्नतौ मुहु म्याताम्	३९५
ध		नत्वाह तमकिञ्चनम्	१११६
धत्ते सा विप्लृता दृष्टि	४६७	नत्वेकदायत सद्य	१०६
धनुराकपणाख्य च	७६०	नदीपूरे च नक्तोऽपि	३५२
धनुराकर्पणे प्रोक्तम्	८०५	नन्द्यावर्त चैकपादम्	८७०
धारणे लेखनम्यापि	१६६	नन्द्यावर्तस्थानकस्या	१०४९
धाराभिमुपना तन् स्यात्	८२३	नन्द्यावर्तस्थितावज्जधी	१०२८
धीरधुर्योऽशोकमल्ल	१४२३	नन्द्यावतस्य चेतस्थानम्	९२७
धीरै स्तब्धो दालितो वा	२४८	नन्द्यावते स्थिताद्विघ्नभ्याम्	१०३३
धूमै सा मण्डलाकार-	८९	नभस्तेजोऽनिल चोष्णम्	६५४
धृतम्क्ते यथा मीन	१५९८	न भाति यावन्नोपेति	५८६

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाध	श्लोक संख्या	श्लोकाध	श्लोक संख्या
नमज्जानन्तु या जडधा	४०१	नानार्थगीतमहितम्	१५०९
नमन स्यात् प्रयोगेषु	१५४९	नानालङ्कृतिचिन्नाङ्गै	६७९
नमनात्तु नितम्बस्य	४१५	नान्दीपिण्डप्रदाने तु	१९३
नमनाद्दुर क्षामम्	३८९	नाभिक्षेत्रादय कार्य	१६०
नमनोन्नमनोपेता	१४२५	नाभिदेशममीपस्थे	८००
नम्रा ग्रीवा नता प्रोक्ता	३६२	नाभिदेशस्थितावेतौ	६९
नयने किञ्चिदाकुञ्च्य	६२३	नाभिदेशस्थितो नीवि-	५५
नर स्त्रियोऽथवा कुर्य	९०७	नाभिपाठवर्द्धय पञ्चात्	६०५
नर्तकी गुरुमानेन	१५८८	नायिकाप्रार्थनोक्तौ स्यात्	१६८
नर्तकी तनुते नृत्ते	१५३०	नारादधनजले वार्ये	९२
नर्तकी दक्षिणे पाठवे	१६११	नामाक्षेत्रादथाग्रस्थ	१३६
नर्तकी नर्तने गीत-	१५४८	नासादेशगत कार्य	३०
नर्तकी लघुमानेन	१५९०	नासादेशगत कार्य	१५६
नर्तकी यत्नतस्तावत्	८६३	नामानिल प्रसगेन	५३३
नर्तने तनुयात् क्षिप्रम्	१५५४	नासा सकञ्चिता या स्यात्	५१३
नलिनीपद्मकोशौ चेत्	७३१	नास्तीत्युक्तवथ मनाक्	६२
नवधोच्छ्वासनि श्वासौ	५१७	नास्तीत्युक्तौ च नागीभि	२०५
नवभि करणैरेभि	१३९१	नाह मत्व न मे कार्यम्	१६६
नवरत्नमुख चेति	७६६	निकुञ्चितपुटापाङ्गा	४३९
नवोक्तान्यात्मनिष्ठानि	४९३	निकुञ्चिताकुञ्चितौ स्याताम्	४१७
नवोपविष्टमथानानि	८७५	निकुट्टक विवायाथ	१४११
नागबन्धमथ स्वस्थम्	८७४	निकुट्टक पुराटचर्ध-	९६४
नाटचे नृत्ये गतौ युद्धे	१०२०	निकुट्ट करण पञ्चात्	१३९०
नाटचे नृत्ये तथा नृत्ते	९९७	निकुट्टकोरुद्वृत्ताख्य	१३४३
नाटचवेदेनादिमूल-	९९७	निकुटावनिकुट्टार्ध-	१३९८
नाटचोपयोगिन प्राय	६१५	निकुट्टार्धनिकुट्टे च	११२१
नानाकार्यान्तरोपेतम	८८१	निकुट्टार्धनिकुट्टे द्वे	१४०९
नानादृष्टिभुत धीर	६२६	निकुट्टितौ समौ पादौ	१०९६
नानारीत्यान्वित नृत्तम्	१५३४	निकुट्टोरुद्वृत्तके चेत्	१३६६

नृश्याध्याय

श्लोकार्थ	श्लोक संख्या	श्लोकार्थ	श्लोक संख्या
निकुटोरुद्वृत्तके तु	१३४७	निरीक्षणालसे तारे	४५९
निकुटोरुद्वृत्ताख्य	१३४३	निरुक्तिमेव केऽप्याह	१०८१
निगढ स्रस्ततारा या	४६०	निरोधात्तु गतिस्थित्यो	९१०
निघृष्टोडिघ्न क्रमाद्यत्र	९७४	निर्गम्य मणिवन्धाद्य	३७५
निज पार्श्व सरन्नन्य	३८६	निर्गताभिमुखौ स्याताम्	८२८
निजपार्श्वे भ्रमन्नी मा	८२	निर्गतावशदेशाच्च	८८२
निजे पार्श्व पुगे देश	—	निर्णयाङ्गी कृतौ योज्य	२३९
निनम्ब करिहस्त च	१३४३	निदिशेत् तमृतु तेन	६४२
नितम्ब विष्णुकान्त	१३८५	निदिशेत् तानि रोमाञ्चै	६४८
निनम्बकरिहस्तेन	१३९२	निदिशेदथ वृक्षादीन्	६७८
नितम्बपरलवाख्ये द्वे	७१२	निनिमेषा मम्त्फुरला	८६९
निनम्बवर्नना सोक्ता	७३३	निर्वर्णना तथा युक्तम	५०३
निनम्बस्वस्तिकाद्य तु	१४०२	निर्वेदादिष्वपि च या	५१०
नितम्बाभिमुखी यत्र	१००६	निर्वनितस्तथेत्युगे	३९४
नितम्बो तु यदा हस्तौ	८३२	निवारणे वह्नि क्षिप्त	१५४
निदध्याहृपविष्ट मन्	९४२	निवृत्तविनिवृत्ते च	११२३
निद्रामुद्रितनेत्रयापि	१५०६	निवृत्त सन् निजे पार्श्वे	७८५
निपुण ष्लिष्टविश्लिष्टौ	१८	निवृत्ता कथिता म्कन्ध-	३६८
निमेषिणी या मा दृष्टि	८५६	निवृत्ता रेचिता चेति	३६०
निम्न खल्ल समाख्यातम्	३९०	निश्चल भीलतास्य यत्	५७१
नियुज्यते वाजिगज-	४१३	निश्चलात्माङ्गविन्यास-	८६५
नियुज्यन्ते बुधैरेते	११	नि शङ्कगमनेनापि	६७९
नियुज्यन्ते बुधैरेता	५९४	नि शङ्क पतिरभ्युपैति	१४९४
नियोज्या सा बुधैस्तद्वन्	३६३	नि श्वासेनाङ्गकम्पेन	६५८
नियोज्यास्तन्मै पात्रै	३२२	नि श्वासोत्सुक्यदौर्बल्य-	२५०
निरन्तरोत्क्षेपणैर्यत्-	३३१	निषण्णो तु नमस्यूह	८९२
निरन्तरौ विवायोर्ध्व-	१४७३	निषण्णौ व्योम्नि यत्रोरु	८९४
निरवादि तदा वीरै	७३४	निष्कम्पा समतारा या	४४९
निरस्तस्खलिनौ श्वास	५१६	निष्कर्षण स्यान्निकास	५५९

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक	सख्या	श्लोकार्ध	श्लोक	सख्या
निन्दामो निर्गम प्रोक्त		४९६	प		
निष्पीडने त्वलक्तस्य		१७५	पक्षपाते पराधीने		२१८
निःशेषेण तथा मृत्यम्		२३२	पक्षिणा पञ्जरेष्वेनौ		१९३
नि सारे मुद्गुनि श्लक्ष्मे		०१	पक्षिणा बरवध्वोश्च		०८१
निहिते पर पादस्य		९९४	पञ्चतालान्तर पाद		९७७
नीकी नर्मानका शङ्का		१५१५	पञ्चभि करणरेभि		१३९२
नीचरतेस्ते प्रयोक्तव्या		३२३	पञ्चमिर्धुर्धुर्भयत्र		१०३२
नीगोव्वतर्जनीको चेत्		२०२	पञ्चम तु कटीच्छिन्नम्		१३७०
नात्वा क्रमेणकदा वा		१५९२	पञ्चमो लघुमानेन		१५६७
नीत्वा यत्र करा चित्रम्		१५९५	पञ्चविंशतिरित्यक्ता		७१४
नीत्यादिरचने त्वेप		५५	पञ्चविंशतिसख्याके		१३८६
नूपुर करण पूर्वम्		१३९८	पञ्चमख्यादिनिर्देशे		१९०
नूपुर च तत कृत्वा		१३७५	पञ्चेति चालकानि स्यु		८५१
नूपुर भ्रमर चाथ		१३६३	पतत्कनीनिका श्रान्ता		५५२
नूपुर यत्र विक्षिप्तम्		१३६२	पतनेऽथ पतन्कार्य		८७
नूपुराक्षिप्तके चार्ध-		१३९७	पतन्ताबुत्पतन्तो तौ		५२
नूपुराक्षिप्तके छिन्न-		१३५१	पतन्ताबुत्पतन्तो तावेव		२८२
नृत्तति प्रेष्यते दृष्टि		१५३७	पताका त्रिपताका वा		२६३
नृत्यहस्तानुगा नृत्ये		१५५९	पताका त्रिपताका वा		२६५
नृत्याय देवरङ्गाया		६२४	पताका तु बुधा प्राहु		२७५
नृत्यजैर्यदि रेच्यन्ते		७५४	पताका स्वरितकी कृत्य		३१०
नृत्य चित्रमसो भेद		१५९९	पताको स्वस्तिका कृत्वा		६९१
नृत्येत् ससौष्ठव स स्यात्		१५९०	पताका हंसपक्षा वा		२८६
नृत्येद् विलासमधुरम्		१५३९	पतिता भूरघ प्राप्ता		४७९
नृत्येदनुगुण यत्र		१५५२	पतितोत्पतितौ शीर्षात्		८२९
नृत्येदसौ तथा प्रोक्त		१६०३	पतेता यत्र तत्प्रोक्तम्		८०६
नृत्ये यत्राङ्गसञ्चार		१५४३	पत्रवृन्तच्छेदने च		७४
न्यमेन् कटिनटेऽथाङ्घ्री		१४७४	पदद्वयनिकुट्टा च		१०८३
			पदद्वय निकुट्टा स्यात्		१०९३

नृत्याध्यायः

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
पदद्वयं निकुट्टं स्यात्	१०९२	परिमण्डलितोत्तान	१५
पद्भ्या तलानुग गच्छेत्	१६०४	परिमण्डलितो रक्ते	५
पद्मकोशम्य हस्तस्य	१९९	परिवर्तितो भवेदेष	१३
पद्मकोशाभिबो हस्तौ	२९०	परिवेशे भ्रमन्ती सा	९६
पर करो मूर्धदेश	८८०	परिवृत्त ततस्तस्मिन्	११४०
परस्तु भ्रमरोऽथाङ्घ्रि	१४६४	परावृत्तला तिर्यक्	९६१
परस्परमुखी भूय	७७५	परिवृत्तविधर्ज्ञेय	१४०६
परस्य लीलया यत्र	७८९	परिवृत्तस्त्वविनये	७
परागबोमुखत्वेन	७९१	परिवृत्ताभिधा चासौ	४००
परागस्येन पात्रेण	३८२	परिवृत्तिप्रकारेण	१३८०
परागस्योऽपविद्ध स्यात्	७३९	परिवृत्या पुष्पपुट	७४८
पराङ्घ्रिपृष्ठाभिमुखी	९९०	परे करानुग प्राहु	११४७
पराङ्घ्रिर्जानुपर्यन्तम्	१०११	परे तौ विद्वना मूर्ध्नि	२९२
पराङ्घ्रिं रुद्धतस्येपा	१०५२	परे प्रसारण बाह्वो	३०१
पराङ्मुख परित्राणे	१०९	परे सर्पशिरो हम्नो	३१०
पराङ्मुख परित्राणे	१५४	परोक्षास्तेऽभिनेतव्या	६७०
पराङ्मुखे लुठत्येक-	८३९	परोरूमूलक्षेत्रान्तम्	१००६
पराङ्मुखोऽथ खेदे स	१४५	पर्यायगजदन्ताख्यम्	७६५
पराङ्मुखो नृणा माने	१२५	पर्यायाच्चेत् तत् तदोक्तम्	८००
पराङ्मुखा च पूर्वाभ्याम्	२७९	पर्यायादेकदा वा यद्	१५२६
पराङ्मुखौ स्वस्तिकौ च	२५३	पर्यायात् पतितश्चारी	९८७
परावृत्त सोऽङ्गहार	१३७२	पर्यायाद् यत्र तत् प्रान्तम्	८४१
परावृत्ताख्यमूर्ध्ना च	६९३	पर्यायेण तदा धीरै	१४२२
परावृत्ताख्यशीर्षेण	६१८	पर्यायेणात्प्रकोष्ठ चेत्	८०१
परिग्रहे यथोचित्यम्	४९	पर्वतारोहणेऽथ स्यात्	५३०
परिणामे पार्श्वमुख	१८०	परलंबो वर्तितो चेद् सा	—
परितो गतया दृष्ट्या	६३१	पश्चात्क्षेपाद्भवेदेषा	११००
परिधाने नाभिगत	७८	पश्चात्तापादिषु प्रोक्त	५३१
परिमण्डलितेनाथ	६८७	पश्चादापि तदा प्रोक्तम्	९३१

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध

पश्चान्निःकुटितत स्थाने
 पश्चात्प्रक्षिप्य पाद चेत्
 पश्चात्प्राप्ता परावृत्ता
 पश्चात् स्वस्तिकवन्धेन
 पश्चात् बिलोड्य दोलावत्
 पश्यन्तीमवनि ज्ञेय
 पश्यन्त्यग्रे पार्श्वयोश्च
 पाणिकण्ठकटीपाद-
 पाणिकण्ठकटीपाद-
 पाणिमेव विध वामम्
 पातयेच्चेत पताको द्वौ
 पातस्तु करुणे योज्य
 पातोऽवोगमन तिर्यक्
 पात्र विश्रम्भ विश्रम्भ
 पात्र सविस्मय यत्र
 पात्रे यत्राप्रयत्नेन
 पाद परोरुपर्यन्तम्
 पाद सूची भवेद् वाम
 पादयुग्मकृता संव
 पादश्चेत्कुटितत पूर्वम्
 पादश्चेत्कुटितत पूर्वम्
 पादश्चेत्कुञ्चित पृष्ठे
 पादाग्रभ्या समानाभ्याम्
 पादाग्रेण क्षितौ घात
 पादाग्रेण नटी मन्दम्
 पादाग्रे मा तदादिष्टा
 पादाङ्गुलीभिराक्रम्य
 पादाङ्गुष्ठ करस्पर्शान्
 पादालङ्करणे त्वेष

श्लोक सख्या

श्लोकार्ध

१०९७ पादाहतौ तथा नाना
 १०५५ पादेऽङ्घ्री यत्र वूर्णन्तौ
 ४०८ पादेनैकेन यद्यन्यम्
 ८२९ पादो स्वस्तिकवन्धेन
 ८३६ पानभोजनयोरेष
 १६०८ पार्श्वक्षेपनिकुट्टान्या
 १५९५ पार्श्वक्रान्तोऽथ सूच्यङ्घ्रि
 १८२१ पार्श्वक्रान्त निवेश च
 १४२२ पार्श्वक्रान्तो दक्षिण म्यात्
 १६०५ पार्श्वक्रान्तोऽपरस्तद्धि
 ११४५ पार्श्वक्रान्तोऽप्यथो वाम
 ४९७ पार्श्वक्रान्तो भवेत् सव्य
 ४९५ पार्श्वक्रान्तोर्ध्वजानुश्च
 १५४६ पार्श्वक्रान्तस्तु सव्य स्यात्
 १५४२ पार्श्वक्रान्तस्ततो वाम
 १५३५ पार्श्वक्रान्तस्ततो वाम
 १००४ पार्श्वक्रान्तस्ततो वाम
 १४३७ पार्श्व गच्छन् पार्श्वग स्यात्
 १०९८ पार्श्वजश्चाथ ते ज्ञेय
 १०९७ पार्श्वत क्षेपणादेवम्
 ११०३ पार्श्वत प्रेक्षण धीरै
 ११११ पार्श्वद्वयचरीमध्य
 ९१९ पार्श्वद्वयेन या किञ्चित्
 १०४६ पार्श्वनम्रा भवेत् त्र्यस्रा
 १५९३ पार्श्वप्रसारिता नृत्ये
 १०२७ पार्श्वमण्डलिनो स्वस्व-
 १५८७ पार्श्वयुग्मेन वेशाख-
 १६०१ पार्श्वयो क्रमतस्तत्र
 १४४ पार्श्वयोर्दोलितौ तिर्यक्

श्लोक सख्या

३४७
 ९९५
 १०७३
 १०५७
 ३८८
 १०८४
 १८५१
 ११३१
 १४५८
 १८४५
 १४५२
 १४५६
 ९५८
 १४३६
 १८३८
 १४४१
 १४४४
 ३५९
 १७०
 ११०१
 ५०८
 १०८७
 ३४०
 ३६४
 ४०५
 ७२८
 १३६५
 ८४५
 २६७
 ४५९

नृत्याध्याय

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
पार्श्वेया प्रथम यात्वा	८२८	पिपीलिका म्वय योज्य	१७९
पार्श्वयोर्लोडिनै प्राप्य	८५४	पिहिता रफुरिनो स्याताम्	४८२
पार्श्वयोर्लोडिता प्रोक्तौ	८१९	पीडने कूटने स्थाने	३५१
पार्श्वव्यत्यामतो यद्वा	२१७	पीडयित्वा स्थितोऽङ्गुष्ठ	४५
पार्श्वव्यत्यामतो लग्ना	३७७	पसामभिनयेद् धीमान्	६६३
पार्श्वव्यत्यामतो योज्ये	१०३	पुस्कृत स्त्रीकृतो भाव	६६५
पार्श्वदित्यन्तमसकृत्	१०८	पुटान्तरे प्रवेशो य	४९६
पार्श्वनितेन शिरसा	६२०	पुटान्तर्मण्डलावृत्ति	८९४
पार्श्वान्तर पानयेत्	१०१९	पुटो साहजिकौ स्याताम्	८८३
पार्श्वोपगमनाद् बाहू	३७९	पुन पुन क्रिया या स्यात्	७९६
पार्श्वभिः चेतदा वीरे	१०५७	पुनराहार्यं तान्यग्रे	१५५०
पार्श्वभिः चेत तदा सद्भि	१०३४	पुनरेतद् द्वय चाडग	१३५२
पार्श्वविलोकनैश्चित्र	६६४	पुननितम्बदेशस्थो	७३३
पार्श्वे तथागते शीघ्रम्	३३९	पुननितम्बदेशस्थो	११११
पार्श्वेऽथैककरोऽकस्मात्	८०५	पुनस्तन्मुख एव स्यात्	८६०
पार्श्वेनोरो विनिक्षिप्य	१०७३	पुम्भिर्नियुज्यते त्वेतत्	८८१
पार्श्वे न्यस्येत् तदा चारीम्	१०००	पुराटिका मिथोऽङ्घ्रिभ्याम्	१०५१
पार्श्वे प्रसारित स्त्वेक	२८७	पुरूपे श्मश्रुदेशस्थ	६७
पार्श्वकमिश्रिते द्वे स्त	९३५	पुरूपैरङ्गहारस्ते	१४२०
पार्श्वोत्ताना कुन्तले तु	९१	पुरोगतास्तिरस्कारे	११२
पार्श्वोत्थित प्रयोक्तव्य	२२६	पुरोद्विप्र कुञ्चितो वाम	९८१
पार्श्विणः पार्श्वगोऽप्येवम्	३४५	पुरोदण्डभ्रमाख्य च	७५६
पार्श्विणजडघोरुसश्लिष्ट	९३०	पुरोदण्डभ्रमाख्ये तत्	७७८
पार्श्विणदेशे स्थापयित्वा	१००९	पुरोमुखी सूचिने सा	१०१
पार्श्विणपार्श्वगतेऽन्यस्य	९३३	पुर क्षेपनिकुट्टा च	१०८४
पार्श्विणपार्श्वगताख्येन	१०२९	पुर पश्चात्सरा चारी	१०८२
पार्श्विणरष्टविधा ज्ञेया	५९०	पुर पश्चात्सरा चारी	१०८९
पार्श्विणश्लिष्टौ तिरश्चीनौ	९२४	पुर पुर कुञ्चितश्चेत्	१०७१
पार्श्विण स्याच्चरणस्याग्र-	९९०	पुरत पार्श्वयोस्तद्वत्	८०२

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
पुर प्रसार्यत पादौ	१०५३	पृष्ठप्रसृतपादस्य	१००८
पुरतो वावतो यस्मिन्	८१२	पृष्ठाद्य स्वस्तिक चाय	१३८१
पुरतो यत्र हसीव (हसक०)	—	पृष्ठायातावुभौ कार्यौ	४०
पुरश्चेत्सर्पतस्तूर्णम्	१०२७	पृष्ठोत्तानतल पार्णि	८७१
पुर सरति यत्रादिद्य	१०५४	पृष्ठोत्तानतलो यत्र	१०३०
पुरस्तात्पार्श्वयोस्तिर्यक्	८५२	प्रक्षप्रद्योतको यद्वा	१०२५
पुरस्तात्स्वस्तिका भूत्वा	८५४	प्रचुर स बुवैरेवम्	३२२
पुरस्तादन्तरिक्षेऽडिधम्	१०६६	प्रचारयोग्यतामात्रात्	९७१
पुरस्तान्निसृतिर्यत्र	७७८	प्रच्छेदक शेषपदम्	१४८७
पुरस्ताल्लुठिता पृष्ठ-	१०८६	प्रणामेऽव पतन्ती सा	१०२
पुरस्ताल्लुठिता सा स्यात्	१११०	प्रतिक्षण यथा नेत्रम्	५८८
पुरश्चलन्नुच्यनीच	१२४	प्रतिद्वन्द्विनि ते स्याताम्	१००
पुष्पगुच्छाग्रहेऽप्येतत्	९१४	प्रतिलोमानुलोमाभ्याम्	८०३
पुष्पवान्यजलादीनाम्	२३५	प्रतिषेधे तथा स्त्रीणाम्	९०४
पुष्पाञ्जलो प्रसादे च	२३५	प्रनीप यायिनी जङ्घा	४०४
पुष्पावचयने हारे	७४	प्रतोदग्रहणेऽप्येव	६५
पुष्पितेऽवोमुख काय	२९	प्रत्यक्षा देवता साक्षात्	६७३
पूर्णविशोकमल्लेन	५६४	प्रत्यक्षा येर्जमनेयाम्ते	६७१
पूर्णो ऋपोलौ पोढेति	५६१	प्रत्यङ्गत्व कथ तेषाम्	४२३
पूर्वं पूर्वमुपक्रान्ता	१५६०	प्रत्यङ्गत्व भवेदेवम्	४२५
पूर्वभाग शरीरस्य	९८८	प्रत्यङ्गैश्च करा योज्या	३१९
पूर्वम्-र्व विधायैकम्	८२२	प्रत्यपादि तदा वीरै	७१७
पूर्वरङ्गे प्रयोक्तव्यान्	१३४३	प्रत्यालीढ भवेत्स्थानम्	९००
पूर्वसूरिभिरादिष्टा	७३१	प्रथमेऽथ बुवैरुक्त	५२९
पूर्वे पार्श्वे तत पश्चान्	७७९	प्रदक्षिण भ्रमन् कार्यम्	१६२
पूर्वोक्त गजदन्त तु	२३३	प्रदोष दिवम् रात्रिम्	६२६
पृथगुत्तानिता चेत् तौ	२६४	प्रयत्नेन विना य स्यात्	५२७
पृष्ठत सरणात् पृष्ठा-	३८०	प्रयुज्य स्वस्तिको यत्र	११४९
पृष्ठतो याति य पाष्ण्या	३५८	प्रयोक्तव्यमिति प्राहु	१३४३

नृस्थाध्याय

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
प्रयोक्त्वव्या इमाश्चार्य	—	प्रसृताञ्च तथा कुञ्चन्	५९२
प्रयोक्त्वव्या शिवस्याग्रे	१४२०	प्रमृताऽस्यान्नताग्रा या	५४९
प्रयोक्त्वव्यौ करौ बाला	१४९	प्रसृतौ त्वाथतावृक्तौ	४८५
प्रयोगे चापवज्रादे	८९५	प्रसृतौ पार्श्वयो पूर्वम्	८११
प्रवेशन समुद्वृत्तम्	४९२	प्रहारान् विविधाञ्चैव	६५१
प्रवृद्धनामामो वायु	५२२	प्रह्लादनेन गात्रस्य	६४५
प्रमन्नस्यस्तथा स्वस्थ	६३३	प्राशुग्राह्य फलादीनाम्	०२०
प्रसन्नो मुखराग स्यात्	९०१	प्राकृत भ्रमण पात	४९२
प्रमरनि दिनमणितेजसि	१४९३	प्राकृत समभावेषु	४९७
प्रसरत्यग्रदेशे य	३७२	प्राङ्मुख कम्पितो वक्ष	२१६
प्रसर्पित तलाच्च तु	१३७८	प्राचुर्याद् भौमचारीणाम्	१४२७५०
प्रसादक सगोषस्य	१५०९	प्रातिलोम्येन गात्रस्य	७४०
प्रसारित मुदादौ तत्	३३५	प्रातिलोम्येन यद्वेदम्	८३६
प्रसारित पार्श्वयोश्चेत्	३८३	प्राधान्य यत्र पादस्य	१०२२
प्रसारित पुनस्तिर्यक्	९३८	प्राप्तो वसन्तसमय	१५१०
प्रमागितभुजो मुष्टि	७००	प्राय प्रयुज्यत वीरै	४१९
प्रसारित मुखे या वा	५५१	प्रायशोऽमू प्रयुज्यन्ते	१११५
प्रसारिता दवानौ यौ	३०९	प्रार्थने देवपूजायाम्	१८५
प्रमारिता अथ क्षिप्ता	५९३	प्राहापकुञ्चितामेनाम्	१०४१
प्रसारिताधोमुखाख्य-	३७०	प्राहु परे त्वलक्ष्ये तौ	४९०
प्रसारिते तु ये स्याताम्	८८४	प्राहोत्तानोऽग्रग भट्ट	६०१
प्रसारितो भवेद् यत्र	९८९	प्रिय स्वप्ने समालोक्य	१५०५
प्रसागितो तथोत्तान	२७०	प्रियेण यदसलाप	४५१
प्रसार्य पुरत किञ्चित्	९९८	प्रीतिकोपे नवेष्यामि	१४७
प्रसार्यते पुरो यत्र	१०२८	प्रेक्षणे गरुडादीनाम्	८९६
प्रसुप्ताभिनये प्रोक्त	५२६	प्रेरणे वाजिनामाजौ	८९३
प्रसृनोद्धरणे वृन्ता	१७२	प्रेषणे कङ्कुमादेस्तु	७९
प्रस्पन्दमानपक्षमाग्रा	४५०	प्रोच्यतेऽशोकमल्लेन	१४८९
प्रसृताडगुलिक पाद	३४७	प्लुतमानकृतानर्ध-	१५८१

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाधे	श्लोक संख्या	श्लोकाधे	श्लोक संख्या
प्लुतमानकृताडिधश्चेत्	१५७९	बाह्यपाश्वेन सम्पृश्य	१०६३
व		विभ्रती सर्वतश्चित्रम्	१३०२
बकाद्य प्लवपूर्वश्च	१५६६	विभ्रतो स्वस्तिकाकारम्	७८२
वद्धया स्थितिरेव चेत्	११५३	विलोडयोरस्यले हस्तौ	८५६
वद्धा विरच्य चारी वेत्	१०००	वीभत्सा चाद्भुतेत्यष्टा	८८६
वद्धा तु स्वस्तिकम् पूर्वम्	८४२	वीभत्सा दृष्टिरुक्ता सा	४३९
बलिदाने भोजने च	१८५	जुधैर्योज्यो विमर्दे तु	२३
बहि क्षेपाद् भवेत् क्षिप्ता	४००	जुधैर्योज्योऽथ विश्वासे	३१
बहिर्गता तिरश्चोना	४००	बृहन्मण्डलपूर्णा चेत्	७९४
बहिर्गता मिथोयुक्ता	५९०	ब्राह्मस्य शुकुण्डेन	६९८
बहिर्मण्डलग स्थित्वा	८१८	ब्राह्मणस्यानकेनापि	६८९
बहिर्यो निम्नता प्रात	८१८	ब्राह्मो समोऽडिधश्चकोऽन्य	९३७
बहिस्थिताडगुलिस्तु स्यात्	२२२	ब्रुवेऽह तानि कर्माणि	४०७
बहुधा चालनानि स्यु	७५४	भ	
बहुयानप्रसाव्येऽर्थे	२४२	भञ्जने कार्मुकादीनाम्	५०
बालग्रहे सुगादाने	७३	भट्टाभिनवगुप्तस्य	९०८
बालव्यजनक चान्यत्	७५९	भद्रे परस्मिन् प्रथमे	१०७
बालव्यजनचालाम्य	८२५	भयहर्षगोदनवदन	१५०३
बालसर्पे भवेद्देव्या	९०	भयानके तु चलनम्	८०८
बालाह्वानेऽयसावेव	४३	भयानके मवीभत्से	५८४
बालेन्दुदर्शने कार्य	१२५	भवन्ति वर्तना मृष्टि	१७५२
बाष्पाविलालपसञ्चारा	४४३	भवेच्चैद्वस्तको मुख्य	१०२२
बाहुकट्यूरुपादानाम्	१५१८	भवेत्तज्जृम्भणे हास्ये	३८९
बाहु प्रमारितस्तिर्यक्	३००	भवेदन्ते तदा धीरे	१८८५
बाहुरभ्यन्तराक्षेपात्	३८७	भवेदर्धनिकुट्टाख्य	१८०१
बाहुरान्दोलितोऽन्वर्थ	३८५	भवेत सव्योऽडिधश्चद्वृत्त	१८५२
बाहुल्यान्नर्तनारम्भे	११३८	भवेद् द्विचरणश्चाप	१८७१
बाहुशीर्षसमुत्थोऽयम्	१२३	भानो चन्द्रे च कतव्या	९९
बाह्यपार्श्वसुश्लिष्टौ	२३४	भारस्योद्वहन् स्तम्भ-	२२९
			४६३

नृत्याध्याय

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
भालवर्तनिकोर स्थ	७११	भूरनिर्भुजचेष्टाभि	८६१
भालस्थोऽप्यन्यथाश्वाच्चैत्	१६१	भूषावलित सर्वाङ्गा	१५६०
भावाद्द्रहृदयोपेता	१५३०	भूष्यन्तेऽङ्गानि ये स्तानि	४२३
भान्तेऽलक्तकमञ्जिताधरमु	१८९८	भूस्थापसारणे भूमि	३५१
भाव विनिदिशेत् चैवम्	६५७	भूस्थितार्थग्रहे लोभे	१९४
भावप्रकाशकैरङ्गै		भेदान् कतिपयानस्य	१११८
भावार्थे तिष्ठतेर्धानो	८६८	भोमाकाशिकभेदानाम	१४२७ फु०
भावानुभावमयुक्तान्	६५५	भोमानि मण्डलानीति	१४२७ फु०
भाषामि-भ्रमञ्चैत्	१४९५	भामाकाशिक चेति	१४२७ फु०
भिद्यन्ते दशना यैस्तु	५५२	भ्रमणाद् भ्रमिन खड्ग	४२१
भिन्नोच्चा म्यान्मनागवक्रा	१५१	भ्रमणे तु गदाखड्ग-	३७८
भीतिकासश्रमवाम-	३३१	भ्रमन्त्या सयुते भ्रान्तो	९७
भुग्नमुदवाहि विवृत्तम्	५७८	भ्रमन् प्रदक्षिणे सद्भि	१६३
भुजङ्गत्रासित पाणिम्	१४१२	भ्रमर च तदावर्तम्	१४२७ फु०
भुजङ्गत्रामित कुर्याद्	१४०९	भ्रमर दण्डपक्ष च	११२३
भुजङ्गत्रासितान्चारीम	१८४६	भ्रमर नूपुर चैव	१३४८
भुजङ्गत्रासितोन्मत्ते	१३६५	भ्रमर शकटास्य च	१८२९
भुजङ्गत्रासितोऽन्य स्यान्	१८५०	भ्रमरीभिश्च सम्प्रोक्तम्	१५५३
भुजङ्गत्रासितो ऽप्येष	१४६०	भ्रमरेण सहेमानि	१४०४
भुजङ्गाञ्चितक दण्ड-	१३७५	भ्रान्तिरामणिवन्व सा	७२१
भुजङ्गाञ्चितमाक्षिप्त	११२४	भ्रान्त्वा च प्रमृतो यत्र	१०१०
भुजामकूर्वराश्रेष्	३०७	भ्रान्त्वा प्रसारण केचित्	३१०
भुजावसान्तर गत्वा	८०६	भामयित्वा विलासेन	८२७
भुजावधि विलासेन	१५५४	भ्राम्यते सकला यत्र	१००१
भुवो त्रिशाखदैव तत्	८९३	भ्रुवयो स्ननयो कट्या	१५३३
भूपालदर्शने तो स्त	१२७	भ्रुवा सा कञ्चिता प्रोक्ता	४७८
भूमिघातादपि स्त्रीणाम्	६६२	भ्रूरेका ललितोक्षिप्ता	४७६
भूमिप्राप्त जानु नतम्	४१०	म	
भूमिश्लिष्टेर्यदा पादै	१४७९	मन्त्रेण मुदेशस्थ	३६

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
नकर दक्षपार्वस्थम (हमक०)	—	मत्तल्लि च नितम्ब च	१४१४
मकराग्या तना ज्ञेया	७१०	मत्तल्लि चार्धमत्तल्लि	११२२
मङ्गल्य दविदूर्वादि	१०८	मत्तल्लिरर्धमत्तल्लि	१४६९
मणिवन्धप्रकोष्ठाम-	७९०	मत्तल्ल्ययो गण्डमूचि	१४१५
मणिवन्धप्रदेशस्य	१४५	मत्तक्रीडमन्था विद्युत्	१३४३
मणिवन्धममायुक्तौ	२९१	मत्स्यभ्रहासक्तचित्त	१५९३
मणिवन्धावविभ्रान्ति	७१५	मदिरा मा मदे धीरै	४७२
मणिवन्धावविप्रोक्ता	७४९	मदनप्रभुकोपतापिताया	१४९१ फु०
मणिवन्धावविभ्रान्तौ	७३२	मदस्वलितमत्तल्लि	१३६६
मणिवन्धासिकर्षाख्यम्	७५८	मधुर मविलाम च	१५१९
मणिवन्धासिकर्षाख्यम्	७८९	मध्यचक्राभिधा चारी	१०८३
मणिवन्धस्थितौ स्याताम्	२६३	मध्यप्रमारिताडगुण्ठौ	३१०
मणिवन्धे यदैकस्य	८१८	मध्यभावेन मध्यस्थम्	६१९
मणिवन्धो जानुनी च	४२५	मध्यस्थापनकुट्टेति	११०३
मण्डलभ्रमण प्रान्ते	१६६८	मध्यमाङ्गुण्ठयोर्यत्र	४१
मण्डलस्वस्तिक त्वाद्यम्	१४१३	मध्यमाया स्थिता पृष्ठे	१३३
मण्डलस्वस्तिक लीनम्	१११९	मध्यमे सात्विके प्रोक्त	३२१
मण्डलस्वस्तिकमिदम्	११४९	मध्यसाम्ये कटिस्थो द्वौ	१८७
मण्डलस्वस्तिका यैत्वा	८३७	मध्यस्थ तारक सौम्यम्	५०१
मण्डलाकारसंप्राप्तौ	८४९	मध्यस्थ स्याद् विचारे तु	५१
मण्डलाकृतिसभ्रान्तौ	८२०	मध्यस्थापनिकुट्टा च	१०८५
मण्डलाग्र तत पश्चात्	७५९	मध्यस्य बलनाच्छिन्ना	३८१
मण्डलान्यन्तरिक्षाणि	१४२८	मध्ये गते स्वस्तिकोऽमौ	१६
मण्डिका सा तदा प्रोक्ता	१५९७	मध्ये निवेशित पश्चात्	११०७
मञ्जुलैरुज्ज्वलैर्वेषै	६७५	मध्ये निवेशितश्चाथ	११०३
मता नमनिका धीरै	१५४९	मध्ये मध्यप्रदेशस्थ.	४८
मतान्तरे कामिना सा	२३८	मनावकलितयोरुर्वम्	२६६
मत्तक्रीडोऽथ गणना	१३५०	मनाक् पार्श्वनतावेतौ	८७

नृत्याध्याय

श्लोकाध	श्लोक संख्या	श्लोकाध	श्लोक संख्या
मनाक् मुल्लिन तिर्यक्	१५०८	मिथोऽभिमुखता प्राप्य	८११
मनाक् म्रस्तपुटा वृष्टि	४७१	मिथोऽभिमुखता यातौ	२६१
मनाक्म्रस्तोर्व्वं पुटा	४४२	मिथोयुक्तो वियुक्तो च	५०१
मनागञ्चितपक्षमाग्रा	४५३	मिथो लग्नकनिष्ठौ च	९२२
मनागभ्यन्तराविष्टा	४३३	मिलिते प्रोचिरे लक्ष्य-	९७६
मनागाकुञ्चितप्रान्ना	८८२	मुकुल हस्तमारभ्य (ह्रसक०)	-
मनागुन्प्लत्य चेतपादो	९८७	मुक्तादीना गुणक्षेपे	१७३
मनागवक्रीकृतो नम्र	३८४	मुखदेशगतावेनो	१४८
मनाड मनोहर केचित्	१५२९	मुखदेशस्थित पाने	१४८
मनोवाक्कायचेष्टाभि	१४९६	मुखदेशस्थिनोऽयैक	१३९
मनोहर यदग्राम्यम्	१५३४	मुखदेशाद् विनिर्गच्छन्	१५७
मन्थस्याकर्षणे योज्य	७७	मुखदेशस्थिन प्रचने	१०
मयणप्यहृकोवताविनाए	१४९१	मुखदेशे तु पाङ्ग्वंम्य	११८
मयापि विदितागसम्	१८९८	मुखप्रदेशमागच्छन्	१११
मयूरललित सूची	११३०	मुखरागश्चतुर्वोक्त	५८१
मयूराच्च तत पश्चात्	१३७७	मुखरागो नियुक्तोऽसौ	५८५
मयैवमेने सप्रोक्ता	७०४	मुखसकोचने त्वेप	१८२
मदिताग्रमथाग्र तु	२२	मुखस्थिनो भवेदेष	३०
मदिताङ्गुष्टक कार्य	२	मुखस्यातिविकाशेन	६१७
मस्तकाच्चेदभ्रमत्यूर्ध्वम	११९	मुखाद् यो निर्गतो दीघ-	५२६
मातृकोत्करसम्पाद्यम्	१३४३	मुखाग्रसश्रितौ कार्यौ	१२९
माधुर्यैर्धैर्यागम्भीर्य-	४३७	मुखान्तरित एप स्यात्	११६
माने भवेत्तृतीयस्तु	३८३	मुख्या पादक्रिया चास्याम्	९८०
मायासङ्गमभङ्गभीरु-	१५०६	मुग्धा स्निग्धा यदा दृष्टिम्	१५५८
माराधितोऽपि नहि	१५१०	मुदिनेनापि मनसा	६७५
मिथ ङ्लिग्टास्तु सागुष्टा	५९८	मुवा विनार्थे सिहे	२०८
मिथ समुखता प्राप्नौ	२८२	मुनिस्तु यानि चत्वारि	८६८
मिथोमवीक्षावाह्य तन	७८५	मुडुपोपपदाश्चार्य	१०८१
मिथोमवीक्षावाह्याख्यम्	७५७	मुष्टिक स्वस्तिकावेवम्	२९७

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
मृष्टिपूर्वकनिष्ठे तु	४४	यत्र चित्रकृत कान्तम्	१५०७
मुद्गरन्तर्बहि क्षेपान्	३८७	यत्र तत्कृवदेगम्य	११४०
मुद्गुर्दशनमग्लेष-	५५५	यत्र तत् स्थानमादिष्टम्	९०१
मुद्गुर्लग्नपुटा या तु	५१४	यत्र तन्नुनिभि कान्तम्	१८३९
मुद्गुर्मुद्गरय द्रव्य-	१८८	यत्र निर्गु पताकाग्नम्	१५८३
मुद्गुर्मुद्गु मनिपात्य	१५८७	यत्र चैनाग्निमस्थाना	२०
मुद्गुर्मुद्गु ममृत्लडध्य	१५४८	यत्र तृत्रेऽनयोर्योग	१५८१
मुष्टिविलुठितस्त्वेक	७९७	यत्र पक्षो समानीयौ	१५८९
मूर्च्छातिवर्षयोरुष्ण-	४८७	यत्र पात्र कालहीनम्	१४९५
मूर्च्छिनादिष्वपि प्राय	३०६	यत्र पात्र द्रुत गात्रम्	१५०९
मूर्च्छिने तन्द्रिते भीते	२२८	यत्र पात्र मुखे कुर्यात्	१५६८
मूर्च्छिते तु विलीनोऽय	५२९	यत्र पादो भवेदग्र-	९७९
मूर्ध्व देगोपरिकरौ	७९५	यत्र पार्श्वमुखो पूर्वम्	८२३
मूलाग्रपार्श्वसश्लेपात्	२१८	यत्र पाण्ड्या निजे पाण्ड्ये	१०१३
मृगप्लुता तदा चारी	१००२	यत्र वक्रानामिका स्यात्	३८
मृदङ्गप्रमुखैर्वाद्यै	१११८	यत्र विद्धाभिवा चारी	११५१
• मृदुभङ्गा तु यैका भू	८३८	यत्र नन्नापलग्नान्ता	८५०
मृगकर्णविनिर्देशे	०	यत्र मा दण्डपादाग्या	१०८१
मृगशीर्षौ ह्रमपक्षा	२५३	यत्र साधारणमद	८१६
मेघपक्तौ यथा त्रिद्युत्	१५७०	यत्र मा स्यात्तिरश्चीन	११०८
मेघप्रच्छादिते तस्मिन्	२८६	यत्र मौक्ता तदा चारी	१०५०
मोक्षण ग्लण क्षेप	६०६	यत्र स्तस्तन् तदादिष्टम्	८०
मोक्षणे तोमरस्यासौ	१०	यत्र स्पृशेन्मुद्गु सोक्ता	१०८३
मोट्टायिते कूटमिते	८७८	यत्र स्वकाश्यामिम्बम्	१००९
मोतविमर्जतगर्व-	००५	यत्राकुञ्चितपादाभ्याम्	१०४७
य		यत्राङ्गना खण्डितास्ते	१४९२
यत पादस्तत पाणि	१०२३	यत्राङ्गना गीनताल-	१५३३
यत्कृचादौ कामिनीनाम्	१९०	यत्राङ्गना परित्यक्त-	१८९७
यत्तन्नत श्रमालम्य	९४८	यत्राङ्गुल्या कनीयस्था	९८१

नृत्याध्याय

श्लोकार्ध

यत्राङ्घ्रि कृट्टित पूर्वम्
यत्राङ्घ्रिमेकमुद्धृत्य
यत्राङ्घ्रिहृद्घृतो मूर्ति
यत्राङ्घ्रि नूपुरस्थाने
यत्राङ्घ्रि रेचितो सा स्यात्
यत्रान्यचरणे नैषा
यत्रान्यजानन् पृष्ठे
यत्रान्याङ्घ्रि समुद्धृत्य
यत्रासौ कथिता चारी
यत्रासौ पञ्चमो भेद
यत्रासौ परिवृत्ताद्य
यत्रेपद वलित गात्रम्
यत्रैतत् समपादाग्यम्
यत्रोभयो प्रवान्त्वम्
यत्रोरभकसत्राध-
यत्रोरुस्ताड्यते चारी
यत्रोर्वावोम्बा नियक
यत्रोर्वावोमुपग्रन्थम्
यत्राद्वृत्तेन पादेन
यत्रोर्व्या पातयेत्पाण्थी
यत्रोर्वी कृट्टयेत्तेन
यथाभिनेय स्थान हि
यथा मन्दानिलायातात्
यथारस यथाभावम्
यथालक्षमविनिष्पन्न-
यथामभवमेतस्मिन्
यथोचित बुधैर्योज्य
यथोचित्य योजनाय
यथोल्लुकसितेनेष्टम्

श्लोक संख्या

११०४
९१५
१०७८
९२२
१०३२
१०८७
१०६७
१०१५
१०७२
१५७८
१४०५
९१६
८९०
१०२२
८१७
१०३७
८३३
७८०
१०५२
१०१९
१०५५
९०७
१५५८
१८९
६०८
७९
१५
१८३
६१७

श्लोकार्ध

यथौचित्य हस्तकाद्यै
यन्मनागायत वक्त्रम्
[यदा] कन्दर्पतप्तागी
यदा कर्गे कर्कटाभ्यौ
यदा कलाकलापज्ञै
यदाग्रे पृष्ठतश्चैव
यदाङ्घ्रि कृट्टित पाश्र्वान्
यदा तदा मनाऽन्वर्था-
यदा तत्रमुखा ह्मनौ
यदा [त्व] मन्दमुल्लोल-
यदा ननोन्ननो म्याताम्
यदा निकृञ्चिवत् स्कन्ध-
यदा नृत्यति हमाद्य
यदा नृत्येङ्गानाङ्गानाम्
यदा पनाको मञ्जिल्लो-
यदापमरनोऽमा म्यान्
यदा प्रनारयेद् दण्ड-
यदा मण्डलतो ह्मनौ
यदा यत्र तदा मदिभ
यदा यत्र तदा म म्यात्
यदा यद्वा म्वस्तिका नौ
यदा यदामौ खट्कामुख
यदा याभिमुखीभूय
यद्वक्ष सोष्ठवोपेतम्
यदा वामोऽव्यधिक स्यात्
यदा समस्य वामाङ्घ्रौ
यदा म्याता तदा प्राप्तौ
यदा स्याता तदा प्रोक्ता
यदा हस्तौ कपोताभौ

श्लोक संख्या

६९९
५७९
१४९०
९१७
१५४१
१६०९
११०२
२७४
७४५
१५४३
२७४
११५०
१६१७
१५६३
२५१
९९६
१००९
८५३
१०८९
१९९
२३६
७३
३६८
३२८
१४८२
९३९
२९६
७३५
२१४

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाधे	श्लोक संख्या	श्लोकाधे	श्लोक संख्या
यदि द्रुत तदालाता	१०६९	या दृश्यमापिवन्तीव	४३१
यदीक्षण स्वभावस्थम्	५०६	या दृष्टि कुञ्चिता सोक्ता	४५८
यदुन्नत पुर स्तम्भम्	३२९	या नर्तने ऽडिःघ्नजडघोर-	९५०
यदूर्ध्व दर्शन सद्भि	५०७	या यस्य नियता लीला	६८६
यदैको हसपक्षस्तु	३००	यावन्न निर्गतो रडगात्	६८६
यद्येष पृष्ठ एव स्यात्	१०७९	या विभ्रान्ति क्वचिन्नैति	४६६
यद्यप्यस्ति तथाप्येते	१४१६	यावुन्नता कपोलो तो	५२६
यद्गतागतविभ्रान्ति	४३२	या पडभिरविक्रामीपाम्	१३७९
यद्वाक्य तद् द्वि[मू]डाख्यम्	१५००	या स्थितिल्लिता भूमो	१५५५
यद्वा द्वादशभिर्यत्र	१५५६	या म्रस्तोर्वपुटा सास्त्रा	४३४
यद्वानयोर्मिलित्वाम्	२५१	युक्त चित्ररमेवैक्यम्	१५११
यद्वापगच्छतो यत्र	१०५८	युक्नोऽन्वथाऽद्भुते वीरे	५८३
यद्वा हारो हरस्यायम्	१३४३	युगपच्चेत्सूची पादौ	९३१
यन्निम्न शिथिले वक्ष	३३०	युगपत् क्रमतो यद्वा	७९२
यन्निष्कम्पमृजूत्क्षिप्तम्	३३२	युगपत् क्रमतो वा स्यात्	७२८
य पादोऽमावग्रतल-	३५०	युगपत्लुठतो यत्र	७८१
यवादिताडने दण्डे	५८	ये करास्त्वान्तर भावम्	३२६
यष्टिग्रहे किमर्थे च	४७	येनाभिव्यज्यते चित्त-	३२६
यस्मिन् प्रवतत तस्यात्	८१८	ये यक्षा राक्षसा दैत्या	५७०
यस्या सपः चापगति	९८४	ये वक्ष स्वस्तिककटी	१३८८
यस्या निकुटित पाद	१०९४	योगे स्तोके निर्वने च	१७६
यस्याभितस्तत पादो	१०३८	योग्यताया च कर्तव्य	१५५
या कायमायतीकृत्य	९१९	योडगोपाडगकरप्रचारकरणै	१११६
या कुञ्चितपुटातीव	४३३	याजनीयो यथोचित्यम्	१०६
या ग्रीवा विधुत भान्ता	३६९	याज्य करणमेकैकम्	१४१८
याग्रे प्रमारिता जडघा	८०९	योत्कृष्टमारुता नासा-	५१२
या जिह्वा लीढमृक्का सा	५५०	या दवात्युन्नतावोष्ट-	५४०
या जिह्वा लेढि दन्तोष्ठम्	५४८	योद्वग्ना दृश्यमालोक्य	४४७
या त्वन्तर्बहिरडगुष्ठ-	१४२५	योऽधरो दशनैर्दष्ट	५३९
			४६९

नृत्याध्याय

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
यो तापया क्षान पीत	५२३	रमभावेष्ु तान्याहु	५०९
यो निश्वाप प्रबद्ध मन्	५२२	रपाभिव्यक्तिहेतुत्वान्	५८०
या निष्क्रान्तोऽतिदु खेन	५२५	गक्षमेऽवोम्ब कार्यं	१८७
यो भवेच्चरणान्त्वम्	८८३	रुद्रा क्रूग स्तवधतारा	८३५
या भवेन्निक्रिय स्तव	३९८	रसाया च निमिन्नेऽपि	१०६
यो भवेन्निक्रिय सन्	३८७	रेचक विदधाते च	२६२
यो मध्यगतया पाष्ण्या	३९८	रेचकाश्चतुरोऽवोचन्	१४२६
याऽर्धचन्द्राकृतिधर	१८२	रेचकाद्य निकुट्ट च	१३७८
योऽल्लसल्लग्नपथमाग्रा	४५७	रेचकाद्य निकुट्ट च	१३९९
योषिता स्वैरगमने	३९६	रेचकैरुद्गहारश्च	६६८
यो ता चला शोकचिन्ता	५२०	रेचित वृष्टिचकाद्य च	१३८२
र		रेचिता क्रियत पाष्ण्या	१०२९
रङ्ग प्रविश्य यै स्थित्वा	८६३	रेचितोऽवनिकुट्टश्च	१३४३
रङ्गावतरणारम्भे	९०३	रेचितोऽन्वर्थलक्ष्मा स्यात्	५४३
रङ्गावतरणारम्भे	९०६	रेचितौ पूर्ववत् यत्र	७७६
रङ्गो पुष्पाञ्जलिक्षेपे	११४१	रोष परित्यज्य भजस्व	१५१०
रचयित्वा चतुर्दिक्षु-	१३७०	रोषेऽर्थाजनिते जल्पे	८९८
रचयच्छातुरा योगान्	१३८१	ल	
रचयेत् शिञ्चतु पञ्च-	१३८६	लक्ष्माण्यशोकमल्लेन	१५१७
रचयेद् हस्तक पात्रम्	१५५३	लक्ष्यते शिक्षिताद् योऽनि	१५२२
रच्येत रेचिता यत्र	७२३	लग्नाग्रा सहता ऊर्वा	१८८
रञ्जने मविलासोऽपि	५३६	लग्नाग्रे तु यदाङ्गुष्ठ	१६९
रथचक्रकृतो तियक	८४४	लग्नान्तर्जानु यज्जानु	४१२
रथचक्रा तलोद्भृता	९६१	लज्जानुलापयोऽस्य	११४३
रमणीयमिद यत्र	८३४	लक्ष्यन्ते लक्ष्मविदुषाम्	११३७
रमात्र देवता तत्स्यात्	९०३	लताद्य वृश्चिक चाथ	१३९०
रम्यवर्णनिवद्ध यत्	१५०२	लतावेष्टितकाख्य च	७६६
रवेर्भवेदुपस्थाने	३७७	लनावृश्चिकवेसाख-	११२
रसभावसमाकीर्ण-	५८८	लब्धो जयिवनवामरै	१५०८

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्थ	श्लोक संख्या	श्लोकार्थ	श्लोक संख्या
लघाटप्राप्तिमर्यादम्	२८७	वक्रधेः प्रसार्य स्व-	१०१६
ललित दण्डपाद च	११८	वक्ष उद्वाहित सोकना	९८९
ललित स्यात्कचावस्नात्	१५३८	वक्षम स्कन्वयोरुर्वम्	३०४
ललिता यत्र गात्रस्य	१५४५	वक्षस्याभिमुखो हस्तो	११४४
लाभ्याङ्गानि सचारीणी	१५८०	वक्ष स्वस्तिकमिच्छन्ति	१३८३
लीन ममनश्च कृत्वा	१३८३	वक्ष स्वस्तिकमुक्त्वा तत्	११८३
लीलया ललिता इमन्तो	७३५	वक्षोऽग्रस्य पुरोवक्र	३१६
लीलयावस्थिता मद्भि	९८८	वक्षोदेशात्प्रयोक्तव्य	७५
लीलादावपि हेलायाम्	४७७	वञ्चयन्तीव चेल्लोकम्	१५५०
लीलावतमयुतया	१५२१	वदनान्तप्रवेगेन	५३८
लुठत्येककणे तिर्यक्	७६८	वदान्य खटकावक्रम्	३१३
लुठत्येककरा तिर्यक्	८८१	वरवर्वाविवाहार्थम्	२२९
लुठत्येतत् समादिष्टम्	८१०	वर्जिताभिनयैर्विक्रयै	१४९२
लुठन मण्डलाकारम्	७६९	वर्तना चतुरस्राख्या	७४७
लुठिनोऽन्य करा यत्र	८८५	वर्तनाद्या पताकाख्या	७०९
लेखप्रवाचनेऽभामा	१३७	वर्तना स्वस्तिक कृत्वा	८१७
लेहन जिह्वया नेह	५६०	वर्तना स्वस्तिकाख्य च	७५५
लाकयुक्त्यनुसारेण	९८	वर्तना स्वस्तिकाख्यान्या	७४१
लाकयुक्त्यनुसारेण	१८८	वर्तनास्वस्तिकीभृय	८१९
लोकयुक्त्यनुसारेण	२०९	वर्तनास्वस्तिको पार्श्व-	७९४
लोके प्रमिद्धा मा पाञ्च-	१००४	वर्तने गुक्तुण्डाख्यो	७०९
लोको वेदस्तथाव्यात्मम्	१२०८	वर्तितञ्चोरुपृष्ठे सा	७१८
लोडित स्यात् तदाख्यातम्	७६७	वर्तित सालपद्माख्या	७१६
लोडितो तदनङ्गाङ्ग-	८५३	वर्तितार्वावर्देगे चेत्	७२२
लोडितौ यत्र तन् प्रोक्तम्	८५५	वर्तितो दण्डपक्षो चेत्	७३०
लोलतारकनेत्राभ्याम्	६६८	वर्तितो नावि सम्प्रोक्तौ	६०
लोलित शकटास्य च	८५३	वर्तितौ स्वोक्तरीत्यैव	७३६
व		वर्तितौ यत्र तत्रामौ	७२५
वशादिजलयत्रे स्यात्	५७	वर्तले मथनेऽप्येषा	३६९

४७१

नृत्याध्याय

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
वत्यञ्जनगलाकादि	१७३	वामेन पितृकार्येऽर्थे	४०८
त्रय्यमानागग्निपु	१८१९	वामोऽङ्घ्रि स्वन्दितोऽथ स्यात्	१८५०
गगन चेत् तदा प्रोक्तम्	७८२	वामोऽङ्घ्रिनोऽप्यन्वयिक	१८७१
बलित पृष्ठत पाद	१०१०	वामोऽथ दण्डपादस्तु	१४६१
बलिताभिवहम्नो चेत्	७३७	वामोऽन्ततोऽथ चरण	१४६०
वाञ्छया वा महीपस्य	१५५५	वामो लताकरो यत्र	९०२
वादने कोटलादीनाम	५२	वामो व्योम्नि निषण्णोरु	८९७
वायप्रबन्धवर्णानाम्	१५५३	वामोऽवगण्ठनाद् भानुम्	६४६
वानरे मृगवेगस्थौ	१३१	वाहने वेगदाने च	८९३
वाम कर कटौ व्यस्य	१५८२	विकाशिना चला दृष्टि	४७०
वाम कर पताकाग्यम्	१५७०	विकाशिना मनोजन्म	४६१
वाम क्रमादतिक्रान्त	१४५८	विकाशिनी ममा दृष्टि	४४८
वामतश्चेदर्धम्वि-	१३५२	विकामिरेचितोदवृत्त-	५३५
वामतो गमन कृत्वा	६०६	विक्रुते घोषवाग्मन्वे	१२०
वामदक्षनिरञ्चीनम्	७५७	विक्षिप्ताक्षिप्तके चाथ	१४०२
वामदक्षतिरञ्चीनम्	७८३	विक्षिप्ताञ्चितके दण्ड-	१३९५
वामदक्षिणतो यत् भ्यान्	७६९	विक्षिप्ताभ्या पताकाभ्याम्	६७६
वामदक्षिणयोस्तर्णम्	१०३१	विक्षिप्तोद्भृत्तयोरेष	१३०१
वामदक्षिणपाञ्चात्य	८३७	विचित्र यत्र कान्तानाम्	१४९८
वामदक्षिणयो पञ्चात्	८३०	विचित्र ललित चेति	१८२७ फु
वामदक्षिणयोर्धर्म	७९३	विचित्रमण्डनैर्हपै	६८३
वामदक्षिणयोस्तिर्यक्	७८३	विचित्रवर्तनायोगात्	७२५
वाम समो निषण्णोरु	०७७	विचित्ररमसकरो जयति	१५१२
वाम स्याद् भ्रमरो यत्र	१४६१	विचित्रलास्यमेदज्ञा (हमवि०)	—
वामामक्षेत्रपर्यन्तम्	८४३	विचित्रान् रचयेद् भावान्	१५०५
वामाङ्गनिर्मितावाथ	१४३३	विचित्रानि रचयेद् भावान्	२१९
वामाङ्गरचित पञ्चात्	१३९६	विच्यतानामिकाङ्गुष्ठ-	१२२
वामाङ्गो भ्रमर चार्ध-	१३५५	विच्युतावथ नेत्रादि	१७८
वामाङ्गनिर्मिता बाह्य	१४४३	विच्युतोऽमो कामिनीभि	२४५

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
विच्युता स्वस्तिकावेता	३०६	विप्राय व्रसिन वामे	१३६४
विच्छिन्नमन्दरदिने	५१४	विधाय स्वस्तिको यत्र	७६७
विटकर्तृकमान्तादि-	१८६	विधायदावराला चेत्	३१४
विडालादिपदेषु	३७	विधायदौ पताका द्वौ	३०९
वितत्यन्तरितावद्घी	९२१	विधायधोमुखावेता	२०१
वितर्कित तथा ध्यानम्	६२८	विधायेक नितम्बाख्यम्	८२७
वितर्किता ततोऽयध-	४३०	विधायोत्तानितो हस्ता	६२५
वितर्कोऽपराधे च	१३७	विधायोद्वाहित शीर्षम्	६२९
विनर्के पेलवाम्या	१७६	विधुत तियगायामि	५७७
वितर्के नविवादानाम्	३१५	विधुनाकम्पिताधूत	१५
वितस्तिमात्र तत्स्थानम्	९२५	विनष्टे च तथामत्ये	२०७
वितालिताभिधा चैवम्	८८३	विना कृत स्वस्तिकेन	२५५
वितालितावत्तरेण	६९०	विनिष्क्रान्तो विसृष्ट स्यात्	५३६
विदध्याद् यत्र पात्र चेत्	१५६२	विनि सरति सव्येऽङ्घ्रा	११३९
विदध्याद्यदि सान्वर्था	१००७	विप्रकीर्णो केचिदाहु	३०६
विदध्याद् विचित्र्या यत्र	१५८८	विप्रलब्धाखण्डिताश्च	६८२
विद्युत्कलाम खड्गाद्य	१५६६	विभक्त छेदने चेत	१०१
विद्युद्भ्रान्त च करणम्	१३८४	विभाति विद्युदाद्यस्तु	१५७१
विद्युद्भ्रान्ता च विक्षेपा	९६७	विभ्रमे मा तथा वेगे	४६६
विद्वद्भिस्तत्समादिष्टम्	८५७	विभ्रान्ता विप्लुता वस्ता	४३०
विद्यत्ते सोत्सन्दिताख्या	९८२	विमुक्तक जानुगतम्	८७५
विधाय स्वस्तिकौ पश्चान्	८४३	दिमोहनविवर्तनै	१५०४
विधाय त्रिपताको चेत्	१६०५	वियुक्ता सहता वक्रा	५९२
विधाय त्रिपताकौ द्वौ	१५८४	वियोज्या रशनाया च	१४८
विधाय दक्षिण पाणिम्	११७४	विरलाङ्गुलिका कार्या	१९७
विधाय नूपुर यत्र	१३८९	विरलाङ्गुली पताका चेत	२४७
विधाय पार्श्वयोरन्त	७७५	विरूपितस्तथा जेया	६२४
विधाय मण्डिका पादा	१५९४	विलम्बेनाविलम्बेन	१५२८
विधाय मुकुल हस्तम्	१५९७	विलासस्यायथाकार-	९११
			६७३

नृत्थाध्याय

श्लोकाध	श्लोक संख्या	श्लोकाध	श्लोक संख्या
विलासित तलाद्य च	१३८४	विश्रुडगाटकवन्वाख्यम्	८०३
विलासेन चतुर्दिक्ष्	७९९	विष्कम्भ च तथा क्रान्तम्	८७१
विलामेनासपर्यन्तम्	८५६	विष्कम्भापमृतो मत्त	१३४३
विलोक्य च पुर पञ्चात्	१५८०	विपम वा तत स्थानात्	१६०६
विलोडन विधायथ	७८७	विपम वा यदा स्थित्वा	१६०७
विलोडितो यदा पञ्चान्	८५९	विपमस्या समुत्प्लुत्य	१६०२
विलोक्य च नटी कुर्यात्	१५७४	त्रिपमादि च खण्डाद्यम्	८७२
विलोड्यते यत्र कर	८०४	विपमाभिमुग्वान्याहृ	५०१
विलोड्य पार्श्वयो स्तोकम्	७७२	विपजन तथाह्वानम्	६०७
विलोड्य मण्डलाकारम्	७९५	विस्तारितपुटद्वन्द्वा	४४८
विलोमवचनेर्धीमान्	६६६	विस्तार्याडिघ्नी समुत्प्लुत्य	१०६८
विलोलतारका भीत्या	४४६	विस्तीर्णा च वृद्धे मोक्ता	४६६
विलोलाङ्गुलिकावेतो	३०४	विस्तीर्णो गगनेऽम्भोर्वि	२४५
विलोलोद्वृत्ततारा या	४३८	विस्फुलिङ्गान् धनरवान्	६५२
विर्वर्तता समुद्भ्रान्तो	१८८	विस्मृनावथ मायायाम्	८
विर्वर्तन थरहरम्	१५१५	विहसी तु यदा ज्ञेया	१५४७
विवृत त्वोष्ठविश्लेषे	५७६	विहाय प्रेक्षणाच्चापि	६६१
विर्वर्तित परावृत्तो	३३३	विहृतावज्ञया चैतत्	५७८
विर्वर्तितमतिक्रान्तम्	११२७	वीक्षणे वरमार्गस्य	९११
विर्वर्तताभिधमथ	३३३	वीटिकाच्छेदने भीना	५५४
विर्वर्तितो विसृष्टश्च	५३४	वीटिकाग्रहणे त्वेप	३८०
विवाहदशने म्याताम्	१०७	वीरमिहसुतेनोक्तम्	४६५
विष्णुक्रान्तमपक्रान्तम्	११३३	वीराख्यया तथा दृष्टया	६८८
विशतिव्यभिचारिण्य	४३०	वीरे रोद्रस्य निष्काम	४९९
विशेषे तु चलावेतो	२११	वृन्ध्या लक्षणया तेपाम्	४२५
विश्लिष्टवर्तित त्वाद्यम्	७५५	वृश्चिक वृश्चिकाद्ये च	११२५
विश्लिष्टवर्तितार्द्यैश्च	८४७	वृश्चिकाद्य कुट्टित च	१४००
विश्लिष्टे ते पराडमख्यौ	१०२	वृषभक्रीडित चाथ	१३७८
विश्रुडगाटकवन्वाख्यम्	७६०	वृषभासनमाख्यातम्	९४२

नृत्याध्याय

श्लोकार्ध

शिक्षरारया कपित्थारया
गिम्बिना रम्यवाणीभि
शिथिलो मणितन्त्रथा
शिथिला मेनिरे केचित्
शिर क्षेत्रे यदा प्राप्तौ
गिरसोद्वाहितारयेन
गिर स्थिता पताका द्वा
शिरोसकूर्पर तुल्यम्
शिरोदेशगतौ कार्यौ
शिरोदेशात् ब्रजधूर्ध्वम्
शिरोऽभिघातान् सन्वानै
शिरो ललाट श्रवणम्
शिरोवक्षो मस्तरयोऽयम्
शिरोद्वेषित एष स्यात्
शिशिरतौ वसन्ते च
शीघ्रमुत्पन्नरोमाञ्च
शीनाभिनयन वेप्रम्
शीनातर्भिनयेऽऽऽ
शीनाने पावित गत्ते
शीपदशे ऋष्टीदशे
शीपस्य कम्पनेनापि
शुक्रतुण्डाभिवां ह्रन्ता
शुक्रतुण्डेन हस्तत
शून्या च मलिना श्रान्ता
शृङ्गारससम्पन्न-
शृङ्गारभिनयेऽप्येवम
शेषास्त्रेताग्निस्थाना
शेषे तलस्थिते स्तोऽमा
शैध्र्यमामुख्यबहुला

श्लोक संख्या

श्लोकार्ध

७४३ शैवारयम्यानकेनापि
६४१ शाकहृच्छलयो शतितम्
७७५ शोभा द्विगुणता वत्ते
२७७ शोभातेजोविशेषादीन्
२७६ शोकमन्थरतारा सा
६२५ रलयपक्षमपुटा भूर्या
६२२ रिल्लटा पुरोऽथवाऽश्चात्
८८५ रिल्लटोरुजङ्घ जानूक्तम्
५९ श्रमम्लानपुटा सन्ना
३७४ श्रव्ये श्रवणयोगेन
६६२ श्राद्धकर्माणि योज्योऽयम्
६०५ श्रित कञ्चित्कलय वेगान्
२१३ श्रीमताशोकमल्लेन
११० श्रोत्रकण्डूयने दुष्ट-
६४० ष
६५७ षडङ्गल यदैतस्य
६३८ षडङ्गनिर्मताञ्चार्य
९५५ षड्भिस्तु करणैरेभि
३२५ षड्द्वारमथवा मप्त-
८२१ षोऽगति व्यस्रमाना
६५९ षोढेति रसना प्राह
२४९ स
६९० मगमादा वरस्त्रीणाम्
१०८ मग्नमधीर्धुयेण
१५२० मघट्टिनेत्रमृभा म्य
१८० मज्जया ज्ञातलक्ष्माणि
३४ सचक्षे कण तु सम्प्रति मुदे
८१ सचारिनात्कुञ्चिता-
१५२० मन्त्रस्तोत्रवपुटा दृष्टि

श्लोक संख्या

६६१
३२०
५८७
४३७
४३४
४५४
१०२६
८१६
४५२
७०२
१५६
१५८२
१०८८
९३
९२५
०६९
१३५१
१८८७
१३४३
८५५
७०
७०७
९६६
६०७
१११६
९६३
४५३

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
मप्राप्य कूर्परक्षेत्रम्	८१४	सक्रोवे वामहस्तेन	१७५
मप्रोक्ता ये न ते ज्ञेया	८०४	सन्वित्वे सयत् म म्यात्	१
सभाविते प्रकर्तव्या	१३२	सगि वत्तभमडग-	१८९१ फु
सभ्राम्योर्व्या क्षिपेद्यत्र	१०६५	सग्वि म्फुरनि यामिनो	१४०८
समुख रचयेद् विद्यन्	१५७३	सवेदववमीदानीम्	२१७
समुखीन रथडग तत्	७७६	सञ्चर लङ्गिताद्य स्यात्	१४१३
समुद्यतमुर सद्यम्	८८६	सञ्चदग्दललिन यत्	११५८
सयतम्वस्तिका स्याताम्	८२४	स तञ्जनिनमम्कार	८४४
सयुते वियुते यद्वा	९४२	सत्योवितस्तम्भमानेषु	३२९
सयुक्ते तु सहाये म्यात्	१०३	स त्रोटिताभिवा योज्य	३५३
सयुनो तां विवातव्यौ	१७	सत्वर भ्रामयेदन्त	१०७०
सयोगे त्वस्य तजन्या	८८	सन्तृष्णे चानुरक्तेऽपि	२५०
सलग्नाग्रा यदाङ्गुल्यो	२०	सदा तिष्ठन्ति सुप्रीता	८३५
सलग्नश्चेति पादयो	५०३	सद्भिर्भरेत् समादिष्टम्	८०४
सलापेऽध्ययने नत् स्यात्	५५५	सद्वितीय प्रयोक्तव्य	१३४
सवाहनेऽप्यथ स्याताम्	५२	सनिर्कर्ष द्विना यम्य	६१६
सगये दवदङ्गुल्यौ	११७	सनिमेपा च सा धीरै	४७०
सश्रित्य स्वस्तिके पाण्य	१०२०	सन्दष्टक ममदशाख्य	५३४
सश्लिष्टमणिवन्धौ च	१०१	सन्धानेऽपि च शस्त्राणान	८३९
सश्लिष्टो वाह्यपाश्वेन	८२६	सन्ध्याकाले प्रयक् म्याताम्	१९८
सश्लिष्य मणिवन्धा स्त	१६	सप्तभि करणरेभि	१३६१
सस्पशाच्चोष्णवातस्य	६६०	सप्तम तु कटीच्छिन्नम्	१४१०
सस्पशाद् ऋक्षवातस्य	६३७	स पादो घटिततोत्सेध	३५४
सहृत स्फुरित वक्त्रम्	५६६	स बाहुरञ्चिन खेदे	३७६
सहतस्थानकेनाङ्घ्री	१०३४	सभावैश्चेष्टितैर्देवा	६७२
सहर्षास्फोटनादा च	८९९	सभ्यातिमोहनीभाव-	१५३५
स ईप्यारोपयो स्त्रीणाम्	५३८	सम्भ्रन्तोदघटितास्य	१४००
स एव चेतपुरोदेशे	८८३	सभ्रक्षेपकटाक्षा सा	४३१
स कण्ठरेचक प्रोक्त	१४२४	सभ्रक्षेपेण नेत्रेण	६२१

नृथ्याध्याय

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
मम छिन्न खण्डन च	५५२	सर्वता भ्रमणात् कटघा	१४२८
सम नताकुञ्चिते च	८७६	सर्वतो भ्रमणाद् य स्यात्	३०८
सम निभृग्नमाभृग्नम्	३२७	सर्वत्रैवाङ्गहायेषु	१४१७
सम माच्यनवत्त च	५००	सर्वदिक् भ्रमणात्प्रोक्ता	३४३
समदष्टिर्नटी हस्तम्	१५७५	सर्वशीर्षां करो मध्यम्	२२७
समपाद ममाश्रित्य	१४७३	सर्वार्थग्रहण देव्यम्	६३१
समपादस्थानकेन	९७०	सर्वार्थग्रहणे योज्य	२०६
समपादस्थानहेतो	९७३	सर्वे चापगता पादा	१४८३
समपाद स्वमित्तक च	८७०	सर्विलाम यदा स्याताम्	७३६
समपादाङ्घ्रिता बद्धा	९५४	सर्विस्मिनोऽदभुते कार्य	५२७
सम पुररताद् यत्रेदम्	९२८	सर्वे त्वेकहस्तस्य	११०
समप्रकोष्ठचलनम्	८०७	सर्व्यादघ्ने पाष्णिदेशे चैत्	९८५
समप्रकोष्ठवलनम्	७६१	सर्व्यापसव्यतो नाभि	७२१
सममुक्ता मनाक् इत्थे	५५३	सर्व्यापसव्यतो भ्रान्ता	७४९
समताचि तदा सूची	१०१२	सर्व्यापसव्यतो मुष्टि	७५१
समवोचदिमा तिर्यक्	१०४०	सर्व्यापसव्यतो यत्र	७१५
सम सहजकार्येषु	५२८	सर्व्यापसव्यतो यत्र	८०८
समस्थितोऽङ्घ्रिकेकाऽन्य	८७९	सर्व्यापसव्यतो यत्र	१५८०
सम्पूर्णभ्रमणे प्राग्वत्	१४८०	सर्व्यापसव्यतो यत्र	१५९६
सम्प्रलापैस्तथा लीनाम्	६८०	सर्व्यापसव्ययोरारात्	१५८९
सम्प्राप्यारालता याति	११५	सर्व्यापसव्ययोर्नृत्यम्	१६०९
सम्भ्रान्त नामका धीरै	१३९६	सर्व्यासव्येतराङ्गाभ्याम्	१४०७
सम्भ्रान्ताभिवमप्यन्य	११३४	सर्वशब्दच्युतमन्दश	६६
सम्यवतया च शास्त्रार्थ-	२३२	सर्वशब्दच्युतसन्दश	४२
सरलप्रसृतस्याग्रे	८१३	सर्वसौष्ठवा सुलभमाण	३२२
सरलोत्सारितोद्वेष्ट	८२७	सर्वसौष्ठवै माभिमानै	६५०
सरलोऽसौ तथा पूर्वं	३८३	सर्वस्यादवीने	९
सारिका च लताक्षेप	९६५	सर्वज्ञा तु स्वभावस्था	४७५
स रोगे दुःखसयुक्ते	५२४	सर्वज्ञा रेचितोत्क्षिप्ता	४७५

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकार्ध	श्लोक संख्या	श्लोकार्ध	श्लोक संख्या
सहर्षात्पादकारम्भे	६३८	ममा महजभावेपु	५६३
महाक्षिप्ताख्यया चार्या	११५२	महर्षमत्रलोकनम्	१५१२
सहि बल्लह सगव	१४९१	माकेकरा दुर्निरीधये	४६५
स्थानान्यथ तथा सुप्त	८७८	साग्निवधूमे प्रयोक्तव्य	१२८
समासकूपरो वक्ष	२५६	सा तदा जनिता चारी	९८०
समाङ्घ्रे पुरत पश्चात्	९७४	सार्धं तु विच्यवा कृत्वा	११८८
समाचष्ट नृपाशोक-	१०६४	सा दृष्टि कथिता शून्या	८८५
समाञ्चिता कुञ्चिताख्य	३४४	सा दृष्टिर्मलिना प्रोक्ता	४५१
समादिष्टा तथा मव्य	१११४	सा दृष्टिर्मुकुलानन्दे	४५७
समावत्ताशाकमल्ल	९७३	सा दृष्टिर्ललिता धीरे	४६१
ममा नतोन्नता त्र्यस्रा	३६०	सा दृष्टि शडिकता प्रोक्ता	४५५
समार्धे नत्तनेऽङ्गानाम्	१५५५	साव्वादे व्वजेऽप्येषा	८३
समाश्रवासे गुणे चायम्	४	सारमान् केकिहसा च	६६८
समासाद्य मूद यत्र	१५३९	सालस्यगमनोपेता	१५८८
समुत्क्षिप्तान्यभागोऽसौ	३४९	सा वक्त्रान्त स्थ वीक्षणाम्	५५१
समुद्वृत्त समुन्नतम्	४९६	सा विवृता कटी वीरे	३४२
समद्वृतौ त्वधो गत्वा	७६	सास्मिता कुञ्चितप्रान्ता	४६१
समुन्नतकटिर्हस्त	९०२	सा हृष्टा दृष्टिरादिष्टा	४४२
ममे तूर्वतले स स्यात्	१३	सिते वर्णे तूर्वगतो	५
समोत्सरितमत्तल्ली	९५६	सिहविक्रीडित सिह-	११३१
समोत्सरितमत्तल्ली	९९५	सिहाकषितक नाम	१३८२
समोत्सरितमत्तल्ली	१४७६	सीत्कृत चेति स प्रोक्त	५१८
समोत्सरितमत्यर्धम्	१४२७	सीवृपाने मुखस्थ स्यात्	५९
समोत्सरितमेतत् स्यात्	१४७५	सीमन्ताभिनये योज्य	२५५
समोत्सरितमावर्तम्	१४२९	सुख गन्व रस वायुम्	६४५
समो भ्रान्त कम्पितश्च	५१७	सुखित सुखितेष्वेव	६४३
समो यत्र तदाचष्टा	९१३	सुखे कमगत कार्य	२१०
समौ क्षामौ कम्पिता च	५६१	सुधाबिभ्रमतमाश्रित्य	६९५
समौ विवर्तितौ स्याताम्	४८२	सुप्यते यत्र तत् प्रोक्तम्	९४६
			४७९

नस्थाध्याय

श्लोकार्ध

सुभ्रुवो यत्र नेत्रान्तो
सुरते स्वस्तिकाकारा
सुवीजनैर्भूमितापै
सुव्यक्तलक्षणा कार्या
मूचीपादोऽयवा स्वीय
सूत्रधारादिनेत्याहु
सूक्ष्मेरसकृदुत्सासै
मूच्याडिघ्रर्दक्षिणो वाम
सूच्यडिघ्रर्दक्षिणो वाम
मूच्यडिघ्रर्भ्रमरश्चाथ
सूची कूर्वन् कूर्परस्तु
सूची प्रावृतमत्लाल
सूची भ्रमरको वाथ—
सूची वामोऽप्यपक्रान्त
सूचीविद्धमलात् च
सूचीविद्ध वार्धविद्धम्
सूची स्याद् दक्षिण पाद
सूची स्यादथ वामोऽडिध्र
सूची स्याद् भ्रमरश्चान्य
सेवायामपि योज्योऽसौ
सोक्ता त्रिकोणचारीति
मोडगहारोऽडगहारज्ञै
मोद्वान्हा कटी लोला
मोऽपविद्धा गदाखड्ग—
सोरूद्वृत्ता तदाचारी
मान्दर्यभ्रमम्पन्न
सोधान्त पुरयारेप
साभाग्यादिसमुद्भूते
सौम्यानि यानि वस्तूनि

श्लोक सरूया

१५४४ माभ्यापाडगविकासाढया
१७ सोष्ठवस्य पुरोक्तम्य
६३९ साठवेन तदा वीरै
३२३ सोष्ठवेन तदा सोक्ता
०१२ स्कन्वस्थौ मर्पशीषा चेत्
८८२ स्वनित्त परिवृत्त च
१५३८ स्नलितेऽगी स्वलद्वावाम
१७३८ स्नलितोऽडिघ्रयत्र तिर्यक्
१७५३ स्ननप्रदेशविश्रुत
१७५५ स्तब्धस्तत कम्पितश्च
३८२ स्नब्धादवृत्तपुटादृष्टि
९६८ स्तम्भक्रीटनिका निर्यक्
१७७० स्तम्भितश्च तथोच्छ्वाम—
१४४२ स्तवकेपु समाकुञ्च्य
१७२७ स्तोकम्पन्दाऽलमा या भ्रू
१४०७ फु स्तोकोन्मीलिततागस्या
१७३५ स्त्रीभिरेवेति तद् योज्यम्
१४४५ स्त्रीणा व्रीणि स्युरेतानि
१४५९ स्थानक चतुरस्र चेत्
२१८ स्थानक सावित तम्य
११०६ स्थानक वेणव त्वेनत्
१३४३ स्थानक वाणव यत्र
३७० स्थानकानामतश्चिन्त्यम्
३८१ स्थानकत्वेऽपि चागीत्वम्
९९१ स्थानादिन्यामभेदेन
१५२५ स्थानकेन त्रिनिदध्य
१०९ स्थानचागीकराणा यत्
११५१ स्थाने कूर्मामने जानु—
६४८ स्थाने तु कुट्टित सा स्यात्

श्लोक सरूया

८७०
१५५६
७४५
७३७
००८
११३०
९१४
१०५६
२५
३९७
८४८
९६३
५१८
८४
८८०
४६३
९०६
८६७
१०२६
८६४
८८८
८८९
९७२
०८१
३१८
६९३
१५४१
९७
११०४

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाध	श्लोक संख्या	श्लोकार्थ	श्लोक संख्या
स्थाने सा मध्यचक्रेति	१००१	स्फुरिताग्रे मृतो वेगात्	१०४०
स्थाने मिद्रे नत पञ्चान्	८९१	स्फुरिता या पुटो म्बवो	८६७
स्थापित कुट्टित स्थाने	१०००	भ्रमरमद्भ्रमरगमिनो	१५०३
स्थितपाठ्यमथामीतम	१८८७	स्मिततारा साभिलाप-	४४१
स्थित सा र्षिका चारी	९८६	स्मितकृतिविशानाग	४४२
स्थितातुर पुरस्ताच्चेत्	२७६	स्मृतां सभादनाया च	१७७
स्थितेऽन्यतोऽङ्गुलीमवे	१८०	स्यन्दनस्ये विमानस्ये	८९१
स्थिता स्थितस्वभावेन	३८६	स्यात् स्वस्तिक त्रिकोण च	७६५
स्थित्वा चेद् वर्धमानेन	१००१	स्याता प्रत्र तदा तत् स्यात्	८०१
स्थित्वा दिगन्तराम्यम्नु	१८०१	स्यादन्वर्थ रिक्तपूर्णम्	३९०
स्थित्वा पादतलाग्रेण	३५०	स्यादपम्पन्दिता चारी	९९३
स्थित्वाटघ्नीपार्ष्णिविद्वेन	१०५८	स्यादेकाटिघ्नप्रचारो य	९५२
स्थित्वा विषममृच्याम्य	१०६०	स्याद्वेचकनिकृटाख्यम्	११३४
स्थित्वा शीर्षोपरि कगे	८५५	स्याल्लतावञ्चिक पूर्वम्	१८१४
स्थित्वैरुपादस्थानेन	१०३७	चरोपमपि मापणम्	१५१२
स्थिर म्बभावाभिन्ने	३८६	स्रस्त्रस्त्रन्त् सुप्तम्	९४८
स्थिरहस्तोऽय पर्यन्त	१३८३	स्रस्त्रापाट्गा म्बयताग	४५६
स्थलादरेऽप्यमावेव	२००	स्रस्त्रेऽङ्गोऽस्त्रद्वदक्षि-	६५२
स्निग्धा हृष्टा नैथा दीना	८०७	स्रुवा ममृणतोपार	१५१६
स्नेहविच्छेदत कान्ते	८६५	स्व स्व पाठ्वे गते यत्र	८७६
स्पन्दित शकटास्य स्यात्	१८८०	स्वच्छ प्रमन्न श्रुद्गारे	५८२
स्पन्दितोऽप्यय वाम स्यात्	१४७०	स्वाठ्वे कुट्टित पूर्वम्	१००२
स्पृशतो वाह्यपाठ्वीभ्याम	१०४५	स्वपाठ्वे जनमने स्यात्	१६१
स्पृशेत् स्फिज यदि जन	१०१७	स्वपाठ्वे दोलिनोऽश्रासा	५६
स्पृशेद् दक्षिणहस्तेन	१५७८	स्वपाठ्वे वक्षसो जातौ	२८४
स्पृशद् यदि तदा सद्भि	९४१	स्वभावजा यावुच्छ्वास-	५१९
स्पृश्यमद्भगादियोगेन	७०२	स्वभावस्य सम प्रोक्तम्	३२८
स्फुटयन्त्यो रसादीन् या	४७४	स्वभानाल्ललित चारी	१५५१
स्फुरित कम्पनादुक्तम्	५७२	स्वल्पे कुञ्जे कुमार्या च	६

नृत्याध्याय

श्लोकार्ध

स्वसमवतत् पाश्व
स्वस्तिक वरण पूर्वम्
स्वस्तिक कर्कट मुष्टि
स्वस्तिक केचिदत्राहु
स्वस्तिक स्वस्तिकाख्यर्थ
स्वस्तिकाकाग्योर्यत्र
स्वस्तिकाकृतयोर्गड द्य
स्वस्तिकाकृतिता नीत्वा
स्वस्तिकाकृतिभागाडिध
स्वस्तिकाद्विच्युत पूर्व
स्वस्तिकायोमुखा रात्रौ
स्वस्तिकावथ कनत्यो
स्वस्तिकापसृत केचित
स्वस्तिकीकृतयो पाण्यो
स्वस्तिकीभय चेद्रस्तो
स्वस्तिकीभूय तौ स्तोऽथ
स्वस्तिकेन विना चाडिध
स्वस्तिको मण्डलगति
स्वस्तिका ना प्रयोक्तव्या
स्वस्तिका यगपद्यत्र
स्वस्थाननिगत मन्त्रम्
स्वस्थाने स्थापितपदा
स्वस्था चला वियुक्तञ्च
स्वस्त्रचेष्टाममुद्भूते
स्वस्वपाशगतौ प्रोक्ता
स्वाटगावलोकने स्त्रीणाम्
स्वादुभक्ष्ये चैवमन्ये
स्वाभाविक यत्र गात्रम्
स्वाभाविक मम जानु
स्वाभाविक प्रमत्तञ्च
स्वाभाविकी मर्मावता सा
स्वाभाविकी स्वभावस्था

श्लोक संख्या

६०३
१३९३
१५९५
२४१
११२०
८८३
१०७१
८१७
१०८८
१११३
२८६
१९
१०८
८०५
७८१
१९
९७५
३७०
१८
११४८
८८६
११०८
५१६
७०६
७४७
९११
५५०
९२३
४१८
५८१
३६१
५१०

श्लोकार्ध

स्वाभाविको यदा वाम
स्वेदापनयनेऽज्ञान-
ह
हमपलावरो देशे
हमपक्षा स्वस्तिकाच्चेत्
हमाम्य म कर प्रोक्त
हमम्याभिवहस्तेन
हमीवामा तृतीयोऽयम् (हमक०)
हृग्णीत्रामिता चारो
हस्तस्य त्रिपताकस्य
हस्त हमास्यमावाय (हमक०)
हस्तयोस्तन् ममास्यातम्
हस्तावन्नस्य युगपत्
हस्तेन करिहस्तेन
हस्तौ विलुठिता यत्र
हस्तो विवाय हमास्यौ
हस्तो गिरस्तथा दृष्टिम्
हृदयक्षेत्रग कार्य
हृदयस्थोऽथ पाश्वर्वाच्चेत्
हृदयस्यो निराळम्बे
हृदि मुष्टिकरोऽयम् -
हृदि सन्दशहस्तेन
हृद्यगन्वे च सन्दिग्धे
हृद्वर्वावोमुख स स्यात्
हनु विभ्रदसौ पृष्ठे
हारादिवन्धने चैपा
हामे घ्राणे विस्मये च
हास्यवीभत्सयोर्वीरै
हास्या दृष्टिरसावुक्ता
हिरण्यकशिपोर्वक्ष
हेमन्तर्तुविनिर्देय
हेलाभावालस यत्र

श्लोक संख्या

३१९
०४
२५७
७२३
२१
६८९
—
१०३५
१३३
—
६९४
८६८
१६१०
६६०
२७५
१६०
१९
०७९
६७८
५७३
२८
२०३
३६२
६०९
८९८
८३३
२७९
६३८
१५३०



पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका सक्षिप्त सकेत

अ० हा०	जगहार	भू० चा०	भूमिचारी
अ० ह०	अमयुतहस्त	भू० म०	भूमिमण्डल
जा० चा०	आकाशचारी	म० व०	मणिद्रव्य
आ० म०	जाकाशमण्डल	मा० ल्पा०	मार्गलाभ्यांग
उ० क०	उत्प्लुतिकरण	मु० द०	मुखदर्शन
क० क०	करकर्म	मु० रा०	मुग्गग
कला०	कलास	मु० चा०	मुडुपचारी
ख० क०	खड्गकलास	मृ० क०	मृगकशस
च० गु०	चरणागुलि	र० दृ०	रमदृष्टि
ता० क०	ताराकर्म	वि० न०	त्रिचित्राभिनय
त्र्य० अ०	त्र्यस्रमान मे जगहार		
द० क०	दन्तकर्म	वि० क०	वित्रत्वलास
दे० आ०	देशी आकाशचारी	व्य० दृ०	व्यभिचारी दृष्टि
दे० भू०	देशी भूमिचारी	स० दृ०	पवाग दृष्टि
दे० ला०	देशी लास्थान	स० ह०	मयुतहस्त
दे० म्भा०	देशी स्थानक	मु० स्था०	मुप्तस्थानक
नृ० क०	नृत्तकरण	स्त्री० स्था०	स्त्रीस्थानक
नृ० ह०	नृत्तहस्त	स्था० दृ०	स्थायिभाव दृष्टि
पा० त०	पादतल		
पु० स्था०	पुष्पस्थानक	ह० क०	हमकशस
प्र० भू०	प्रत्यगभूषण	ह० क०	हस्तकरण
प्ल० क०	प्लवकलास	ह० क्षे०	हस्तक्षेत्र
फु०	फुटनोट	ह० प्र०	हस्तप्रचार
भ० म०	भरतमत	ह० वि०	हस्तविन्यास
भा० भा०	भावानुभाव	ह० म०	हनूमत्मत
भा० न०	भावाभिनय		

नृस्याध्याय

शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत	शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत
अगहार	(दे० ला०)	अवोगत	(पा० त०)
अगानग	(दे० ला०)	अवोगत	(ह्र० प्र०)
अगुलिमगता	(पार्ष्णि)	अवोमुख	(बाहु)
अघिताडिता	(दे० जा०)	अवोमुख	(ह्र० प्र०)
अमपर्यायिनिर्गत	(चालन)	अध्यर्ष	(भू० म०)
असवर्तनिक	(चालन)	अव्यविका	(भू० चा०)
अग्रग	(ह्र० प्र०)	अनगागमोटन	(चालन)
अग्रग	(पाद)	अनगोदोपन	(चालन)
अग्रतल	(ह्र० प्र०)	अनिल	(वायु)
अग्रतलसचर	(पाद)	अनिष्ट	(भा० न०)
अञ्चित	(पाद)	अनुलोमविलोमा	(मु० चा०)
अञ्चित	(बाहु)	अनुवृत्त	(मु० द०)
अञ्चित	(उ० क०)	अन्तरालग	(उ० क०)
अञ्चित	(करण)	अन्तर्यता	(पार्ष्णि)
अञ्चितता	(ग्रीवा)	अन्तर्यात	(गुल्फ)
अञ्जलि	(स० ह०)	अपक्रान्त	(करण)
अङ्ङलिनिता	(दे० भू०)	अपक्रान्ता	(आ० चा०)
अङ्ङित	(भू० म०)	अपकुञ्चिता	(दे० भू०)
अङ्ङिता	(भू० चा०)	अपक्षेपा	(द० आ०)
अतिक्रान्त	(आ० म०)	अपराजित	(चा० अ०)
अतिक्रान्त	(करण)	अपविद्ध	(बाहु)
अतिव्रान्त	(आ० म०)	अपविद्ध	(चालन)
अतिक्रान्ता	(आ० चा०)	अपविद्ध	(करण)
अत्यर्ष	(भू० म०)	अपविद्ध	(त्र्य० अ०)
अद्भुता	(र० दृ०)	अपसर्पित	(च० गु०)
अघ	(ह्र० क्षे०)	अपसृत	(पार्श्व)
अघ क्षिप्ता	(च० गु०)	अपमृत	(करण)
अघर	(अवर)	अपस्पन्दिता	(भू० चा०)
अघस्तल	(ह्र० प्र०)	अभितप्ता	(स० दृ०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत	शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत
अभिनय	(रे० ग्रा०)	जात्राकित	(मु० द०)
अराल	(अ० ह०)	अवहित्थ	(म० ह०)
अरालखटकामुख	(नृ० ह०)	अवहित्थ	(स्त्री० म्था०)
अरालवर्तना	(वर्तना)	अवहित्थ	(क० ग०)
अर्गल	(करण)	जवहित्थवतना	(वर्तना)
अर्वकुञ्चित	(जानु)	जरवक्रान्त	(स्त्री० म्था०)
अर्वचन्द्र	(अ० ह०)	आटवन्वविहार	(चा० न)
अर्धनिकुट्ट	(करण)	जमयुत हस्त	(ज० ह०)
अर्धनिकुट्टक	(करण)	आ	
अर्वपुराटिका	(दे० भू०)	जाकागचागी	(आ० चा०)
अर्वमण्डलवतना	(वर्तना)	आकागमगडल	(फु० नो०)
अर्वमण्डलिका	(दे० भू०)	आकुञ्चित	(म० ग०)
जवमत्तल्लि	(करण)	आकुञ्चित	(मु० ग्था०)
अर्वमुकुला	(स० ह०)	आकृष्टि	(क० क०)
अर्वरेचित	(न० ह०)	आफेकरा	(म० द०)
अर्वरेचित	(करण)	आक्षिप्त	(करण)
अर्वमूचि	(करण)	आक्षिप्त	(च० अ०)
अर्वम्बस्तिक	(करण)	आक्षिप्तरेचित	(करण)
अलग	(उ० क०)	जाक्षिप्तरेचित	(त्र० अ०)
जलग्गाञ्चिन	(उ० क०)	जाक्षिप्ता	(आ० चा०)
जलाग	(करण)	नाचलुरित	(च० अ०)
जलात	(त्र० अ०)	आदिकूर्मावतार	(करण)
अलात	(आ० म०)	आन्दोलित	(वाह्)
जलातचक्र	(चालन)	आभुग्न	(वक्ष)
अलपद्म	(नृ० ह०)	आयत	(अवर)
अलपद्मवनना	(वतना)	आयत	(स्त्री० म्था०)
जलपल्लव	(ज० ह०)	आलात	(आ० म०)
अलाता	(दे० आ०)	आठीढ	(प्र० म्था०)
अलाता	(आ० चा०)	आलीढ	(च० अ०)

नृत्याध्याय

शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत	शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत
आलाकित	(मु० द०)	उत्ता	(त० ह०)
आवर्त	(करण)	उत्सन्दिता	(भू० चा०)
आवर्त	(भू० म०)	उत्सारित	(बाहु)
आवर्तिता	(जघा)	उदर	(उदर)
आविद्ध	(बाहु)	उद्घट्टित	(पाद)
आविद्धवक्र	(नृ० ह०)	उद्घट्टित	(करण)
आविद्धवर्तना	(वर्तना)	उद्घट्टित	(त्र्य० अ०)
आविद्धा	(आ० च०)	उद्वर्तित	(उर)
आवेष्टित	(ह० क०)	उद्वर्हि	(मुख)
आसीन	(मा० ला०)	उद्वर्हित	(वक्ष)
आस्कन्दित	(भू० म०)	उद्वर्हित	(मु० स्था०)
आह्वान	(क० क०)	उद्वर्हिता	(कटि)
इ		उद्वर्हिता	(जघा)
इन्द्रियाभिनय	(इन्द्रिय)	उद्वृत्त	(नृ० ह०)
इष्ट	(भा० भा०)	उद्वृत्त	(अघर)
उ		उद्वृत्त	(करण)
उक्तप्रत्युक्त	(मा० ला०)	उद्वृत्त	(त्र्य० अ०)
उच्छ्वास	(अनिल)	उद्वृत्ता	(आ० चा०)
उत्कट	(उ० स्था०)	उद्वृत्ताग्र	(पा० त०)
उत्कर्षिता	(दे० भू०)	उद्वेष्टन	(दे० आ०)
उत्कृष्ट	(क० क०)	उद्वेष्टित	(बाहु)
उत्क्षिप्ता	(भ्रू)	उद्वेष्टित	(क० क०)
उत्क्षिप्ता	(पार्ष्णि)	उन्नत	(पार्श्व)
उत्क्षिप्ता	(च० गु०)	उन्नत	(जान)
उत्क्षेप	(दे० आ०)	उन्नता	(ग्रीवा)
उत्तमोत्तम	(मा० ला०)	उन्नता	(रमना)
उन्नान	(ह० पु०)	उन्नत	(करण)
उन्नानवञ्चित	(नृ० ह०)	उन्मेषित	(पलक)
उत्प्लुतिकरण	(उ० क०)	उपविष्ट स्थानक	(भ० म०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत	शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत
उपार	(दे० ला०)	ऋ	
उर	(ह० क्षे०)	ऋज्वी	(रसना)
उर पार्श्वधिमण्डल	(नृ० ह०)	ए	
उरभ्रसम्वाध	(चालन)	एकजानुनत	(दे० स्था०)
उरस्थ वर्तना	(वर्तना)	एकपदकुट्टिता	(मु० चा०)
उरुद्वय	(ह० दो०)	एकपाद	(दे० स्था०)
उरुद्वृत्ता	(भू० चा०)	एकपादलोहडी	(उ० क०)
उरौकण	(दे० ला०)	एकपादाञ्चित	(उ० क०)
उरोगमण्डल	(नृ० ह०)	एकपार्श्वगत	(दे० स्था०)
उरोगमण्डल	(करण)	एकलाक्रीडित	(भू० म०)
उल्लाल	(दे० आ०)	एणप्लत	(उ० क०)
उल्लास	(दे० ला०)	एलकाक्रीडित	(भू० चा०)
उल्लासित	(अनिल)	एलकाक्रीडित	(भू० चा०)
उल्लोकित	(मु० द०)	क	
उत्वण	(नृ० ह०)	कक्षवर्तनिका	(वर्तना)
उरुताडित	(दे० भू०)	कटि	(कटि)
• उरुवेणी	(दे० भ०)	कटिच्छिन्न	(करण)
ऊ		कटिभ्रान्त	(करण)
ऊरुद्वृत्त	(करण)	कटिशीर्ष	(ह० क्षे०)
ऊर्णनाभ	(अ० ह०)	कटिसम	(करण)
ऊर्ध्व	(ह० क्षे०)	कटीरेचक	(रेचक)
ऊर्ध्वग	(ह० प्र०)	कण्ठरेचक	(रेचक)
ऊर्ध्वजानु	(आ० चा०)	कपाल चूणन	(उ० क०)
ऊर्ध्वजानु	(करण)	कपित्थ	(अ० ह०)
ऊर्ध्वमण्डल	(नृ० ह०)	कपित्थ वर्तना	(वर्तना)
ऊर्ध्वमुख	(ह० प्र०)	कपोत	(स० ह०)
ऊर्ध्ववर्तना	(वर्तना)	कपोल	(कपोल)
ऊर्ध्वस्थ	(बाहु)	कम्पित	(उरु)
ऊर्ध्वालग	(उ० क०)	कम्पित	(अनिल)

नृत्याध्याय

शब्द	संक्षिप्त सकेत	शब्द	संक्षिप्त सकेत
कम्पित	(अधर)	कुञ्चित	(जानु)
कम्पित	(कपोल)	कुञ्चित	(पलक)
कम्पिता	(जघा)	कुञ्चित	(कपोल)
कम्पिता	(कटि)	कुञ्चित	(करण)
करकर्म	(क० क०)	कुञ्चित	(भ्रू)
करण	(करण)	कुञ्चिता	(श्रीवा)
कररेचितरत्न	(चालन)	कुञ्चिता	(स० दृ०)
करस्पर्श	(उ० क०)	कुञ्चिता	(च० गु०)
करांगुलि	(क० गु०)	कुट्टन	(द० क०)
करिहस्त	(नृ० ह०)	कुण्डलिचारक	(चालन)
कग्रिहस्त	(करण)	कुलीरिका	(दे० भू०)
करिहस्ता	(दे० भू०)	क्रुद्धा	(स्था० दृ०)
करुणा	(र० ह०)	कूर्मालग	(उ० क०)
कर्कट	(स० ह०)	कूर्मासन	(दे० स्था०)
कर्णयुग्मप्रकीर्ण	(चालन)	केयवन्ध	(नृ० ह०)
कर्तरीमुख	(अ० ह०)	केयवन्धवर्तना	(वर्तना)
कर्तरीमुख वर्तना	(वर्तना)	कोर्मालका	(दे० ला०)
कर्तरी लोहडी	(उ० क०)	क्रमपादनिकुट्टिका	(मु० चा०)
कर्तर्याञ्चित	(उ० क०)	क्रान्त	(उ० स्था०)
कलविकविनोद	(चालन)	क्रान्त	(करण)
काङ्गूल	(अ० ह०)	क्रान्त	(आ० म०)
कातरा	(दे० भू०)	क्रोध	(भा० भा०)
क्रान्त	(आ० म०)	क्लिष्ठागुष्ठ	(गुल्फ)
क्रान्ता	(र० ह०)	धाम	(उदर)
किन्तु	(दे० ला०)	धाम	(पृष्ठ)
कुञ्चन्मध्य	(पा० त०)	धाम	(कपोल)
कुञ्चन्मूला	(क० म०)	क्षिप्ता	(जघा)
कुञ्चित	(पाद)	क्षेत्राञ्चित	(उ० क०)
कुञ्चित	(बाहु)	क्षेप	(क० क०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	सहित सकेत	शब्द	सहित सकेत
ख		घ	
खटकामुख	(अ० ह०)	घट्टित	(पाद)
खटकामुखवर्तना	(वर्तना)	घट्टितोत्सेव	(पाद)
खटकावर्धन	(ह० ह०)	घातवर्तना	(वर्तना)
खड्गवर्तना	(वतना)	घूर्णित	(करण)
खड्गकलास	(ख० क०)	च	
खण्डन	(द० क०)	चक्रकुट्टनिका	(मु० चा०)
खण्डमूचि	(दे० स्था०)	चक्रमण्डल	(करण)
खल्ल	(उदर)	चतुर	(अ० ह०)
खत्तल	(पृष्ठ)	चतुर	(करण)
खुत्ता	(दे० भू०)	चतुरन्त्र	(दे० स्था०)
ग		चतुरम्त्र	(नृ० ह०)
गगावतरण	(करण)	चतुरस्त्र अगहार	(च० अ०)
गजक्रीडिनक	(करण)	चतुरस्राख्यवर्तना	(वर्तना)
गजदन्त	(स० ह०)	चतुरा	(भ्र)
गण्डमूचि	(करण)	चतुर्थ	(ख० क०)
गतागत	(स्त्री० स्था०)	चतुर्थ	(वि० क०)
गतिमण्डल	(अ० अ०)	चतुर्थ	(व० क०)
गन्धाभिनय	(ह० भि०)	चतुर्थ	(प्ल० क०)
गरुडपक्षक	(नृ० ह०)	चतुर्मखलोहडी	(उ० क०)
गरुडप्लुत	(करण)	चतुष्कोणनिकुट्टिता	(मु० चा०)
गात्रवर्तना	(वर्तना)	चतुष्पत्राब्ज	(चालन)
गारुड	(दे० स्था०)	चरणगुलि	(च० गु०)
गीतवाद्यना	(दे० ला०)	चल	(म० व०)
गुल्फ	(गुल्फ)	चल	(अनिल)
गृध्रावलीनक	(करण)	चलन	(ता० क०)
ग्रहण	(द० क०)	चलमहत	(चिबुक)
ग्रीवा	(ग्रीवा)	चलित	(चिबुक)
ग्लाना	(स० दृ०)	चालका	(ह० स०)

नृत्याध्याय

शब्द	संज्ञित सकेत	शब्द	संज्ञित सकेत
चालि	(दे० ला०)	दिलार्ई	(द० ला०)
चालिवट	(दे० ला०)	त	
चाणगत	(भू० म०)	तर्जन	(क० क०)
चाषगति	(भू० चा०)	तलदर्शिनी	(दे० भू०)
चित्रपद	(मा० ला०)	तलपुष्पपुट	(करण)
चिबुक	(चिबुक)	तलमुख	(तू० ह०)
चक्कित	(द० क०)	तलमुखवर्तना	(वर्तना)
छ		तलविलासित	(करण)
छिन्न	(इ० क०)	तलमघटित	(करण)
छिन्न	(करण)	तलमस्फोटित	(करण)
छिन्ना	(कटि)	तलोद्भृता	(दे० भू०)
छेद	(क० क०)	तार्क्ष्यपक्षविनोद	(चालन)
छेवा	(दे० ला०)	ताडन	(क० क०)
ज		ताम्रचूड	(अ० ह०)
जघा	(जघा)	ताराकर्म	(ता० क०)
जघालघनिका	(दे० आ०)	तिरश्चीना	(जघा)
जघावर्ता	(दे० आ०)	तिर्यक्	(बाहृ)
जनित	(करण)	तिर्यक्करण	(उ० क०)
जनिता	(म० चा०)	तिर्यक्कुञ्चितता	(दे० भू०)
जलशयन	(उ० क०)	तिर्यक्ताण्डव	(चालन)
जानु	(जानु)	तिर्यक्स्वस्निक	(उ० क०)
जानुगत	(उ० स्या०)	तिर्यग्गाञ्चित	(उ० क०)
जिह्वा	(स० दृ०)	तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्र	(चालन)
जुगुप्सिता	(स्या० दृ०)	तिर्यङ्मखा	(दे० भू०)
ड		तिरश्चीन	(पा० त०)
डमरी	(दे० आ०)	तिरश्चीनकुट्टिता	(मु० चा०)
डमरुकुट्टिता	(मु० च०)	तूक	(दे० ला०)
ट		तृतीय	(वि० क०)
ढाल	(दे० ला०)	तृतीय	(ख० क०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	संक्षिप्त संकेत	शब्द	संक्षिप्त संकेत
तृतीय	(व० क०)	दण्डवर्तना	(वर्तना)
तृतीय	(प्ल० क०)	दन्तकर्म	(द० क०)
तृतीय	(हृ० क०)	दर्पशरण	(उ० क०)
तोरणचालक	(चालन)	दष्ट	(द० क०)
तोलन	(क० क०)	दिवस्त्रस्तिक	(करण)
त्र्यम्भ अगहार	(अ० हा०)	दिवस्त्राभिवाचालन	(चालन)
त्र्यम्भा	(श्रीवा)	दीना	(म्या० दृ०)
त्र्यम्भा	(स० द०)	दुख	(भा० भा०)
त्रिकलि	(दे० ला०)	दृप्ता	(स्था० दृ०)
त्रिकोणचारी	(मू० चा०)	देवोपहारक	(चालन)
त्रिकोणस्वस्तिक	(चालन)	देशी आकाशचारी	(दे० आ०)
त्रिकूट	(मा० ला०)	देशीकर	(दे० ला०)
त्रिपताक	(अ० ह०)	देशी भौमचारी	(दे० भो०)
त्रिपातकवर्तना	(वर्तना)	देशी लाम्यौग	(दे० ला०)
त्रिभगीवर्णसार	(चालन)	देशी स्थानक	(दे० स्था०)
त्रोटित	(पाद)	दोल	(म० ह०)
थ		दोल	(चालन)
थग्रहर	(दे० ला०)	डोलापाद	(करण)
थासक	(दे० ला०)	डोलापादा	(आ० चा०)
द		द्विगूढ	(मा० ला०)
दण्डपक्ष	(नू० ह०)	द्वितीय	(हृ० क०)
दण्डपक्ष	(करण)	द्वितीय	(प्ल० क०)
दण्डपाद	(आ० स०)	द्वितीय	(ख० क०)
दण्डपाद	(करण)	द्वितीय	(वि० क०)
दण्डपाद	(आ० म०)	द्वितीय	(व० क०)
दण्डपादा	(दे० आ०)	ध	
दण्डपादा	(आ० चा०)	धनु राकर्षण	(चालन)
दण्डपादाञ्चित	(उ० क०)	धनुर्पल्लविनाक	(चालन)
दण्डरेचित	(करण)	धूनन	(क० क०)

नृत्याध्याय

शब्द	संज्ञित सकेत शब्द	संज्ञित सकेत
न	निर्भुग्न	(वक्ष)
नत	(पार्श्व) निर्वानित	(उर)
नत	(जानु) निवृत्ता	(गीवा)
नत	(सु० स्था०) निवेश	(करण)
नत पृष्ठक	(उ० क०) निगुम्भित	(करण)
नता	(ग्रीवा) निश्वाम	(अनिल)
नता	(जघा) निषव	(स० ह०)
नता	(नासा) निष्कर्षण	(द० क०)
नन्द्यावर्त	(दे० स्था०) निष्क्राम	(ता० क०)
नमनिका	(दे० ला०) नि सृता	(जघा)
नम्र	(बाहु) नीकी	(दे० ला०)
नलिनी पद्मकोश	(नृ० ह०) निराश्रित	(चालन)
नवरत्नमुख	(चालन) नृपुर	(करण)
नागबन्ध	(दे० स्था०) नूपुरपादिका	(आ० च०)
नागबन्ध	(उ० क०) नूपुरविद्धिका	(दे० भू०)
नागापसर्पित	(करण) नृत्त हस्त	(नृ० ह०)
नाभि	(हृ० क्षे०) प	
नामा	(नासा) पचम	(वि० क०)
निकुट्टक	(दे० भू०) पक्ष प्रद्योतक	(नृ० ह०)
निकुट्टक	(करण) पताकवर्तना	(वर्तना)
निकुञ्च	(म० व०) पतिता	(भ्रू)
निकुञ्चित	(करण) पतिता	(पार्ष्णि)
निग्रह	(क० क०) पतिता	(क० गु०)
निजापन	(दे० ला०) पतिताग्र	(पा० त०)
नितम्ब	(नृ० ह०) पतिनोत्थिता	(पार्ष्णि)
नितम्ब	(करण) पदद्वयनिकुट्टा	(मु० चा०)
नितम्ब वर्तना	(वर्तना) पद्मकोश	(अ० ह०)
निमेषित	(पलक) पद्मवर्तना	(वर्तना)
निरस्त	(अनिल) पराङ्मुख	(ह० प्र०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत	शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत
परावृत्त	(दे० स्था०)	पार्श्वक्रान्त	(आ० चा०)
परावृत्त	(त्र्य० अ०)	पार्श्वक्रान्ति	(म्० चा०)
परावृत्ततला	(दे० भू०)	पार्श्वग	(पाद)
परावृत्ता	(जघा)	पार्श्वगत	(ह० प्र०)
परिग्रह	(क० क०)	पार्श्वच्छेद	(च० अ०)
परिच्छिन्न	(च० अ०)	पार्श्वजान्	(करण)
परिवर्तित	(क० क०)	पार्श्वद्वय	(ह० क्षे०)
परिवर्तिना	(जघा)	पार्श्वद्वयचारी	(मु० चा०)
परिवृत्त	(करण)	पार्श्वतल	(ह० प्र०)
परिवृत्तरेचित	(त्र्य० अ०)	पार्श्वनिकुट्टक	(करण)
पर्यस्तक	(च० अ०)	पार्श्वमण्डल	(नृ० ह०)
पर्यायगजदन्तक	(चालन)	पार्श्वमुख	(ह० प्र०)
पत्तलव	(नृ० ह०)	पार्श्वस्वस्तिक	(च० अ०)
पल्लववर्तना	(वर्तना)	पिष्टकुट्टक	(भू० म०)
पञ्चात्पुर मरा	(मु० चा०)	पिष्टनिकुट्टक	(भू० म०)
पाणिरेचक	(मु० चा०)	पिहित	(पलक)
पात	(पा० रे०)	पुट	(पुट)
पाद	(ता० क०)	पुर	(ह० क्षे०)
पादनल	(पाद)	पुरक्षेपनिकुट्टिता	(मु० चा०)
पादरेचक	(पा० त०)	पुरक्षेपा	(दे० आ०)
पादस्थितनिकुट्टिता	(पा० रे०)	पुग् पञ्चात्सरा	(मु० चा०)
पादापविद्वक	(मु० चा०)	पुरस्तलुठिता	(मु० चा०)
पार्ष्णिग	(करण)	पुराटिका	(दे० भू०)
पार्ष्णिगार्श्वग	(पाद)	पुरुषस्थानक	(पु० स्था०)
पार्ष्णिगरेचिता	(दे० स्था०)	पुरोदण्डभ्रमाख्य	(चालन)
पार्ष्णिगविद्ध	(दे० भू०)	पुष्पपुटवर्तना	(वर्तना)
पाश्व	(दे० स्था०)	पुष्पमण्डिका	(मा० ला०)
पार्श्वक्रान्त	(पश्व)	पुष्पमुख	(स० ह०)
	(करण)	पूर्ण	(उदर)

नृत्याध्याय

शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत	शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत
पूण	(गृठ)	प्र३३	(गृक)
पुर्ण	(कपोल)	प्रसृत	(जनिल)
पृष्ठ	(पृष्ठ)	प्रसृता	(क० गु०)
पृष्ठलुठित	(मु० चा०)	प्रावृत	(दे० आ०)
पृष्ठस्वस्तिक	(करण)	प्रेडखोलित	(करण)
पृष्ठानुसारी	(बाहु)	प्रोन्नत	(स्त्री० म्था०)
पृष्ठोत्क्षेप	(दे० आ०)	प्लवकलास	(प्ल० क०)
पृष्ठोत्तानतल	(दे० स्था०)	फ	
प्रकम्पित	(वक्ष)	फुल्ल	(कपोल)
प्रच्छेदक	(मा० ला०)	ब	
प्रतिवर्तना	(वर्तना)	बककलाम	(ब० क०)
प्राकृत	(ता० क०)	वद्धा	(भू० चा०)
प्रत्यकभूषण	(प्र० भू०)	वलित वर्तना	(वतना)
प्रत्यालीढ	(प्र० स्था०)	बलिवन्वाञ्चित	(उ० क०)
प्रथम	(वि० क०)	वह्निर्गत	(गुल्फ)
प्रथम	(ख० क०)	वह्निर्गता	(जघा)
प्रथम	(ब० क०)	बाहु	(बाहु)
प्रथम	(प्ल० क०)	बाहुबन्धलोहडी	(उ० क०)
प्रथम	(ह० क०)	ब्राह्मण	(दे० स्था०)
प्रतिलोमानुलोमका	(मु० चा०)	भ	
प्रविलोकित	(मु० द०)	भय	(भ० भा०)
प्रवृद्ध	(जनिल)	भयानका	(र० दृ०)
प्रवेशन	(ता० क०)	भयान्विता	(स्था० दृ०)
प्रसन्न	(मु० रा०)	भाल वतना	(वर्तना)
प्रसारित	(पार्श्व)	भाव	(दे० ला०)
प्रसारित	(बाहु)	भावाभिनय	(भा० न०)
प्रसारित	(स० स्था०)	भुग्न	(मुख)
प्रसारिता	(च० गु०)	भुजगत्रामिन	(करण)
प्रसपित	(करण)	भुजगत्रासिता	(आ० चा०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत	शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत
भुजगत्रस्तरेच्चित	(करण)	मत्तल्लि	(करण)
भुजगाञ्चित	(करण)	मत्तल्ली	(भू० चा०)
भूमिलभन	(पा० त०)	मत्तस्खलित	(त्र्य० अ०)
भेद	(ता० क०)	मत्स्यकरण	(उ० क०)
भैरवाञ्चित	(उ० क०)	मदविलासित	(च० अ०)
भामचारी	(भू० चा०)	मदस्खलितक	(करण)
भाममण्डल	(भू० म०)	मदालस	(उ० स्था०)
भ्रमण	(ता० क०)	मदालसा	(दे० भू०)
भ्रमर	(अ० ह०)	मदिरा	(स० दू०)
भ्रमर	(भू० म०)	मध्य	(भा० भि०)
भ्रमर	(करण)	मध्यचक्रा	(मु० चा०)
भ्रमर	(च० अ०)	मध्यलुठिता	(मु० चा०)
भ्रमित	(म० ब०)	मध्यस्थापनकुट्टा	(मु० चा०)
भ्रान्त	(अनिल)	मन	(दे० ला०)
भ्रान्तपादाञ्चित	(उ० क०)	मन्दा	(नासा)
भ्रामरी	(आ० चा०)	मयूरललित	(करण)
भ्रुकुटी	(भ्रू)	मराला	(दे० भू०)
म		मरदान्दोलित	(अनिल)
मकर	(स० ह०)	मर्दित	(पाद)
मकर वर्तना	(वर्तेना)	मलिन	(स० दू०)
मणिबन्ध	(म० ब०)	मसृणता	(दे० ला०)
मणिबन्धगतगत	(चालन)	मार्गलास्य	(मा० ला०)
मणिबन्धासिकर्षाख्य	(चालन)	मिथोसवीक्षावाह्य	(चालन)
मण्डल	(प्र० स्था०)	मिथोयुक्त	(गुल्फ)
मण्डलगति	(बाहु)	मिथोयुक्ता	(पाण्णै)
मण्डलस्वस्तिक	(करण)	मुकुल	(अ० ह०)
मण्डलाग्र	(चालन)	मुकुला	(म० दू०)
मण्डलाभरण	(चालन)	मुक्तजानु	(उ० स्था०)
मत्तक्रीड	(च० अ०)	मुख	(मुख)

नृत्याध्याय

शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत	शब्द	सङ्क्षिप्त सकेत
मुखदर्शन	(मु० द०)	रेचित वर्तना	(वर्तना)
मुखरस	(दे० ला०)	रेचिता	(भ्रू)
मुखराग	(मु० रा०)	रेचिता	(कटि)
मुडुपचारी	(मु० चा०)	रेचिता	(ग्रीवा)
मुरजकर्तरी	(चालन)	रेचितनिकट्टक	(करण)
मुरजाडम्बर	(चालन)	रोद्री	(र० दृ०)
मुष्टि	(अ० ह०)	ल	
मुष्टिक स्वस्तिक	(नृ० ह०)	लकादाहाञ्चित	(उ० क०)
मुष्टिवर्तना	(मु० व०)	लघित	(दे० ला०)
मृगकलास	(मृ० क०)	लघितजघा	(दे० भू०)
मृगप्लुता	(आ० चा०)	लज्जिता	(स० दृ०)
मोक्षण	(क० क०)	लताकर	(नृ० ह०)
मोटन	(क० क०)	लताक्षेप	(दे० भू०)
मोटित	(स्त्री० स्था०)	लतावृश्चिक	(करण)
मौलिरैचितक	(चालन)	लनावेष्टित	(चाल)
र		लय	(दे० ला०)
रक्त	(मु० रा०)	ललाट	(ह० क्षे०)
रक्षण	(क० क०)	ललाटतिलक	(करण)
रथचक्रा	(दे० भू०)	ललित	(नृ० ह०)
रथनेमिसम	(चालन)	ललित	(करण)
रस दृष्टि	(र० दृ०)	ललित	(आ० म०)
रसना	(रसना)	ललितवर्तना	(वर्तना)
रसाभिनय	(इ० भि०)	ललिनमचर	(आ० म०)
रिक्तपूर्ण	(पृ०)	ललिता	(स० दृ०)
रिक्तपूर्ण	(उदर)	लहरीचक्रमुन्दर	(चालन)
रूपाभिनय	(इ० भि०)	लीन	(करण)
रेचित	(नृ० ह०)	लेडि	(दे० ला०)
रेचित	(अघर)	लोहनी	(रसना)
रेचित	(अ० अ०)	लोल	(चिबुक)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	सञ्चित सकेत	शब्द	सञ्चित सकेत
लोला	(रमना)	विकूणिता	(नासा)
लोलित	(करण)	विकृष्टि	(क० क०)
लोहडी	(उ० क०)	विकृष्टा	(नासा)
लोहडयाञ्चित	(उ० क०)	विकोशा	(म० दृ०)
व		विक्षिप्त	(करण)
वक्र	(चिबुक)	विक्षिप्ताक्षिप्तक	(करण)
वक्रकृट्टिना	(म० चा०)	विक्षेपा	(दे० आ०)
वक्रा	(क० गु०)	विचित्र	(आ० म०)
वक्रा	(रमना)	विचित्रगोहडी	(उ० क०)
वक्ष	(वक्ष)	विच्यवा	(भू० चा०)
वक्ष स्वस्तिक	(करण)	वितड	(दे० ला०)
वर्तनाभरण	(चालन)	वितर्किता	(स० दृ०)
वर्तनास्वस्तिक	(चालन)	वितालित	(पलक)
वर्तित	(करण)	विद्युत्कलाम	(वि० क०)
वर्धमान	(म० ह०)	विद्युद्भ्रान्तक्रिय	(करण)
वर्धमान	(दे० स्था०)	विद्युद्भ्रान्ता	(चा० ल०)
वलन	(ता० क०)	विद्युद्भ्रान्ता	(आ० चा०)
वञ्जित	(नृ० ह०)	विद्युद्भ्रान्ता	(दे० आ०)
वलित	(उरु)	विद्धा	(दे० आ०)
वलित	(स्त्री० स्था०)	विद्युत्	(मुख)
वलितोरु	(करण)	विनिगूहित	(अवर)
वटिलत	(करण)	विनिवर्तित	(स्त्री० स्था०)
वलित्ता	(ग्रीवा)	विनिवृत्त	(करण)
वलित्ता	(क० गु०)	विनिवृत्त	(मुख)
वहिर्गता	(पार्ष्णि)	विप्रकीर्ण	(नृ० ह०)
वामदक्षतिरश्चीन	(चालन)	विप्रकीर्णवर्तना	(वर्तना)
वामविद्ध	(आ० म०)	विप्लुता	(स० दृ०)
वालव्यसनचालन	(चालन)	विभ्रान्ता	(स० दृ०)
विकासी	(अघर)	विमुक्ता	(अनिल)

नृस्थाध्याय

शब्द	संज्ञित सकेत	शब्द	संज्ञित सकेत
विमुक्तक	(उ० स्था०)	विमर्जन	(क० क०)
वियुक्त	(गुल्फ)	विमण्ट	(अवर)
वियुक्ता	(पाणि)	विस्मित	(अनिल)
वियुक्ता	(क० गु०)	विस्मिता	(स्था० दृ०)
विरुडितबन्धन	(चाउन)	विहमी	(दे० ला०)
विलीन	(अनिल)	विहृत	(आ० म०)
विलोकिन	(म० द०)	वीभत्मा	(र० दृ०)
विवतन	(ता० क०)	वीरा	(ग० दृ०)
विवर्तन	(दे० ला०)	वश्चिक	(करण)
विवर्तित	(पाठ्य)	वश्चिककुट्टित	(करण)
विवर्तित	(पलक)	वश्चिकरेचित	(करण)
विवर्तित	(अवर)	वश्चिकापमत्	(त्र्य० अ०)
विवर्तित	(मु० स्था०)	वृषभक्रीडित	(करण)
विवर्तित	(करण)	वृषभामन	(दे० स्था०)
विमृत	(मुख)	वेष्टन	(दे० जा०)
विमृत	(जानु)	वेपथुव्यञ्जक	(चालन)
विमृत	(करण)	वैभाविक	(मा० ला०)
विमृत्ता	(कटि)	वैशाखरेचित	(करण)
विषण्णा	(म० दृ०)	वैशाखरेचित	(च० अ०)
विषममूर्च्छि	(दे० स्था०)	वैशाखस्थानक	(त्र० स्था०)
विष्कम्भ	(उ० स्था०)	वैष्णव	(पु० स्था०)
विष्कम्भ	(करण)	वैष्णव	(दे० स्था०)
विष्कम्भ	(त्र्य० अ०)	व्यसित	(करण)
विष्कम्भापसृत	(त्र्य० अ०)	व्यभिचारिदृष्टि	(व्य० दृ०)
विष्णुकान्त	(करण)	व्यादीर्ण	(चित्रक)
विष्णुष्टवर्तित	(चालन)	व्याभुग्न	(मुख)
विष्णुष्टा	(दे० भू०)	व्यवर्तित	(क० क०)
विश्लेष	(क० क०)	व्यस्तोप्लुतिनिवर्तक	(चालन)
विश्रुगाटकवन्ध	(चालन)		

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	संज्ञित सकेत	शब्द	संज्ञित सकेत
श		सन्दष्टक	(अधर)
शका	(दे० ला०)	सभ्रान्त	(करण)
शकिता	(स० दृ०)	सभ्रान्त	(त्र्य० अ०)
शकटाग्र्य	(भू० म०)	समत	(करण)
शकटास्य	(करण)	समुख	(ह० पु०)
शकटाग्र्य	(भू० चा०)	समुखागत	(ह० पु०)
शब्द	(भा० भा०)	समुखीन	(चालन)
शब्दाभिनय	(ड० भि०)	सलग्ना	(च० गु०)
शरसन्धान	(चालन)	सहन	(जानु)
शकतुण्ड	(अ० ह०)	सहत	(चिबुक)
शकतुण्डवर्तना	(वर्तना)	सहत	(दे० म्था०)
शून्या	(स० दृ०)	सहता	(क० गु०)
शिवर	(अ० ह०)	सम	(वध)
शिखरवर्तना	(वर्तना)	सम	(पाद)
शिर	(ह० क्षे०)	सम	(जानु)
शीर्ष	(ह० क्षे०)	सम	(म० व०)
शेषपद	(मा० ला०)	सम	(पलक)
शैव	(दे० म्था०)	सम	(मु० द०)
श्याम	(मु० रा०)	सम	(अनिल)
श्रवण	(ह० क्षे०)	सम	(द० क०)
श्रान्ता	(स० दृ०)	सम	(कपाल)
श्लेष	(क० क०)	सम	(सु० स्था०)
श्वसित	(चिबुक)	समकर्त्तरिलोहडी	(उ० क०)
ष		समकर्त्तचत	(उ० क०)
षष्ठ	(वि० क०)	समनख	(करण)
स		समपाद	(पु० स्था०)
सवट्टिता	(दे० भू०)	समपाद	(दे० स्था०)
सचारिता	(दे० भू०)	समपादा	(भू० चा०)
सन्दश	(अ० ह०)	समपादाञ्चित	(उ० क०)

नृत्याध्याय

शब्द	सञ्चित सकेत	शब्द	सञ्चित सकेत
समपादनिकुट्टित	(मु० चा०)	सूचीविद्ध	(आ० म०)
समप्रकोष्ठचलन	(चालन)	सूच्यन्तर	(उ० क०)
सममूचि	(दे० स्था०)	मूच्याम्य	(नृ० ह०)
समम्बलितिका	(दे० भू०)	सूक्कृत	(अनिल)
समा	(ग्रीवा)	सैन्वव	(मा० ला०)
समुद्गक	(अधर)	सोच्छ्वासा	(नासा)
समुद्बृत्त	(ता० क०)	मोष्ठव	(दे० ला०)
समोत्सारित	(भू० म०)	स्कन्व	(ह० क्षे०)
समोत्सारितमत्तली	(भू० चा०)	स्कन्वभ्रान्त	(उ० क०)
सरल	(वाहु)	स्कन्धाञ्चित	(उ० क०)
सर्पित	(करण)	स्खलित	(अनिल)
सहजा	(भ्र्)	स्खलित	(करण)
साचि	(मु० द०)	स्तव	(उरु)
साधारण	(चालन)	स्तम्भक्रीडनिक	(दे० भू०)
सारिका	(दे० भू०)	स्तम्भित	(अनिल)
सिहाकर्षित	(करण)	स्त्रीस्थानक	(स्त्री० स्था०)
सिंहविक्रीडिन	(करण)	स्थापना	(दे० ला०)
सीत्कृत	(अनिल)	स्थायिदृष्टि	(स्था० दृ०)
सुकलाम	(दे० ला०)	स्थितपाठ्य	(मा० ला०)
मुप्तस्थानक	(सु० स्था०)	स्थितावर्ता	(भू० चा०)
सूक्कागुना	(रसना)	स्थिरहस्त	(च० अ०)
सूचि	(करण)	स्निग्धा	(स्था० दृ०)
सूची	(पाद)	स्पन्दिता	(भू० चा०)
सूची	(आ० चा०)	स्पर्शाभिनय	(ह० भि०)
सूची	(दे० आ०)	स्फुरिका	(दे० भू०)
सूचीमुख	(अ० ह०)	स्फुरित	(पलक)
सूचीमुखवर्तना	(वर्तना)	स्फुरित	(चिबुक)
सूचीविद्ध	(करण)	स्फुरिता	(दे० भू०)
सूचीविद्ध	(च० अ०)	स्फोटन	(क० क०)

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

शब्द	सञ्चित सकेत	शब्द	सञ्चित सकेत
स्रुवा	(दे० ला०)	स्वाभाविक	(मु० रा०)
स्विसमुखतल	(ह० प्र०)	स्वाभाविकी	(नामा)
स्वस्तिक	(स० ह०)	ह	
स्वस्तिक	(नृ० ह०)	हसास्य	(अ० ह०)
स्वस्तिक	(बाहु)	हरिणत्रासिता	(दे० भू०)
स्वस्तिक	(दे० स्या०)	हरिणप्लुत	(करण)
स्वस्तिक	(करण)	हरिणप्लुता	(दे० आ०)
स्वस्तिकरेचित	(करण)	हर्ष	(भा० भा०)
स्वस्तिकरेचिन	(त्र्य० अ०)	हस्तकरण	(ह० क०)
स्वस्तिकवर्तना	(वर्तना)	हस्तक्षेत्र	(ह० क्षे०)
स्वस्तिका	(दे० भू०)	हस्तप्रचार	(ह० प्र०)
स्वस्तिकाश्लेष	(चालन)	हारदामविलासक	(चालन)
स्वस्थ	(अनिल)	हास्या	(र० दृ०)
स्वस्थ	उ० स्था०)	हृष्टा	(स्था० दृ०)
स्वस्थालसा	उ० स्था०)		

